बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण : एक पुरातात्विक अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी में इतिहास विषय में
डॉक्टर ऑफ फिलॉसोफी (पीएच0डी0)
उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

द्वारा

पुरूषोत्तम सिंह

(प्रवक्ता इतिहास विभाग)
पं0 जवाहरलाल नेहरू पी0 जी0 कालेज, बाँदा

निदेशक
डा0 आर0 के0 भाटिया
(एम0ए0, पीएच0डी0, एलएल0बी0)

रीडर इतिहास विभाग
बुन्देलखण्ड कालेज, झाँसी

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

2006

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ''बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण : एक पुरातात्विक अध्ययन'' श्री पुरूषोत्तम सिंह के द्वारा पूरा किया गया उनका स्वयं का प्रयास है, जिसे उन्होंने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी से पी एच0डी0 उपाधि हेतु तैयार किया है।

इस सम्बन्ध में मैं प्रमाणित करता हूँ कि –

1. शोध प्रबन्ध यथावत सम्पूर्ण है।
2. यह शोध छात्र के द्वारा स्वयं पूरा किया गया है।
3. शोध छात्र के द्वारा मेरे निदेशन में विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित नियमों के अन्तर्गत कार्य किया है और वांछित दो सौ दिन उसकी उपस्थिति रही है।
4. यह शोध प्रबन्ध प्रस्तुत स्वरूप में परीक्षकों के पास भेजने के अनुरूप है।
5. शोध प्रबन्ध अपने इस स्वरूप में प्रकाशन योग्य है।

मैं श्री पुरूषोत्तम सिंह के इस शोध प्रबन्ध को पीएच0डी0 उपाधि हेतु बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी में प्रस्तुत करने की अनुमति प्रदान करता हूँ।

11/7/6

दिनांक : 11.7.06
स्थान : झाँसी

(डा0 आर0 के0 भाटिया)
शोध निदेशक
रीडर, इतिहास विभाग
बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी

प्राक्कथन

बुन्देली धरा प्रकृति का अद्भुत उपहार है। यह प्रसिद्ध तपोस्थल है, रण–बाँकुरों की क्रीड़ा स्थली है एवं लासमयी संस्कृति का आगार है। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे इस इस भूमि में जन्म मिला। बुन्देलखण्ड का सुदीर्घ आकर्षक इतिहास है और यहाँ बिखरे हुये सैकड़ों दुर्ग काल के मानदण्ड की भाँति किसी को भी आकर्षित करते हैं। इतिहास मानव के अस्तित्व का अध्ययन है और आज अपना अस्तित्व खो रहे ये किले मुझे बालपन से ही अपनी ओर खींचते रहे हैं। इनका निर्माण किन परिस्थितियों में और किसी प्रकार हुआ होगा; समय–सागर के ज्वार भाटों के थपेड़ों को सहन करते हुये विभिन्न काल खण्डों में इनका वैभव प्रकाश समाज को कैसे प्रभावित करता रहा होगा, इस प्रकार की जिज्ञासायें अनवरत उठती रहती थीं। मेरी जिज्ञासाओं का समाधान इस शोध प्रबन्ध "बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण : एक पुरातात्विक अध्ययन" के रूप में साकार हुआ है।

मैं इस प्रयास की पूर्णता के लिये अपने शोध निदेशक डा0 आर0 के0 भाटिया, रीडर इतिहास विभाग, बुन्देलखण्ड कालेज झाँसी का कृतज्ञ हूँ, जिनका ज्ञानपूर्ण मार्गदर्शन एवं आत्मीयता मेरा सम्बल रहा है। मैं कालेज के पूर्व प्राचार्य एवं इतिहास विभागाध्यक्ष डा0 एस0 पी0 पाठक के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने प्रारम्भ से ही पारिवारिक स्नेह प्रदान किया। साथ ही श्रद्धेय गुरूवर डा0 कैलाश खन्ना एवं डा0 मंजू सिंह द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन के लिये कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। प्रस्तुत प्रयास में डा0 आर0 के0 त्यागी, वरिष्ठ वैज्ञानिक, जी0एफ0आर0आई0झाँसी का मार्ग दर्शन अनवरत प्राप्त रहा है। मैं इसी कम में डा0 पी0 सी0 सिंहल, कोआर्डीनेटर इगनू बी बी सी कालेज, डा0 डी0 के0 मिश्रा, डा0 ए0 के0 अग्रवाल, डा0 डी0 पी0 गुप्ता बी0के0डी0 कालेज का आभार उनके द्वारा प्रदत्त मार्गदर्शन हेतु व्यक्त करता हूँ।

पं0 जे0एल0एन0 कालेज बाँदा के विभागीय सहयोगियों डा0 आदेश गुप्ता, डा0 संतोष तिवारी से प्राप्त त्रुटिरहित समालोचनाओं के लिये मैं उनका आभारी हूँ। मेरे

कालेज के अन्य वरिष्ठ सहयोगी डा0 जे0के0 बैनर्जी, डा0 जे0 पी0 नाग, डा0 आर0 पी0 गुप्ता, डा0 एस0 एस0 गुप्ता, डा0 ए0 के0 शुक्ल, डा0 एस0 पी0 सिंह सदैव मुझे उत्साहित करते रहे हैं, मैं उनका कृतज्ञ हूँ। श्री अतुल शुक्ला ने ए0 एस0 आई0 से जो रिपोर्ट्स उपलब्ध करायी हैं तथा श्री आनन्द कुमार जिन्होंने सदैव निश्छल उत्साहवर्धन किया है, वे कृतज्ञता की सीमा से बाहर हैं। सर्वेक्षण काल में इन दोनों मित्रों के अतिरिक्त श्री नीरज शुक्ला एवं मेरे प्रिय शिष्यों शशिशेखर मिश्रा एवं राजेश कुमार यादव ने जो सहयोग किया है, उसके लिये मैं आभार व्यक्त करता हू।

शोध कार्य को पूर्ण करने में मेरे परिवार ने अतुलनीय सहयोग किया है। मैं पूज्य पिता डा0 राजेन्द्र सिंह, विभागाध्यक्ष भूगोल, बुन्देलखण्ड कालेज एवं पूज्य माँ श्रीमती पुष्पलता सिंह के आशीर्वाद का कृपाकांक्षी हूँ। मुझे चाचा डा0 राजेश सिंह, अपर जिला जज; डा0 राजीव सिंह, वरिष्ठ रक्षा वैज्ञानिक, डी0आर0डी0ओ0; डा0 राजेश्वर सिंह, पशुचिकित्साधिकारी का सदैव आशीष एवं समर्थन मिलता रहा है। छोटी बहन ऋचा तथा कुँवर साहब श्री अतुल कृष्ण सिंह का उत्साहवर्धन निस्सदेह प्राप्त हुआ। अनुज वासुदेव सिंह, शोध छात्र, पेट्रोलियम इंजीनियरिंग विभाग, टेक्सॉस विश्वविद्यालय ने भी सदैव उत्साहित किया है। मेरी पत्नी श्रीमती नेहा सिंह एवं सद्यः जात पुत्र 'कृष्णा' ने अध्ययन के अवसर सुलभ करवाये। इन सभी पारिवारिक जनों को कृतज्ञता ज्ञापित करना औपचारिकता की परिधि में आ जायेगा तथापि सभी का सहयोग अविस्मरणीय है। मैं अपने परिवार के वट वृक्ष दादा जी श्री केशव सिंह 'विमल' तथा दादी जी श्रीमती विमला के चरणों में विनयावनत हूँ, जिनके प्रयासों से परिवार के सदस्यों ने शिक्षा के क्षेत्र में नवीन सोपानों को स्पर्श किया है। सर्वेक्षण काल में प्राप्त सहयोग के लिये मैं समस्त शासकीय एवं अशासकीय संस्थानों को अधिकारियों तथा क्षेत्र के प्रबुद्ध नागरिकों का हृदय से आभारी हूँ, जिनकी लम्बी सूची में स्थानाभाव के कारण यहाँ प्रस्तुत नहीं कर सकता। त्रुटिरहित टंकण के लिये श्री राजेश कुमार धन्यवाद के पात्र हैं।

(पुरूषोत्तम सिंह)

अनुक्रमणिका

मानचित्रों एवं अभिन्यास आरेखों की सूची

फोटोग्राफ की सूची

12. क) महोबा दुर्ग– परमाल की बारादरी के स्तम्भाव शेष

खं) तालबेहट दुर्ग– बुन्देला महल एवं झरोखा

13. क) रानीमहल– झाँसी

ख) ओरछा दुर्ग– प्राचीन महल का दीवाने आम एवं सावन–भादों

14. क) ओरछा दुर्ग– राजमहल से शीशमहल एवं जहाँगीर पैलेस का एक दृश्य

ख) ओरछा दुर्ग– राजमहल के साथ परिखा एवं प्राकार

15. क) बरूआसागर दुर्ग– बुन्देला राजमहल का परिरक्षण

ख) समथर दुर्ग– विशाल राजमहल

16. क) गढ़कुण्डार दुर्ग– वीर सिंह देव पैलेस

ख) जैतपुर दुर्ग– रनिवास

17. क) अजयगढ़ दुर्ग– पहाड़ी के नीचे राजा का महल

ख) स्योंढ़ा दुर्ग– महल में दीवाने आम

18. क) भूरागढ़ दुर्ग– गुमान सिंह महल के खण्डहर

ख) कालिंजर दुर्ग– अमान सिंह महल

19. क) कालिंजर दुर्ग– परिरक्षण के बाद व्यंकट बिहारी पैलेस

ख) धमौनी– रानी महल एवं बुर्ज

20. क) नृसिंहदेव पैलेस दतिया– चौथी मंजिल पर सीलिंग में चित्रांकन

ख) नृसिंहदेव पैलेस दतिया– रनिवास में भित्ति चित्र

21. क) नृसिंहदेव पैलेस– लॉबी में ज्यामितीय भित्ति चित्र

ख) ओरछा दुर्ग– राजमहल में दीवाने आम की सीलिंग

22. क) टोड़ीफतेहपुर दुर्ग– मन्दिर के भित्ति चित्र

ख) कालिंजर दुर्ग– चौबे महल में नक्काशीदार लड़की का प्रयोग

23. क) तालबेहट दुर्ग– सिंह पौर

ख) टोड़ी फतेहपुर दुर्ग– अन्नागार

24. क) अजयगढ़ दुर्ग– गंगाताल

	ख)	कालिंजर दुर्ग– सरगाह : प्राकृतिक जलस्रोत एवं चन्देलकालीन शिलालेख
25.	क)	कालपी– चौरासी गुंबज
	ख)	महोबा– मदनसागर के मध्य में करकादेव मंदिर
26.	क)	कालिंजर– नीलकंठेश्वर मन्दिर के स्तम्भ
	ख)	नृसिंहदेव पैलेस दतिया– स्तम्भ संरचना
27.	क)	भूरागढ़ दुर्ग– बावड़ी की भूमिगत सीढ़ियाँ
	ख)	स्योंढ़ा दुर्ग– भूमिगत निर्माण का मार्ग
28.	क)	अजयगढ़ दुर्ग– चन्देलकालीन शिलालेख
	ख)	कालिंजर दुर्ग– नीलकंठ परिसर में धंग का काले पत्थर का अभिलेख
29.	क)	नृसिंहदेव पैलेस दतिया– चतुष्कोणीय मध्य निर्माण
	ख)	टीकमगढ़ दुर्ग– पैलेस

प्रस्तावना

ऐतिहासिक ग्रन्थ शोधार्थियों एवं विज्ञ विद्वत जनों के लिये विषय प्रस्तुत कर सकते हैं किन्तु विभिन्न दुर्ग ऐतिहासिक ज्ञान के वे स्रोत है जो सामान्य जनमानस को न केवल ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्ति के लिये आकर्षित करते हैं वरन इतिहास विषय से सम्पर्क न रखने वालों को भी इतिहास अध्ययन के लिये प्रेरित करते हैं। भारत के अनेक छोटे एवं बड़े दुर्ग, जिनमें से आज बहुतः कालकल्वित हो चुके हैं, एक समय पर ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक गतिविधियों के मूल केन्द्र की भूमिका निभाते रहे हैं। इन केन्द्रों से न केवल प्रशासनिक गतिविधियां चलती रहीं वरन संस्कृति, परम्पराओं एवं ललित कलाओं की वह मन्दाकिनी प्रवाहित होती रही जिसने तत्कालीन समाज को अपने में समाहित कर लिया। इसी का परिणाम है कि आज भी उन नगरों, बस्तियों में जहां कभी दुर्ग रहे हैं, भले ही आज उन्होंने अपना प्रभाव खो दिया हो, तथापि वंश परम्परा से अक्षय इतिहास ज्ञान के वाहक बने हुये हैं। विभिन्न राजवंश, राज परिवार तथा उनका विराट वैभव एवं ऐश्वर्यशाली शक्ति, कालातीत होकर आज इतिहास के ग्रंथों में बंदी होकर रह गयी है, किन्तु उनके दुर्ग आज भी चाहे अनचाहे उनकी स्मृतियों, उस समय तक घटित घटनाओं और उनके कार्यकलापों का बरबस स्मरण कराते हैं। अतः सिद्ध होता है कि क्षेत्रीय इतिहास के अध्ययन में दुर्ग या किले जीवन्त दस्तावेज होते हैं। बुन्देलखण्ड आर्थिक रूप से एक पिछड़ा क्षेत्र, राजनीतिक रूप से दो राज्यों में विभाजित क्षेत्र एवं भौगोलिक रूप से अधिकांशतः अर्धशुष्क जलवायु तथा विशिष्ट धरातलीय क्षेत्र है। अपनी विशिष्ट संस्कृति एवं ऐतिहासिकता के कारण यह भारत में विशेष स्थान रखता है। विभिन्न राजवंशों द्वारा निर्मित किले एवं गढ़ियां इस क्षेत्र में बहुसंख्या में बिखरे हुये हैं। इन दुर्गो के आकर्षण ने शोधार्थी को शोध के लिये प्रेरित किया, जिसका यह प्रस्तुत शोध प्रबन्ध परिणाम है।

दुर्ग की परिभाषा–

दुर्ग जिसके प्रचलन में गढ़, किला, गढ़ी कोट आदि शब्द पर्यायवाची के रूप में उपलब्ध हैं, एक जटिल शब्द हैं, जिसमें गहन सुरक्षा का भाव निहित है। अतः प्रथमतः

'दुर्ग' शब्द को स्पष्ट कर लेना उचित होगा। संस्कृत में गम् धातु है, जिसके गमयतीति या गच्छतीति शब्द होते हैं, जिसका अर्थ होता है पार करना या प्राप्त करना। दुर् शब्द दु + रूक अव्यय है, जिसका अर्थ होता है कठिनाई या बुराई को प्रकट करना। इस तरह दुर्ग या दुर्गम् शब्द का निर्माण हुआ है और यह नपुंसक लिंग में है तथा इसका अर्थ हुआ– कठिनाई से पार करना या कठिनता से प्राप्त करना अथवा कठिनाई पूर्वक पहुंच पाना। संस्कृत शब्द कोष दुर्ग के अर्थ में कठिनाई से जाने योग्य या प्राप्त करने योग्य संकीर्ण घाटी, भीड़ा, दर्रा, गढ़, किला, कोट आदि को उद्धृत करते हैं, जिसका भाव है– जहां तक पहुंचना बहुत कठिन हो। हिन्दी शब्द कोष[1] दुर्ग को कोट, गढ़, जहां पहुंचना कठिन हो, बतलाते हैं। अर्थात किला, लम्बी चौड़ी इमारत है, जिसके भीतर सैनिक रहते हैं और जो विविध रक्षात्मक उपायों द्वारा बाहरी आक्रमण से सुरक्षित होता है। यह शब्दकोष गढ़ के अर्थ में कोट के साथ खाईं को भी शामिल करते हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य में राज सत्ता में दुर्ग एक महत्वपूर्ण अंग होता था। इसलिये प्रायः सभी नीतिकारों ने न केवल इसकी चर्चा की है वरन उसकी उपादेयता एवं महत्व को स्वीकार किया है। मनु[2] राज्य शासन के सात अंग स्वीकार करते हैं, जिनमें से दुर्ग भी एक है। ये सात अंग हैं– स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, बल (सेना) और मित्र। नीतिसार के अनुसार

'तूष्णी युद्धं जनत्राणां मित्रामित्र परिग्रहः
सामन्तारिविका बाधा निरोधं दुर्गमुच्यते[3]।।

भाव यह है कि जो छिपकर युद्ध करने का माध्यम है, जो जन रक्षा करता है और शत्रु का परिगृह करता है, जो सामन्त तथा आटविकों का विरोध करता है, वह दुर्ग है। इस श्लोक से कामन्दक का भाव स्पष्ट है कि दुर्ग स्वयं की शत्रुओं से रक्षा तथा छिपकर युद्ध करने के लिये निर्मित किये जाते है। याज्ञवल्क्य का मत है कि दुर्ग सम्राट, कोष एवं प्रजा को रक्षा प्रदान करता है।[4] युक्ति कल्पतरू का कथन है– 'यह स्वाभाविक मत बात है कि एक सार्वभौम राजा की शक्ति उसके दुर्ग में निहित होती है।'[5] नीतिसार में कामन्दक दुर्ग के प्रभाव को पुनः रेखांकित करते हैं; ''यह स्वाभाविक बात है कि एक

राजा जिसके पास अनेक दुर्ग हैं, वह अपने लोगों से ही नहीं वरन अपने शत्रुओं से भी सम्मान प्राप्त करता है।"[6] वेदों में केवल ऋग्वेद में उल्लिखित है– 'वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्वंति राजान् एषाम् नयंति दुरिता तिरः"[7] अर्थात जो अन्याय करने वाले पुरूष मनुष्यों को पीड़ा देकर दुर्ग में रहते हों, उनको नष्ट करने के लिये विद्वान राजपुरूषों को चाहिये कि उनके पर कोटों का विनाश कर और शत्रुओं को वशीभूत कर धर्म का पालन करें। प्रसिद्ध तमिल ग्रन्थ तिरूक्कुरल में वर्णित है; विद्वत जन कहते हैं कि दुर्ग में चार योग्यतायें निहित होती हैं– ऊँचाई, चौड़ाई, शक्ति तथा अगम्यता।[8] इस प्रकार अनेक प्राचीन ग्रन्थों में न केवल दुर्ग के महत्व की वरन उनकी विशिष्ट संरचनाओं की भी चर्चा प्राप्त होती है। प्राचीन विचारों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्रजा, कोष एवं स्वयं की रक्षा के लिये शासक दुर्ग का निर्माण कराते थे, जिससे आवश्यकता पड़ने पर लम्बे युद्ध किये जा सकें।[9] भारतीय अधिवास परंपरा में प्राचीन काल से ही न केवल बड़े नगर बल्कि छोटी बस्तियों को भी सुरक्षित करने के लिये दीवारों, खाइयों और कटीली झाड़ियों की बाड़ लगाने का काम होता रहा है, जो दुर्ग की परिभाषा का प्रत्यक्षीकरण है। निश्चय ही भारत वर्ष में विश्व की अन्य सभ्यताओं की तुलना में ये सुरक्षा प्रबन्ध पहले प्रारम्भ किये गये। अनेक ऐसे प्रमाण मिलते हैं कि सिकन्दर के काल में भी भारतीयों के पास चौतरफा दीवारों से घिरे नगर और किले होते थे।[10] इस प्रकार के मजबूत एवं सुरक्षित नगरों को बनाने की प्रथा कभी समाप्त नहीं हुयी और सोलहवीं शताब्दी के समय जब मुगल साम्राज्य की नींव पड़ी तो उस समय देश भर में हिन्दू अथवा मुस्लिम शासकों के अनेक छोटे बड़े किले बिखरे हुये थे।[11] अठारवीं शताब्दी के अंत में मराठों की स्थिति का वर्णन करते हुये कर्नल ब्लेकर ने यह विश्वास प्रकट किया है कि उस समय मराठों के राज्य में जितने गढ़ या किले थे उतने किले क्षेत्रफल के अनुपात में पूरे हिन्दुस्तान के किसी भी राज्य या क्षेत्र में नहीं थे।[12] निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारत की दुर्ग परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और दुर्ग शब्द का भाव अगम्यता अथवा कठिनाई से पहुँचना ही उपयुक्त है। इस तरह से कांटों की बाड़, मिट्टी के ऊँचे भीटे, खाइयों, ऊँची चहारदीवारी, बुर्ज आदि के साथ नगर दीवार को भी दुर्ग की परिभाषा में लिया जाना चाहिये किन्तु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में नगर दीवार,

परिखा, प्राकार, वप्र और बुर्ज आदि से पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से सुसज्जित निर्माण को दुर्ग के भाव में गृहण कि गया है।

जिस प्रकार भारत में किलों और गढ़ियों के निर्माण की परम्परा समृद्ध रही है, उसी प्रकार बुन्देलखण्ड में भी किलों और गढ़ियों का बहुतायत से निर्माण किया गया। ये किले वर्तमान में तीन स्थितियों में हैं– ध्वस्त, खण्डहर और अपेक्षाकृत ठीक। अध्ययन क्षेत्र में कुल मिलाकर लगभग 270 किले हैं, जिनमें से आधे स्थलों में ये निर्माण लगभग अदृश्य हो चुके हैं। जो शेष हैं, उनमें से अधिकांश की चर्चा समुचित सन्दर्भो में प्रस्तुत प्रबन्ध में की गयी है, परन्तु लगभग 25 किले प्रमुख रूप से अध्ययन की विषय वस्तु बन सके हैं।

अध्ययन क्षेत्र

यमुना के दक्षिणी भाग को, जिसे आजकल बुन्देलखण्ड कहा जाता है, प्राचीन इतिहास में इसके कई अन्य नाम भी मिलते हैं। महाभारत काल में इसे 'चेदि' प्रदेश के नाम से जाना जाता था जो महाजनपद काल में भी 'चेदि' के नाम से विख्यात रहा। चन्देलकालीन शासन में यह 'जेजाकभुक्ति' के नाम से विख्यात रहा जिसे 'जयभुक्ति' या 'जेजाक भूमि' भी कह कर पुकारा गया। आज भी इसका अपभ्रंश 'जुझौति' उपलब्ध है। स्वर्गीय कृष्ण बलदेव वर्मा का तर्क है कि वैदिक कालीन यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड का यहां सर्वप्रथम अभ्युदय होने के कारण यह प्रदेश 'यजुर्होति, कहा गया जिसका अपभ्रंश वर्तमान जुझौति है। बुन्देलखण्ड दशार्ण देश के नाम से भी जाना गया, जिसकी चर्चा कालिदास ने 'मेघदूतम्' में पूर्वमेघ के श्लोक 23 में की है। बुन्देलखण्ड का पूर्वी भाग कभी डाहल प्रदेश के नाम से जाना जाता था। वर्तमान बुन्देलखण्ड नाम क्यों पड़ा, इसमें भी अनेक मतभेद हैं। कुछ विद्वानों का मत हैं कि विन्ध्य उपत्यका में स्थित होने के कारण यह 'विन्ध्येलखण्ड' विन्ध्य परिवर्तित होकर बुन्देलखण्ड हो गया। कुछ इतिहासकारों का मत है कि बुन्देला शासकों के पूर्वज गहरवार क्षत्रिय राजा ने विन्ध्यवासिनी की अराधना करते हुये रक्त बूंदे चढ़ायी थीं, अतः उनकी संतानें बुन्देला कहलायी तथा उनके द्वारा शासित क्षेत्र बुन्देलखण्ड के नाम से जाना गया। ऐतिहासिक

ग्रंथों से स्पष्ट है कि अकबर के शासन काल तक इस भू–भाग ख्याति बुन्देलखण्ड के नाम से अधिक नहीं हुयी थी।[13]

बुन्देलखण्ड सीमांकन– बुन्देलखण्ड क्षेत्र के सीमांकन के आधार ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं भाषायी आधार हो सकते हैं। प्रमुख रूप से बुन्देली भाषा एवं संस्कृति को आधार मानकर विद्वान बुन्देलखण्ड का सीमांकन करने का प्रयास करते हैं। ऐतिहासिक दृष्टिकोण में महाराजा छत्रसाल बुन्देला, जिन्होंने अधिकतम बुन्देला राज्य का विस्तार किया, की राज्य सीमाओं से बुन्देलखण्ड को पहचानने की कोशिश की जाती है। इस सन्दर्भ में जनश्रुति में यह दोहा प्रसिद्ध है।

इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस।
छत्रसाल से लड़न की, रही न काहू हौंस।।[14]

बुन्देलखण्ड क्षेत्र की सीमाओं के सन्दर्भ में कुछ विचार बुन्देलखण्ड क्षेत्र की सीमाओं के सन्दर्भ में कुछ विचार इस प्रकार हैं। गजेटियर ऑफ इण्डिया में डा0 जॉर्ज ग्रियर्सन[15] लिखते है, ''बुन्देलखण्ड वह भू–भाग है जो उत्तर में यमुना, उत्तर पश्चिम में चम्बल, दक्षिण में म0प्र0 के जबलपुर और सागर सम्भाग, दक्षिण–पूर्व में रीवा अथवा बघेलखण्ड के मध्य स्थित है तथा जिसके दक्षिण–पूर्व में मिर्जापुर की पहाड़ियां हैं।'' एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका[16] के अनुसार, ''बुन्देलखण्ड मध्य भारत का वह भाग है, जिसकी पूर्वी सीमा बघेलखण्ड की सीमा से मिलती है।'' श्री कृष्ण बलदेव वर्मा वर्तमान बुन्देलखण्ड में उत्तर प्रदेश के जिलों के साथ भूतपूर्व बुन्देलखण्ड एजेन्सी के राज्यों को सम्मिलित करते हैं जिसमें सागर, दमोह आदि जिले सम्मिलित नहीं है। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार[17] बेतवा, धसान और केन नदी के उस क्षेत्र को जिसमें नर्मदा की उपरी घाटी सम्मिलित हैं, बुन्देलखण्ड मानते हैं। इतिहासकार विन्सेन्ट आर्थर स्मिथ[18] का मत है कि, 'जिस क्षेत्र में चन्देल शासकों ने राज्य किया, वह बुन्देलखण्ड है। यह क्षेत्र गंगा यमुना के दक्षिण में नर्मदा तक फैला हुआ है। आधुनिक सागर जिला इसमें सम्मिलित हैं। सुप्रसिद्ध भूगोलवेत्ता प्रो0 रामलोचन सिंह[19] ने भौगोलिक तथ्यों को अत्यधिक महत्व देते हुये उत्तर प्रदेश बुन्देलखण्ड के सात जिलों के अतिरिक्त उसकी सीमा से लगे

स्थिति



हुये मध्य प्रदेश के 4 जिले और दो तहसीलों को बुन्देलखण्ड माना है। डा0 आर0के0 त्यागी[20] ने बुन्देलखण्ड उ0प्र0 के सभी जिलों के अतिरिक्त सीमावर्ती 6 जिलों एक 2 तहसीलों को बुन्देलखण्ड माना है। वर्तमान समय में पृथक बुन्देलखण्ड राज्य की मांग चल रही है, जिसमें उत्तर प्रदेश के 7 और मध्य प्रदेश के 14 जिले सम्मिलित कर बुन्देलखण्ड राज्य बनाने की मांग हो रही है, किन्तु यह सीमांकन बिल्कुल ही तथ्यपरक प्रतीत नहीं होता। शोधार्थी ने इन सभी विचारों को ध्यान में रखते हुये बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा यमुना नदी को, दक्षिणी सीमा नर्मदा की उत्तरी सीमा यमुना नदी को, दक्षिणी सीमा नर्मदा की घाटी को छोड़कर उत्तरी जलप्रवाह की सीमा, पश्चिम में काली सिंध नदी के प्रवाह क्षेत्र से, पूर्व में रींवा के बघेलखण्ड को बुन्देलखण्ड की सीमायें स्वीकार किया है। इस सीमांकन में भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं बुन्देली भाषायी सीमाओं के औसत को प्राप्त करने की कोशिश की गयी है, जिसमें उ0प्र0 और म0प्र0 के कुल मिलाकर 13 जिले आते हैं।

अध्ययन क्षेत्र–सामान्य परिचय– प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र वर्तमान में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश प्रान्तों में फैला हुआ है। इसका विस्तार 23^0 8′ उत्तरी अक्षांश से 26^0 30′ उत्तरी अक्षांश तथा 78^0 11′ पूर्वी देशान्तर से 81^0 30′ पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित है। बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा यमुना नदी, पश्चिमी सीमा सिन्ध नदी तथा उत्तरी पूर्वी सीमा भाण्डेर पहाड़ियों द्वारा निर्धारित हैं, जबकि दक्षिण का विस्तार विन्ध्यन पठारों में है। प्रशासनिक दृष्टिकोण से यह क्षेत्र चार संभागों में विस्तृत है, जिसमें 13 जिले, साठ तहसीलें तथा 89 विकास खण्ड हैं। सम्पूर्ण क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल 71618 वर्ग किमी0 है, जिसमें 2001 की जनगणना के अनुसार 15.49 मिलियन जनसंख्या कुछ 108 नगरों एवं 11587 ग्रामीण बस्तियों में निवास करती है। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में उत्तर प्रदेश बुन्देलखण्ड का उत्तर प्रदेश के क्षेत्रफल में 12.20 प्रतिशत है, जबकि मध्य प्रदेश बुन्देलखण्ड का मध्य प्रदेश के कुल क्षेत्रफल में 13.62 प्रतिशत है। इस प्रकार दोनों प्रान्तों के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल में बुन्देलखण्ड का भाग 12.98 प्रतिशत है, जबकि दोनों प्रान्तों की कुल जनसंख्या में यहां के निवासियों की हिस्सेदारी 6.84 प्रतिशत है।[21]

बुन्देलखण्ड में पक्के मार्गो का विस्तार 12,642 किमी0 (उ0प्र0 5293 किमी0. म0प्र0 7168 किमी) तथा रेलपथ की लम्बाई 1019 किमी0 (उ0प्र0 683 किमी0. म0प्र0 336 किमी0) है।[22] यमुना और उसकी सहायक नदियों द्वारा निर्मित बुन्देलखण्ड का उत्तरी भाग जलोढ़ मिट्टियों का उपजाऊ मैदान है जबकि दक्षिण में अनेक छोटी नदियों एवं जलधाराओं द्वारा विखण्डित उच्च पठारी भू भाग है, जिसमें अनेक छोटी पहाड़ियां एवं श्रेणियां फैली हुयी हैं। मोटे तौर पर 150 किमी0 की समोच्च रेखा मैदानी भाग को दक्षिण के उच्च भाग से अलग करती है। बुन्देलखण्ड का उत्तरी मैदानी भाग समतल एवं उपजाऊ कृषि योग्य भू भाग है, जहां जालौन, हमीरपुर एवं बांदा जिलों में 94 से 96 प्रतिशत तक भूमि कृषि योग्य है, जबकि दक्षिणी पठारी भाग में स्थित दमोह, पन्ना और सागर जिले पठारी एवं विखण्डित हैं और यहां क्रमशः 37, 34, 29 प्रतिशत भूमि वनाच्छादित है।[23] बुन्देलखण्ड में एक तरफ धरातल, जलवायु, मिट्टियों जैसे भौगोलिक कारकों में बड़ी विविधता देखने को मिलती है, तो दूसरी तरफ विभिन्न कालखण्डों में अनेक राजवंशों के ऐतिहासिक धरोहर तथा समृद्ध सांस्कृतिक सम्पदा इसे सहज प्राप्त रही है। बुन्देलखण्ड के दुर्ग निर्माण में इन भौगोलिक तथा ऐतिहासिक कारकों का विशिष्ट प्रभाव पड़ा है।

विषयवस्तु के स्रोत

इस विस्तृत भू भाग में विखरे हुये किलों एवं गढ़ियों तथा उनसे सम्बद्ध ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक सूचनाओं का संकलित करनेके लिये विभिन्न माध्यमों का अनुसरण किया गया है। विषयवस्तु को संग्रहीत करने में निम्नांकित सा धन प्राप्त करने के प्रयास किये गये है।

अ) साहित्यिक स्रोत– साहित्यिक स्रोतों में प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति से सम्बन्धित अनेक ग्रंथों का अवलोकन किया गया है, जिनमें ऐतिहासिक ग्रंथों के अतिरिक्त धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक ग्रंथों को भी महत्व दिया गया है। इन पुस्तकों की विस्तृत सूची प्रबन्ध के अन्त में प्रदान की गयी है। बुन्देलखण्ड के इतिहास

से सम्बन्धित ग्रन्थों में सर्वाधिक सहायता जिन ग्रंथों से ली गयी है, वे इस प्रकार हैं– 'बुन्देलखण्ड का इतिहास'– दीवान प्रतिपाल सिंह, 'बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास, राजतंत्र से जनतंत्र तक'– काशी प्रसाद त्रिपाठी, 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास'– गोटेलाल तिवारी, 'लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ महाराजा छत्रसाल बुन्देला'– भगवान दास गुप्ता, चन्देल एवं उनका राजत्व काल'– केशरी मिश्र, 'चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास'– अयोध्या प्रसाद पाण्डे, 'हिस्टी ऑफ बुन्देलॉज'– डब्ल्यू0 ए0 पॉगसन, 'द अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो'– एस0के0 मित्रा, 'हिस्टी ऑफ चन्देलाज'– एन0एस0बोस, 'बुन्देलखण्ड का इतिहास'– मुशी श्यामलाल आदि। दुर्गो से सम्बन्धित ग्रन्थों में प्राचीन एवं मध्यकालीन वास्तुशास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थ यथा–मयमत नीतिसार, समरागण सूत्रधार इत्यादि तथा 'द स्टांग होल्ड्स ऑफ इण्डिया'– सिडनी टॉय, 'भारत के दुर्ग'– दीनानाथ दुबे की सहायता ली गयी है। शोधार्थी ने इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया, गजेटियर ऑफ सेन्टल प्रोविन्सेज, ओरछा गजेटियर के अतिरिक्त सम्बन्धित सभी जिलों के डिस्टिक्ट गजेटियर से पर्याप्त सहायता प्राप्त की है। उपरोक्त के अतिरिक्त विभिन्न राष्टीय एवं अन्तर्राष्टीय संगोष्ठियों में प्रस्तुत किये गये विभिन्न विद्वानों के शोध पत्रों से विचारों का समावेश किया गया है।

ब) प्रत्यक्ष सर्वेक्षण एवं निरीक्षण– शोधार्थी ने प्रस्तुत प्रबन्ध में वर्णित अधिकांश किलों का स्वयं जाकर निरीक्षण एवं सर्वेक्षण किया है। स्वाभाविक रूप से शोध प्रबन्ध में बहुत से तथ्य प्रथम स्रोत के रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। दुर्गो की स्थिति, निर्माण सामग्री, निर्माण शैली, भवनों के आकार प्रकार आदि पर व्यक्त किये गये विचार इस प्रथम स्रोत से प्राप्त किये गये हैं। सर्वेक्षण के समय तत्सम्बन्धी स्थानों के प्रबुद्ध लोगों से प्राप्त साक्षात्कार और वहां चर्चित जनश्रुतियों एवं दन्त कथाओं का भी उपयोग आवश्यकता पड़ने पर परीक्षण एवं परिमार्जन के बाद कर लिया गया है। निःसंकोच यह कहा जा सकता है कि सर्वेक्षण से इस शोध प्रबन्ध के लिखने में महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हुयी है।

स) पुरातात्विक स्रोत– अध्ययन क्षेत्र में विस्तृत पुरातात्विक सामग्री उपलब्ध होती रही है, जिनमें शिलालेख, अभिलेख, ताम्रपत्र लेख, मूर्तियाँ एवं सिक्के आदि प्रमुख रहे हैं। इस पुरातात्विक सामग्री का संकलन एवं विश्लेषण विभिन्न संस्थाओं और व्यक्तियों द्वारा किया गया है, जिसका उपयोग शोधार्थी ने किया है। विशेष रूप से आर्क्योलोजिकल सर्वो रिपोर्ट्स का उपयोग इस ग्रंथ में किया गया है। एपिग्राफिया इण्डिका, 'क्वायन्स मेडिवेल इंडिया'– कनिंघम, 'कैटेलाग ऑफ क्वायन्स इन इण्डिया'– रोजर तथा 'मेमायर्स ऑफ आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया' से विषय सामग्री मिली है आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स भाग– 2,7, 9, 10 तथा 21 से विशेष रूप से सामग्री प्राप्त की गयी है, जिसमें खण्ड– 21 से कनिंघम का 'ए टूअर इन बुन्देलखण्ड एण्ड रीवा इन 1883–84' तथा 'ए टूअर इन बुन्देलखण्ड एण्ड मालवा– ग्वालियर इन 1884–85' के दोनों खण्डों का वर्ष 2000 का पुनर्मुद्रित अंश शामिल है। 'ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ एनसिएण्ट इण्डिया'– एन0एल0डे, 'एनसियेन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया'– विमलचरण लाहा, 'कनिंघम की एनसिएन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया'– एस0एन0मालूमदार का उपयोग किया गया है। अभिलेख तथा स्थापत्य से सम्बन्धित इन पुरातात्विक सामग्रियों के अतिरिक्त विदेशियों द्वारा लिखित वृतान्त एवं भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद की शोध पत्रिका 'इतिहास' के विभिन्न अंकों का उपयोग प्रबन्ध में हुआ।

अध्ययन का महत्व

सुरक्षा मानव की प्रथम आवश्यकता रही है, इसलिये सामूहिक जीवन के साथी किलेबन्दी का भी जन्म हुआ। यह किलेबन्दी खाईं, परिखा, प्राचीर तथा बसाव दीवारों के कम में प्रचलित रही और युद्धों में आवश्यकता के अनुसार दुर्ग अथवा किलों के रूप में विकसित हुयी। परवर्ती काल में किले राजपरिवारों के आवासों के साथ–साथ सैनिक जमाव, प्रशासनिक नीतियों, कला एवं संस्कृति के आश्रय स्थल रहे हैं। प्रस्तुत अध्ययन दुर्गों के माध्यम से बुन्देलखण्ड के इतिहास के अनुशीलन का प्रयास है। भारत में दुर्ग निर्माण के चिन्ह हड़प्पा कालीन सभ्यता से प्राप्त होते हैं। भारत में उत्खनन से ज्ञात

हड़प्पा, मोहनजोदड़ों, कालीबंगन, लोथल, सुरकोटडा, बनावली आदि स्थलों में दुर्गों के चिन्ह प्राप्त हुये हैं।[24] हमारे देश में किले, कोट, गढ़ और गढ़ी प्रायः सर्वत्र निर्मित हुये हैं किन्तु महाराष्ट, मध्यप्रदेश और राजस्थान का दुर्ग निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान है। यहां क्रमशः 656, 330, 250 दुर्ग या गढ़ी स्थित है।[25] बुन्देलखण्ड का भूभाग दुर्ग निर्माण की परंपरा में अग्रणी रहा है, जहां कालिंजर, अजयगढ़, देवगढ़, सिंगोरगढ़, धमौनी, गढ़कुण्डार और झांसी जैसे महत्वपूर्ण दुर्ग हैं। बुन्देलखण्ड के सभी दुर्ग, गढ़ियां, दुर्ग स्थल (दुर्ग ध्वस्त होने की स्थिति में) मिलकर संख्या में 136 हैं। अध्ययन क्षेत्र में इन सभी स्थलों को कमोवेश ऐतिहासिक कहा जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन में दुर्ग के निर्माण में प्रभाव डालने वाले भौगोलिक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक कारकों का विश्लेषण किया गया है, साथ ही बुन्देलखण्ड के इतिहास में इन शक्ति केन्द्रों के महत्व का मूल्यांकन किया गया है। दुर्ग निर्माण के समय स्थल चुनाव, भौगोलिक कारकों का प्रभाव, क्षेत्रीय वितरण तथा सामूहिक रूप से इन दुर्गों के निर्माण शिल्प आदि को पहली बार प्रस्तुत किया गया है। यह अध्ययन दुर्गों के बहुआयामी योगदान को प्रस्तुत करते हुये वर्तमान स्थितियों, पर भी प्रकाश डालता है। शोधार्थी को विश्वास है कि प्रस्तुत अध्ययन से विद्वत जनों के समक्ष किलों के अज्ञात पक्ष सामने आ सके हैं तथा क्षेत्र के इतिहास का एक नवीन पक्ष उद्घाटित हुआ है। शोध प्रबन्ध में बुन्देलखण्ड में दुर्गों की स्थिति, वितरण तथा अन्य अनेक मानचित्रों को प्रस्तुत किया गया है। विषय को स्पष्ट करने के लिये सर्वेक्षण पर आधारित कतिपय दुर्गों के अभिन्यास आरेख शोधार्थी के द्वारा तैयार किये गये हैं। आवश्यक एवं महत्वपूर्ण फोटोग्राफ लगाकर विषय को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. पाठक, रामचन्द्र, 'भार्गव आदर्श हिन्दी शब्दकोष', त्रिलोचन, वाराणसी, 1987
2. मनुस्मृति, सम्पादक–गंगानाथ झा, प्रयाग, 1932
3. नीतिसार, सम्पादक–गणपति शासत्री, त्रिवेन्द्रम, 1999, 14/21
4. याज्ञवल्क्य स्मृति, सम्पादक–नारायण शास्त्री, वाराणसी, 1–321
5. युक्तिकल्पतरू, सम्पादक– पण्डित ईश्वर चन्द्र शास्त्री, कलकत्ता, 1997, राजनीतिप्रकाश– 202
6. नीतिसार, पूर्वोधृत, 14/28–30
7. ऋग्वेद, 1.41.3
8. तिरूक्कुरल, खण्ड–2 अध्याय–75 'द फोर्टीफिकेशन', कुरल 741 से कुरल 750 तक, स्रोत– www. geocities. Com.
9. काणे, पी0वी0, 'हिस्टी ऑफ धर्मशास्त्रा', भाग–3, पेज–178
10. मैकिण्डल, जे0डब्ल्यू0, 'इनवेजन ऑफ इण्डिया बाई एलेक्जेंडर', 1893, पेज–119
11. इरविन, कर्नल वी0, 'आर्मी ऑफ द इण्डियन मुगल्स', नई दिल्ली, 1962, पेज–260
12. ब्लेकर, कर्नल वी0, 'मेमॉयर ऑफ आपरेशन्स इन इण्डिया', 1817–1821, पेज–305
13. हंस, डा0 कृष्णलाल, 'बुन्देली और उसके क्षेत्रीय स्वरूप', प्रयाग, 1987, पेज–2
14. श्यामलाल, मुंशी, 'तारीख–ए–बुन्देलखण्ड', नौगांव, 1884, पेज–1
15. ग्रियरसन, जॉर्ज ए0, 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया', खण्ड– 1,9, इम्पीरियल गजेटियर ऑफ इण्डिया (सेन्ट्रल प्रोविन्सेज) से उद्धृत
16. जोंस, डी0, 'एन आउटलाइन ऑफ इंग्लिश फोनेटिक्स' एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, खण्ड– 4
17. विद्यालंकार, जयचन्द्र, 'भारत भूमि और उसके निवासी', पेज–65
18. हंस, डा0 कृष्णलाल, 'पूर्वोधृत, पेज–5

19. सिंह, प्रो0 रामलोचन, 'इण्डिया : ए रीजनल ज्योग्राफी', वाराणसी, 1971

20. त्यागी, डा0 आर0 के0, 'ग्रासलैण्ड एण्ड फॉडर एटलस ऑफ बुन्देलखण्ड' आई0जी0एफ0आर0आई0, झांसी, 1997

21. विभिन्न जिलों की जिला जनगणना पुस्तिकायें, जनगणना विभाग, उ0प्र0 एवं म0प्र0 शासन

22. विभिन्न जिलों की सांख्यिकी पुस्तिकायें, अर्थ एवं सांख्यिकी विभाग, उ0प्र0 एवं म0प्र0 शासन

23. त्यागी, डा0 आर0 के0, पूर्वोधृत, सारणियां

24. दुबे, दीनानाथ, 'भारत के दुर्ग', नई दिल्ली, 1999, पेज 7 से 13

25. वही, पेज–2

अध्याय – 1
भौगोलिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

1.1 भौगोलिक स्वरूप

ऐतिहासिक अध्ययनों में देश और काल दो ही प्रमुख आयाम होते हैं। किसी भी क्षेत्र के विभिन्न भौगोलिक पक्ष, वहां के इतिहास एवं संस्कृति के पीछे छिपे होते हैं। विशेष रूप से प्रस्तुत विषय 'दुर्ग निर्माण' में भौगोलिक कारकों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। क्षेत्र की धरातलीय संरचना, जलवायु, जल स्रोत, मिट्टियां एवं वनादि न केवल दुर्ग निर्माण की सामग्री प्रदान करते हैं, वरन उनके निर्माण स्थल, स्थिति तथा स्वरूप को निर्धारित करते हैं। अतः प्रस्तुत विषय के स्पष्ट विश्लेषण में बुन्देलखण्ड के प्रमुख भौगोलिक पक्षों पर एक दृष्टिपात अवश्य ही समीचीन होगा।

विन्ध्य श्रृंखलाओं की गोद में, बुन्देलखण्उ की मध्य भारत में स्थिति अनेक पक्षों के दृष्टिकोण से इसके भौगोलिक व्यक्तित्व को निर्धारित करती है। अरब सागर और बंगाल की खाड़ी से दूर स्थित, उत्तर में गंगा यमुना का विस्तृत मैदान और दक्षिण में पठारी भू भाग वे समीपवर्ती भौगोलिक प्रदेश हैं, जो इसके भौगोलिक स्वरूप को प्रभावित करते हैं। आगामी पृष्ठों में मुख्य भौगोलिक पक्षों का संक्षिप्त विवरण आगे चलकर दुर्ग निर्माण में भौगोलिक प्रभावों को समझने में अवश्य ही सहायक होगा।

1.1.1 संरचना

भूगर्भ शास्त्रियों के दृष्टिकोण से बुन्देलखण्ड में प्रमुख रूप से चार प्रकार के भौगोलिक तंत्र है, जो यहां की संरचना के आधार हैं। इनमें सबसे प्राचीन आर्कियन सिस्टम है, जो मूलतः आग्नेय चट्टानों, ग्रेनाइट और नीस की उपस्थिति से पहचाना जाता है। इसकी प्राचीनता के सन्दर्भ में विद्वानों के अलग–अलग विचार हैं, किन्तु दुबे का मानना है कि इनकी प्राचीनता लगभग 2300 मिलियन वर्ष है।[1] बुन्देलखण्ड ग्रेनाइट संगठन एवं संरचना के दृष्टिकोण से कई प्रकार के हैं, जिनमें हल्के गुलाबी और ग्रे रंग

के अधिक महत्वपूर्ण हैं। बुन्देलखण्ड नीस का भी पर्याप्त महत्व है। पश्चिमी क्षेत्र का नीस मोटे जमाव और वजन वाला, जबकि कबरई क्षेत्र का जमावाकृति लक्षण वाला है। यहां यह उल्लेखनीय है कि आर्कियन सिस्टम की यह चट्टानें बुन्देलखण्ड में प्राचीन काल से ही भवन शिल्प का आधार रही हैं। दूसरी संरचना यहां ग्वालियर सीरीज की है जिसे ट्रान्जीशनल सिस्टम कहा जाता है। ये प्रायः परतदार चट्टानें है जिनमें बालुका पत्थर एवं चूना पत्थर महत्वपूर्ण हैं। ये चट्टानें आयु के दृष्टिकोण से पूर्व विन्ध्य अथवा अरावली क्रम में मानी जाती हैं। इनकी उपस्थिति दतिया जिले के उत्तरी भाग एवं छतरपुर की विजावर तहसील में है, जिनमें थोड़े अंश में ज्वालामुखीय प्रभाव देखे जाते है, दतिया श्रेणी की तुलना में विजावर श्रेणी की चट्टानें कठोर हैं और इन्हें क्वार्टजाइट सैन्डस्टोन और ग्रेनाइट सैन्डस्टोन के गुणवाला माना जा सकता है। तीसरी संरचना को विन्ध्ययन क्रम की चट्टानों के नाम से पुकारा जाता है। यह उत्तर को छोड़कर लगभग अर्ध चन्द्राकार रूप से फैला हुआ क्रम है, जिसमें परतदार बालुका पत्थरों के विशाल कगारों का निर्माण हुआ। विद्वानों का मानना है कि दक्षिण में भू–सन्तुलनीय एवं पश्चिम में टेक्टोनिक गतिविधियों का इन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव के कारण हुये उत्थान से यह क्षेत्र देश के समीपवर्ती भू–भागों से भिन्न हुआ तथा ये उच्च कगार दक्षिण भू–भाग से उत्तर को अलग करने वाली सीमा का आधार बने। आगे चलकर इन्होंने राष्ट्रीय इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।[2] बुन्देलखण्ड में भाण्डेर, रीवा तथा कैमर की पहाड़ियां इसी क्रम का भाग हैं। उत्तर एवं पूर्व की ओर नदियों के निक्षेपों के नीचे यह क्रमशः दबते चले गये हैं। चौथी महत्वपूर्ण संरचना नदी निक्षेपों की है, जो बुन्देलखण्ड की उत्तरी पट्टी के रूप में देखे जा सकते हैं। यमुना, पहूज, बेतवा, धसान, केन और बागैं नदियों के सतत निक्षेपण से बालू, कांप और शिल्ट प्रधान यह क्षेत्र एक उपजाऊ मैदान का परिदृष्य प्रस्तुत करता है, किन्तु यमुना, बेतवा आदि नदियों के निकट के भाग (लगभग पांच से सात किमी0 के क्षेत्र) कटावों के कारण बीहड़ के रूप में परिवर्तित हो गये हैं।

अतः बुन्देलखण्ड की भौगर्भिक संरचना अति प्राचीन से नवीनतम संरचनाओं से युक्त है, जो यहां के धरातलीय स्वरूप, मृदा स्वरूप और भौगर्भिक

जलस्रोतों के स्वरूप को निर्धारित करती है तथा पुनः अन्य भौगोलिक एवं सांस्कृतिक पक्षों को प्रभावित करती है।

1.1.2 धरातल

भौगोलिक अध्ययनों में धरातलीय स्वरूप सदैव महत्वपूर्ण रहा है, क्योंकि मानवीय अधिवास और सांस्कृतिक विकास के लिये यह वस्तुतः आधार प्रदान करता है। बुन्देलखण्ड का धरातल भूगोलवेत्ताओं के लिये सदैव आकर्षण का विषय रहा है, क्योंकि यहां इसके तीनों प्रमुख स्वरूपों की उपस्थिति है। एक ओर बुन्देलखण्ड का दक्षिणी भू भाग ऊंचे पठारों, पर्वत श्रृंखलाओं, बिखड़ी पहाड़ियों एवं नदी नालों युक्त ऊंचा विखण्डित भू–भाग है तो दूसरी ओर इसका उत्तरी भाग सततवाही नदियों के निक्षेपों से संवारा गया नवीन कांप मिट्टी का समतल उपजाऊ मैदान है। दक्षिण का पहाड़ी, पठारी भाग जंगलों से युक्त और दुर्गम रहा है तो उत्तर का मैदान माननीय आवास के लिये सदैव आमंत्रण देता रहा है। वस्तुतः दक्षिण की विन्ध्यन श्रेणियों से युक्त यह ऊंची भूमि कमशः उत्तर की ओर नीची होती जाती है और अन्ततः अध्ययन समतल मैदान में बदल जाती है। अतः इसे अध्ययन की सुविधा के दृष्टिकोण से तीन भागों में बांटा जा सकता है–

अ– दक्षिणी उच्च भाग।

ब– मध्यवर्ती संक्रमित भू–भाग

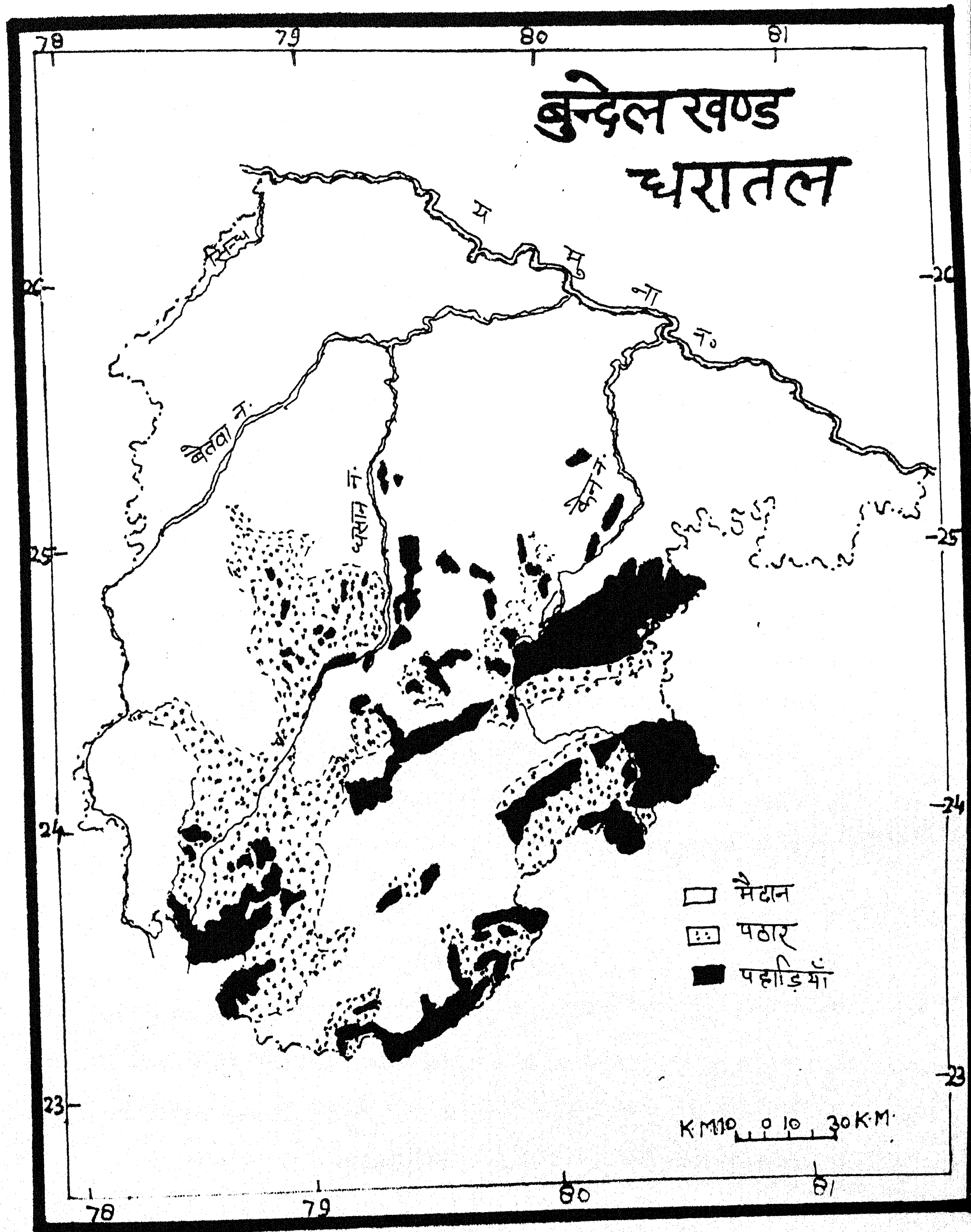
स– उत्तरी निक्षेपित मैदान

अ– दक्षिणी उच्च भाग : बुन्देलखण्ड का दक्षिणी भाग उच्च पठारी भाग है जिसका ढाल उत्तर की ओर है और जिसमें श्रेणियों के साथ बिखरी हुयी पहाड़ियां भी मौजूद हैं। इसे मध्यवर्ती संक्रमण भूमि से लगभग 250 मीटर की समोच्च रेखा से अलग किया जा सकता है तथा सागर तल से इसकी औसत ऊंचाई 300 से 350 मीटर के मध्य मिलती है। यह धरातलीय स्वरूप बुन्देलखण्ड के लगभग 65 प्रतिशत हिस्से में फैला है, जहां 600 मीटर ऊंची श्रेणियां भी देखने को मिलती हैं। विन्ध्याचल श्रेणी

दतिया की स्योंढ़ा तहसील से प्रारम्भ होकर दक्षिण श्रेणियों के रूप में रेखांकित होती है। इन श्रेणियों को सागर और रहली में भी देखा जा सकता है जबकि दमोह जिले में इन्हें भाण्डेर श्रेणियों के रूप में पहचाना जाता है। दक्षिण पूर्व में कैमूर पहाड़ियों की स्थिति महत्वूपर्ण है। नदी नालों के कटाव से प्रभावित यह भू भाग उत्तर की ओर एक ढाल अथवा कगार के रूप में समाप्त होता है। धौरा, नरहट और मदनपुर के पास इसमें विलक्षण दर्रे देखे जा सकते हैं, तो देवगढ़ जैसे गॉर्ज और अनेक जलप्रपातों की उपस्थिति इस भू–भाग में दर्शनीय है। कटाव और अनाच्छादन की प्रक्रिया ने इस ऊंचे भू भाग विशेषकर पन्ना अजयगढ़ श्रेणियों के क्षेत्र को एक अलग स्वरूप प्रदान कर दिया है।[3]

बुन्देलखण्ड में 200 फुट से अधिक ऊंची पहाड़ियों में प्रमुख नाम अमझनेरा, मदनपुर, नारहट, लखनझिर, कलुमार (कैमूर में), नाहरमऊ हैं। इसके अलावा कालिंजर, सेहुन्डा, मड़फा, बछेहर, कटेरा, भसनेह, सैलवाडद्व पंचमनगर, हरजुवा, रोया, मचरार, पन्नाघाटी, मदार टूंगा, मोहदरा, नैनगिरि, अजयगढ़, देवपहाड़, रंजीता पहाड़ी, विजावर घाटी, चन्दलख, किशुनगढ़, मनियागढ़, फाटा, लौडी पहाड़ियों का भी महत्वूपण्र स्थान है। बुन्देलखण्ड का दक्षिणी भू भग एक लम्बे कालखण्ड में दुर्ग निर्माण और अधिवास को प्रभावित करता रहा है।

ब– मध्यवर्ती संक्रमित भू–भाग : यह भू भाग वह मध्यवर्ती पेटी है, जिसमें पठार शनैः शनैः समाप्त हो जाता है, पहाड़ियों की उपस्थिति यदा कदा ही देखने को मिलती है। नदियां अपने बड़े और भारी निक्षेपों को छोड़ती हैं और कठोर भाग धीरे धीरे नदी निक्षेपों के नीचे छिपता जाता है। सामान्यतः इसे 250 से 150 मीटर की समोच्च रेखाओं के मध्य निर्धारित किया जा सकता है। यहां भूमि ढालांश उत्तर एवं उत्तर पूर्व की ओर बढ़ने लगता है। इस संक्रमित पट्टी का पश्चिमी भाग जो शहजाद, संजना और जैमिनी नदियों से प्रभावित है, अधिक चौड़ा और कटा फटा है; जबकि पूर्व में बागैं एवं पयस्विनी नदियां सागरतल से बबीना में 280 मीटर है, जबकि झांसी में 255.15 मीटर है। यहीं उत्तरपूर्व की ओर घटता हुआ गरौठा में 174.60 मीटर और गोहण्ड में



बुन्देलखण्ड
धरातल
मैदान
पठार
पहाड़ियाँ
K.M.10 0 10 30 K.M.

149.40 मीटर है। मध्य पूर्व भाग में महोबा, अकौना, पैलानी की स्थिति 210.30, 121.80 एवं 109.80 मीटर है। इसी प्रकार पूर्व में चित्रकूट धाम सागर तल से 129.90 मीटर ऊंचा है, जबकि यमुना तट पर राजापुर 102.60 मीटर है।

इस संक्रिमित पेटी में अनेकों स्थलों पर प्राचीन मिट्टियों के छोटे मैदानों की उपस्थिति है, जो धीरे–धीरे क्रमशः उत्तर की ओर बढ़ने पर बड़े समतल मैदान में परिवर्तित हो जाते हैं। यहां यत्र तत्र होती पहाड़ियां भी दिख जाती हैं।

स– उत्तरी निक्षेपित मैदान : यमुना एवं उसकी सहायक नदियों के द्वारा निक्षेपण से बना हुआ यह मैदान बुन्देलखण्ड का उत्तरी भाग है जो कि दतिया, जालौन, हमीरपूर, बांदा और शाहूजी नगर जिलों में फैला हुआ है। पश्चिम से पूर्व की ओर जल विभाजक रेखाओं के आधार पर इसे कई भागों में बांटा जा सकता है। पहूज व बेतवा, बेतवा व धसान, केन व बागैं और पयस्वनी के मध्य के मैदानी हिस्सके आने विस्तार आकार एवं गुणों में हल्की भिन्नता रखते हैं। दक्षिण से उत्तर की ओर भी इसके गुणों की भिन्नता स्पष्ट देखी जा सकती है। जहां दक्षिण की तरफ मृदा में कण संरचना बड़ी और ह्यूमस की मात्रा कम है, वहीं उत्तर की ओर कणविन्यास छोटा एवं उत्पादकता बढ़ती जाती है। इन नदियों के संगम स्थलों पर छोटे दोआब निर्मित होते हैं। यमुना की दक्षिणवर्ती पट्टी में कटावों के कारण एक संकरी पट्टी में बीहड़ों का निर्माण हुआ है, जिसने अनेक रूपों में सामाजिक परिवेश को प्रभावित किया है। यमुना एवं अन्य नदियों के बिल्कुल तटवर्ती क्षेत्र, जिनमें प्रायः बाढ़ के पानी के साथ नवीन निक्षेपण होता है, अत्यधिक उपजाऊ भाग हैं और इन्हें कछार के कद्दार के नाम से पुकारा जाता है।

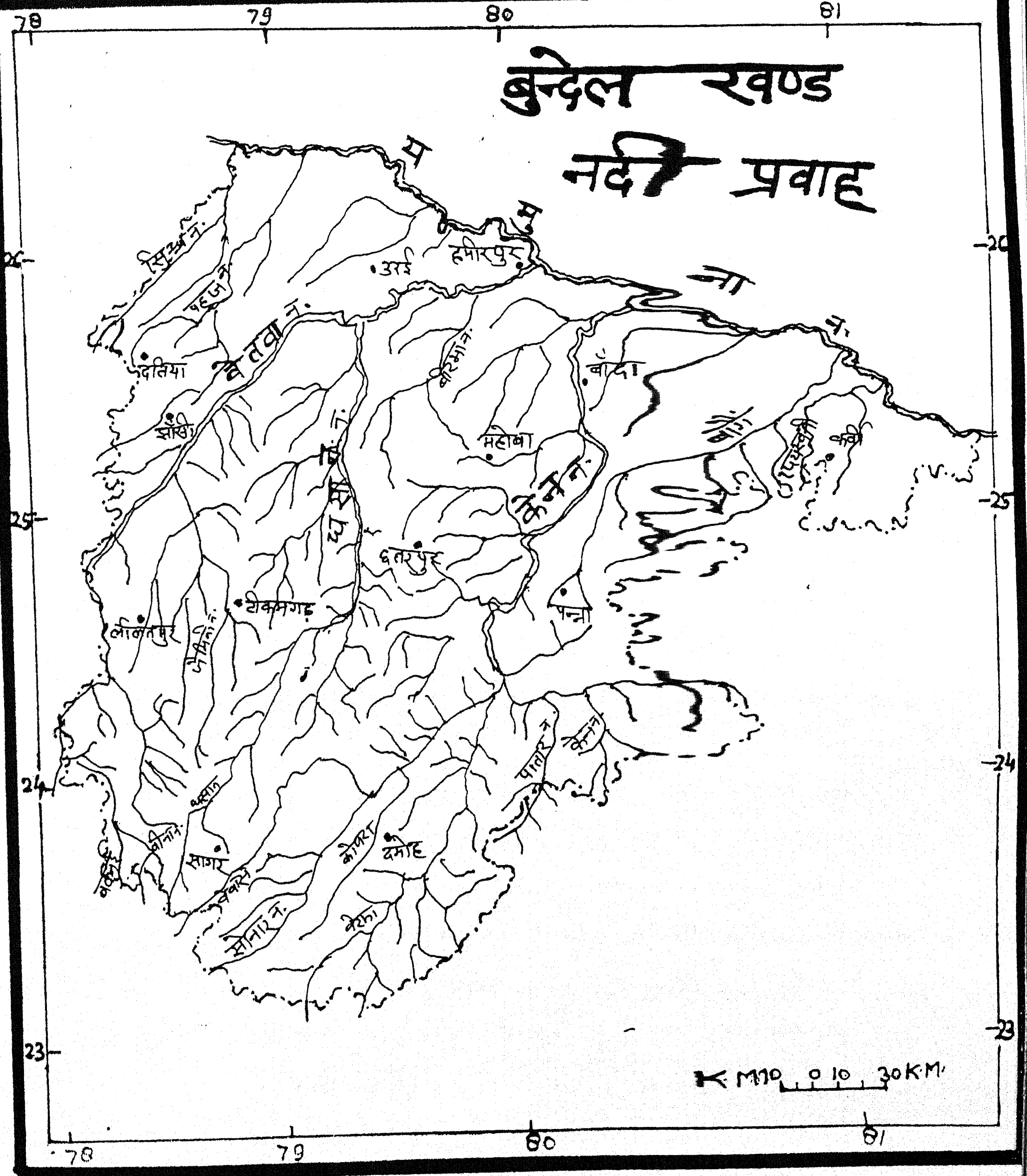
1.1.3 जल प्रवाह

बुन्देलखण्ड की जलप्रवाह प्रणाली का आधार दक्षिणी उच्च भाग और विन्ध्यन श्रेणियां है, जहां से न केवल क्षेत्र की नदियां का उद्गम होता है वरन अनेक छोटी जल धाराओं से इन्हें जल की आपूर्ति होती है। यह जल धारायें इस कठोर भू भाग को काटती–छांटती उत्तर की ओर प्रवाहित होती हैं और क्रमशः समीपवर्ती बड़ी जलधारा

से मिल जाती है। इस प्रकार से दक्षिणी उच्च भाग में जलधाराओं का विस्तृत जाल निर्मित होता है। सिन्ध, पहूज, बेतवा, केन बागैं एवं मन्दाकिनी नदियां समतल भाग में पहुंचते ही उत्तर–पूर्व की प्रवाह को बदलती है, और अन्ततः क्षेत्र की सबसे बड़ी नदी यमुना से संगम करती है। इस मैदानी भाग में इनके द्वारा अनेक मियान्डरों के निर्माण के साथ ही बाढ़–मैदान एवं बाढ़–बन्धों का निर्माण भी किया जाता है। ये नदियां बुन्देलखण्ड के जनजीवन का प्राण रही हैं, अतः इनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत प्रस्तुत है।

सिन्ध कम : यह बुन्देलखण्ड की पश्चिमी सीमा में प्रवाहित होने वाली नदी है, जो सिरोंज के पास से निकलकर लगभग 300 किमी0 की यात्रा कर अन्ततः जालौन जिले में जगम्मनपुर के पास यमुना में गिरती है। इसकी प्रमुख सहायक पहूज है, जो कि झाँसी, दतिया और जालौन जिलों की सीमाओं में प्रवाहित होती हुयी तथा 180 किमी0 की मार्ग की लम्बाई तय करके सिन्ध के दाहिने किनारे से उसके आखिरी पड़ाव पर मिलती है।

बेतवा कम : बुन्देलखण्ड की सबसे महत्वपूर्ण नदी बेतवा है, जिसका प्रवाह स्थल क्षेत्र के पश्चिमी भाग में है। यह म0प्र0 के वर्तमान रायसेन जिले के बरखेड़ा गांव से निकलती है और लगभग 564 किमी0 की यात्रा कर हमीरपुर के पास यमुना में मिलती है। वर्तमान में इसका प्रवाह क्षेत्र 184 किमी0 म0प्र0 में, 225 किमी0 उ0प्र0 में तथा 145 किमी0 दोनों प्रदेशों की सीमा पर है। इस समय इस पर राजघाट, माताटीला और पारीछा जैसे विशाल बांध निर्मित हैं। इसके पूर्व में प्रवाहित होने वाली धसान इसकी सहायक नदी है। इसके अतिरिक्त अजनर, हलाली, बरमान, सागर, कालियासोट, बीना, निआन, नारायगी, गुंजी, अर्जुन, पण्डवाही, जैमिनी और बीरमा अन्य प्रमुख सहायक नदियाँ है। बेतवा का प्राचीन नाम वेत्रवती और धसान का दशार्ण है। धसान की स्वयं कई सहायक नदियां है, जिनमें उर, सुखनई, धसान की स्वयं कई सहायक नदियां हैं, जिनमें उर, सुखनई, लखेरी, ढूंढ़ेरी, पटरेही आदि प्रमुख है। सिन्ध एवं धसान नदियों के मध्य बेतवा कैचमेन्ट एरिया लगभग 43542 वर्ग किमी0 है,[4] जो बुन्देलखण्ड की किसी



बुन्देल खण्ड
नदी प्रवाह
यमुना न.
हमीरपुर
उरई
दतिया
झाँसी
बेतवा न.
धसान न.
बारमा न.
बाँदा
महोबा
केन न.
छतरपुर
टीकमगढ़
ललितपुर
पन्ना
सागर
दमोह
सोनार न.
पटना न.
K.M.10 0 10 30 K.M.
78
79
80
81
26
25
24
23

नदी की तुलना में सबसे बड़ा है। पश्चिमी बुन्देलखण्ड के व्यक्तित्व निर्माण में बेतवा का महत्वपूर्ण योगदान है।

केनकम : मध्य पूर्व बुन्देलखण्ड की महत्वपूर्ण नदी है, जिसका प्राचीन नाम कर्णवती था। इसका उदय मध्यप्रदेश के दमोह जिले से होता है। सागर, छतरपुर आदि जिलों से प्रवाहित होती हुयी यह चिल्ला घाट पर यमुना से मिलती है। उरमिल और चन्द्रावल इसकी प्रमुख सहायक नदियां हैं। सुनार दक्षिणी भाग में बड़ी सहायक नदी है जिसमें वेवास, देहार, गदेरी, कोपरा आदि छोटी नदियां मिलती हैं। व्यारमा में भी गुरैया सून, पथरी आदि बड़े नाले मिलते हैं। हमीरपुर की ओर से कई बड़े नाले चन्द्रावल से आकार मिलते हैं, जो अन्ततः पैलानी के पास केन से मिलती है। धसान और केन के मध्य भाग में परवर्ती बुन्देलाओं की विशिष्ट गतिविधियां रही है।

बागैं एवं मन्दीकिनी : ये पूर्वी बुन्देलखण्ड की दो छोटी नदियां हैं। बागैं का पूर्व नाम बागमती रहा है। यह पन्ना जिले के कोहारी गांव से निकलती है और यमुना में राजापुर से पूर्व मिलती हैं। रंज, मदरार, बरार, करेहली, बानगंगा और बरूआ नालों से बागैं में जल संग्रह होता है। मन्दाकिनी एक छोटी नदी है, जो चित्रकूट से प्रवाहित होकर आगे यमुना में मिलती है। इस बरसाती नदी के वर्षा भृत के प्रपात और इसका बन परिदृष्य बड़ा सुन्दर है। चित्रकूट से सम्बद्ध होने कारण इस पवित्र नदी का धार्मिक महत्व है। इसमें पयस्विनी, सरभंग, कारीबरार, हीर कोटरा और ओहन नाले आकर मिलते हैं।

बुन्देलखण्ड के इस जल प्रवाह परिदृश्य में राष्ट्रीय स्तर की नदी यमुना है जिसमें न केवल ये सभी नदियां आकर मिलती हैं, वरन वह क्षेत्र की उत्तरी सीमा का निर्धारण भी करती है। उत्तर पश्चिम से दक्षिण पूर्व की ओर प्रवाहित यमुना पश्चिम में जालौन जिले की सीमा में बुन्देलखण्ड को स्पर्श करती है, और शाहूजीनगर की सीमा छोड़ती हुयी प्रयाग में गंगा से मिलने के पहले लगभग 375 किमी0 की यात्रा करती है। प्राचीन काल में यमुना यातायात का प्रमुख साधन भी और उत्तर से आने वालों को बुन्देलखण्ड में प्रवेशद्वार प्रदान करती रही है।

जलाशय : बुन्देलखण्ड की भौगर्भिक संरचना, पठारी धरातल, अर्द्धशुष्क जलवायु और छोटी जल धाराओं की उपलब्धता ने बड़े तालाबों के निर्माण के लिये आदर्श परिस्थितियां प्रस्तुत की हैं। यही कारण है कि चन्देलों से लेकर बुन्देला एवं ब्रिटिश शासकों ने भी यहां बड़े जलाशयों के निर्माण में रूचि प्रदर्शित की। विशेषकर चन्देलों द्वारा निर्मित तालाब तो आज तक आकर्षण का विषय हैं। वर्तमान में इन तालाबों की संख्या कई सौ है, जिनमें बड़े और सिंचाई विभाग से मान्यता प्राप्त जलाशयों की संख्या महोबा, झांसी, ललितपुर, टीकमगढ़, छतरपुर, दतिया एवं पन्ना में क्रमशः 23, 07, 16, 32 23, 22, एवं 28 है।[5] इनमें से अधिकांश ऐतिहासिक जलाशय है प्राचीन काल से ही जलापूर्ति के अतिरिक्त यहां के पारिस्थितिकी तंत्र एवं सांस्कृतिक धाराओं को प्रभावित करते रहे हैं। बुन्देलखण्ड के शासकों द्वारा निर्मित किलों एवं मन्दिरों के पश्चात् सम्भवतः ये तालाब ही वे प्रमुख निर्माण हैं, जिन्होंने यहां के जनजीवन में भौति एवं सांस्कृतिक रूप से दीर्घकालीन प्रभाव छोड़े हैं।

1.1.4 जलवायु

जलवायु भौगोलिक पर्यावरण का वह प्रमुख कारक है जो न केवल जनजीवन को सर्वाधिक प्रभावित करता है, वरन जैव जगत का निर्धारण भी करता है। अध्ययन क्षेत्र की महाद्वीपीय स्थिति (पूर्व से सागरीय पवनों का प्रवाह और पश्चिम में रेगिस्तान की उपस्थिति) ने बुन्देलखण्ड की जलवायु को विशिष्टता तो प्रदान की है, साथ ही पश्चिमी और पूर्वी बुन्देलखण्ड में पर्याप्त अंतर भी पैदा कर दिया है। क्षेत्र की जलवायु को अर्धशुष्क प्रवृत्ति का माना जा सकता है, जहां अधिक गर्मी, मध्यम शीत, कम वर्षा के साथ इनमें सदैव अनिश्चितता भी बनी रहती है।

तापमान : बुन्देलखण्ड का औसत वार्षिक तापमान 25^0C से अधिक ही रहता है, जबकि शीत, वर्षा और ग्रीष्म ऋतु में यह औसत क्रमशः 16 से 21^0C, 20 से 25^0C, तथा 30 से 34^0C के मध्य रहता है।[6] यदि तापमान के स्थानिक वितरण को देखें तो पता

चलता है कि ग्रीष्म ऋतु में औसत तापमान दक्षिण से उत्तर की ओर अधिक रहते हैं। बांदा में औसत मासिक तापमान 45^0C से अधिक तथा औसत दैनिक तापमान 47^0C से अधिक रिकार्ड किये गये हैं। बुन्देलखण्ड में औसत मासिक तापमान न्यूनतम 9.9^0C देखे जाते हैं। औसत न्यूनतम तापमान में आखिरी दिसम्बर के पश्चात तीव्र गिरावट देखी जाती है, जबकि औसत अधिकतम तापमान में तेजी मई माह में देखी जा सकती है।

वर्षा : बुन्देलखण्ड में औसत वार्षिक वर्षा 90 सेमी0 से 120 सेमी0 के मध्य रहती है, परन्तु उल्लेखनीय है कि भारतीय मॉनसून की भांति इसमें क्षेत्रीय एवं कालिक अनिश्चितता रहती है। मौसम विभाग के आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि क्षेत्र की वार्षिक वर्षा का 90 प्रतिशत मात्र दिनों में प्राप्त होता है। जुलाई एवं अगस्त माह में सर्वाधिक वर्षा होती है जिसमें वार्षिक वर्षा का क्रमशः 35 एवं 33 प्रतिशत प्राप्त हो जाता है। भारत के पश्चिमी मॉनसून के चक्रवात यदाकदा शीतकाल में अत्यल्प वर्षा करते हैं। क्षेत्रीय वितरण के अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्षा का वार्षिक औसत पश्चिमी बुन्देलखण्ड में कम, लगभग 90 सेमी0 जबकि पूर्व में लगभग 120 सेमी0 तक होता है। इसी प्रकार दक्षिणी बुन्देलखण्ड में वार्षिक औसत वर्षा 100 सेमी0 से अधिक, जबकि उत्तरी मैदानों में यह औसत 100 सेमी0 से कम रहता है।

बुन्देलखण्ड में वर्षा के क्षेत्रीय वितरण में समय एवं मात्रा की अनिश्चितता के कारण यहां के कृषकों को सदैव कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। के कृषकों ने विगत दो शताब्दियों में अनेकों बार सूखे का सामना किया है। सम्भवतः इन्हीं परिस्थितियों में यहां के शासकों ने चन्देल काल से ही विशाल तालाबों का निर्माण कराया होगा। वर्ष में मात्र दो या तीन माह में वर्षा जल की प्राप्ति ने यहां कृषि कार्य को सदैव श्रम साध्य एवं कठोर बनाये रखा है।

मौसम : मध्य भारत के अन्य भू–भागों की भांति बुन्देलखण्ड में तीन ऋतुयें ग्रीष्म, वर्षा एवं शीत होती है। मार्च के प्रारम्भिक दिनो से ही तापमान बढ़ने लगता है और मई के अन्त तक अपने चरम पर पहुंचता है। इस समय यहां धूलभरी गर्म हवायें (लू) चलती हैं, जो कई बार अपनी तपिश के कारण जानलेवा हो जाती हैं। मध्य जून के बाद

बादल आने लगते हैं और जुलाई माह में बंगाल की खाड़ी एवं अरब सागर दोनों ही शाखाओं में से किसी न किसी से वर्षा होती है। दो महीने अधिकतम वर्षा होती है, छोटी पहाड़ी नदियां थोड़े समय के लिये उग्र हो जाती हैं। यह बुन्देलखण्ड की सबसे सुहानी ऋतु होती है। अक्टूबर मास से मानसून का प्रत्यावर्तन प्रारम्भ हो जाता है और नवम्बर के अन्त तक शीत अपना विस्तार प्रारम्भ कर देती है। अन्तिम दिसम्बर अथवा जनवरी के प्रथम पक्ष में पारा सर्वाधिक नीचे होता है, विशेष रूप से जब पछुआ झकोरों से कुछ वर्षा हो जाती है। कई बार मार्च के महीने में जब रबी की फसल तैयार हो रही होती है, तेज हवाओं के साथ ओलावृष्टि भी देखी जाती है।

जहां तक पवनों का प्रश्न है, सर्वाधिक हवायें दक्षिण पश्चिम से उत्तर पूर्व की ओर चलती हैं। यह हवायें प्रायः दोपहर बाद चलती है। द्वितीय स्थान पर प्रायः जाड़ों में उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिम की ओर प्रातः चलने वाली हवायें आती हैं। शीत ऋतु में हवायें प्रायः मन्द गति से, औसत 4.02 किमी0/घंटा की गति से चलती हैं। ग्रीष्म ऋतु में इनका औसत सर्वाधिक 8.15 किमी0/घंटा तथा वर्षा ऋतु में इनका औसत मध्यम 6.5 किमी0/घंटा रहता है।[7]

1.1.5 मिट्टियां

किसी भी क्षेत्र के व्यक्तित्व निर्धारण में मृदा संरचना का बड़ा योगदान होता है। प्रसिद्ध भूगोलवेत्ता आर0एन0दुबे का कथन है कि ''मृदा का इतिहास ही की वस्तुतः संस्कृतियों का इतिहास है। यदि किसी स्थान से मृदा चली गयी हो, तो मानव को भी स्थान छोड़ ही देना चाहिये।'' बुन्देलखण्ड में पायी जाने वाली विभिन्न मिट्टियों के वितरण का आधार यहां के भू–भौतिक क्षेत्र हैं, जिन्हें पिछले पृष्ठों में मैदान, पठार एवं पहाड़ियों के रूप में चित्रित किया जा चुका है। अध्ययन क्षेत्र में निक्षेपित मैदानी मिट्टी, काली मिट्टी एवं लाल मिट्टी के रूप में मृदा विभाजन किया जा सकता है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नवत है।

मैदानी मिट्टी– इन मिट्टियों का जन्म नदियों के निक्षेपण से हुआ है। यह प्रायः बलुवा एवं कांप युक्त बलुवा मिट्टी है। बुन्देलखण्ड के उत्तरी मैदानी भाग में यह मिट्टी विस्तृत है। नदी के निकटवर्ती तटों पर, जहां यह अधिक उपजाऊ है, तरी एवं कछार के नाम से पुकारी जाती है। मैदानी मिट्टियों में जो नवीन मिट्टियां हैं, वे अधिक उपजाऊ हैं। ये मिट्टियां जालौन, हमीरपुर, बांदा जिलों में यमुना, बेतवा , धसान, केन व बागैं नदियों के किनारे और दोआब क्षेत्रों में देखी जा सकती है। यह मिट्टियां अपने चरित्र में बुन्देलखण्ड की शेष मिट्टियों से पूर्णतः भिन्न हैं।

काली मिट्टी– यह मिट्टी प्रायः निम्नस्थलों जल अवरोध वाले स्थानों पर मिलती है। यह उत्तम कण संरचना वाली, जलधारक एवं उपजाऊ मिट्टी है विशिष्ट रासायनिक संरचना एवं ह्यूमस के कारण लौहयुक्त इस मिट्टी का रंग काला है। इसे पुनः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

अ– मार मिट्टी : हल्की चूना युक्त, रंग में काली तथा छोटे कंकड़ों से युक्त इस मिट्टी में पोटाश पर्याप्त मात्रा में, जबकि फॉस्फोरस, नाइट्रोजन कम मात्रा में रहता है। इसमें अत्यधिक जल धारण क्षमता होती है और बारीक कण संरचना एवं ह्यूमस की उपस्थिति से यह चिपचिपी हो जाती है। अपने इन गुणों के कारण गेहूं, चना जैसी रबी फसलों के लिये यह मिट्टी अत्यधिक उपयुक्त है। मोंठ, मऊ–रानीपुर, मौदहा, ललितपुर, सागर व दमोह जिलों के उत्तरी हिस्सों में मिट्टी छोटे–छोटे मैदानों के रूप में फैली हुयी है।

ब– काबर मिट्टी : काले, भूरे एवं हल्के भूरे रंग की यह मिट्टी भी निचले स्थलों पर जहां पानी अवरूद्ध होता है, देखने को मिलती है। चूने की मात्रा और कंकड़ों की अनुपस्थिति से यह मिट्टी, मार मिट्टी से भिन्नता प्राप्त करती है। कण संरचना में भी मार की तरह उत्तम किन्तु गहराई में कम है। सूख जाने पर इसके खेतों में दरारें पड़ जाती है। इसकी जल धारण क्षमता मध्यम होती है। उत्पादकता की दृष्टि से यह रबी एवं खरीफ दोनों फसलों के लिये उपयुक्त है। अतः इस मिट्टी में चना, ज्वार एवं

कपास की खेती अच्छी की जा सकती है। यह मिट्टी में कोंच, मोंठ, गरौठा तहसीलों के अतिरिक्त दक्षिण में दक्षिणी सागर एवं पन्ना जिलों में फैली है।

लाल मिट्टी– दक्षिण के उच्च भागों में मिलने वाली लाल मिट्टियां मूलतः ग्रेनाइट एवं नीस मात्र चट्टानों से निर्मित हैं। यह प्रायः लाल रंग की होती है, किन्तु इसके अतिरिक्त यह भूरे, चॉकलेट, हल्के पीले एवं ग्रे रंग की भी देखी जाती है। इनके रंगों में अंतर मूलतः दो कारणों से होता है पहला लौह पदार्थ की मात्रा और दूसरा मात्र चट्टानों से दूरी। साधारण कण विन्यास की यह मिट्टी मध्यम से लेकर कम उत्पादकता वाली है, जिन्हें पुनः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

अ– राकर मिट्टी : हल्की संरचना वाली राकर मिट्टी लाल अथवा लाल भूरे रंग की होती है। इनकी गहराई कुछ सेन्टीमीटर से लेकर 60 सेमी0 तक मिलती है। जैविक तत्वों के संदर्भ में, इनमें पोटाश और नाइट्रोजन की कमी है। इनकी जल धारण क्षमता एवं उत्पादकता दोनों ही बहुत कम हैं, अतः इनमें प्रायः खरीफ की मोटी फसलें ही ली जाती है। यह मिट्टी प्रायः पहाड़ियों के ढालों और पर्वतपाद प्रदेशों में देखने को मिलती है। दक्षिणी भाग के नालों से कट हुये क्षेत्रों में भी, टीकमगढ़, ललितपुर एवं महोबा जिलों में से देख जा सकता है।

ब– पडुवा मिट्टी : हल्के ग्रे रंग से भूरे ग्रे और लाल ग्रे रंग में पायी जाने वाली पडुवा मिट्टी कण विन्यास में मध्यम और गहराई में 40 सेमी0 से 75 सेमी0 में मिलती है। इसकी जलधारण क्षमता 100 से 250 मिलीमीटर तक होती है। इसके राकर की तुलना में फॉस्फोरस एवं पोटाश की उपलब्धता में भी अन्तर होता है। यह मध्यम से कम उत्पादकता वाली मिट्टी है तथा जल प्राप्ति के साधन होने पर इससे अच्छी फसल ली जा सकती है। मध्य बुन्देलखण्ड प्रायः सभी तहसीलों में यह देखने को मिलती है किन्तु टीकमगढ़, ललितपुर एवं छतरपुर जिलों में इसकी विशेष उपस्थिति है। उत्तर के मैदान में उच्च भागों में भी यह मिट्टी विस्तृत रूप में देखी जा सकती है।

1.1.6 वन सम्पदा

प्राचीन काल में निश्चित रूप से यह क्षेत्र वन सम्पदा में धनी था, किन्तु शनैः शनैः कृषि आवश्यकताओं ने समतल स्थानों को वृक्ष विहीन कर दिया। बुन्देलखण्ड में मॉनसूनी और अर्द्धशुष्क जलवायु की वनस्पति अधिकाशतः देखने को मिलती है। उत्तर का मैदानी भाग प्रायः वन विहीन है। तथा यत्र तत्र अथवा नदी की डांगों में ही ये प्राकृतिक वन देखने को मिलते हैं। मध्यवर्ती एवं दक्षिणी पहाड़ी हिस्सों में अभी भी प्राकृतिक वनस्पतियों की बहुतायत है। नदियों, नालों के किनारे तथा पर्वतीय ढालों में विशेष रूप से भूमि वनाच्छादित है। वर्तमान में बुन्देलखण्ड के जिलों में सर्वाधिक वन भूमि दमोह, पन्ना, सागर के पास है, जहां क्रमशः लगभग 37, 34 एवं 29 प्रतिशत भूमि वनों के अन्तर्गत है। कम वनाच्छादित भूमि वाले जिलों में हमीरपुर, जालौन एवं बांदा जिले आते हैं जहां क्रमशः लगभग 5, 6, 8 प्रतिशत भूमि ही वनों के लिये है। शेष जिलों में 9 से 14 प्रतिशत भूमि वनाच्छादित कही जा सकती है।[9] बुन्देलखण्ड के एक बड़े भू भाग में जो कि ऊबड–खाबड़ अथवा परती पड़ा हुआ है, छोटी झाड़ियां और घासें बहुतायत से देखी जाती हैं। इन स्थलों में छोटे जंगली जानवरों एवं विभिन्न प्रकार के पक्षियों का आवास रहता है।

वृक्ष : अध्ययन क्षेत्र में पाये जाने वाले बड़े वृक्ष प्रायः मानसूनी वृत्ति के पतझड़ वाले वृक्ष हैं। इनमें नीम, महुआ, बरगद, इमली, पीपल आदि वृक्षि मैदानी भाग में जबकि साल, सागौन, शीशम, तेंदू, खैर, पलाश, सेमल, शरीफा, चिरौंजी, सलैया आदि वृक्ष पहाड़ी हिस्सों में देखने को मिलते हैं। अर्द्धशुष्क वृत्ति के पौधों में बबूल यहां बहुतायत में मिलता है। पिछली आधी शताब्दी में वृक्षों की तीव्र कटायी से अत्यधिक वन विनाश हुआ है। विगत कुछ वर्षो में सरकारी प्रतिबन्ध एवं प्रबन्धन से वृक्षों की संख्या बढ़ी है, परन्तु अभी भी पूर्व स्तर प्राप्त करना कठिन है।

झाड़ियां एवं घासें : बुन्देलखण्ड में वर्षा की कमी और तापीय शुष्क जलवायु के कारण घनी झाड़ियों एवं घासों की भूमि पर्याप्त देखने को मिलती है। ये झाड़ियां कृषि अयोग्य भूमि के साथ वन भूमि में देखने को मिलती हैं। ये प्रायः कांटेदार, कम एवं

छोटी पत्तियों वाले, कम ऊंचाई के पौधे होते हैं, जिनका उपयोग पशु चारण के अतिरिक्त कुछ विशेष नहीं होता है। झाड़ियों में प्रमुख रूप से करौंदा, करेला, चमरेल, रियां, माहुल, इंगौर, झड़बेरी, करील, जरिया आदि देखने को मिलती हैं। प्रयत्न पूर्वक यहां चन्दन (ललितपर) और जावा कुसुम के वन भी लगाये गये हैं।

वर्षा ऋतु में खाली पड़ी भूमि पर अनेक घासें उगती हैं, जिनमें कुछ पशुओं के लिये बहुत उपयोगी हैं। प्रसिद्ध घासों में दूब, मूसल, कांस, कुश, लम्पा, गुनेर, केल, सौंरा, सैना, रोहस, गंदली, पनबसा, पंडप, धुनिया, भुरजना, आदि हैं, जो अध्ययन क्षेत्र में अलग–अलग भागोंा में देखने को मिलती हैं।

वनोपज : प्राचीन काल में जब बुन्देलखण्ड में घने वन पाये जाते थे, तब यहां के मूल निवासी इन्हीं की उपज पर आधारित जीवन जीते थे। यहां की प्राचीन जातियों गोंड एवं कोल का आश्रय ही वन थे। वर्तमान में वन विनाश के साथ इनकी उपज भी सीमित रह गयी है तथा इन पर आश्रित रहने वाले लोगों ने जीवन के दूसरे आश्रय तलाश लिये हैं। यहां के वनों की प्रमुख उपज आज लकड़ी ही रह गयी है। साल, सागौन एवं शीशम की लकड़ी अधिक मूल्य वाली जबकि नीम, महुआ एवं बबूल की लकड़ी मध्यम मूल्य वाली है। तेन्दू के पत्ते से बीड़ी निर्माण उद्योग कहा जा सकता है।[10] सामान्य लाभ की वनापजों में आंवला, शहद, बहेड़ा, हर्र, सफेद मूसली, वेशलोचन जैसी आयुर्वेदिक औषधियों की भी उपज यहां से मिलती है, जिस पर आधारित इस क्षेत्र का पहला आयुर्वेदिक कारखाना वैद्यनाथ आयुर्वेद झांसी में स्थापित हो सका था।

1.1 ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वर्तमान बुन्देलखण्ड के बारे में प्राप्त ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक प्रमाणों से स्पष्ट है कि प्राचीन काल में यह एक जंगलों से भरा हुआ ऊबड़–खाबड़ दुर्गम प्रदेश था, अतः जिस समय आर्य पंजाब से बढ़ते हुये गंगा के मैदान में स्थापित हो रहे थे, उस समय यहां कोई उल्लेखनीय मानव बसाव नहीं था। कुछ इतिहासकारों का का मत है कि आर्यो के दबाव के कारण अनार्य लोगों ने इस क्षेत्र में आश्रय लिया था, जो कि

शारीरिक सौष्ठव, रंग एवं अपनी सामाजिक व्यवस्था में आर्यो से बहत भिन्न एवं पिछड़े हुये थे। दक्षिणी बुन्देलखण्ड में जंगली गुफाओं में प्राप्त भित्ति चित्र और प्रस्तर अस्त्र इस बात को प्रमाणित करते हैं कि यहां वन्य जातियां बहुत पहले से निवास करती रही हैं तथा बाद के दिनों में यहां निवास करने वाली कोल, गोंड, भार, सहरिया, भील और बांगर जैसी वनवासी जातियां भी इस तथ्य की पुष्टि करती है।[11] अतः ऐसा प्रतीत होता है कि जब आर्यो ने उत्तर वैदिक काल के पश्चात् यहां राज्य सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया, उसके तत्काल बाद ही अनार्यो ने उनसे संघर्ष के परिणामस्वरूप अपनी स्वयं की राज्य सत्ता बनाने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये तथा इस क्षेत्र में मानव बस्तियों ने विस्तार लेना प्रारम्भ किया। यहां यह विशेष उल्लेखनीय है कि निश्चित रूप से आर्य तपस्वियों ने अपने तप हेतु गंगा के मैदान से दक्षिण, हटकर इस घने जंगलयुक्त एकान्त स्थल का चयन किया था और अपने आश्रमों की स्थापना की थी। इस क्षेत्र में कई प्राचीन ऋषियों के नामों से वर्तमान में कई स्थानों की सम्बद्धता इसे प्रमाणित करती है।[12] राम का वनवास के समय चित्रकूट का चुनाव भी इसी तथ्य का एक प्रमाण है। बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण की परम्परा यहां के राजवंशों और शासकों के प्रयत्नों, युद्ध कौशल तथा वास्तुशिल्प के कारण चली थी, अतः अध्ययन क्षेत्र का संक्षिप्त इतिहास निम्न पृष्ठों में अतः क्षेत्र संक्षिप्त इतिहास निम्न पृष्ठों में दिया गया है, जो दुर्ग निर्माण के विश्लेषण में सहायक हैं।

1.2.1 महाकाव्य काल से हर्ष तक

प्राचीन भारतीय इतिहास के समझने में भारत के दो प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण और महाभारत बहुत सहायक हैं। रामायण में बुन्देलखण्ड के कुछ स्थानों और निवासियों की चर्चा राम बनवास के प्रसंग में उपलब्ध है। राम क्रमशः गंगा तथा यमुना को पार कर दक्षिण में प्रथमतः चित्रकूट में दीर्घ काल तक रहे, जो वर्तमान बुन्देलखण्ड के पूर्वी भाग में स्थित है। रामायण में वर्णित चित्रकूट आश्रम अत्रि एवं सरभंग के आश्रम आदि के विवरण से स्पष्ट है कि उस समय यह घना जंगल था, और तपस्वियों के आश्रमों के लिये उपयुक्त स्थल था। पूर्वी भाग में निवास करने वाली कोल जाति के

प्रसंग रामायण में उल्लिखित हैं।[13] अन्य पौराणिक ग्रंथों में चर्चित स्थल जिसमें विभिन्न ऋषियों की चर्चा है, के स्थलों को जनश्रुतियों में वर्तमान में यहां से जोड़ा गया है, जसे ब्रम्हाजी की तपस्थली–बृहमान (बरमान) घाट, बृहस्पति की तपस्थली–बृहस्पति कुण्ड (पन्ना), वामदेव का आश्रम (बाँदा), कोंच ऋषि का आश्रम–कोंच, अगस्त्य ऋषि का आश्रम–कालिंजर आदि।

महाभारत काल तक बुन्देली भूमि विकसित हो चुकी थी और लम्बे काल खण्डों में कई राज्यों में विभक्त, एवं अनेकों शासकों से शासित हुयी। इस समय तक इस क्षेत्र को चेदि राज्य के नाम से जाना जाने लगा था। पुरूरूवा के वंशजों में यदु तथा इसी वंश में केशिक नामक राजा हुआ, जिसने चेदि राज्य एवं वंश की स्थापना की। चेदि राज्य प्रारम्भ में चर्ण्यवती (चम्बल) और कर्णवती (केन) के मध्य स्थित माना गया है।[14] चेदियों में प्रसिद्ध शिशुपाल महाभारत युद्ध के के समय यहां शासक था।[15] उस समय यहां शुक्तिमती तट पर शुक्तिमती नगर, यमुना के दक्षिण तट पर शाहगति आदि चेदि राज्य के बड़े नगर थे, जिनकी पहचान विवादास्पद है,[16] तथापि बेतवा के पश्चिम में स्थित चन्देरी को निर्विवाद शिशुपाल की राजधानी माना जा रहा है। इसी कालखण्ड में दशार्ण राज्य की भी चर्चा है, जहां हिरण्यवर्मा राज्य करता था। दशार्ण (धसान) नदी के पूर्व के क्षेत्र को दशार्ण राज्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। महाभारत युद्ध में दशार्ण नरेश सुधर्मा ने भाग लिया था। यदि और दशार्ण दोनों ही एक सत्तात्मक राज्य थे अतः राज्य संस्था एवं राज्य प्रबन्ध अन्य तत्कालीन राज्यों समान ही रहा होगा।[17] चूंकि महाभारत काल तक यहां के राजाओं का प्रायः आर्यवंशी राजाओं से युद्ध हुआ करते थे, अतः कुछ इतिहासकारों का मानना है कि प्रारम्भ में क्षेत्र में अनार्य शासक ही हुये हैं। शिशुपाल (चन्देरी), दन्तवक्र (दतिया), बाणासुर (बानपुर), हिरणकश्यपु (एरच) एवं त्रिपुरासुर त्रिपुर (तेवर, जबलपुर) के उदाहरणों से वे अपने कथन को प्रमाणित करते हैं।

महाजनपद काल– महाजनपद काल (600 ई0पू0) में सोलह महाजनपदों में से एक चेदि इस क्षेत्र में विस्तारित था, जिसकी चर्चा की जा चुकी है। चेदि की सीमा पश्चिम

में मत्स्य महाजनपद तथा पूर्व में वत्स एवं काशी महाजनपदों से लगती थी।[18] चेतिय जातक में भी चेदि के महानगर सोत्रिवती का उल्लेख है जिसकी तुलना विद्वानों ने शुक्तिमती नगर से की है।[19] महाजनपद काल में इस क्षेत्र में अनेक मार्गो का विकास हुआ।

मौर्यो की एकछत्र सत्ता— ईसा से लगभग सवा तीन सौ वर्ष पूर्व मौर्य शासन में मगध राज्य सर्वाधिक शक्तिशाली हो गया था।[20] उज्जैन में मौर्य साम्राज्य का प्रतिनिधि वायसराय बैठता था तथा उस समय बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग उसके अधीन था। बिन्दुसार के शासन में अशोक उज्जैन का नियन्ता नियुक्त था तथा इसी क्रम में उसने इस भूमि पर आधिपत्य रखा।[21] अशोक महान के समय के शिलालेख/अभिलेख नागौद, रूपनाथ, महोबा तथा गुजर्रा (दतिया) में मिले, जो बुन्देलखण्ड में उसके शासन के प्रमाण है।[22] मौर्य शासक बृहद्रथ को मार कर पुष्यमित्र शुंग ने 184 ई0पू0 में अधिकांश बुन्देलखण्ड को अपने शासन के अधीन कर लिया।

ब्राम्हण वंशों की सत्ता— मौर्य वंश के पतन के पश्चात ब्राम्हण राजवंशों का प्रभाव बढ़ा, जिनमें शुंग, 78 ए.डी. तक रही। बुन्देलखण्ड में पुष्यमित्र शुंग का युवराज अग्निमित्र गवर्नर था, जिसने भेलसा (विदिशा) के निकट बेसनगर में अपनी राजधानी स्थापित की।[23] शुंगों की सत्ता लगभग 112 वर्ष रही,[24] जबकि कण्व वंश ने लगभग 45 वर्ष शासन किया। इन राजाओं का विवरण विष्णु पुराण, वायु पुराण तथा भागवत पुराण में उपलब्ध है। इस काल में भारत में राजतंत्र के अतिरिक्त गणतंत्रों के अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं, अतः बुन्देलखण्ड के इस क्षेत्र में भी दोनों प्रणालियों के प्रभाव मिलते हैं, परन्तु विशेष रूप से यहां राजसत्तात्म तंत्र ही अधिक रहे। गणराज्यों में एराकण्या (एरन, सागर जिले की खुरई तहसील में) का उल्लेख समीचीन होगा, जहां से प्राप्त 17 सिक्के एरण गणराज्य के माने जाते हैं, किन्तु इसका विस्तार कहां तक रहा होगा, यह कहना कठिन है।[25]

नाग वंश की सत्ता— शैव मतावलम्बी नाग क्षत्रिय राजसत्ता का आविर्भाव बुन्देलखण्ड में ब्राम्हण वंशीय राजाओं के पतन एवं कुषाणों के अभ्युदय के समय हुआ,

यद्यपि कुछ इतिहासकार इन्हें बहुत पहले का मानते हैं[26] नागवंशी राजाओं ने पद्मावती (पद्म पवैया, ग्वालियर में), कान्तीपुरी (कुतवार, ग्वालियर), नरवर, नागौर विदिशा से अपना शासन सूत्र संभाला। यहां मिलने वाले अनेक सिक्कों से यह बात प्रमाणित हो चुकी है।[27] यह भी सम्भव है कि नागों के विभिन्न वंश अलग–अलग इन राजधानियों के शासक रहे। नाग स्थापत्य कला उत्कृष्ट थी। दो सर्पों के मध्य शिवलिंग इनका राज चिन्ह था। नागों का प्रसिद्ध मठ नचना कांचन (अजयगढ़) कला का अद्भुत आदर्श है। विष्णु पुराण में भी 09 नाग राजाओं की चर्चा है। विदिशा में शेषनाग, भोग नाग, रामचन्द्र नाग, धर्मवर्मन तथा बंगर ने (10 ई0पू0 से 4 ऐ0डी0 तक) नागाबन्ध (नागौद) से बंगर, भूत नन्दी, शिशु नन्दी एवं यश नन्दी (4 ए0डी0 से 30 ए0डी0 तक) नरवर एवं पद्मावती से भीम नाग, खर्जुर नाग, वस्त, स्कन्ध नाग, बृहस्पति नाग, गणपति नाग, व्याघ्र नाग, वसु नाग एवं देव नाग (4 ए0डी0 से 220 ए0डी0) ने शासन किया चलाया।[28] ने अपने पड़ोसी गुप्त, वाकाटकों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी। इलाहाबाद की प्रयाग प्रशस्ति से पता चलता है कि समद्रगुप्त ने नागों को पराजित किया था, किन्तु निस्संदेह इनके स्थापत्य तथा इनकी संस्कृति ने इस क्षेत्र में नवीन चेतना का संचार किया।

वाकाटक– वाकाटक की ब्राम्हण थे, जो बुन्देलखण्ड में 300 से 520 ए0डी0 के मध्य रहे। इनका शासित क्षेत्र पश्चिमी बुन्देलखण्ड था तथा मूल ठिकाना बाघार (टीकमगढ़) में रहा। इस बंश में प्रभावशाली शासक भीमसेन था, जिसने विन्ध्यशक्ति की उपाधि धारण की थी। भीमसेन ने पूर्वी बुन्देलखण्ड तक अपना प्रभाव स्थापित किया। इस वंश में क्रमशः प्रवरसेन, रूद्रसेन, पृथ्वीसेन, प्रवरसेन द्वितीय, नरेन्द्र सेन, पृथ्वीसेन द्वितीय तथा हरिसेन शासक हुये।[29] मड़खेरा तथा उमरगढ़ के मन्दिर तथा नारायणपुर, गोरा के मन्दिर भी इस काल के शिल्प के उदाहरण हैं। वाकाटकों के वैवाहिक सम्बन्ध नागों तथा गुप्तों से भी रहे। मूल रूप से इनका शासित क्षेत्र बेतवा तथा धसान के मध्य ही रहा।

गुप्तकालीन बुन्देलखण्ड— 400 ए0डी0 तक सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड गुप्त राजाओं के प्रभाव में रहा, जिसमें दक्षिणी तथा पश्चिमी क्षेत्र उनके सीधे शासन में था, जिसका मुख्यालय एरण था। गुप्त राजाओं ने नागों, वाकाटकों तथा आभीर (झाँसी तथा ग्वालियर के मध्य) को अपने अधीन कर या सम्बन्ध स्थापित कर बुन्देलखण्ड में अपनी प्रभुसत्ता उदयगिरि, गढ़वां तथा सांची के शिलालेखों से प्राप्त होते हैं। हटा तहसील के सकौर ग्राम से प्राप्त 24 स्वर्ण सिक्कों में चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त और स्कन्दगुप्त के नाम मिलते हैं।[30] ने दशावतार मूर्तियों वाले मन्दिरों का निर्माण बुन्देलखण्ड में कराया, जिसका श्रेष्ठतम उदाहरण देवगढ़ के शेषशायी विष्णु की उद्भुत मूर्ति है। यद्यपि स्कन्दगुप्त 'क्रमादित्य' ने हूणों को हराया था किन्तु बाद में हूण राजा तोरमाण ने बुन्देलखण्ड में प्रवेश पा लिया।[31]

तोरमाण ने अपने सम्बन्धी बुधगुप्त को इस क्षेत्र का भार सौंपा था, जिसने सुरश्मिचन्द्र नामक मांडलिक यहां नियुक्त किया था। सुरश्मिचन्द्र ने मैत्रायणी शाखा के दो ब्राम्हणों मातृ विष्णु व धान्य विष्णु की नियुक्ति एरण में की।[32] एरण इस समय अपने पूर्ण वैभव पर था। यहां स्थित 38 फुट ऊंचा स्तम्भ, लेखयुक्त वाराह मूर्ति व वाराह अवतार मंदिर तथा अन्य मंदिर एवं लेख एरण में हूण राज्य की गाथा कहते हैं। एरण के सतीचौरा लेख से ज्ञात होता है कि सरभराज का दामाद गोपराज यहां आया था, जिसकी मृत्यु पर उसकी पत्नी सती हो थी। तोरमाण के बाद मिहिरकुल का नाम हूण राजाओं में प्राप्त होता है।[33]

इस कालखण्ड में बुन्देलखण्ड में अनय छोटे राज वंशों के अस्तित्व का भी पता चलता है जिनमें उच्छकल्प, परिव्राजक, परिहार, खड़परिका, दांगी, अहीरवाड़ा तथा मांदले की चर्चा की जा सकती है। उच्छकल्प गुप्तों, वाकाटकों के सामन्त की हैसियत से खोई में रहे तथा बाद में स्वतंत्र रूप से नागौद के पास अपना ठिकाना बनाया। ये जाति से क्षत्रिय थे और इस वंश में ओध देव, कुमार देव, जय स्वामी, व्याघ्र देव, जयनाथ और सर्वनाथ शासक हुये। परिव्राजक राज्य की स्थापना वर्मगिरि नामक सन्यासी ने की थी। इस वंश में सुशर्मन देवाय, प्रभंजन, दामोदर, हस्तिन और संक्षोभ

आदि शासक हुये। गौर और ब्राम्हण भक्त परिव्राजकों ने अपना ठिकाना उचेहरा में बनाया। खड़परिका स्वातंत्र्य प्रिय जाति थी, जिसका उल्लेख समुद्रगुप्त की हरिषेणकृत प्रयोग प्रशस्ति में हुआ है। कुछ समय के लिये झांसी और ग्वालियर के मध्य आभीरों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता बना ली, जबकि दांगियों ने गढ़पहरा को राजधानी बनाकर कुछ समय शासन किया। बेतवा तथा धसान के मध्य दक्षिणी भाग पर डांग (ऊबड़–खाबड़ भूमि) में मूलतः पशुचारण करने वाली इस जाति के शासन के कारण ही इस क्षेत्र को दांग कहा जाता है। डा0 के0 पी0 जायसवाल ने छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बेतवा और धसान के मध्य मांदेलों की प्रभावशाली सत्ता की चर्चा अपने अन्धकारयुगीन भारत में की है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि इस कालखण्ड में गुप्त राजाओं द्वारा कलात्मक मूर्तियों एवं मन्दिरों की रचना, वाकाटकों द्वारा सूर्य एवं शिव मन्दिरों की रचना तथा नाग राजाओं के शिव मन्दिर के निर्माणों द्वारा बुन्देलखण्ड को कला, धर्म और संस्कृति की अच्छी प्रगति प्राप्त हुयी।[34]

हर्ष वर्धन का शासन– थानेश्वर तथा कन्नौज के शासक हर्षवधन ने सम्पूर्ण उत्तर भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। सोलह वर्ष की आयु सम्वत 647 में राजगद्दी पर बैठे हर्षवर्धन के राज्य में स्वाभाविक रूप से सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड शामिल था। चीनी यात्री ह्वेनसांग इसी समय भारत आया था तथा उसने इस प्रदेश की यात्रा की थी। उसने इसका नाम 'चीचूटू' लिखा और यहां ब्राम्हण राज्य बताया। सम्भव है कि यह मातृ विष्णु और धान्य विष्णु के वंशजों का समय रह हो। कुद विद्वानों का मानना है कि क्षेत्र का नाम जुझौति इसी कालखण्ड में पड़ा। इसी प्रकार इस समय राजधानी खजुराहों थी या एरण, इस विषय में श्री गोरेलाल तिवारी[35] तथा डा0 काशीप्रसाद त्रिपाठी में मतभेद है। इस काल में इस क्षेत्र में कलचुरियों, चन्देलों तथा गोंड राजाओं की सत्ता की जड़ें जमने लगी, साथ कछवाह, सेंगर, परिहारों का भी अभ्युदय हुआ।

1.2.2. राजपूत काल

इस कालखण्ड के प्रारम्भ के वर्षो में बुन्देलखण्ड में राजपूतों के छिट–पुट शासन होने के संकेत मिलते हैं, किन्तु क्रमागत रूप से ये दृढ़ होते गये तथा बाद के वर्षो में यहां कलचुरियों और चन्देलों के शक्तिशाली राज्य स्थापित हुये। यह उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र का यद्यपि आंशिक रूप से दशार्ण, डांग, महाकान्तार आदि नामो से पुकारा गया, तथापि अभी भी इसका प्रचलित नाम चेदि प्रदेश ही रहा।

कछवाहा राज्य– बुन्देलखण्ड में कछवाहों का उदय कब हुआ, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। राजा सूरसेन जिसने बाद में अपना नाम सूरजपाल रख लिया था, ने ग्वालियर का किला सम्वत 332 में बनवाया, ऐसी जनश्रुति है। छठवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बुन्देलखण्ड के पश्चिम भाग में नरवर और कुन्तलपुरी (कुटवार) को केन्द्र बनाकर इन्होंने दृढ़ता प्राप्त करना प्रारम्भ किया था।[36] कछवाह राजाओं में सूरसेन, तेजकर्ण, लक्षमण, वज्रदामा, मंगलराज, कीर्तिराज, भुवनपाल, पद्मपाल, महिपाल, त्रिभुवन पाल, विजयपाल, सूरपाल और अनंगपाल शासक हुये।[37] तेजकर्ण के शासन में परिहारों ने इनका दमन किया, जबकि कीर्तिराज ने मालवा के राजा को परास्त किया। यद्यपि कछवाहा वैष्णव थे, किन्तु इनके समय में जैन धर्म को भी बढ़ावा मिला। ग्वालियर किले का सास–बहू मन्दिर कछवाहा शिल्प है। त्रिभुवनपाल (उपनाम–मनोरथ) ने संवत 1161 में महादेव का मन्दिर बनवाया। इनकुण्ड के जैन मन्दिरों में कछवाहों के शिलालेख मिलते हैं। कछवाहों की एक शाखा इनकुण्ड में अन्तिम दिनों में शासन करती रही।[38]

सेंगर राज्य– सातवीं सदी में बुन्देलखण्ड की पूर्वी सीमा में सेंगरों का राज्य स्थापित हुआ, जिसका बड़ा भाग बघेलखण्ड में था। इन्होंने अपने राज्य की पश्चिमी सीमा का विस्तार कालिंजर तक कर लिया था और अपने शासित प्रदेश को 'डहार' प्रदेश कहते थे, क्योंकि सम्भवतः इस राज्य का संस्थापक डहार देव था, जिसे सारंग देव भी कहते थे। सेंगरों ने कई पीढ़ी शासन किया, जिनमें वीर बहादुर सिंह अन्तिम शासक हुआ।[39]

सेंगर सत्ता को कलचुरियों ने नष्ट किया। अपने शासित मैदानी एवं वन प्रान्त को ये लोग क्रमशः दनवार और वनवाद कहकर पुकारते थे।

परिहार राज्य– गुप्त वंश एवं वर्धन वंश के शासन काल में बुन्देलखण्ड की दक्षिणी पेटी और मध्य बुन्देलखण्ड में पड़िहारों का शासन रहा है। परिहार हर्षवर्धन के मांडलिक थे। इन्होंने सिंगोरगढ़ का प्रसिद्ध दुर्ग बनवाया। इन्होंने मऊ–सहानियां तथा उच्छकल्प (उचेहरा) में भी अपने ठिकाने बनाये।[40] इसके अतिरिक्त धसान तट पर पचेर में भी इनका एक ठिकाना था। परिहारों की विस्तृत वंशावली उपलब्ध नहीं है, किन्तु ये वीर एवं दृढ़ निश्चयी राजपूत रहे हैं।

कलचुरि सत्ता– बुन्देलखण्ड में चन्देल सत्ता की स्थापना के पूर्व कलचुरियों की शक्ति बुन्देलखण्ड में स्थापित हुयी। कलचुरि सत्ता का विस्तार 249 ए0डी0 के पश्चात् नर्मदा नदी के उत्तर में प्रारम्भ हुआ था। कलचुरि राजाओं की लगातार वंशावली कोकल्लदेव प्रथम के समय से प्राप्त होती है। कलचुरि शासकों के शिलालेख बिलहरी, वाराणसी, देवगढ़, ग्वालियर तथा महेवा से प्राप्त होते हैं।[41] कोकल्लदेव के पश्चात मुग्धतुंग, बालहर्ष, कयूरवर्ष, युवराज, लक्ष्मण देव, शंकरगण, कोकल्लदेव द्वितीय, गांगेय देव, कर्णदेव इत्यादि महत्वपूर्ण शासक हुये। कलचुरि सत्ता ने बुन्देलखण्ड में अपना राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव छोड़ा। तेवर के निकट गोलकी मठ कलचुरि शिल्प का जीवंत प्रमाण है। गांगंयदेव कलचुरि ने अपने नामक से स्वर्ण, रजत एवं ताम्र सिक्के जारी किये। तेवर में उत्खनन से प्राप्त सिक्के इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। गांगेयदेव के पुत्र कर्ण ने कलचुरि शक्ति को भारत की केन्द्रीय शक्ति बनाया। स्थानीय कहावतों में कर्ण देव को 'कर्ण डहरिया' या 'डाहल का कण' कहा जाता है।[42] के0पी0 जायसवाल ने कर्णदेव को भारतीय नेपोलियन की संज्ञा दी है।[43] कर्णदेव ने कर्णावती नाम नगर बसाया था। जबलपुर के निकट कुम्हीं नाम स्थान से प्राप्त ताम्रलेख से इसकी पुष्टि होती है। इस नगर का तादात्म्य कारीतलाई तथा करनवेल नामक दो स्थानों से मतभेदों के साथ विद्वान स्थापित करते हैं।[44]

कलचुरि वंश की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि कालिंजर विजय रही। 'कालिंजरपुरवराधीश्वर' की उपाधि कलचुरि शासकों के पास 9वी शताब्दी तक रही। बाद में चन्देलों की शक्ति ने कालिंजर को 9वीं शताब्दी में हस्तगत कर लिया था।[45]

चन्देलों की दुर्धर्ष सत्ता– 'बुन्देलखण्ड' की प्रथम स्वतंत्र अभिव्यक्ति 'जेजाकभुक्ति' या 'जयभुक्ति' के नाम से दुर्धर्ष चन्देलों के सत्ता काल में हुयी।[46] चन्देलों ने क्षेत्र में राजनैतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक वैविध्य एवं विशिष्टता प्रदान करते हुये क्षेत्र को एक इकाई के रूप में संगठित करने का कार्य किया। कभी प्रतिहार सत्ता के सामन्त रहे चन्देलों ने न केवल बुन्देलखण्ड बल्कि आसपास के क्षेत्रों में भी एकछत्र शासन स्थापित किया। डा0 विन्सेन्ट स्मिथ, प्रो0 कीलहर्न, बेगलर तथा सर एलेक्जेंडर कनिघंम ने चन्देलों के इतिहास से सम्बन्धित पुरातात्विक कार्यो तथा खोजों में उल्लेखनीय योगदान प्रस्तुत किया है, जिससे चन्देलों का स्पष्ट इतिहास प्रकाश में आ सका है।[47] चन्देलों ने अध्ययन क्षेत्र में लगभग 10वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक शासन किया। प्रतिहार साम्राज्य के टूटने के परिणाम स्वरूप मध्य एवं पश्चिमी भारत में अनेक राजवंशों का उदय हुआ था जिनमें चन्देल भी शामिल थे।[48] 36 राजपूत वंशों के समूह में शामिल चन्देलों ने स्वयं की उत्पत्ति चन्द्रवंशी चन्द्राद्रेय से मानी है।[49] चौवीं शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश में नन्नुक ने राजवंश की स्थापना की थी। खजुराहों के समीप खजुराहोवाहक को चन्देल राजसत्ता के प्रारम्भिक राजाओं से जोड़ा जाता है और इसके पुरातात्विक प्रमाण उपलब्ध हैं[50] संभवतः नन्नुक के काल में चन्देल प्रतिहार सत्ता के सामन्त थे।[51] नन्नुक (825 से 840 ए0डी0) का उत्तराधिकारी वाक्पति था जिसने नवीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में क्षेत्र पर शासन किया। विन्ध्य श्रृंखलाओं को वाक्पति का क्रीड़ांगन कहा गया है क्योंकि उसने इन श्रृंखलाओं में अनेक विपक्षियों ये युद्ध लड़े, जिनमें भोज प्रतिहार, देवपाल, कोकल्ल प्रथम कलचुरि भी शामिल थे।[52]

जेजाकभुक्ति के प्रारम्भिक चन्देल– वाक्पति के उत्तराधिकारी क्रमशः उसके दो पुत्र जयशक्ति और विजयशक्ति हुये।[53] जयशक्ति जिसे जेजा या जेजाक के नाम से जाना जाता है, पहले शासक हुआ।[54] उसके नाम चन्देल साम्राज्य को जेजाक भुक्ति के नाम

से पुकारा गया।[55] रायचौधरी का मत है कि 'भुक्ति' शब्द का प्रयाग विभिन्न नामों के साथ गुप्तकाल से ही विद्यमान था।[56] जयशक्ति ने अपने पुत्री नट्टा का विवाह कलचुरि शासक कोकल्ल प्रथम से करके अपनी राजनैतिक स्थिति को सुदृढ़ कर लिया।[57] अगले शासक विजयशक्ति ने साम्राज्य का विस्तार दक्षिण में किया। विजयशक्ति के उत्तराधिकारी राहिल ने राहिल्य नामक नगर महोबा के निकट बसाया।[58] खजुराहो के दो अभिलेखों में राहिल का नाम आता है। राहिल ने सर्वप्रथम तालाबों एवं झीलों के निर्माण तथा मन्दिर निर्माण के जनकल्याणकारी कार्यो का सू.पात किया अजयगढ़ के मन्दिर में उसे नाम का प्रस्तर अभिलेख एवं महोबा में राहिल्य सागर इसके प्रमाण है।[59] राहिल के पुत्र एवं उत्तराधिकारी हर्ष (905–925 ए0डी0) ने साम्राज्य विस्तार के क्रम में कन्नौज पर चढ़ाई की तथा विजय प्राप्त की।[60] साथ ही महेन्द्रपाल प्रतिहार की सहायतार्थ हर्ष ने अनेक युद्धों में भाग लिया।[61] धंगदेव के नन्यौरा ताम्रपत्र में प्रशस्तिकार ने अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हुये हर्ष की वीरता की प्रशंसा की है।[62]

कालिंजर का प्रथम विजेता यशोवर्मन– चन्देल वंश की प्रथम प्रतिष्ठा यशोवर्मन ने स्थापित की जिसने क्षीण प्रतिहार शक्ति तथा गृह कलह से ग्रसित राष्ट्रकूट शक्ति के कारण अनुकूल वातावरण में एकछत्र साम्राज्य का निर्माण किया।[63] यशोवर्मन ने उत्तर में यमुना नदी तक सीमा का विस्तार किया तथा कालिंजर दुर्ग को विजित करने वाला प्रथम चन्देल शासक बना।[64] यशोवर्मन की विशाल वाहिनी का खजुराहो शिलालेख में काव्यात्मक वर्णन है।[65] यशोवर्मन ने मगध तथा उत्तरी बंगाल में निर्बल हो रही गौड़ शक्ति को परास्त किया।[66] राजतंरगिणी में प्रयुक्त 'नश्यंत कश्मीर वीराः' चन्देल शक्ति के कश्मीर के शासक शंकर वर्मा से भिड़न्त की सूचक हैं, यद्यपि इसकी अभिलेखीय पुष्टि नहीं होती है।[67] यशोवर्मन के शासन में चन्देलों ने कोशल, मिथिला, मालवा, कुरू विजय के विवरण उपलब्ध होते हैं।[68] यशोवर्मन ने कोकल्ल देव के उत्तराधिकारियों को दो बार परास्त किया। खजुराहों शिलालेख में यह विवरण लिपिबद्ध है, जिसमें चेदियों को 'निर्लज्ज' कहा गया है। डा0 हेमचन्द्र रे की अवधारणा है कि पराजित चेदि नरेश युवराज प्रथम अथवा लक्ष्मणराज था। V.S. 1011 के खजुराहो शिलालेख में यशोवर्मन

(925–950 ए0डी0) की दिग्विजय के विवरण उसके एकछत्र शासन को प्रमाणित करते हैं।[69] खजुराहो के प्रसिद्ध चतुर्भुज मन्दिर का निर्माण करवाने वाले यशोवर्मन का उत्तराधिकारी धंगदेव था।[70]

प्रतापी धंग– धंगदेव (950–1008) अपने 50 वर्षो से अधिक के शासन में चन्देल शक्ति को उत्कर्ष के शिखर पर पहुंचा दिया। खजुराहो शिलालेख में निर्देश है कि कान्ची, राढ़, आन्ध्र तथा अंग देश की रानियां उसके बन्दीगृह में थी तथा कोशल, क्रथ, सिंहल और कुन्तल नरेश उसके आज्ञापालक थे।[71] परन्तु यह विवरण उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है क्योंकि चोल नरेश राजराज प्रथम (885–1013) के अधिकार में कान्ची था तथा राजराज अपने समय का महान विजेता तथा सामुद्रिक शक्ति की मदद से वृहत्तर साम्राज्य का निर्माता था।[72] राजेन्द्र चोल प्रथम के तिरूवलंगाडु अभिलेख से भी इसकी पुष्टि नहीं होती। पुरातत्वविद चारों विजयों को स्वीकार नहीं करते हैं।[73]

धंग के शासनकाल की प्रमुख राजनैतिक घटना गजनी के शासक सुबुक्तगीन द्वारा उद्भाण्डपुर के शाही शासन के विरूद्ध अनेक युद्धों की थी। उतबी, इब्न उल अथर तथा निजामुद्दीन इत्यादि मुस्लिम इतिहासकार सुबुक्तगीन के विरूद्ध एक भारतीय संघ की चर्चा करते हैं, जिसमें धंग की सेना भी शामिल हुयी थी।[74] परन्तु डा0 एच0सी0रे महोबा अभिलेख के आधार पर ऐसे किसी संघ की बात नकारते हैं। जयपाल शाही जैसे छोटे शासक की विशाल सेना का विवरण एच0सी0 रे मत का समर्थन नहीं करता है। उतबी के अनुसार 'नीच काफिर (जयपाल) ने 8000 घुड़सवार, 30,000 पैदल, 300 हाथियों के साथ सुल्तान का मुकाबला किया परन्तु परिणाम सुल्तान के पक्ष में रहा।' बिना बाहरी सहायता के जयपाल बड़ी सेना के साथ युद्ध करने में अक्षम था। परन्तु यह भी सच है कि प्रतापी धंग के भय से ही सुबुक्तगीन ने अपने अभियानों को आगे नहीं बढ़ाया।[75] मुस्लिम इतिहासकारों ने धंग के लिये 'अमीर' शब्द का प्रयोग किया है।

धंग ने धार्मिक एवं जनकल्याणकारी कार्यो का कुशलता से सम्पादन किया। उसने चन्द्रग्रहण के अवसर ग्रामदान वाराणसी में किया, जिसकी पुष्टि नन्यौरा ताम्रपत्र

करता है।[76] V.S.1011 के खजुराहो शिलालेख, V.S.1011 के खजुराहो जैन मन्दिर शिलालेख, V.S.1055 के नन्यौरा ताम्रपत्र, V.S.1058 के खजुराहो कोकल्ल के खजुराहो शिलालेख, V.S.1059 के खजुराहो के शिलालेख से धंग के जनकल्याणकारी कार्यों की पुष्टि होती है।[77] उसके शासनकाल में महिलाओं को सम्मान प्राप्त था। खजुराहों के अनेक मन्दिरों के निर्माता धंग ने प्रयाग में जलसमाधि लेकर प्राण त्यागे।[78]

गंडदेव एवं विद्याधर– गण्डदेव (1008–1019 ए0डी0) धंग का उत्तराधिकारी था जो अपने पिता के दीर्घकालिक शासन के पश्चात अधिक आयु में सिंहासनारूढ़ हुआ। इब्न उल अथर ने अपनी पुस्तक तारीख उल कामिल में गंडदेव के लिये 'नन्दा' शब्द का प्रयोग किया है। कनिंघम ने सर्वप्रथम यह सुझाव प्रस्तुत किया कि मुस्लिम इतिहासकारों ने भूलवश 'नन्दा' नाम दिया है तथा अधिकांश इतिहास कनिंघम से सहमत है।[79] गंडदेव के शासनकाल में गजनी के शासक महमूद के विरूद्ध दूसरी बार जयपाल के पुत्र अनंगपाल ही सहायता के निहितार्थ हिन्दू राज्य संघ का निर्माण हुआ।[80] उज्जैन, ग्वालियर, कन्नौज, योगिनीपुर तथा अजमेर के शासक इस संघ में शामिल हुये। युद्ध में अनंगपाल के हाथी के बिगड़ जाने से बाजी महमूद के हाथ रही। अनंगपाल के मैदान छोड़ देने के कारण महमूद ने भागती सेना का दो दिन और दो रात पीछा किया तथा 8,000 विपक्षी सैनिकों को कत्ल कर दिया।[81] संघ जिस उद्देश्य से निर्मित हुआ था, वह फलीभूत नहीं हो सका। महमूद ने दिसम्बर 1018 में कन्नौज पर आक्रमण कर वहां के शासक राज्यपाल को हरा दिया तथा कन्नौज को लूटा। गंडदेव ने राज्यपाल की भीरूता पर उसे दण्ड देने के लिये अपने पुत्र विद्याधर के नेतृत्व में सेना भेजी, जिसने कन्नौज को विजित का राज्यपाल को मार डाला।[82] विद्याधर जो कि गंडदेव का उत्तराधिकारी बना, के विरूद्ध राज्यपाल की हत्या की प्रतिक्रिया में महमूद ने चन्देल सत्ता पर लक्ष्य निर्धारित किया। इब्न उल अथर के अनुसार हिजरी 409 में महमूद ने बिदा (विद्याधर) के क्षेत्रों पर आक्रमण किया।[83] महमूद तथा विद्याधर के मध्य युद्ध एक नदी के किनारे हुआ। इब्न उल अथर के अनुसार 'बिदा' रात्रि में मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ तथा सुल्तान ने चन्देल शिविर लूट

लिये।[84] महमूद इस अपूर्ण विजय से संतुष्ट नहीं था अतः हिजरी 414 या 1023 ए0डी0 में उसने विद्याधर को पुनः घेरा। इब्न उल अथर इस युद्ध के सम्बन्ध में मौन है यद्यपि हिजरी 413 में उसने महमूद द्वारा भारत के एक शक्ति सम्पन्न किले पर आक्रमण का उल्लेख किया है। डा0 रे की अवधारणा है कि यह किला कालिंजर ही है।[85] निजामुद्दीन अहमद के अनुसार महमूद के घेरे से विवश होकर विद्याधर ने एक बड़ा कोष तथा अप्राप्त मणियां सुल्तान को प्रदान की, परन्तु निजामुद्दीन अहमद के समकालीन न होने के कारण युद्ध के विवरण संदिग्ध हैं।[86] मालवा के शासक भोज परमार तथा गांगेय देव कलचुरि विद्याधर की सत्त का सम्मान करते थे।[87] विद्याधर के पश्चात चन्देल शक्ति में क्रमशः गिरावट आयी तथा उसके उत्तराधिकारी अपने पूर्ववर्तियों की भांति योग्य नहीं रहे।

विजयपाल एवं देव वर्मन– विजयपाल (1030–1050 ए0डी0) के शासन काल की पुष्टि मऊ प्रस्तर अभिलेख एवं देव वर्मन के नन्यौरा पत्र से होती है।[88] विजयपाल के शासनकाल का कोई राजनैतिक महत्व नहीं है। महोबा शिलालेख के अनुसार विजयपाल ने गांगेयदेव कलचुरि को युद्ध में परास्त किया था। जबलपुर ताम्रपत्र लेख से विजयपाल की धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में सूचनायें प्राप्त होती है।[89] विजयपाल ने परमभट्टारक, महाराजाधिराज एवं परमेश्वर की उपाधियां धारण की।[90] विजयपाल का अनुज देव वर्मन (1050–1060 ए.डी.) उसका उत्तराधिकरी हुआ। उसका नन्यौरा ताम्रपत्र (1051 ए0डी0) तथा चरखारी ताम्रपत्र (1052 ए0डी0), उसकी उपाधियों की सूचना देते है।[91] कालिंजर शिलालेख देव वर्मन के शासन में लक्ष्मीकर्ण कलचुरि (1041–72 ए0डी0) से चन्देल सत्ता के संघर्ष एवं विजय की सूचना देता है।[92] परन्तु विक्रमांकदेवचरित का लेखक बिल्हण युद्ध में लक्ष्मीकर्ण की विजय का विवरण देता है।[93]

कीर्तिवर्मन, सलक्षणवर्मन तथा जयवर्मन के शासन– चन्देल सत्ता का अभिनवीकरण कीतिवर्मन (1060–1100 ए0डी0) के दीर्घशासन में हुआ। महोबा के कीरत सागर तालाब के निर्माता कीर्तिवर्मन का एक अभिलेख देवगढ़ से V.S.1054 का प्राप्त

हुआ है।[94] कृष्ण मिश्र रचित प्रबोध चन्द्रोदय से कीर्तिवर्मन द्वारा चेदि नरेश लक्ष्मीकर्ण को पराजित करने की सूचना प्राप्त होती है। इस युद्ध में चन्देल सेनापति चक्रचूड़ामणि गोपाल नामक सामन्त था।[95] कीर्तिवर्मन के कालिंजर शिलालेख V.S.1047से समकालीन शासकों के काल निर्धारण में सहायता मिलती है।[96] कीर्तिवर्मन के पश्चात सलक्षणवर्मन का शासन अल्पकाल के लिये हुआ। अजयगढ़ प्रस्तर अभिलेख से सलक्षणवर्मन (1100-1115 A.D.) के योग्य मंत्रियों ने नाम पता चलते हैं।[97] सलक्षणवर्मन का उत्तराधिकारी जयवर्मन (1115-1120 A.D.) भी अल्पकालिक शासक रहा। जयवर्मन का उल्लेख सिक्कों से भी प्राप्त होता है। दार्शनिक विचारधारा वाले जयवर्मन ने धंग की भांति संगम में प्राण त्याग दिये।[98] जयवर्मन के उत्तराधिकारी पृथ्वीवर्मन (1120-1128 A.D.) का अल्पकालिक शासन राजनीतिक शून्यता वाला रहा। यद्यपि मऊ शिलालेख में उसकी तुलना पृथु से की गयी है तथापि उसके किसी साहसिक कार्य का विवरण नहीं मिलता है।[99]

चन्देल सत्ता का उत्कर्ष– चन्देल सत्ता का उत्कर्ष पृथ्वीवर्मन के पुत्र मदनवर्मन (1129-1163 A.D.) के शासन में हुआ।[100] उसका प्रथम अभिलेख कालिंजर स्तम्भ लेख है जो V.S.1186 या 1129 A.D. का है। चन्दबरदाई के अनुसार मदनवर्मन ने गुर्जरा (गुजरात) के शासक जयसिंह सिद्धराज को परास्त किया था। मदनवर्मन द्वारा जयसिंह सिंहराज (1093-1143 A.D.) को परास्त करने के विवरण कुमारपालचरित से भी प्राप्त होते हैं।[101] मदनवर्मन ने मालवा के शासक जयवर्मन (1128-1163 A.D.) को परास्त कर 'अवन्तिनाथ' की उपाधि धारण की।[102] मदनवर्मन ने काशी तथा कन्नौज के शासक गोविन्द चन्द गहड़वाल से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये।[103] पनवाड़ी तथा अन्य स्थानों से मदनवर्मन ने महोबा में मदन सागर तालाब तथा आधुनिक ललितपुर जिले में मदनपुर नामक नगर के निर्माण का श्रेय लिया।[104] कालिंजर शिलालेख में मदनवर्मन के महाप्रतिहार सिंहनाद तथा महानचनी मद्मावती का उल्लेख है। कनिंघम के मतानुसार ये दोनों कालिंजर के नीलकंठ मन्दिर में सेवा हेतु नियुक्त थे, जिसमें पहला प्रधान द्वारपाल तथा द्वितीय प्रमुख नर्तकी थी।[105] मदनवर्मन का अल्पकालिक उत्तराधिकारी

उसका पुत्र यशोवर्मन द्वितीय (1163-1165 A.D.) था।[106] परमर्दिदेव के बटेश्वर अभिलेख से उसके नाम की पुष्टि होती है।

परमाल तथा चन्देल प्रतिष्ठा का अवसान– मदनवर्मन का पौत्र परमर्दिदेव या परमाल (1165-1202 A.D.) उसका वास्तविक उत्तराधिकारी हुआ। परमर्दिदेव ने शान्तिमय वातावरण में गद्दी संभाली।[107] परमर्दिदेव के शासन का प्रथमार्द्ध शानदार रहा। उसने भिलसा को 1173 में चालुक्य सत्ता से छीन लिया।[108] परमर्दिदेव के शासन काल में चन्देल शक्ति को भरत की उदीयमान चौहान शक्ति पृथ्वीराज तृतीय का सामना करना पड़ा। सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज ने 1181 में सिरसागढ़ एवं महोबा के क्रमागत युद्धों में चन्देल शक्ति को परास्त कर चन्देलों की प्रतिष्ठा को धूमिल कर दिया। इस युद्ध में चन्देल सेना की ओर से आल्हा, ऊदल, इन्दल, मलखान इत्यादि सेनापतियों ने भाग लिया था, जिनका अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन चन्दरबरदाईकृत 'पृथ्वीराज रासो' तथा जगनिक कृत 'परमाल रासो' में मिलता है।[109] चन्देलों की प्रतिष्ठा पर सबसे बड़ी चोट मुईजुद्दीन गोरी के गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक ने की जिसने 1202 में कालिंजर को घेर लिया।[110] हसन निजामी के अनुसार, ''सोमवार 20, रजब के दिन 1203 A.D. दुर्ग के निवासियों ने समर्पण कर दिया। यह दुर्ग सिकन्दर की दीवार की तरह था। 50 हजार लोग गुलाम बना लिये गये तथा विपुल सम्पत्ति प्राप्त हुये। कालिंजर का दुर्गपति हजबरूद्दीन हसन अर्नल को बनाया बनाया गया।''[111] घेरे के दौरान परमर्दिदेव की मुत्यु हो गयी। परमर्दिदेव को बुन्देलखण्ड में उसके निर्माणों के लिये याद किया जाता है। परमाल ने कई तालाब, मन्दिर, बैठक, चबूतरे बनवाये। अजयगढ़ दुर्ग के परमाल ताल एवं मंदिर के निर्माण का श्रेय उसी को है। परमर्दिदेव के साथ ही चन्देलों की प्रतिष्ठा का भी अवसान हो गया।[112]

परमर्दिदेव के उत्तराधिकारियों त्रैलोक्यवर्मन (1203-1250) वीरवर्मन (1250-1286), भोजवर्मन (1286-1288) हम्मीरदेव 1288-1310, ने अजयगढ़ को भी शासन का केन्द्र बनाया। त्रैलाक्यवर्मन ने सल्तनत के प्रतिनिधि से कालिंजर वापस छीना तथा 'कालिंजराधिपति' की उपाधि धारण की, परन्तु वह चन्देलों की खोयी हुयी प्रतिष्ठा को

वापस लाने में असफल रहा। त्रैलोक्य वर्मन की कालिंजर विजय की पुष्टि गर्रा ताम्रपत्र तथा वीरवर्मन के अजयगढ़ अभिलेख से होती है।[113] त्रैलोक्यवर्मन ने रीवा तथा डाहल मंडल के कलचुरियों को विजित किया।[114] त्रैलोक्यवर्मन के शासनकाल में इल्तुतमिश ने कालिंजर दुर्ग पर असफल घेरा डाला। त्रैलोक्यवर्मन के उत्तराधिकरी वीरवर्मन ने कालिंजर को अपना निवास बनाये रखा। उसने मालवा से कड़ा तक अपना साम्राज्य बनाया।[115] दाही दानपत्र में उत्तर–पश्चिम में वीरवर्मन के राज्य विस्तार को नलपुर या नरवर तथा गोपगिरि या ग्वालियर तक होने का दावा किया गया है।[116] भोजवर्मन के नाम की पुष्टि अजयगढ़ दुर्ग में तरहौनी द्वारा के समीप लगे शिलालेख से होती है।[117] उसके शासन की अन्तिम ज्ञात तिथि V.S.1342 है[118] भोजवर्मन के पश्चात चन्देल सत्ता का अन्त नहीं हुआ, परन्तु सल्तनत काल में इनका राजनैतिक योगदान नगण्य हो गया।[119]

1.2.3 सल्तनत एवं मुगल शासन

दिल्ली सल्तनत की स्थापना का श्रेय कुतबुद्दीन ऐबक (1206–1210 ई0) को है। सल्तनत काल में माम्लूकों के अतिरिक्त खिलजी, तुगलक, सैयद तथा लोदी सुल्तानों ने शासन किया। बुन्देलखण्ड का सल्तनत कालीन विवरण निम्नवत है।

माम्लूक सुल्तान– प्रथम माम्लूक सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक के कालिंजर अभियान का विवरण पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है। सद्रुद्दीन हसन निजामी ने ऐबक की कालिंजर विजय के समकालीन विवरण दिये हैं।[120] मिनहाल उस सिराज ने तबकात ए नासिरी में ऐबक की कालिंजर विजय का विवरण बीसवें तबके में दिया है।[121] ऐबक की विजय ने बुन्देलखण्ड में तुर्क सत्ता के विस्तार का मार्ग प्रशस्त किया। सुल्तान इल्तुतमिश (1211–1236 ई0) ने अपने सेनापति नसरतउद्दीनको 1231 में कालिंजर विजय के लिये भेजा यद्यपि यह अभियान असफल रहा।[122] उपरोक्त दोनो के अतिरिक्त सुल्तान नासिरूद्दीन महमूद (1246–1266 ई0) ने अपने योग्य वजीर गयासुद्दीन बलबन को यमुना अभियान हेतु चुना। 1248 में बलबन ने महोबा तथा आसपास के

क्षेत्रों को विजित किया परन्तु यह अभियान सीमित था तथा इसने कोई विशेष प्रभाव नहीं डाला।[123]

खिलजी सुल्तान– प्रथम खिलजी सुल्तान जलालुद्दीन खिजली (1290–1296 ई0) ने बुन्देलखण्ड में अपना प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया परन्तु वास्तविक प्रयास सुल्तान के भतीजे तथा कड़ा–मानिकपुर के मुक्ता अलाउद्दीन ने देवगिरि अभियान में स्वतंत्रतापूर्वक किया। अलाउद्दीन खिलजी (1296–1316 ई0) ने सुल्तान बनने के बाद भारत में एकछत्र शासन स्थापित किया। अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर के नेतृत्व में हुये दक्षिण भारत के अभियानों के क्रम में दमोह जिले को दो बार 1308, 1309 में रौंदा गया।[124] निश्चय ही मार्ग में आने वाले बुन्देलाखण्ड पर अलाउद्दीन ने अधिकार किया। बुन्देलखण्ड में गढ़कुण्डार खंगार सत्ता का केन्द्र था। खंगार अनार्य थे। तथा मिश्रित राजपूत रक्त से सम्बन्धित थे। परम्परानुसार उनका शासन 80 वर्ष रहा। खंगार सत्ता को अलाउद्दीन ने राजनैतिक कारणों से संरक्षण प्रदान किया।[125] डा0 बी0डी0गुप्ता खंगारों की अधीननस्त सत्ता को महत्वपूर्ण नहीं मानते हैं तथा खंगार शासन के उल्लेखनीय विवरण भी उपलब्ध नहीं है।[126] अलाउद्दीन के सेनापति मलिक आइन उन मुल्क ने चन्देरी अभियान (1305) के समय बुन्देलखण्ड में खिलजी सत्ता को मजबूती प्रदान की।[127] अलाउद्दीन ने मलिक तमर को एरच और चन्देरी का मुक्ता नियुक्त किया था। 1309 के दमोह अभिलेख में अलाउद्दीन को बुन्देलखण्ड में संप्रभु माना गया है।[128]

तुगलक सत्ता– अलाउद्दीन के पश्चात सल्तनत का नियन्त्रण बुन्देलखण्ड पर कमजोर हो गया था तथा बुन्देलों की उदीयमान शक्ति ने गढ़गुण्डार, चौरागढ़ एवं कालपी पर अधिकार कर लिया था। गयासुद्दीन तुगलक ने स्थिति को नियंत्रण में लेने की कोशिश की। दमोह जिले के बटियागढ़ दुर्ग में गयासुद्दीन तुगलक का अभिलेख मिला है।[129] इस अभिलेख में गयासुद्दीन का नाम एवं राजत्वकाल हिजरी 725 अंकित है, जो 1324 ई0 के समतुल्य है।[130] मुहम्मद बिन तुगलक (1325–1351ई0) गयासुद्दीन का उत्तराधिकारी बना लेखों में इसका नाम महमूद भी मिलता है।[131] बरियागढ़ में

V.S.1385 का एक शिलालेख मिला है, जिसमें, मुहम्मद तुगलक का जिक्र है। इस समय इसकी ओर से जुलची खां नामक सरदार चंदेरी में नियुक्त था और इस सूबेदार का नायक बटियागढ़ में रहता था। बरियागढ़ इस समय बडिहारिन कहलाता था।[132] मुहम्मद तुगलक ने सर्वप्रथम अपने पिता के आदेश से तेलंगाना अभियान के क्रम में बुन्देलखण्ड पर अपने पैर रखे थे। बटियागढ़ में एक संस्कृत अभिलेख मिला है। जिसमें जीव जंतुओं के लिये आश्रय गोमठ, एक बावली और एक बगीचे के निर्माता सुल्तान महमूद का उल्लेख है। अभिलेख के अनुसार–'कलियुग में पृथ्वी का मालिक शकेन्द्र (मुस्लिम) है, जो योगिनीपुर (दिल्ली) में रहकर पृथ्वी का भोग करता है, जिसने समुद्र पर्यन्त सब राजाओं को अपने वश में कर लिया है। उस शूरवीर सुल्तान महमूद का कल्याण हो'[133] मुहम्मद बिन का उत्तराधिकारी फिरोजशाह तुगलक (1351–1388 ई0) सागर जिले के दुलचीपुर ग्राम में एक सती स्मारक पर फिरोजशाह का प्रस्तर अभिलेख है।[134] फिरोजशाह के कमजोर उत्तराधिकारी शासन पर नियंत्रण नही रख सके। बुन्देलखण्ड में अराजकता की स्थिति फैल गयी।[135] मालवा के सूबेदार दिलावर खां गोरी ने बुन्देलखण्ड के दक्षिणी एवं पश्चिमी भाग को अपने अधीन कर लिया। बुन्देलखण्ड के अधिकांश भाग से सल्तनत का नियंत्रण उठ गया। अजयगढ़, कालिंजर तथा आसपास का क्षेत्र चन्देलों के हाथ में ही रहा।[136] कालपी तथा महोबा का सल्तनत प्रतिनिधि मुहम्मद खां स्वतंत्र हो गया। मालवा के हुसंगशाह गौरी ने मुहम्मद खां से कालपी छीन लिया। तैमूर के भारत आक्रमण ने तुगलक सत्ता की कमजोरी को दर्शाया तथा बुन्देलखण्ड में अराजकता की स्थिति बरकरार रही।[137]

सैयद तथा लोदी सुल्तान– सैयद शासक बुन्देलखण्ड में पूरी तरह से प्रभावहीन रहे। सैयद अलाउद्दीन आलमशाह के पश्चात बहलोल लोदी (1451–1489 ई0) ने केन्द्रीय सत्ता संभाली। बुन्देलखण्ड में बुन्देलों की उदीयमान शक्ति से बहलोल लोदी के मतभेद उभरे। मलखान सिंह बुन्देला (1468–1501 ई0) ने ग्वालियर के शासक कीरत सिंह की बहलोल के विरूद्ध युद्ध में सहायता की थी।[138] मलखान के उत्तराधिकारी रूद्र प्रताप (1501–1531 ई0) ने सिकन्दर लोदी (1489–1517 ई0) तथा

इब्राहीम लोदी (1517–1526 ई0) से संघर्ष जारी रखा तथा बुन्देलखण्ड में अपनी स्वतंत्रता बनाये रखी। पानीपत के प्रथम युद्ध 21 अप्रैल 1526 में लोदी सत्ता के पतन ने रूद्र प्रताप को अनेक सीमान्त क्षेत्रों को विजित करने का अवसर प्रदान किया। रूद्रप्रताप ने लोदी साम्राज्य के 1.25 करोड़ आमदनी वाले क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया।[139] लोदी शासन में सिकन्दर लोदी के भतीजे आजम हुमांयू ने कालिंजर का घेरा कुछ समय के लिये डाला।[140]

सल्तनत काल में बुन्देलखण्ड में प्रमुख राजनैतिक घटना बुन्देलों का आविर्भाव थी। चन्देल सत्ता के अवसान के पश्चात बुन्देलखण्ड में राजनीतिक रिक्तता को भरने का प्रयास किया। यद्यपि चन्देल शासक बुन्देलखण्ड में रहे तथा कालिंजर एवं अजयगढ़ में अधिकतर समय उनका शासन बना रहा, तथापि हम्मीर देव एवं कीरत सिंह को छोड़कर कोई शक्तिशाली चन्देल शासक बुन्देलखण्ड में नहीं रहा। हमीरदेव चन्देल जो भोजवर्मन का उत्तराधिकारी था, महोबा, अजयगढ़ समेत दमोह और जबलपुर के कुछ हिस्सों का अधिपति था।[141] चरखारी दानपत्र, बाम्हनी ताम्रपत्र, अजयगढ़ अभिलेख तथा चन्देल रानी सत्यभामा का कुण्डेश्वर ताम्रपत्र उसके शासन की पुष्टि करते हैं।[142] हम्मीर देव (1288–1310 ई0) स्वतंत्र सत्ता अलाउद्दीन खिलजी के शासन से बाधित हुयी, जिसकी पुष्टि सलैया V.S. 1366 सती अभिलेख से होती है।[143] हम्मीर देव के उत्तराधिकारी वीरवर्मन द्वितीय के उल्लेखनीय विवरण प्राप्त नहीं होते हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सल्तनत काल में बुन्देलों की उदीयमान शक्ति चन्देलों एवं खंगारों की पतनशीलता का परिणाम थी। इस कालखण्ड में बुन्देलों की उत्पत्ति तथा साम्राज्य विस्तार पर प्रकाश डालना समीचीन होगा।

बुन्देलों की उत्पत्ति– बुन्देला काशी के गहड़वाल शासक वीरभद्र के पुत्र हेमकरन के वंशज माने गये हैं। हेमकरन को पंचम के नाम से भी जाना जाता है।[144] पंचम के पुत्र बीर ने महौनी जालौन तक राज्य विस्तार किया तथा इसे अपनी राजधानी बनाया। बीर कालिंजर को विजित करने वाला प्रथम शासक बना। सल्तनत के प्रतिनिधि सत्तार खान को परास्त कर बीर ने कालिंजर पर अधिकार किया।[145] बीर बुन्देला के पुत्र

अर्जुनपाल ने महौनी को बुन्देला अधिवास केन्द्र बनाया । ओरछा रिकार्ड में हेमकरन को विन्ध्यवासिनी देवी के समक्ष 5 नरबलि प्रस्तुत करने के कारण 'पंचम विन्ध्येला' कहा गया हैं तथा विन्ध्येला शब्द से 'बुन्देला' की उत्पत्ति हुयी । एक द्वितीय मत के अनुसार 'बुन्देला' शब्द की उत्पति बुन्द (रक्त की बूंद) से हुयी हैं । सोहन पाल बुन्देला को ओरछा वंश का प्रथम ऐतिहासिक सदस्य माना जाता हैं वह अर्जुन पाल का उत्तराधिकारी था ।[146] सोहन पाल ने स्थानीय राजपूत जमीदारों जैसे पँवार, धँधेरा इत्यादि को संगठित किया। सोहन पाल बुन्देला (1231—59 ई0) ने (1257 ई0) में खूब सिंह खँगार को परास्तकर खँगारों से गढ़कुडार छीन लिया।[147] सोहन पाल ने हुरमत सिंह खँगार को परास्त कर खँगार सत्ता का अन्त कर दिया तथा महौनी के स्थान पर गढ़कुडार को बुन्देलों की राजधानी बनाया।[148] गढ़कुडार में सोहन पाल के उत्तराधिकारी सहजेन्द्र (1259—83), नन्नुक देव (1283—1307), पृथ्वीराज (1307—39) राम सिंह (1339—75), रायचन्द्र (1375—94), मेदनीमल (1394—1437), अर्जुन देव (1437—68) तथा मलखान सिंह (1468—1501) हुये।[149] मलखान सिंह ने बहलोल लोदी से संघर्ष किया जिसे उसके उत्तराधिकारी रूद प्रताप ने जारी रखा। दिल्ली के परिवर्तित होते परिदृश्य में रूदप्रताप ने अपनी सत्ता बनाये रखी। रूदप्रताप ने बेतवा तट पर ओरछा को नयी राजधानी बनाया। इसी वर्ष 1531 में कोथरपुर दुर्ग के घेरे के समय एक शेर के साथ लड़ाई में रूद्रप्रताप की मृत्यु हो गयी।[150] रूद्रप्रताप ने बुन्देला सत्ता का ऐसे मुकाम पर पहुँचा दिया जिससे स्थापित मुगलों की केन्द्रीय शक्ति से लोहा ले सकी।

मुगलकाल— भारत में मुगल सत्ता के संस्थापक जहीरूद्दीन मुहम्मद 'बाबर' (1526—30) ने चन्देरी के मेदिनीराय के विरूद्ध अभियान के कम में कालपी को विजित किया। रूद्रप्रताप बुन्देला ने बाबर के विरूद्ध स्वयं को सुरक्षित रखा।[151] मिर्जा नासिरूद्दीन हुमाँयू ने बादशाह बनने के बार साम्राज्य विस्तार के कम में कालिंजर का घेरा सितम्बर—अक्टूबर 1531 में डाला। कालिंजर इस समय चन्देल शासक प्रतापरूद्र के नियन्त्रण में था।[152] तोपों की मार से प्रतापरूद्र ने हुमाँयू की अधीनता स्वीकार कर

ली तथा दुर्ग समर्पित कर दिया।[153] हुमाँयू के शासन काल में ही कालिंजर दुर्ग गुजरात के सुल्तान बहादुर शाह की एक कूटनीतिक योजना का हिस्सा बना परन्तु नबम्बर 1534 में मुगल सेनापति हिंदाल से गुजरात के वीर सेनापति तातार खॉ की पराजय ने इस योजना को असफल बना दिया।[154] अफगान सेनापति शेरशाह सूरी ने चौसा तथा बिलग्राम के युद्धों में बादशाह हुमाँयू को परास्त कर दिल्ली एवं आगरा समेत समस्त उत्तर भारत पर अधिकार कर लिया। शेरशाह (1540–45) ने सामेल के कठिन युद्ध में विजय के पश्चात 1544 में बुन्देलखण्ड की ओर अपना रूख किया। शेरशाह ने कालिंजर में कीरत सिंह चन्देल को घेर लिया।[155] डा0 के0 आर0 कानूनगो का विचार है। कि शेरशाह की कूच का तात्कालिक उद्देश्य कालिंजर को घेरना नहीं था बल्कि बाँदा और हमीरपुर के क्षेत्र को दबाना था, क्योंकि वहाँ डाकुओं का बड़ा जोर था। बुन्देलखण्ड का यह क्षेत्र सुल्तान सिकन्दर लोदी के समय से शेरशाह के समय तक जौनपुर , प्रयाग और कड़ा–मानिकपुर जैसे दूरस्थ जिलों के लिये भी बड़ा खतरा था। शेरशाह ने कचवाड़ा (खजुराहो) को अपने संचालन का केन्द्र बनाया तथा सम्भावित युद्ध के लिये रसद की व्यवस्था इसी केन्द्र से की। अब्बास खॉ सखानी ने लडाई को जेहाद बताया हैं । डा0 कानूनगो का मत है। कि शेरशाह को कालिंजर घेरे में कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। डा0 ए0 एल0 श्रीवास्तव के अनुसार यह घेरा लगभग एक वर्ष चला। शेरशाह ने दुर्ग की दीवारों को उड़ा देने के उद्देश्य से सबातों के निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ की । 22 मई 1545 को सबात फटने से शेरशाह जल गया तथा बाद में उसकी मृत्यु हो गयी । परन्तु अफगानों ने अन्ततः दुर्ग पर अधिकार कर लिया।[156] शेरशाह के उत्तराधिकारी बने इस्लामशाह ने दुर्ग पर अधिकार करने के बाद कीरत सिंह और इसके 70 साथियों को मौत के घाट उतार दिया।[157] तथा कालिंजर अफगान सत्ता का अंग बन गया।

अकबर का शासन एवं बुन्देलखण्ड– जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर (1556–1605) ने साम्राज्य विस्तार के कम में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सर्वप्रथम कालिंजर को विजित किया। 10 मई 1569 के पश्चात अबकर के मनसबदार मजनू खाँ ककशाल ने

कालिंजर का घेरा डाला कि भथा के शासक रामचन्द्र के अधीन था। रामचन्द्र बघेल शासक था। जिसने कालिंजर को अफगानों से अधिकृत कर लिया था।[158] चित्तौड़ तथा रण थंभौर जैसे दुर्गो के पतन के समाचारों से भयग्रस्त रामचन्द्र ने संघर्ष करना उचित न ही समझा तथा दुर्ग समर्पित कर दिया।[159] कालिंजर अकबर की सत्ता की सीमा में आ गया।[160] परन्तु अकबर को चुनौती बुन्देलों की बढती हुयी राजनैतिक शाक्ति से मिली। रूद्र प्रताप बुन्देला शाक्ति का विस्तार किया था, जो अब तक सर्वाधिक था। भारतीचन्द्र ने शेरशाह के विरूद्व कालिंजर के कीरत सिंह को सहायता दी थी तथा अपने भ्राता मधुकर शाह को सहायतार्थ भेजा। शेरशाह सूरी ने जतारा का नाम बदलकर इस्लामाबाद कर दिया था परन्तु भारती चन्द्र ने इसे पुनः जतारा कर दिया।[161] भारतीचन्द्र ने नवीन राजधानी ओरछा में आवश्यक राजमहल तथा अन्य सैन्य इमारतों के निर्माण कार्य को पूर्ण करवाया।[162] भारतीचन्द्र के उत्तराधिकारी मधुकर शाह ने अकबर के शासन काल में बुन्देला प्रतिष्ठा को बढाने का प्रयास किया।[163]

अकबर एवं मधुकर शाह– मधुकर शाह (1554–92) ने दृढ़ हिन्दू परम्पराओं का पालन किया। 1577 में अकबर के सेनापति सादिक खान से अनका संघर्ष हुआ था। अकबर के समक्ष मधुकर शाह ने तिलक तथा माला धारण कर अपनी धार्मिक दृढता का परिचय दिया। अकबर ने मधुकरशाही टीका का प्रशंसा भी की थी।[164] 1588 में रामपुरा के सूबेदार आसकरन कछवाहा तथा कालपी के सूबेदार अब्दुल्ला खान के मध्य ग्वालियर सिंरोज में हुये संघर्ष का लाभ मधुकर शाह ने एठाया। 1592 में नरवर में राजकुमार मुराद की मृत्यु हो जाने पर ग्वालियर तथा सिंरोज के मध्य का कुछ क्षेत्र मधुकर शाह ने मुगल सत्ता से हथिया लिये।[165] मधुकर शाह को उनके प्रजाबत्सल कार्यो के लिये याद किया जाता हैं कृष्ण भक्त मधुकरशाह की रामभक्त पत्नी गणेश कुँवरि ने ओरछा में रामराजा की प्रतिमा की स्थापना की थी। यह प्रतिमा रानी द्वारा अयोध्या से केवल पुष्य नक्षत्र की दशा में यात्रा द्वारा ओरछा लायी गयी थी ओरछा का समग्र विकास मधुकरशाह के शासन में हुआ। कंचना घाट, मधुवन, पंचवन, चन्द्रसखी मंन्दिर तथा मधुपुरी (मऊरानीपुर) नगर की स्थापना का श्रेय मधुकरशाह को है।[166]

रामशाह (1592–1605) मधुकरशाह का उत्तराधिकारी बना परघ्न्तु अकबर के लिये एक बडी चुनौती वीर सिंह देव बुन्देला ने प्रस्तुत की।

अकबर तथा वीर सिंह देव बुन्देला का विद्रोह– अकबर के शासन काल में राजकुमार सलीम ने 14 मई 1602 के बाद विद्रोही स्वरूप अपनाया तथा इलाहाबाद में औपचारिक रूप से सुल्तान के रूप में कार्य करने लगा। सलीम के विद्रोह से अशान्त अकबर ने परामर्श के लिये दकन से शेख अबुल फज्ल को बुलाया, किन्तु यह बुलाया अबुल फज्ल के लिये मृत्यु संदेश सिद्ध हुआ।[167] सलीम ने जो सोचता था कि अकबर को उससे विमुख रखने के देव बुन्देला को इस कार्य पर लगा दिया कि वह अबुल फज्ल की हत्या कर दे। तुजुक –ए–जहांगीरी के अनुसार जहाँगीर के शब्दों में, ''राजा नरसिंह देव (वीर सिंह देव) बुन्देला पर मेरी कृपा थी। वह अपने समय में बड़ा वीर, दयालु और सच्चरित्र पुरूष था। मैंने उसका मनसब 3,000 कर दिया। उसकी पदोन्नति का कारण यह था। कि उसने अबुल फजल की हत्या की थी जो हिन्दुस्तान के शेखों का एक वंशज था। वह मेरा मित्र नहीं था तथा दुर्भावनावश मेरा संदेश पर सहमत हो गया और ईश्वर ने उसकी सहायता को सफल बनाया। जब शेख उसके इलाके से होकर गुजरा तो राजा ने शेख को मार डाला तथा उसका सिर मेरे पास इलाहाबाद भेजा।'' वीर सिंह देव ने अकबर के प्रिय पात्र की हत्या कर चुनौती प्रस्तुत की।[168] अबुलफजल की हत्या ग्वालियर के समीप ऑतरी के जंगल में पराइछे ग्राम में हुयी।[169] अकबर ने सलीम के इस कृत्य के लिये उसे कुद समय बाद क्षमा कर दिया।[170] परन्तु वह अपने मित्र की हत्या को नही भुला सका। अकबर ने विद्रोही वीर सिंह को पकड़ने के आदेश दिये लेकिन वह शाही सेना के हाथ नही आ सका। वीर सिंह सम्भवतः पकड़ लिया जाता परन्तु मुगल सेनापतियों ने आन्तरिक रूप से इस अभियान में विशेष रूचि नही ली क्योंकि उन्होने भावी पादशाह की शत्रुता मोल लेना उचित नहीं समझा।[171]

जहाँगीर का शासन एवं वीर सिंह देव की बुन्देला सत्ता– जहाँगीर के बादशाह बनते ही वीर सिंह देव का निर्वासन खत्म हो गया। वीर सिंह देव को 3000

जात का मन सब तथा ओरछा की सत्ता प्राप्त हुयी। वीरसिंह देव ने कालपी के सूबेदार अब्दुल्ला खान एवं हुसैन खान की सहायता से ओरछा रामशाह छीन लिया।[172] वीर सिंह देव को 1611–12 में 5000 जात का मन सब प्राप्त हुआ। वीर सिंह ने 1608 में महाबत खान के मेवाड़ अभियान में तथा 1613 में खुर्रम के दकन अभियान में सहायता की। वीर सिंह ने अपने पुत्रों पहाड़ सिंह तथा जुझार सिंह को कन्धार अभियान में मुगलों की सहायता हेतु भेजा।[173] 1625 में महाबत खान द्वारा जहाँगीर एवं नूरजहाँ को बन्दी बनाये जाने पर पादशाह की सहायता के लिये अपने पुत्र भगवन्त राव को भेजा। स्थापत्य के क्षेत्र में वीर सिंह ने नाम कमाया। धमौनी झाँसी, दतिया, गढ़कुण्डार के दुर्गो तथा जहाँगीर महल समेत 52 इमारतों की नींव 1618 में वीरसिंह ने डाली। ओरछा में फूलबाग, लक्ष्मी नारायण मंन्दिर तथा मथुरा में केशव देव मंन्दिर वीर सिंह देव ने 1624 में मथुरा में 81 मन स्वर्ण का तुलादान किया था। मथुरा के विश्राम घाट पर यह तुला सुरक्षित हैं , परन्तु केशव देव मंन्दिर को औरंगजेब के आदेश से धूल में मिला दिया गया।[174] वीर सिंह देव ने मथुरा , काशी, प्रयाग, गया तथा पुरी पाँच नगरों के लिये पाँच करोड रूपये धार्मिक अनुदान के रूप में दिये। स्थापत्य एवं दानवीरता में शीर्ष प्राप्त करने के अतिरिक्त वीर सिंह देव ने न्यायप्रियता में ऊँचा स्थान प्राप्त किया। 1623 में वीर सिंह के पुत्र बाघराज ने हिरनों के शिकार कुत्तों से हमला करवा दिया। वीर सिंह ने बाघराज पर पर उन्ही शिकारी कुत्तों को छोड़ने का आदेश दिया। राज कुमार बाघराज तथा महात्मा अनूपगिरि की स्मृति में दो स्तम्भ सावन –भादों आज शेष है।[175]

शाहजहाँ तथा जुझार सिंह का विद्रोह– जुझार सिंह वीर सिंह देव का उत्ताधिकारी हुआ। जुझार सिंह को शाहजहाँ के द्वारा 'राजा की उपाधि प्राप्त हुई परन्तु कुछ समय बाद शाहजहाँ ने वीर सिंह देव द्वारा अर्जित सम्पत्ति की जांच के आदेश दिये तथा 11 जून 1628 के बाद खानेजहाँ, अब्दुल्ला खाँ रूहेला को बुन्देलखण्ड पर आक्रमण के आदेश दिये। 3 जनवरी 1629 को शाहजहाँ स्वयं ग्वालियर पहुँच गया। उत्तर की ओर से अब्दुल्ला खाँ तथा दक्षिण से खानेजहाँ के आक्रमण से बुन्देली प्रजा

मे असन्तोष फैल गया तथा जुझार सिंह को समर्पण करना पड़ा।[176] जुझार सिंह को क्षमा करते हुये शाहजहाँ मे उसे खानेजहाँ लोदी के विरूद्ध अभियान पर लगाया तथा 1670 मे उसका मनसब बढ़ाकर 5000 जात कर दिया।[177] महात्वाकांक्षी जुझार सिंह ने गोड़ शासक प्रेमनारायण को हरा कर चौरागढ़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया। प्रेम नारायण के पुत्र ने शाहजहाँ से हस्तक्षेप की अपील की। जुझार सिंह द्वारा आदेश की अवहेलना मे शाहजहाँ ने राजकुमार औरंगजेब (15,000 जात) की कमान मे तीन सेनापतियों खानेदौरा, आसफ खाँ तथा सैयद खानेजहाँ को लगाया एवं बुन्देलखण्ड को नष्ट करने का आदेश दिया।[178] जुझार सिंह के सभी दुर्ग क्रमागत रूप से ढह गये तथा 20000 की मुगल सेना ने बुन्देलखण्ड को अधिकृत कर लिया। चौरागढ़ से दक्षिण भागते समय गोडों ने जुझार सिंह को पकड़ कर उसका वध कर दिया।[179] डा0बी0पी0 सक्सेना के अनुसार मुगलसेना ने ओरछा के देवालयों को धराशायी कर दिया। देवी सिंह बुन्देला को बुन्देलखण्ड का नया शासक बनाया गया परन्तु बुन्देली प्रजा ने उसे स्वीकार नही किया।[180]. पहाड़ सिंह के विरूद्ध 1639 में महोबा के चम्पतराय ने विद्रोह किया। 1642 में चम्पतराय ने मुगल सेवा में प्रवेश किया परन्तु दाराशिकोह से अनबन होने के कारण वह शाही सेवा में अधिक समय नहीं रह सका।

आलमगीर और चम्पतराय– 1658 में शाहजहाँ की गम्भीर बीमारी के कारण उसके पुत्रों में उत्तराधिकार हेतु युद्ध हुए। राजकुमार औरंगजेब और मुराद की संयुक्त सेना ने धरमट के युद्ध में दाराशिकोह के सेनापति जसवंत सिंह को हराया। पुनः सामूगढ़ के युद्ध में औरंगजेब ने दाराशिकोह को परास्त कर अपनी आगरा विजय सुनिश्चित की। दाराशिकोह से अपने मनमुटाव का हिसाब चम्पतराय ने सामूगढ़ में औरंगजेब की सहायता करके चुकाया। औरंगजेब 'आलमगीर' ने इस सहायता के बदले पादशाह बनते ही चम्पतराय को बुन्देलखण्ड को शासक नियुक्त किया।[181] परन्तु यह अल्पकालिक मैत्री शीघ्र भंग हो गयी। बादशाह आलमगीर ने शुभकरण बुन्देला को चम्पतराय के विरूद्ध अभियान में भेजा। मुगल सेना ने चम्पतराय को घेर लिया तथा सहरा के निकट मौरन गाँव में चम्पतराय ने आत्महत्या कर ली।[182] बुन्देलखण्ड में

आलमगीरी शासन के विरूद्ध जन रोष बना रहा जिसका नेतृत्व चम्पतराय के पुत्र छत्रसाल ने किया। छत्रसाल ने एक प्रभावशाली नेता की भाँति बुन्देलखण्ड में स्वतंत्रता का बिगुल फूंका।

1.2.4 बुन्देला एवं मराठा काल

बुन्देलखण्ड के इतिहास में मध्यकाल तथा आधुनिक ब्रिटिश काल के मध्य का काल खण्ड बुन्देला एवं मराठा काल कहलाता है, क्योंकि बुन्देला इस क्षेत्र में निर्विवाद शासक के रूप में रहे तथा उनके नाम पर क्षेत्र बुन्देलखण्ड कहलाया। संक्रमण के इस दौर में उत्तर मुगल काल बुन्देलखण्ड में मराठा सत्ता का विस्तार हुआ, जिन्होंने यहाँ की राजनीति, समाज एवं संस्कृति को प्रभावित किया। अतः इस कालखण्ड को बुन्देला एवं मराठा काल कहना उपर्युक्त होगा।

मुगल शासन द्वारा नियुक्त देवी सिंह बुन्देला, (1634–36) के पश्चात पहाड़सिंह (1641–53), सुजान सिंह (1653–72) इन्द्रमणि (1672–75), जसवंत सिंह (1675–84) भगवंत सिंह (1684–89), उद्योत सिंह (1689–1736) बुन्देलखण्ड के कुछ क्षेत्रों के शासक हुए।[183] परन्तु बुन्देलखण्ड को सर्वाधिक प्रभावित करने का श्रेय छत्रसाल को है। शुक्रवार 4 मई 1649 को कटेरा के निकट मोरपहाड़ी के जंगल में चम्पतराय एवं सारंधा के चौथे पुत्र छत्रसाल ने जन्म लिया था।[184] छत्रसाल का प्रारम्भिक जीवन युद्ध के कोलाहल में व्यतीत हुआ। छत्रसाल के बड़े भाई अंगद राय ने छत्रसाल को प्रारम्भिक सहायता दी थी।[185] छत्रसाल बचपन से धर्मभीरू थे तथा अपनी पैतृक जागीर महेबा के चेतन गोपाल मन्दिर मे आस्था रखते थें।[186] छत्रसाल का प्रथम विवाह देवकुवॅर से हुआ था।[187] छत्रसाल तथा अगंदराय ने अपने उददेश्यों की पूर्ति हेतु शाही सेवा में स्थान प्राप्त किया तथा मिर्जा जय सिंह की सेना मे अपनी टुकड़ी के साथ शामिल हुये।[188] 1665 के पुरन्दर घेरे के क्रम मे छत्रसाल का मराठा छत्रपति शिवाजी से मिलन हुआ। यह भेंट पूना मे किसी स्थान पर हुयी थी।[189] छत्रसाल ने अपने चचेरे भाई बलदिवान के साथ सगंठन का कार्य प्रारंम्भ किया तथा मुगल काल सेनापति शुभकरण बुन्देला के

विरूद्व संघर्ष की तैयारी करने लगे। अपने जन्म स्थान पर वी0एस0 1728 मे छत्रसाल ने तैयारियों के अन्तिम स्वरूप प्रदान किया।[190] मुगलसत्ता से छत्रसाल का प्रारिम्भक संघर्ष (1671–1707)[191] छत्रसाल ने मुगलों से संघर्ष की शुरूआत 1671 में की इस समय मऊ (छतरपुर) में छत्रसाल ने अपनी विधि सम्मत सत्ता स्थापित की।[192] छत्रसाल ने धधेरों को सबक सिखाने के बाद मालवा में सिंरोज के थानेदार को लूट लिया।[193] इसके पश्चात धमौनी के मुगल सूबेदार खल्कि को परास्त किया।[194] बासा के जागीरदार केशवराय दुरंगी को द्वन्द्व युद्ध मे छत्रसाल ने परास्त किया।[195] तथा ग्वालियर दुर्ग का घेरा डालकर सूबेदार मुनव्वर खाँ को लूट लिया।[196] छत्रसाल के समाचारो से अप्रसन्न पादशाह आलमगीर ने रणदूलह खाँ को छत्रसाल से निपवटने के लिये नियुक्त किया। शाहगढ़ और गढ़ा कोटा के युद्धो मे रण दूलह खॉ परास्त हुआ तथा भागने पर विवश हुआ।[197] छत्रसाल ने इस कम मे उल्लेखनीय सफलता कालिंजर दुर्ग को विजित करने मे प्राप्त की।मुगल किलेदार करम इलाही ने 18 दिनों के घेरे के बाद घुटने टेक दिये।[198] छत्रसाल ने स्थानीय जमीदारों के विरूद्व मौदहा, मुस्करा, महोंबा, राठ, पनबाड़ी, अजनर, को विजित किया। 1673 में मुगल फौजदार राहुल्ला खान की पराजय ने मुगल सत्ता को चिन्ता में डाल दिया।[199] छत्रसाल ने धमौनी के फौजदार मिर्जा सद्रुद्रदीन को लूट कर इसमें वृद्वि की[200] कोटरा के फौजदार कर लिया।[201] बहलोल खॉ को हरा कर सिंहुँडा (बाँदा) तथा असमद खान को हराकर अलीपुर को विजित किया।[202] मुगल राजकुमार मुअज्जम के कहने पर छत्रसाल ने लोहा गढ का दुर्ग विजित कर राजकुमार को दिया।[203] मुअज्जम ने छत्रसाल को मनसब प्रदान करने की पेशकश की जिससे छत्रसाल ने इंकार किया।[204] छत्रसाल ने विस्तृत राज्य की स्थापना कर मुगल सत्ता को खुली चुनौती थी। बी0डी गुप्ता 1 जनवरी 1707 के अखबारात के आधार पर छत्रसाल द्वारा 5,000 जात का मनसब को स्वीकार करने का तथ्य मानते है।[205]

मुगल सत्ता से संघर्ष का द्वितीय चरण (1707–1729)– औरंगजेब की मुत्यु 1707 से मुगल शक्ति का अवसान प्रारम्भ हो गया था। बहादुरशाह प्रथम तथा

उसके उत्तराधिकारी कमजोर साबित हुये। मुगल बादशाह फर्रूखसियर ने सिंहासनारोहण में सहायता के बदले मुहम्मद बंगश को रूहेलखण्ड के अतिरिक्त इलाहाबाद का सूबेदार बनाया। करलानी कगजई वंश के पठान बंगश ने 7,000 जात का मनसब तथा 'गजनफर जंग' की उपाधि 18 सितम्बर 1719 को प्राप्त की।[206] कालपी में बंगश के प्रतिनिधि पीरअली की बुन्देलों द्वारा हत्या के बाद बंगश ने बुन्देलखण्ड में शिकंजा कसना शुरू किया। 1721 तक बंगश ने जैतपुर, महोबा, मौदहा, सुमेरपुर इत्यादि को विजित कर छत्रसाल को चुनौती दी थी। बंगश के अभियान में क्रमभंगता हुयी जब उसे जोधपुर के अजीत सिंह राठौर की सहायता के लिये 1721–23 जाना पड़ा।[207] 1726 के अंत तक बंगश ने छत्रसाल के विरूद्ध अभियान पुनः प्रारम्भ किया बंगश ने तरौंहा, कुलपहाड़, जैतपुर को जीत कर छत्रसाल को सीमित कर दिया। पेशवा बाजीराव प्रथम (1720–1740) छत्रसाल के निवेदन के उत्तर में बुन्देलखण्ड की ओर प्रस्थान किया।[208] बाजीराव के नेतृत्व में मराठों एवं बुन्देलों ने जैतपुर दुर्ग को घेर लिया तथा 2 मास में इसे विजित कर 1729 बंगश को पीछे हटने पर मजबूर कर दिया।[209] मराठों ने अन्य दुर्गो को भी बंगश के नियंत्रण से मुक्त कराया तथा बुन्देलखण्ड में सम्मानजनक प्रवेश लिया।[210]

बुन्देलखण्ड में मराठा सत्ता– छत्रसाल ने मराठों के उपकार के प्रत्युत्तर में बाजीराव प्रथम को अपना तृतीय पुत्र मानते हुये बुन्देलखण्ड राज्य के कुछ भाग प्रदान किये। पेशवा को कालपी, हटा, हृदयनगर, जालौन, गुरसराय, झांसी, सिरोंज, गुना, गढ़ाकोटा तथा सागर प्राप्त हुये जिनकी वार्षिक आमदनी 32 लाख रूपये थी। छत्रसाल के पुत्रों हिरदेशाह तथा जगतराज को अन्य क्षेत्र प्राप्त हुये। छत्रसाल (1671–1731) की मृत्यु से बुन्देला वैभव का अवसान हो गया। मराठों ने छत्रसाल द्वारा विस्तारित साम्राज्य में नये अवसर तलाशने प्रारम्भ किये।[211]

बुन्देलखण्ड में मराठा सत्ता स्थापित होने से मराठों को उत्तर भारत में विस्तार हेतु एक दृढ़ आधार प्राप्त हुआ। मराठों ने 1738 के पश्चात मथुरा, इलाहाबाद, इटावा इत्यादि स्थानों धावे किये। इस कार्य में छत्रसाल के पुत्र तथा जैतपुर के शासक

जगतराज ने सहायता प्रदान की। बंगश को पुनः मराठों और बुन्देलों की संयुक्त सेना ने 1738 में जैतपुर में परास्त किया। इस युद्ध में मराठा सेनापति गोविन्द बल्लाल खेर था, जो सागर एवं जालौन में पेशवा का प्रतिनिधि था। हरि विट्ठल डिंगलकर को कालपी, हमीरपुर तथा कृष्णाजी अनंत तांबे को बांदा एवं हमीरपुर के कुछ क्षेत्रों का प्रतिनिधि बनाया गया था।[212] नये पेशवा वालाजी बाजीराव ने गोविन्द राव पंत को बुन्देलखण्ड में नया प्रतिनिधि घोधित किया। बुन्देलखण्ड में इस काल में गुसांइयों की शक्ति का विस्तार हुआ। 1745 में मोंठ में दुर्ग निर्माण कर इसे अपना शासन केन्द्र बनाया। झांसी में नियुक्त मराठा सरदार नारूशंकर ने इंद्रगिरि गुसांई को 1750 में परास्त कर उनकी शक्ति को कम किया।[213] 1761 में पानीपत के तृतीय युद्ध में अहमदशाह अब्दाली ने मराठा सेनापति सदाशिव राव भाऊ को हराकर मराठों की केन्द्रीय शक्ति को सीमित कर दिया। युद्ध के पूर्व शाहगढ़ के समीप अब्दाली के एक दस्ते ने बुन्देलखण्ड में मराठा प्रतिनिधि गोविन्दपन्त को मार डाला।[214] गोविन्दपन्त के बाद बालाजी गोविन्द बुन्देलखण्ड में मराठा प्रतिनिधि बना। इस समय हिरदेशाह बुन्देला के वंशजों सभा सिंह, अमान सिंह तथा हिन्दूपत के पतन के पश्चात बुन्देला एकता छिन्न भिन्न हो चुकी थी।[215] गुसांई नेता अनूपगिरि ने 1764 के बक्सर के युद्ध में अवध के नवाब शुजाउद्दौला की सहायता की थी। शुजाउद्दौला ने अनूपगिरि को हिम्मत बहादुर की उपाधि दी थी। तिन्दवारी के युद्ध में बांदा के शासक गुमान सिंह के सेनापति नौने अर्जुनसिंह ने हिम्मत बहादुर को परास्त किया था। मराठों ने गुंसाई शक्ति के दमन का श्रेय प्रापत किया। हिम्मत बहादुर द्वारा शुजाउद्दौला की मदद से दतिया, मोंठ, गुरसराय, जो कि मराठा क्षेत्र थे, की विजय के बाद मराठों ने हिम्मत बहादुर के विरूद्ध कार्यवाही प्रारम्भ की। पेशवा नाना फड़नवीस के आदेश पर बुन्देलखण्ड के मराठा प्रतिनिधि बाला जी गोविन्द, मराठा सेनापति दिनकर राव अन्ना तथा झांसी के सूबेदार रघुनाथ राव हरि नेवालकर ने मोंठ पर आक्रमण कर गुसांइयों को हराया। अंततः कालपी के युद्ध में 1775 में हिम्मत बहादुर को परास्त कर मराठों ने गुसांइयों की कमर तोड़ दी।[216]

मराठों की पानीपत युद्ध की हार उनके लिये घातक सिद्ध हुयी। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 1757 में प्लासी तथा 1764 में बक्सर में विजय प्राप्त कर अपने कदम भारत की जमीन पर मजबूती से जमाये।[217] 1765 में रॉबर्टक्लाइव ने मुगल पादशाह शाह आलम से इलाहाबाद की सन्धि की तथा बंगाल में राजस्व वसूली के अधिकार प्राप्त किये। ब्रिटिश शक्ति के क्रमागत विस्तार से बुन्देलखण्ड भी अछूता नहीं रहा।[218]

1.2.5 ब्रिटिश शासन

अंग्रेज 1764 तक भारत स्थायी आधार प्राप्त कर चुके थे। मराठा शासन तंत्र इस समय तक कई हिस्सों में बंटकर आपसी मतभेदों से घिरा हुआ था। बुन्देलखण्ड में मराठों में मतभेद गोंड राज्य से चौथ वसूली के प्रश्न पर उभरे। गोंड राजा शिवराजशाह को होल्कर, पेशवा या सागर की मराठा सत्ता को चौथ देने के विकल्पों का सामना करना पड़ा। नागपुर की सत्ता ने शिवराज शाह को हटाकर निजामशाह तथा उसके पुत्र सुमेर शाह को राजा बनाया। सागर के मराठों ने गढ़ा पर अधिकार कर सुमेरशाह को कैद कर लिया।[219] पन्ना राज्य में हिन्दूपत के पुत्रों सरमेद सिंह तथा अनिरूद्ध सिंह के मध्य सत्ता प्राप्ति हेतु संघर्ष चल रहा था। रघुनाथ राव राघोवा की सहायता हेतु कलकत्ता से भेजी गयी ब्रिटिश फौज कर्नल वेलेजली के नेतृत्व में कालपी होकर गुजरी। बुन्देलखण्ड के मराठे राघोवा के विरूद्ध थे। कालपी के सूबेदार गंगाधर गोविन्द ने कालपी में अंग्रेजों से युद्ध किया परन्तु मराठे परास्त हुये। हार के बाद भी मराठों ने अंग्रेजों को 4 माह तक आगे नहीं बढ़ने दिया। कर्नल वेलेस्ली के सहायक गोडार्ड ने पन्ना राज्य के दीवान कायम जी चौबे द्वारा सहायता मिलने पर केन नदी के सहारे बुन्देलखण्ड क्षेत्र पार किया तथा सिंधिया को हराते हुये ब्रिटिश सेना महाराष्ट्र पहुंची।[220]

1783 में गठेवरी नामक स्थान पर सरनेत सिंह के पन्ना राज्य पर अधिकार को लेकर बाँदा पन्ना संघर्ष हुआ। इस युद्ध में सरनेत सिंह का समर्थन कालिंजर के किलेदार कायम जी चौबे तथा नौने अर्जुनसिंह ने किया। सरनेत सिंह के प्रतिद्वंदी

धकुल सिंह का समर्थन बेनी हुजूरी तथा उसके पुत्र राजधर सिंह ने किया। नौने अर्जुन सिंह पवार की वीरता से गठेवरी का मुकाबला सरनेत सिंह के पक्ष में रहा।[221]

अली बहादुर प्रथम द्वारा नवाबी की स्थापना– गढ़ाकोटा के राजा मर्दन सिंह ने मराठों को चौथ देना बन्द कर दिया था। पूरा से अलीबहादुर के नेतृत्व में मराठा सेना बुन्देलखण्ड भेजी गयी। अलीबहादुर बाजीराव प्रथम तथा मस्तानी[222] के पुत्र शमशेर बहादुर का पुत्र था। नाना फड़नवीस के आदेश पर अलीबहादुर ने बुन्देलखण्ड को लक्ष्य बनाया तथा हिम्मत बहादुर के साथ गठबन्धन किया।[223] अलीबहादुर तथा हिम्मत बहादुर की संयुक्त सेना अजयगढ़ पर हमला किया तथा बांदा के अल्पवयस्क शासक बखत सिंह पुत्र गुमान सिंह के संरक्षक नौने अर्जुन सिंह को परास्त कर 1791 में अजयगढ़ पर अधिकार कर लिया।[224] नौने अर्जुन सिंह की वीरता की धाक बुन्देलखण्ड में आज भी है। अर्जुनसिंह ने 'लग्गी' नामक रणवाद्य ईजाद किया था।[225] अजयगढ़ के पश्चात अलीबहादुर ने बांदा, चरखारी, विजावर पर अधिकार कर लिया। अलीबहादुर ने राजधर हुजूरी को परास्त कर पन्ना पर अधिकार कर लिया।[226] अलीबहादुर के सेनापति यशवन्त राव ने अपनी जान की कीमत पर रीवा के शासक अजीत सिंह बघेल को हराया। गज सिंह को हराकर अलीबहादुर ने जैतपुर पर अधिकर कर लिया।[227] 1802 के अंत तक बुन्देलखण्ड में बुन्देला सत्ता का पतन तथा पूना सत्ता का अधिकार हो गया।[228] अलीबहादुर ने स्वयं को बांदा के नवाब के रूप में स्थापित किया तथा कालिंजर दुर्ग में रामकिशन चौबे को घेर लिया। 2 वर्ष घेरे के बाद भी जीत नहीं मिली तथा कालिंजर में अलीबहादुर की बीमारी से मृत्यु हो गयी।[229] अलीबहादुर के पुत्र शमशेर बहादुर द्वितीय ने पेशवा प्रतिनिधि की हैसियत से अपने भाई गनी बहादुर को हराकर बांदा की नवाबी प्राप्त की।[230]

अंग्रेजों का बुन्देलखण्ड में हस्तक्षेप– 1802 में पेशवा के साथ बेसीन की सन्धि के पश्चात अंग्रेजों ने हिम्मत बहादुर के सन्धि की। हिम्मत बहादुर तथा कर्नल पोल क्रमशः बरा, भौंरागढ़ तथा कप्शा की लड़ाइयों में शमशेर बहादुर को हरा दिया।[231] शमशेर बहादुर की नवाबी सीमित होकर रह गयी।[232] कैप्टेन बेली बुन्देलखण्ड क्षेत्र में

ब्रिटिश प्रतिनिधि बना। 18 जनवरी 1812 को कर्नल मॉर्टिनडेल ने कालिंजर को घेरा डाल कर विजित कर लिया।[233] 1848 में नियुक्त अर्ल ऑफ डलहौजी ने व्यपगत सिद्धान्त द्वारा अनेक रियासतों का ब्रिटिश शासन में विलय किया। झांसी के शासक गंगाधर राव की मृत्यु के पश्चात उनके दत्तक पुत्र दामोदर राव को डलहौजी ने मान्यता नहीं दी।[234] 1857 में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध मुगल बादशाह बहादुरशाह 'जफर' के नाम पर असंगठित सिपाही विद्रोह हुआ।[235]

1857 की घटनायें तथा 'फायरी क्वीन'— बुन्देलखण्ड में 1857 की क्रान्ति की घटनाओं में 14 जून को बांदा के सैनिकों ने अजयगढ़ ब्रिटिश ट्रूप के ब्रूस, बेंजामिन तथा लॉयड को मार गिराया।[236] विद्रोहियों ने नौगांव छावनी पर हमला कर अंग्रेज परिवारों की हत्या कर दी। विद्राहियों ने बड़ा कदम उठाते हुये झांसी के कमिश्नर स्कीन का वध कर दिया।[237] दक्षिणी बुन्देलखण्ड में सागर की पलटन नं0 42 के सैनिकों ने विद्रोह किया। बानपुर के शासन मर्दनसिंह ने खुरई, नटयावली, ललितपुर, चन्देरी पर अधिकार कर लिया।[238] विद्रोह के दमन के लिये दो ब्रिटिश सेनायें मऊ केन्द्र से सर ह्यूरोज तथा सीहोर केन्द्र से जनरल ह्विटलॉक की नियम की गयी। ब्रिटिश सेना का कड़ा प्रतिरोध झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने किया जिसे अंग्रेजो ने 'फायरी क्वीन' की संज्ञा दी। महाराष्ट्र के एक ब्राम्हण विष्णुभट्ट गोडसे वरसईकर ने जो उस समय उत्तर भारत की यात्रा पर था तथा क्रान्ति की हलचलों के समय झांसी में था, अपने यात्रा—विवरण को मराठी में 'माझा प्रवास' में लिपिबद्ध किया था। विष्णुभट्ट के अनुसार— ''तेजस्वी भावभंगिमा वाली बाई साहब (लक्ष्मीबाई) ने 10 दिनों तक झाँसी दुर्ग में ब्रिटिश तोपों की मार को साहस पूर्वक झेला।[239] रानी के तोपची गुलाम गौस खान ने अपनी योग्यता का प्रदर्शन करते हुये ब्रिटिश तोपची को मार गिराया।''[240] विष्णुभट्ट इस घेरे के समय झांसी दुर्ग में शरण लिये हुये था। दूल्हा जू की गद्दारी से अंग्रेज नगर में प्रवेश कर गये तथा रानी को झाँसी छोड़ना पड़ा।[241] रानी लक्ष्मीबाई ने मुरार के निकट अंग्रेजों का साथ रहे जयाजीराव सिंधिया को बहादुरपुर के युद्ध में हरा दिया तथा ग्वालियर पर अधिकार कर लिया। अंततः अंग्रेजों

से युद्ध करते हुये 16 जून 1858 को रानी घायल हो गयी, तथा रामचन्द्र राव देशमुख नामक सरदार ने रानी के शरीर को जला दिया।[242] जनरल ह्विटलॉक ने 17 अप्रैल 1858 को कर्वी तथा 19 अप्रैल को गोरिया मुगली गांव में नवाब की सेना को परास्त कर विद्रोहियों की कमर तोड़ दी।[243] जनरल ह्यूरोज ने विद्रोह की समाप्ति पर अपने दुर्जेय शत्रु के विषय में कहा, "यहां वह औरत सोई हुयी है, जो विद्रोहियों में एक मात्र मर्द थी।"[244]

बुन्देलखण्ड में आजादी के आन्दोलन (1885–1947)– भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के साथ बुन्देलखण्ड में भी राष्ट्रीयता की भावना का संचार हुआ। 1890 से 1909 तक झांसी बार एसोसियेशन के अध्यक्ष शंकर सहाय ने कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लिया।[245] राष्ट्रीय नेताओं ने बुन्देलखण्ड में दौर कर, ब्रिटिश शासन के विरोध को ज्वलन्त किया। महात्मा गांधी ने 1921, 1929 में, खिलाफत आन्दोलन के नेता मुहम्मद अली, शौकत अली ने 1924 में, जवाहरलाल नेहरू ने 1922, 28, 29, 30, 31, 37 में झांसी का दौरा किया। 1924 में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुये बुन्देलखण्ड राजनीतिज्ञ सम्मेलन में सरोजनी नायडू, अबुल कलाम आजाद, हसरत मोहानी ने भाग लिया था। 1935 में मुहम्मद अली जिन्ना तथा 1940 में सुभाषचन्द्र बोस ने झांसी की यात्रा की थी।[246] 1908 में लाला लाजपत राय ने बाँदा में दयानन्द वैदिक अनाथालय की स्थापना की थी।[247] नवम्बर 1929 में महात्मा गांधी ने बाँदा, चिल्ला, कर्वी तथा मटौंध में प्रार्थना सभायें आयोजित की।[248] 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अन्तर्गत नमक सत्याग्रह का व्यापक प्रभाव बुन्देलखण्ड पर पड़ा। 8 अगस्त 1942 को भारत छोड़ो आन्दोलन में केवल बाँदा में 84 नेताओं को गिरफ्तार किया गया।[249] इस दौरान कांग्रेसियों ने झांसी दुर्ग पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने का असफल प्रयास किया।[250]

बुन्देलखण्ड सशस्त्र क्रान्ति के अग्रणी नेताओं का आश्रय स्थल रहा है। अमर शहीद चन्द्रशेखर आजाद झांसी में मास्टर रूद्रनारायण के यहां तथा सदाशिव राव अमरापुरकर तथा सीताराम भास्कर भागवत ने आजाद के संगठन हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन की गतिविधियों में सक्रिय योगदान दिया।[251] 15 अगस्त 1947

के पश्चात रियासतों का एकीकरण प्रारम्भ हुआ तथा बुन्देलखण्ड का विस्तृत भू–भाग दो प्रान्तों उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के मध्य बंट गया।[252]

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. दुबे वी0एस0 ''इगनीयस एण्टीक्वीटीज एण्ड पीरियड्स ऑफ आरिजिनिसिस इन गोडवाना लैण्ड'' भूगोल एवं भूगर्भ खण्ड में अध्यक्षीय उद्‌बोधन, आई0 एस0 सी0 ए0, बम्बई,1960.

2. सक्सेना, जे0पी0,' जियोलोजिकल कन्ट्रोल आन द इवोल्यूशन ऑफ बुन्देलखण्ड टोपोग्राफी, जरनल ऑफ ज्योग्राफी यूनीवर्सिटी आफ जबलपुर , नं0 –2, नबम्बर 1960, पेज–19.

3. वाडिया,डी0ए0,' जियोलोजी ऑफ इण्डिया' , मैकमिलन , लन्दन, 1961, पेज–433.

4. सिंह , डॉ0 राजेन्द्र,'' वाटर रिसोर्स एण्ड इट्स मैनेजमेन्ट ए केस स्टडी ऑफ रीवर बेतवा'', लैण्डस्केप सिस्टम्स एण्ड इकोलोजिकल स्टडीज, वाल्यूम 13 नं0 1, जून 1990, पेज–80 से 85.

5. सिंह, पुरूषोत्तम,'' हिस्टोरिकल टैक्स ऑफ बुन्देलखण्ड: यूनीक सोर्स ऑफ इकोलोजिकल बैलेंस'', इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस 65वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोध पत्र, बरेली, 2004 पेज –1,2.

6. अली, मसूद (सम्पा0), ' ड्राईलैण्ड एग्रीकल्चर इन बुन्देलखण्ड,' टेक्नीकल बुलेटिन, आई0 जी0 एफ0 आर0 आई0, झॉसी1982,पेज–1,2.

7. ऑकडे मौसम प्रयोगशाला– इण्डियन ग्रासलैण्ड एण्ड ऑफ रिसर्च इन्स्टीट्यूट, झॉसी।

8. सिंह प्रो0 रामलोचन,' इण्डिया : ए रीजनल ज्योग्राफी' नेशनल ज्योग्राफिक सोसायटी, बी0 एच0 यू0 पाराणसी, 19971 (प्रथम संस्करण), पेज – 604

9. त्यागी , डा0 आर0 के0,' ग्रासलैण्ड एण्ड फॉडर एटलस ऑफ बुन्देलखण्ड,' आई0 जी0 एफ0 आर0 आई0,1997, पेज – 124

10. सिंह, डा. राजेन्द्र, 'बुन्देलखण्ड (उ.प्र.) में तेंदू पत्ता उत्पादन, संरक्षण एंव समस्यायें', नेशनल सेमीनार में प्रस्तुत शोधपत्र, टीकमगढ़, 1995

11. इंडियन आर्क्योलोजी : ए रिव्यू , 1958–59, पेज–72 तथा 1960–61, पेज–62

12. शुक्ला,आए.के., 'द ज्योग्राफी ऑफ रामायन' , कौशल बुक डिपो, दिल्ली , 2003, पेज–267, 274

13. वाल्मीकि रामायण, गीता प्रेस, गोरखपुर, पेज खण्ड–1 , हिन्दी अनुवाद–राम नारायण दत्त शास्त्री , सं.–2040 , पेज–267,274.

14. रायचौधरी, एच0 सी0,'पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनसिएण्ट इण्डिया', कलकत्ता, 1953, पेज–29

15. झाँसी गजेटियर, लखनऊ , 1965, पेज – 18

16. लाहा, विमल चरन,' हिस्टोरिकल ज्योगग्रफी ऑफ एनसिएन्ट इडिया' अनुवादक– रामकृष्ण द्विवेदी, लखनऊ, 1972 , पेज–83, 218, टिप्पणी–लाहा के मत का राजेन्द्र सिंह ने अपने शोध पत्र,' फोर्ट्सः द कॉरीडोर आफ अर्बन इनवायरनमेन्ट इन बुन्देलखण्ड,' इन्टरनेशनल सेमीनार, बी0 एच0 यू0 , में पृष्ठ दो पर खण्डन किया है।

17. रायचौधरी, एच0सी0, पूवोधृत, पेज–129

18. वही, पेज–129

19. वहीं, पेज–129

20. थापर, 'रोमिला,' अशोका एण्ड डीक्लाइन ऑफ मौर्याज,' आक्सफोर्ड , 1961, पेज –13

21. शास्त्री, नीलकण्ड के0 ए0,' ए कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,' खण्ड – 2 , वाराणसी, 1952, पेज– 94,95

22. शर्मा, आर0 के0 ,' मध्यप्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भग्रन्थ,' इलाहाबाद, 1976, पेज–13

23. शास्त्री,नीलकण्ठ, के0 ए0 , पूर्वोधृत, पेज–94, 95

24. तिवारी, गोरेलाल,' बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास,' वाराणसी,1933,पेज–11

25. कनिंघम,' आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स , खण्ड–17, पेज–113, 139

26. सिंह, दीवान प्रतिपाल,' बुन्देलखण्ड का इतिहास,' खण्ड –1, वाराणसी, सं0 1985, पेज –348

27. शर्मा, वाई0 डी0,' एक्सप्लोरेशन ऑफ सिस्टोरिकल साइट्स,' एनसिएन्ट इंडिया, नबम्वर 1953, पुनर्मुद्रित 1985, नई दिल्ली, पेज–160,161

28. काशी प्रसाद ,' बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास (राज तंत्र से जनतंत्र)', टीकमगढ, 1995, पेज–30

29. जनपद गजेरियर टीकमगढ़, 1995, पेज–30

30. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत , पेज –19

31. राव, वी0डी0, गोखले, वी0 के0, डिसूजा, ए0 एल0 ,' एनसियेन्ट हिस्ट्री एण्ड कल्चर,' बम्बई, 1966,पेज–258

32. मजूमदार, आर0सी0 तथा अल्टेकर, ए0 एस0,' द वाकाटका गुप्त ऐज,' दिल्ली,1960, पेज–144

33. शर्मा, आर0 के0 , पूर्वोधृत, पेज–32

34. तिवारी , गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–22,23

35. वही , पेज –24

36. वही , पेज–28

37. त्रिपाठी, काशी प्रसाद, पूर्वोधृत, पेज–12

38. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–30

39. वही, पेज–35

40. वही, पेज–27

41. कनिंघम, ए0,' आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया,' टूअर इन सेन्ट्रल प्रोविन्सेज, खण्ड–9, पेज–82

42. तिवारी , गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज –37

43. वही , पेज–36

44. वही, पेज–37

45. त्रिवाठी, आर0एस0,' हिस्ट्री ऑफ एनसिएण्ट इंडिया दिल्ली,1942, पेज–369. टिप्पणी गोरेलाल तिवारी ने पेज–32 पर लुइस राइस संग्रहीत' मैसूर के शिलालेख नामक पुस्तक के पेज 229 का विकरण दिया हैं जिसके अनुसार कलचुरि राजा कृष्णराज की उपाधि धारण की।

46. आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, खण्ड–2 से उद्धृत, पेज–95 चौहान शासन पृथ्वीराज तृतीय का मदनपुर अभिलेख (संवत 1239) –

अरूण राजस्य पौत्रेण श्री सोमेश्वर सुनूना।
जेजाक भुक्ति देशोडयं पृथ्वीराजेन लूनिता।।

47. पाण्डेय, ए0पी0,' चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास,' प्रयाग, 1968, पेज–7

48. मित्रा, एस0 के0 ,' द अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो,' कलकत्ता, 1958, पेज–1

49. मजूदार, आर0सी0,' एनसिएन्ट इण्डिया,' दिल्ली,196, पेज–1

50. त्रिपाठी, आर0सी0,' एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज,' बम्बई, 1955, पेज–82

51. शर्मा, आर0 के0, पूर्वोधृत , पेज–63

52. त्रिपाठी, आर0एस0,' एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज,' बम्बई, 1955, पेज–82

53. वही, पेज–82

54. शर्मा, आर0 के0, पूर्वोधृत , पेज–63

55. त्रिपाठी, आर0एस0,' एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज,' बम्बई, 1955, पेज–82

56. रायचौधरी, एच0 सी0 , पूर्वोधृत , पेज–523,561

57. जनपद गजेटियर, बाँदा पूर्वोधृत , पेज–35

58. तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत , पेज–58

59. मित्रा, एस0 के0, पूर्वोधृत , पेज–33

60. तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत , पेज–44

61. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–29

62. त्रिपाठी, आभा, 'चन्देलकालीन भूमिदान पत्रों का महत्व,' इतिहास, अंक–1, भाग–1, नई दिल्ली, 2003,पेज–97

63. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–3

64. शर्मा, आर0 के0, पूर्वोधृत , पेज–64

65. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग–1, पेज–132, श्लोक–26

66. बनर्जी, आर0डी0,' हिस्ट्री ऑफ मेडिवेल इण्डिया ' ब्लेकी एण्ड सन्स, 1934, पेज–262

67. राजतंरगिणी, भाग–1, स्टीन द्वारा सम्पादित एवं अनूदित, बम्बई संस्करण, 1892, अध्याय–6, पेज–2006, श्लोक–15

68. गॉगुली , डी0सी0,' हिस्ट्री ऑफ परमार डायनेस्टी,' ढाका, 1933, पेज–40

69. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग–1, पृष्ठ 136 ,श्लोक–23

गौड़ी कीडालताअसिस्तुलित खस वलः कोशलः कोशलानाम्
नश्यंत कश्मीरवीराः शिथिलित मिथिलः कालवन मालवानाम्

70. जनपद गजेटियर टीकमगढ़ पूर्वोधृत, पेज–36

71. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग–1, पूर्वोधृत , पेज–36

72. गोपालन, आर0,' हिस्ट्री ऑफ पल्लवाज ऑफ कान्ची, मद्रास,1928, पेज–115

73. छाबड़ा, बी0सी0 सरकार , डी0सी0 , देसाई, जेड0 ए0,' एपिग्राफिकल रिसर्च' एनसिएण्ट इण्डिया, नवम्बर 1953, पुनमुद्रित 1985, पेज– 221

74. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–45

75. त्रिपाठी, ए0 पी0,पूर्वोधृत, पेज–91

76. त्रिपाठी, आभा, पूर्वोधृत, पेज–97

77. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–48,50

78. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग–1,पूर्वोधृत, पेज–136 ,श्लोक–47

79. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–50

80. त्रिपाठी, आर0एस0,' पूर्वोधृत,, पेज–374

81. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–52

82. मित्रा, एस0 के0, पूर्वोधृत , पेज–73

83. रे, एच, सी0,' द डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इण्डिया' खण्ड–2, दिल्ली, 1973, पेज–689

84. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–55

85. तबकात ए अकबरीः निजामुद्दीन अहमद, रैवर्टी का सम्पादन, लन्दन, 1981, पेज–1

86. रे, एच0 सी0 , पूर्वोधृत, पेज–690

87. वैद्य, सी0वी0,' डाउनफाल आफ हिन्दू इण्डिया' पूना, 1926 पेज–181

88. मित्रा, एस0 के0, पूर्वोधृत , पेज–88

89. वही , पेज–89

90. वही , पेज–89

91. शर्मा, आर0 के0, पूर्वोधृत , पेज–66

92. मित्रा, एस0 के0, पूर्वोधृत , पेज–92

93. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–69

94. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–47

95. मजूदार, आर0सी0,' पूर्वोधृत, पेज–331

96. वैद्य, सी0वी0,' पूर्वोधृत, पेज–181

97. रे, एच0 सी0 , पूर्वोधृत, पेज–701

98. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–82

99. वहीं पेज, 82,83

100. मजूदार, आर0सी0,' पूर्वोधृत, पेज–331

101. वैद्य, सी0वी0,' पूर्वोधृत, पेज–182

102. गॉगुली , डी0सी0,' पूर्वोधृत, पेज–171

103. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–86

104. वैद्य, सी0वी0,' पूर्वोधृत, पेज–182

105. आक्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स , भाग–21, खण्ड–1, नई दिल्ली, 2000, पेज–34

106. मित्रा, एस0 के0, पूर्वोधृत , पेज–118

107. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–95

108. मजूदार, आर0सी0,' पूर्वोधृत, पेज–331

109. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–55–59

110. लुआर्ड, सी0ई0, 'प्रोविन्सियल गजेटियर्स ऑफ इण्डिया', सेन्ट्रल इण्डिया एजेन्सी, खण्ड–6ए, लखनऊ,1907, पेज–20

111. जनपद गजेटियर बाँदा, इलाहाबाद,1909, पेज–162

112. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–103

113. मित्रा, एस0 के0, पूर्वोधृत , पेज–128

114. मजूदार, आर0सी0,' पूर्वोधृत, पेज–332

115. रे, एच0 सी0 , पूर्वोधृत, पेज–730

116. मित्रा, एस0 के0, पूर्वोधृत , पेज–135,136

117. रे, एच0 सी0 , पूर्वोधृत, पेज–734

118. शर्मा, आर0 के0, पूर्वोधृत , पेज–69

119. पाण्डेय,ए0 पी0, पूर्वोधृत , पेज–124

120. रिजवी, एस0ए0ए0,' आदि तुर्क कालीन भारत,' अलीगढ, 1956, पेज–275

121. वहीं , पेज–7

122. जनपद गजेटियर टीकमगढ़ पूर्वोधृत, पेज–43

123. पाण्डेय, ए0 बी0,' अर्ली मेडिवेल इण्डिया,' इलाहाबाद, 1960, पेज–114

124. हीरालाल, रायबहादुर,' मध्य प्रदेश का इतिहास,' काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं0 1996, पेज–75

125. लुआर्ड, सी0 ई0 , पूर्वोधृत, पेज–10

126. जनपद गजेटियर टीकमगढ़ पूर्वोधृत, पेज–43

127. हेग, सर वुल्जले, 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' खण्ड–3, दिल्ली, 1958, पेज–110,111

128. बोस, एन0एस0, हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज,' कलकत्ता, 1908, पेज–28,29

129. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–79

130. हीरालाल, रायबहादुर,' पूर्वोधृत, पेज–76, टिप्पणी– 'ब अहद शुद गयासुद्दीन व दुनिया बिनाई खैर मैमू गश्त मनसूब.......'

131. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–79

132. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–79

133. हीरालाल, रायबहादुर,' पूर्वोधृत, पेज–76, टिप्पणी–

अिसतकलियुगे राजा शकेन्द्रो बसुधाधिपः।
योगिनीपुरमास्थाय यो भुक्ते सकलामहीम्।।
सर्वसागर पर्यनत वंशीचक्रे नराधिपान्।
महमूद सुरत्राणो नाम्ना शूरोभिनंदतु।।

134. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–79

135. ब्रोकमैन, डी0एल0 ड्रेक,' डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स आफ आगरा एण्ड अवध'– झाँसी, इलाहाबाद, 1909, पेज–189

136. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–80

137. वही, पेज–81

138. वही, पेज–123

139. त्रिपाठी, काशीप्रसाद, पूर्वोधृत, पेज–9,10

140. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–86

141. मित्रा, एस0 के0, पूर्वोधृत , पेज–140

142. शर्मा, आर0के , पूर्वोधृत, पेज–191,193

143. रे, एच0 सी0 , पूर्वोधृत, पेज–734

144. चक्रवर्ती, के0 के0 ,' आर्ट ऑफ इण्डिया ओरछा,' नई दिल्ली,1984,पेज–16

145. गुप्ता, बी0डी0,' महाराजा छत्रसाल बुन्देला' दिल्ली, 1958, पेज–18

146. लुआई, सी0 ई0 , पूर्वोधृत पेज–14

147. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–115,116

148. गुप्ता, बी0डी0,' पूर्वोधृत,1958, पेज–19

149. लुआई, सी0 ई0 , पूर्वोधृत पेज–16

150. इलियट एवं डॉसन,' द हिस्ट्री आफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, खण्ड –4, लन्दन,1873, पेज–407

151. ब्रोकमैन, डी0एल0 ड्रेक,' पूर्वोधृत, पेज–80

152. दत्त, रायचौधरी, मजूमदार,' भारत का वृहद इतिहास' खण्ड–2, दिल्ली,1971, पेज–108

153. सिंह प्रताप, ' मुगलकालीन भारत' (1526–1658), जयपुर, 1998, पेज–157

154. वही, पेज–168,169

155. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–89

156. सिंह प्रताप, पूर्वोधृत, पेज–281,282

157. सिंह प्रताप, पूर्वोधृत, पेज–327

158. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–94

159. सिंह प्रताप, पूर्वोधृत, पेज–419,420

160. हबीब, इरफान,' एन एटलस ऑफ द मुगल एम्पायर, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, प्रीफेस पर मैप–2

161. लुआर्ड, सी0 ई0 , पूर्वोधृत पेज–18

162. चक्रवर्ती , के0ई0, पूर्वोधृत पेज–17

163. लुआर्ड, सी0 ई0 , पूर्वोधृत पेज–18

164. लुआर्ड, सी0 ई0 , पूर्वोधृत पेज–18

165. इलियट एवं डॉसन, 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स' ओन हिस्टोरियन्स,' खण्ड–5, लन्दन, 1875, पेज–400

166. वही, पेज–461

167. शर्मा , हरिशंकर,' मध्यकालीन भारत', जयपुर, 1990, पे0–394

168. सिंह, प्रताप, पूर्वोधृत, पेज–404

169. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–134

170. मूसवी, शीरीन,' अकबर के जीवन की कुछ घटनायें, एन0 बी0 टी0, नई दिल्ली, 2000, पेज–104

171. सिंह, प्रताप, पूर्वोधृत, पेज–404

172. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–137,138

173. चक्रवर्ती , के0के0, पूर्वोधृत पेज–27

174. जनपद गजेटियर टीकमगढ़, पूर्वोधृत, पेज–54

175. चक्रवर्ती , के0के0, पूर्वोधृत पेज–28,29

176. शर्मा , हरिशंकर,' पूर्वोधृत, पेज–505

177. सिंह, प्रताप, पूर्वोधृत, पेज–697

178. शर्मा , हरिशंकर,' पूर्वोधृत, पेज–506

179. सिंह, प्रताप, पूर्वोधृत, पेज–699

180. शर्मा , हरिशंकर,' पूर्वोधृत, पेज–506

181. सिंह, प्रताप, पूर्वोधृत, पेज–700

182. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–161,162

183. जनपद गजेटियर टीकमगढ़, पूर्वोधृत, पेज–60,64

184. गुप्ता, बी0डी0, लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ महाराज छत्रसाल बुन्देला, रेडिएन्ट पब्लिशर्स, नई दिल्ली,1980,पेज–17

185. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–168

186. गोरेलाल (लालकवि),' छत्रप्रकाश' काशी नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी, पेज–60

187. गुप्ता, बी0डी0, पूर्वोधृत, पेज–19

188. गुप्ता, बी0डी0, पूर्वोधृत, पेज–20

189. गुप्ता, बी0डी0, पूर्वोधृत, पेज–32

190. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–179

191. गोरेलाल (लालकवि),' पूर्वोधृत, पेज–89

192. गुप्ता, बी0डी0, पूर्वोधृत, पेज–27

193. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–183

194. गुप्ता, बी0डी0, पूर्वोधृत, पेज–29

195. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–185

196. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–186

197. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–189,191

198. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–192,193

199. गुप्ता, बी0डी0, पूर्वोधृत, पेज–31

200. गुप्ता, बी0डी0, पूर्वोधृत, पेज–39,40

201. गोरेलाल (लालकवि),' पूर्वोधृत, पेज–149

202. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–205

203. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–206

204. सरकार, सर जदुनाथ,' हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' खण्ड–5, कलकत्ता,1924,पेज–393

205. गुप्ता, बी0डी0, पूर्वोधृत, पेज–52

206. गुप्ता, बी0डी0, पूर्वोधृत, पेज–67

207. गुप्ता, बी0डी0, पूर्वोधृत, पेज–70

208. टिप्पणी– जो गति ग्राह गजेन्द्र की , सो गति भई हैं आज
बाजी जात बुन्देल की, राखो बाजी लाज
उद्धृत, गुप्ता, बी0 डी0, पेज–82

209. गोरेलाल (लालकवि),' पूर्वोधृत, पेज–80,81

210. गुप्ता, बी0डी0,' महाराजा छत्रसाल बुन्देला' दिल्ली, 1958, पेज–44,45

211. जनपद गजेटियर पन्ना, भोपाल, 1994, पेज–54,55

212. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–240,241

213. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–250,251

214. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–254

215. जनपद गजेटियर पन्ना, पूर्वोधृत, पेज–65

216. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–256,259

217. प्रताप ,' आधुनिक भारत' (1765–1858), रिसर्च, दिल्ली,1998, पेज–174

218. प्रताप ,' आधुनिक भारत' (1765–1858), रिसर्च, दिल्ली,1998, पेज–175

219. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–261

220. सरदेसाई, जी0 एस0,' मराठों का नवीन इतिहास' खण्ड–3 आगरा,1964, पेज–22,223

221. जनपद गजेटियर बाँदा लखनऊ, पेज–54,55

222. भाटिया, डा0 आर0 के0,' पेशवा बाजीराव और मस्तानी' बुन्देलखण्ड दर्पण, षष्ठ बिम्ब, झॉसी, 1998, पेज–132

223. गुप्ता, बी0डी0,' मस्तानी – बाजीराव और उनके वंशज बाँदा के नवाब' ग्वालियर, 1983, पेज–35

224. सरदेसाई, जी0 एस0 ,पूर्वोधृत, पेज–225

225. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–275

226. गुप्ता, बी0डी0 लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ महाराजा छत्रसाल बुन्देला' , पूर्वोधृत, पेज–54,55

227. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–277

228. जनपद गजेटियर पन्ना, पूर्वोधृत, पेज–68,69

229. पॉग्सन, डबल्यू0 आर,' हिस्ट्री आफ बुन्देलाज', कलकत्ता, 1828,पेज–122

230. जनपद गजेटियर बॉदा, पूर्वोधृत, पेज–56

231. जनपद गजेटियर बॉदा, पूर्वोधृत, पेज–57

232. पॉग्सन, डबल्यू0 आर, पूर्वोधृत, पेज–126

233. जनपद गजेटियर बॉदा, पूर्वोधृत, पेज–58

234. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–56

235. चन्द्रा, बिपिन,' भारत का स्वतंत्रता संघर्ष,' दिल्ली, 1998, पेज–2

236. जनपद गजेटियर बाँदा, पूर्वोधृत, पेज–60

237. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–251

238. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–58

239. गोडसे, विष्णु भट्ट – ' माझा प्रवास' (मराठी) , हिन्दी अनुवाद– 'आँखों देखा गदर' अनुवादक– अमृत लाल नागर, दिल्ली, 2003, पेज–68–71

240. वही, पेज–70

241. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–366

242. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–371

243. गुप्ता, बी0डी0,' मस्तानी – बाजीराव और उनके वंशज बाँदा के नबाव', पूर्वोधृत, पेज–125

244. चन्द्रा, बिपिन, पूर्वोधृत, पेज–8

245. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–70

246. वही, पेज–71

247. रिजवी, एस0 ए0 ए0, 'फीडम स्ट्रगल इन उ0 प्र0' , खण्ड–4 लखनऊ, 1959, पेज 566

248. जनपद गजेटियर बाँदा, पूर्वोधृत, पेज–63

249. रिजवी, एस0 ए0 ए0, पूर्वोधृत, पेज–567

250. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–73

251. बुन्देलखण्ड दर्पण, अष्टम बिम्ब, झाँसी, 2000, पेज–117

252. मेहरा, एम0 एम0 (सम्पा0),' मध्य प्रदेश दर्शन –1957' आर्थिक एवं सॉख्यिकी संचालनालय म0 प्र0, भोपाल, 1957,पेज–16,17

अध्याय–2

बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण की परम्परा

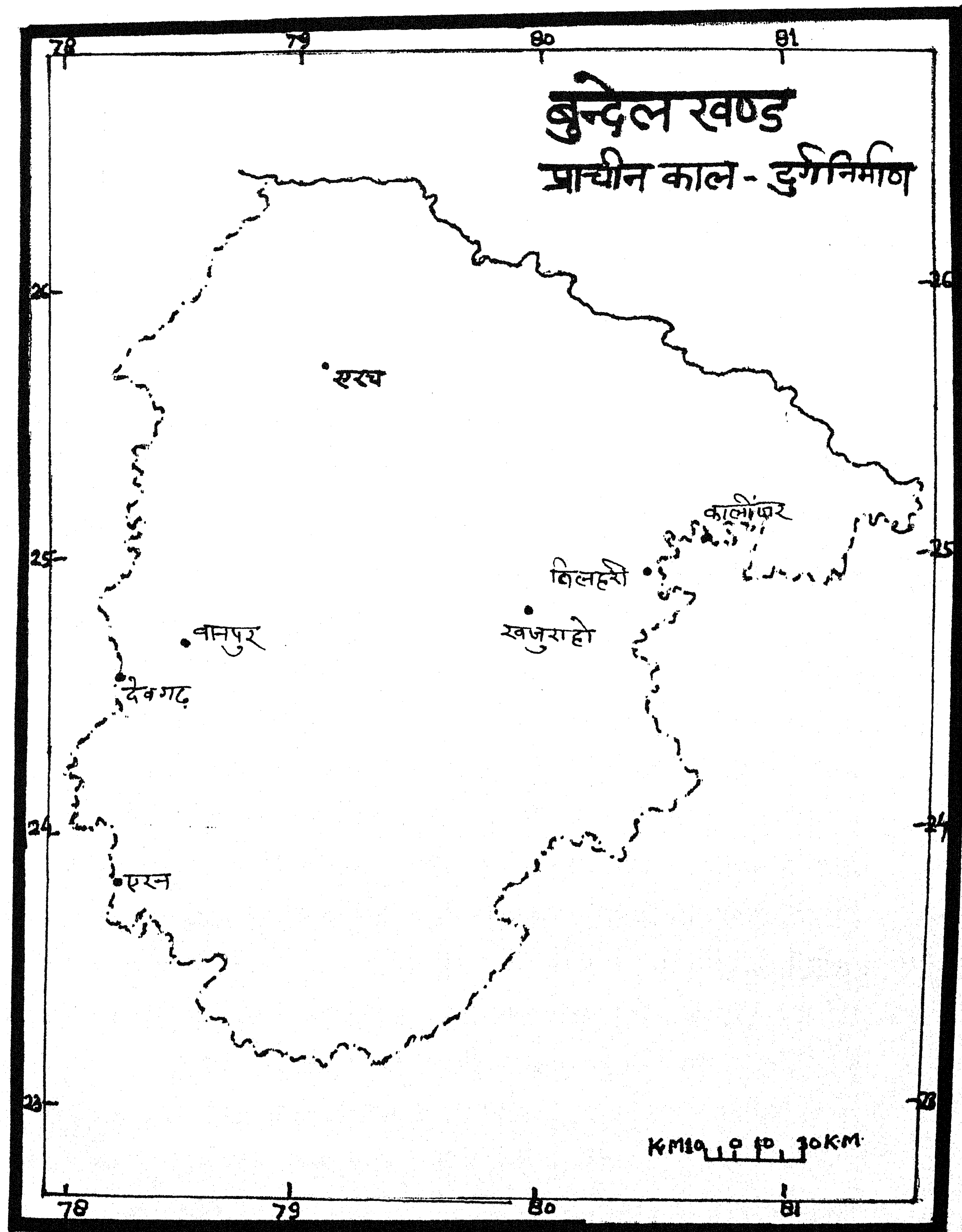
विश्व में जब भी मानव ने सामाजिक रूप से अधिवासों में निवास करना प्रारम्भ किया होगा, उसकी प्रमुख समस्या सुरक्षा की रही होगी। प्रागैतिहासिक ग्रामीण बस्तियों को भी खाईयों अथवा कटीली बाड़ों से घेरकर सुरक्षित करने के प्रमाण मिलते हैं। किसी भी बस्ती तक पहुंचने को अत्यन्त कठिन बना देने का संकल्प ही दुर्ग के प्रत्यय को जन्म देता है। ग्राम्य बस्तियों को वन्य एवं हिंसक जन्तुओं से सुरक्षा प्रदान करने के प्रयास क्रमागत रूप से समयानुसार बड़ी बस्तियों के हमलावरों से सुरक्षित करने के साधनों तक पहुंच गये। विशेष रूप में भारत में प्राचीन काल से ही अरण्य, ग्राम्य एवं नगरीय जनजीवन तीनों का अपना पृथक–पृथक स्थान एवं महत्व रहा है।[1] परन्तु आगे चलकर दुर्ग व्यवस्था नगरीय जनजीवन में विशेष रूप से दृष्टिगत हुयी। यहां यह उल्लेखनीय है कि कई बार कोई ग्राम ही विभिन्न कारणों से विकसित होता हुआ नगर का रूप ले लेता था। इस नगरीकरण में व्यापार मार्ग, शिक्षण केन्द्र एवं धर्म केन्द्रों का विशेष प्रभाव देखा जाता है। द्वितीय वर्ग में वे बस्तियां आती थीं, जिनका उद्गम सोद्देश्य एवं संकल्प पूर्वक नगर के रूप में होता था। इनकी उत्पत्ति के कारण प्रायः राजकीय आवश्यकतायें होती थी।[2] सुरक्षा के साधन, शासन की सृदृढ़ता एवं सुव्यवस्था, सैनिक प्रबन्ध तथा प्रसिद्ध राजभवनों एवं राज–प्रसादों की स्थिति इनके विशिष्ट लक्षण थे। ये सभी अवयव दुर्ग निर्माण से सम्बन्धित अधिवासीय परम्परा से ही सुरक्षा प्रमुख आवश्यकता थी और इस आवश्यकता ने कब सुव्यवस्थित दुर्ग निर्माण का स्वरूप ले लिया, यह कहना कठिन है।[3]

इस तथ्य की चर्चा प्रथम अध्याय में की जा चुकी है, कि गंगा के मैदान की तुलना में बुन्देलखण्ड में अधिवासीय परंपरा विलम्ब से प्रारम्भ हुयी। विशेष रूप से नगरीकरण का स्वरूप बहुत बाद में देखने को मिलता है। चेदि एवं दशार्ण राज्यों के विकसित होने पर यहां नगरीकरण का प्रारम्भ हुआ होगा। प्राचीन नगरों में शाहगति एवं शुक्तिमती[4] जैसे नगरों की चर्चा है, परन्तु वर्तमान में उनकी स्थिति का पता लगाना

कठिन है। शाहगति यमुना के दक्षिण तट पर एवं शुक्तिमती (शिशुपाल की राजधानी) शुक्तिमती नामक नदी के तट पर स्थित थे।[5] वर्तमान चन्देरी को भी शिशुपाल का नगर होने का श्रेय दिया जाता है। निश्चित रूप से भारत में इस समय तक विशिष्ट दुर्ग निर्माण प्रारम्भ हो चुका था। अतः उपरोक्त नगर भी दुर्ग युक्त रहे होंगे। प्रथम अध्याय के इतिहास के पृष्ठों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि महाभारत काल के बाद इस क्षेत्र का शासन समीपवर्ती सत्ताओं जैसे पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, उज्जयिनी आदि से शासित रहा तथापि यहां नगर बनते और बिगड़ते रहे। ये निश्चित रूप से दुर्ग नगर ही थे। बुन्देलखण्ड के अध्ययन में यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अनेक महत्वपूर्ण दुर्गो का प्रथम निर्माण कब हुआ, यह निश्चित नहीं है। अतः सिद्ध है कि बुन्देलखण्ड में भी प्राचीन काल से ही दुर्ग निर्माण की परंपरा रही है जिसमें नगरों को प्राकृतिक कारकों के साथ–साथ खाईं, परिखा, प्राकार आदि के निर्माण के माध्यम से दुर्गम बनाया जाता था।[6] बुन्देलखण्ड की इस दुर्ग निर्माण परम्परा का विश्लेषणात्मक विवरण परम्परागत कालखण्डों में निम्नवत प्रस्तुत हैं।

2.1 प्राचीन काल

प्राचीन ऐतिहासिक कालखण्ड में राज्य सत्ता की स्थापना बुन्देलखण्ड में महाभारत काल से देखने को मिलती है। महाभारत का प्रसिद्ध योद्धा और शासक शिशुपाल था, जिसने इस क्षेत्र को अपने प्रबल पुरूषार्थ से चेदि देश का नाम दिया। चेदि वंश का संस्थापक वसु था, जिसके पुत्रों वृहद्रथ ने मगध, मत्स्य ने विराट राज्यों की स्थापना की थी। शिशुपाल की राजधानी शुक्तिमती थी, जो शुक्तिमती नदी के किनारे बसी थी। चन्देरी को भी शिशुपाल की राजधानी माना जाता है। इसी प्रकार दशार्ण देश (धसान नदी के पार का क्षेत्र) का राजा हिरण्यवर्मा इनका समकालीन था। महाभारत में वर्णित नगर व्यवस्था को देखते हुये स्पष्ट प्रतीत होता है कि शिशुपाल जैसे सशक्त राजा की राजधानी दुर्गमय रही होगी। महाभारत के अनुसार।[7] तत्कालीन मंत्रिमण्डलीय व्यवस्था में दुर्गरक्षक का महत्वपूर्ण पद होता था। इस समय जो दुर्ग


बुन्देल खण्ड
प्राचीन काल - दुर्गनिर्माण
78
79
80
81
26
25
24
23
एरच
कालींजर
बिलहरी
खजुराहो
बानपुर
देवगढ़
एरन
KM10 0 10 30KM

निर्मित होते थे उनमें मजबूत परकोटा, विशिष्ट द्वार और राजप्रासादों का विशेष महत्व होता था।

प्राचीन इतिहास के शोध में जनश्रुतियों का विशेष महत्व होता है। अनेक विद्वानों की राय है कि गंगा के मैदान में आर्यो का अधिकार हो जाने पर अनार्य शासक जिन्हें यातुधान और राक्षस कहा जाता था, यमुना के दक्षिण पार आकर बस गये।[8] इन सन्दर्भो में हिरण्य कश्यपु की राजधानी एरच, बाणासुर की राजधानी बानपुर, शिशुपाल की राजधानी शुक्तिमती, दन्तवक्र की राजधानी दतिया और त्रिपुरासुर की राजधानी त्रिपुर का उल्लेख किया जा सकता है, जो वर्तमान में बुन्देलखण्ड अथवा उसकी सीमाओं पर स्थित हैं। एरच में प्रहलाद घाट (हिरण्य कश्यपु के पुत्र प्रहलाद से सम्बन्धित), बानपुर में ऊषा कुण्ड (बाणसुर की पुत्री ऊषा से सम्बन्धित) स्थल इस विचारधारा में सच्चाई की ओर इंगित करते हैं। यदि उपरोक्त स्थल इन प्रतापी योद्धाओं की राजधानियाँ रहे हैं, तो निश्चित रूप से उस समय यहां दुर्ग भी अवश्य रहे होंगे।

महाभारत काल के पश्चात लम्बे समय तक बुन्देलखण्ड के सम्बन्ध में इतिहास मौन है। मौर्य एवं शुंग राज्य काल में बुन्देलखण्ड का प्रसिद्ध नगर एराकण्या था, जिसे वर्तमान में एरन के नाम से जाना जाता है। एरन में प्राप्त सिक्के एवं मूर्तियों इसके महत्व को प्रतिपादित करती हैं।[9] इससे स्पष्ट है कि यह नगर भी दुर्ग प्राचीरों से सुरक्षित एवं संरक्षित रहा होगा। लगभग इसी काल में बुन्देलखण्ड के पश्चिम में स्थित परवर और पद्मावती (आधुनिक पवाया) में नागवंशीय राजाओं का शासन रहा।[10] तत्कालीन समय के बुन्देलखण्ड में स्थित किसी बड़े नगर का उल्लेख नहीं मिलता, केवल एरण इस समय हूणों के प्रभाव में आया। यहां अनेक वर्षो तक गुप्त शासन के प्रतिनिधि मातृविष्णु एवं धान्यविष्णु नामक ब्राम्हणों का शासन रहा।[11] सम्भवतः बटियागढ़ (दमोह) इस काल में एक नगर रहा होगा। इस समय के बने मन्दिर, स्तम्भ एवं मुर्तियों बुन्देलखण्ड में शिल्पोन्नति की न केवल साक्षी हैं, बल्कि भवन निर्माण में सुरक्षित दुर्गो की ओर इशारा करती हैं।

गुप्तकाल में बुन्देलखण्ड स्थित दुर्गो में देवगढ़ का भी महत्वपूर्ण स्थान था। बेतवा नदी के तीव्र ढाल पर वनाच्छादित पहाड़ियों पर स्थित यह दुर्ग बुन्देलखण्ड की

पश्चिमी सीमा का प्रहरी था। ऐसा माना जाता है कि गुप्तकाल में इस दुर्ग के अन्दर अधिकांश निर्माण काष्ठ से किया गया था।[12]

2.2 पूर्व मध्य काल

पूर्व मध्य काल में कन्नौज के प्रतापी शासक हर्षवर्धन ने सम्पूर्ण उत्तर भारत में अपना अधिकार स्थापित किया। साथी ही बुन्देलखण्ड भी उसके अधिकार क्षेत्र में रहा। निश्चित रूप से खजुराहो नगर इस समय तक विकसित हो चुका था, क्योंकि चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इस प्रदेश की यात्रा की थी तथा यहां नगर के अस्तित्व की चर्चा की है। ऐसा प्रतीत होता है कि एरण के पराभव के साथ–साथ खजुराहो का अभ्युदय होने लगा था। यह स्पष्ट है कि चन्देलों के प्रभावशाली होने के पूर्व के काल में गोंड, गुर्जर प्रतिहार, सेंगर और परिहारों ने बुन्देलखण्ड के अलग–अलग क्षेत्रों में अपने सत्ता केन्द्र स्थापित किये।[13] यह वह समय था जब बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माणों को ठोस नींव पड़ी।

2.2.1 गोंड एवं गुर्जर परिहार

प्रसिद्ध राजपूत काल में यदि बुन्देलखण्ड की स्थिति को देखा जाय तो भौगोलिक रूप से इसके परिश्चमी भाग कछवाहा, पूर्वी भाग में सेंगर और दक्षिणी भाग परिहारों का दबदबा रहा है। परन्तु यह भी स्पष्ट है कि इनके प्रयासों से बुन्देलखण्ड में किसी बड़े दुर्ग का निर्माण नहीं हुआ क्योंकि इनके वास्तविक अधिकार क्षेत्र एवं राजधानियां बुन्देलखण्ड से बाहर थे। केवल परिहारों ने दक्षिणी बुन्देलखण्ड में सिंगोरगढ़ नामक प्रसिद्ध दुर्ग का निर्माण कराया।[14] कछवाहे पश्चिम में कुन्तलपुरी, नरवर से होतु हुये ग्वालियर में स्थापित हो चुके थे, पहां उन्होंने सुदृढ़ता प्राप्त कर ली थी।[15] पूर्वी सीमा में सेंगरों ने कालिंजर से पूर्व की दिशा में, जो प्रायः बघेलखण्ड का क्षेत्र है, राज्य स्थापित किया और इसे डहार प्रदेश का नाम दिया। परिहारों ने उच्चकल्प (उचेहरा) में अपना केन्द्र स्थापित किया तथा मऊ–सहानियां तथा धसान तट पर पचेर में मजबूत गढ़ियों का निर्माण किया।[16] इस काल तक बुन्देलखण्ड में उत्तर के गुर्जर–प्रतिहार तथा

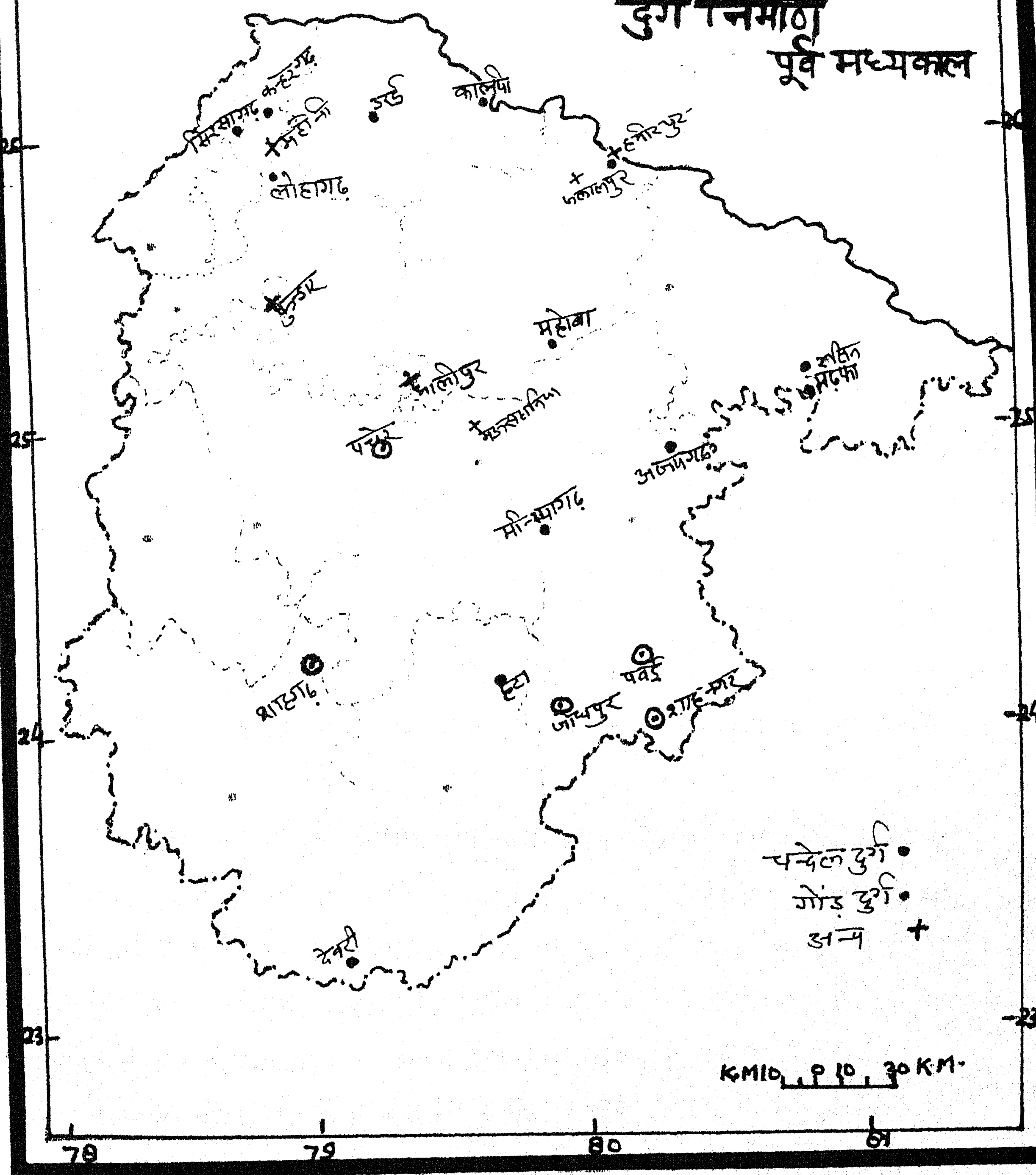
दक्षिणी बुन्देलखण्ड में कलचुरि भी अपनी सत्ता को स्थापित करने के लिये प्रतिस्पर्धी थे। उल्लेखनीय है कि चेदिवंशियों का यह चेदि प्रदेश इस समय अपने पूर्व नाम की आभा को खोकर दशार्ण, डहार, जनवार, बनवार आदि क्षेत्रीय नामों से पुकारा जाने लगा।

चन्देलों के प्रभुत्व के पूर्व उत्तरी बुन्देलखण्ड में गुर्जर–प्रतिहारों तथा दक्षिण में गोंडों का अभ्युदय यहां के लिये उल्लेखनीय तथा दक्षिण में गोंडों का अभ्युदय यहां के लिये उल्लेखनीय घटना है। ज्ञातत्व है कि सेंगर सत्ता का विनाश कलचुरियों ने किया था और कलचुरियों की सत्ता को गोंडों ने चुनौती दी। यद्यपि गुर्जर–प्रतिहारों द्वारा निर्मित किसी दुर्ग का सन्दर्भ बुन्देलखण्ड में उपलब्ध नहीं है, किन्तु अन्य अनेक निर्माण इस बात के साक्षी हैं कि उन्होंने निश्चित ही उत्तरी बुन्देलखण्ड के अधिवासों को सुदृढ़ता प्रदान की होगी। बरूआसागर का जराय मठ मन्दिर उनके शिल्प का उत्कृष्ट नमूना है।[17] शोधार्थी का मन्तव्य है कि यही वह काल है जहां से बुन्देलखण्ड में निर्मित दुर्गो की परंपरा अभी तक जीवित है। चन्देलकालीन अनेक दुर्ग, जिनमें प्रसिद्ध कालिंजर दुर्ग भी सम्मिलित है, के निर्माण का वास्तविक समय पता नहीं चलता। किन्तु इस समय से इनके अस्वित्व एवं महत्व की चर्चा स्पष्ट रूप से प्राप्त होने लगती है। चेदि वंशीय कलचुरि इस समय तक जबलपुर के आसपास केन्द्रित हो चुके थे तथा अन्य सत्ताओं के साथ उनका गोंडों से भी संघर्ष चल रहा था।

कालिंजर, अजयगढ़ और मड़फा दुर्ग निश्चित रूप से इस समय में अस्तित्व में थे, भले ही उन्हें वैभव चन्देलों द्वारा प्राप्त हुआ हो। गोंड राज्य भी बुन्देलखण्ड के दक्षिणी हिस्से में विकसित हो रहा था और पवई, शाहनगर (दोनों पन्ना जिले में) जैसे स्थलों पर उन्होंने छोटी गढ़ियों का निर्माण कर लिया था।[18]

2.2.2 चन्देलकालीन दुर्ग निर्माण

बुन्देलखण्ड में चन्देल सत्ता के विस्तार ने दुर्ग निर्माण की परंपरा में उल्लेखनीय परिवर्तन किया। प्रारम्भ में गुर्जर–प्रतिहार (कन्नौज) सत्ता के सामन्त रहे चन्देलों ने बुन्देलखण्ड के क्षेत्र में जिस दुर्ग निर्माण परंपरा की नींव डाली, वास्तविक रूप से आज



बुन्देल खण्ड
दुर्ग निर्माण
पूर्व मध्यकाल
उरई
कालपी
लोहागढ़
महोबा
पवई
देवरी
चन्देल दुर्ग
गोंड़ दुर्ग
अन्य
K.M10 0 10 30 K.M.
78
79
80
81
25
24
23

भी मौजूद किलों में उन्हें सबसे प्राचीन कहा जा सकता है। चन्देलों ने दुर्ग के जिस महत्व को स्वीकार किया, वह आने वाले कालखण्डों गहराता चला गया। परिणामतः चन्देलों के साथ तत्कालीन शासन सत्ताओं ने तथा आने वाली शासक पीढ़ियों ने दुर्ग निर्माण को सत्ता, युद्ध और स्वाभिमान का प्रतीक स्वीकार कर लिया। अतः ज्ञात ऐतिहासिक स्रोतों के आधार पर यदि चन्देलों को बुन्देलखण्ड में प्रथम दुर्ग शिल्पी कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कुछ विद्वानों की दृष्टि में चन्देलों ने लगभग दो दर्जन दुर्गों का निर्माण किया। अतः चन्देल काल को यहां दुर्ग निर्माण काल कहा जाना चाहिए।

चन्देल तथा कालान्तर में उनके आधीन अथवा समकालीन शासकों ने दुर्ग निर्माण की परंपरा में भौगोलिक, राजनैतिक तथा सामरिक तथ्यों का जिस प्रकार से ध्यान रखा है, वह आश्चर्यजनक लगता है। दुर्ग स्थिति, दृढ़ता, अगम्यता एवं वास्तुशिल्प की अनोखी सूझ जो चन्देलों ने प्रस्तुत की वह लम्बे समय तक यहां की दुर्ग निर्माण कला की परंपरा में बनी रही।[20] चन्देल काल में चन्देलों के अतिरिक्त प्रारम्भिक युग में चेदि, परिहार, कलचुरि एवं बाद में उत्तर चरण में गोंड एवं मुस्लिम शासकों के द्वारा भी किलों का निर्माण किया गया। चन्देलों के प्रमुख दुर्गो को अष्ट दुर्ग के नाम से पुकारा जाता है, जबकि कुछ दुर्ग उनके अधीन सूबेदारों ने भी निर्मित किये हैं।

अष्ट दुर्ग— चन्देलों के द्वारा निर्मित दुर्गों की संख्या अधिकांश विद्वानों ने सामान्यतः 08 मानी है, इसलिये इन्हें अष्ट दुर्ग कहा जाता है। इसके अतिरिक्त 21 स्कन्धवार को भी स्वीकार किया जाता है। उल्लेखनीय है कि 08 दुर्गो के नामों पर तथा 21 स्कन्धवारों की संख्या और विद्वानों में सहमति नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि कुछ स्थानों को अधिक अथवा कम महत्व देने के कारण विद्वानों के विचारों में यह अन्तर दिखायी पड़ता है। डा0 अयोध्या प्रसाद पाण्डेय ने चन्देलों के 08 दुर्गो में कालिंजर, अजयगढ़, मड़फा, मनियागढ़, कालपी, महोबा, हटा और गढ़ा को स्वीकार किया है।[21] जबकि गोरेलाल तिवारी का मानना है कालिंजर, अजयगढ़, बारीगढ़,

मनियागढ़, मड़फा, मौदहा, कालपी, देवगढ़ ही अष्ट दुर्ग है।[22] डा0 एस0 के0 मित्रा अष्ट दुर्गो में मड़फा, कालिंजर, अजयगढ़, महोबा, वारिदुर्ग (बारीगढ़), खर्जूरवाटक (खजुराहो), कीतिगिरिदुर्ग (देवगढ़) तथा गोपगिरि (ग्वालियर), को सम्मिलित करते है।[23] तथा डा0 बी0 एन0 रॉय डा0 रामशरण शर्मा के विचारों से सहमति जताते हुये स्पष्टतः केवल 07 दुर्गो के नाम–खजुराहों, वारिदुर्ग, अजयगढ़, कीतिगिरि दुर्ग, गोपगिरि, कालिंजर, सोंढ़ी पर अपना मत प्रस्तुत करते हैं।[24]

यदि उपर्लिखित विद्वानों की सूची को संयुक्त रूप से सुमेलित कर लिया जाय तो इन दुर्गो की संख्या 14 निकलती है, जिनकी सूची इस प्रकार है। कालिंजर, अजयगढ़, मड़फा, मनियागढ़, कालपी, महोबा, हटा, गढ़ा, वारिदुर्ग (बारीगढ़), खजुराहो, देवगढ़, मौदहा, गोपगिरि, सोढ़ी। यह भी स्मरणीय है कि मदनपुर, बिलहरी, सिरसागढ़ तथा रसिन जैसे दुर्गो को भी विद्वतजन चन्देल दुर्ग ही मानते हैं। यह भी उल्लेखनीय बिन्दु है कि विद्वानों की इन सूचियों में केवल कालिंजर और अजयगढ़ ही दुर्ग ऐसे हैं जो निर्विवाद रूप से सभी सूचियों में स्वीकार्य हैं। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि महोबा और खजुराहो भी सभी की सूचियों में स्थान प्राप्त नहीं कर सके। यह विश्लेषण इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि कालिंजर दुर्ग और अजयगढ़ दुर्ग निश्चित रूप से उस काल में अत्यधिक महत्ता को प्राप्त कर चुके थे। अतः इन दोनों महत्वपूर्ण दुर्गो के साथ कुछ चन्देलकालीन दुर्गो का संक्षिप्त विवरण यहां समीचीन होगा।

यदि बुन्देलखण्ड को दुर्ग बहुल क्षेत्र कहा जाय तो निश्चित रूप से कालिंजर दुर्ग को इसका सबसे उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण दुर्ग कहा जाना चाहिये। इस दुर्ग के वैभवकाल के 600 वर्षो के इतिहास में उत्तर भारत का ऐसा कोई महत्वाकांक्षी युद्ध प्रिय शासक नहीं हुआ जिसने इस दुर्ग की प्राचीरों से अपना मस्तिक न टकराया हो। वस्तुतः बुन्देलखण्ड के इतिहास का साक्षी कालिंजर दुर्ग यहां का गौरव स्तम्भ है, जिससे शासक पीढ़ियों प्रेरणा लेती रहीं। 'कालिंजराधिपति' की दुर्दमनीय उपाधि प्राप्त करने के लिये न जाने कितने शासकों की इच्छाशक्ति का इसने परीक्षण किया है। आल्हखण्ड में ''किला कालिंजर का जाहिर है, मनियादेव महोबे क्यार'' कह कर इसकी प्रशंसा की गयी है।

कालिंजर महाकाव्य काल से प्रसिद्ध तीर्थ का स्थान प्राप्त कर चुका था। इसका उल्लेख महाभारत,[25] भागवत पुराण,[26] हरवंश पुराण,[27] ब्रम्ह पुराण,[28] में प्राप्त होता है। पुराणों में कालिंजर का नामकरण,[29] स्थिति,[30] तीर्थ,[31] क्षेत्र,[32] आदि के बारे में जानकारी मिलती है। कालिंजर जो प्रारम्भ में धार्मिक क्षेत्र तथा तीर्थ था, महाभारत में 'लोकविश्रुत' की संज्ञा से अभिहित किया गया।[33] कालक्रम में धार्मिक महत्व का केन्द्र कालिंजर राजनीतिक सत्ता का केन्द्र बना है।[34] कालिंजर का तत्कालीन वृहद मार्ग (कौशाम्बी से उज्जयिनी) पर उपस्थित होना तथा भारत के हृदय क्षेत्र में स्थित होना सम्भवतः वे कारण हैं जिन्होंने इस स्थान को राजनीतिक तथा सामरिक महत्व प्रदान किया और इस कारण कालिंजर को दुर्गयुक्त किया गया। निश्चय ही यह दुर्ग समय–समय निर्मित, विस्तृत तथा पुनर्निर्मित होता रहा। विभिन्न स्थलों से प्राप्त कालिंजर के उल्लेख, शिलालेख तथा दुर्ग से प्राप्त मूर्तियां, सिक्के आदि इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं कि कालिंजर दुर्ग का निर्माण एक आकस्मिक घटना न होकर एक सतत् प्रकिया को निश्चित तौर पर नहीं बताया जा सकता। कालिंजर दुर्ग सागर तल से लगभग 375 मीटर ऊंचाई पर तथा सामान्य धरातल से से लगभग 278.4 मीटर की ऊंचाई पर निर्मित है। कालंजर नामक पहाड़ी जिसका पृष्ठ भाग हल्के उतार–चढ़ाव वाले ढालों के साथ लगभग 6 से 8 किमी0 दीर्घवृत्ताकार है, पर यह दुर्ग निर्मित है। इस किले की लम्बाई पूर्व–पश्चिम 106 किमी0 तथा चौड़ाई उत्तर–दक्षिण 0.80 किमी0 है। कालिंजर पहाड़ी का क्षेत्रफल लगभग 2850 हेक्टेयर है। यह विशाल दुर्ग सैन्य सुरक्षा, आक्रमण, रक्षण आदि के लिये अद्वितीय स्वीकार किया गया है। चन्देलों के पूर्व कलचुरियों,[35] गुर्जर–प्रतिहारों,[36] एवं राष्ट्रकूटों[37] के अतिरिक्त पाण्डुवंशी उदयन ने[38] यहां अधिकार किया। कलचुरि शासकों की 'कालिंजर पुरवराधीश्वर' की उपाधि यह संकेत करती है कि कालिंजर की गणना श्रेष्ठ नगरों में थी तथा इसके शासकों को इसके अधिपत्य पर गर्व था। विभिन्न साक्ष्यों के आधार यह निश्चित किया जा सकता है कि दुर्ग का निर्माण प्रथम शताब्दी ई0 से छठी शताब्दी ई0 के मध्य हुआ। छठी शताब्दी तक दुर्ग ख्याति प्राप्त कर चुका था तथा राजनीति का केन्द्र बन चुका था।[39] कुछ विद्वान कालिंजर दुर्ग की स्थापना का श्रेय चन्देल वंश के आदि–पुरूष चन्द्रवर्मन को

देते हैं, परन्तु अभिलेखीय साक्ष्यों से इसकी पुष्टि नहीं होती है। अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कालिंजर दुर्ग चन्देलों के पूर्व विद्यमान था[40] तथा सर्वप्रथम चन्देल शासक यशोवर्मन ने इस पर अधिपत्य स्थापित किया।[41] सत्ता संघर्ष के उस युग में धार्मिक महत्व के केन्द्र से राजनीतिक सत्ता का केन्द्र बने।[42] कालिंजर के पर्वतीय दुर्ग पर अधिपत्य को सामरिक दृष्टि से बड़ा ही प्रतिष्ठा पूर्ण माना गया। कालिंजर विजय के परिणामस्वरूप ही चन्देल राजवंश की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुयी तथा उसकी गणना एक शक्तिशाली राजवंश के रूप में होने लगी।[43] कनिंघम ने दुर्ग को प्रथम शताब्दी में निर्मित माना है।[44] जबकि फरिश्ता का मत है कि यह दुर्ग सातवीं शताब्दी में किसी केदार नामक राजा का बनवाया हुआ है। टॉलमी इसे कंगोर का दुर्ग मानते है।[45] ग्यारहवीं शताब्दी के पश्चात छुट–पुट रचनाओं को छोड़कर इस दुर्ग में किसी बड़ी रचना या परिवर्तन के संकेत नहीं मिलते हैं। पहाड़ी ऊंचाई पर प्रस्तर खंडों से निर्मित विशाल प्राचीरयुक्त कालिंजर दुर्ग बुन्देलखण्ड के सर्वाधिक प्राचीन दुर्गो की तुलना में अभी तक सर्वाधिक सुरक्षित है।

पन्ना जनपद में स्थित अजयगढ़ दुर्ग चन्देलों का दूसरा महत्वपूर्ण दुर्ग है। अजयगढ़ दुर्ग केदार पर्वत नामक पहाड़ी पर बना हुआ है। केन नदी से 13 किमी0 दूर स्थित यह दुर्ग सामान्य धरातल से 273 मीटर ऊंचा है। अजयगढ़ दुर्ग को अजगढ़, नंदिपुर दुर्ग, जयदुर्ग, जयपुर दुर्ग इत्यादि नामों से भी जाना गया।[46] अजयगढ़ दुर्ग लम्बाई में 1.6 किमी0 (उत्तर–दक्षिण) तथा चौड़ाई में इससे कुछ कम (पूर्व–पश्चिम) है कुछ विद्वान दुर्ग के निर्माण का श्रेय सूर्यवंशी अज को देते हैं तथा कुछ विद्वान अजमेर के अजयपाल चौहान नामक अज्ञात शासक को देते हैं। 4.8 किमी0 परिधि वाले इस त्रिभुजाकार दुर्ग का भी निर्माणकाल चन्देल सत्ता के पूर्व निर्धारित किया जा सकता है।[47] कुतुबुद्दीन के कालिंजर अधिकार के पश्चात अजयगढ़ दुर्ग का महत्व चन्देल शासन में बढ़ गया। अजयगढ़ दुर्ग का महत्व अकबर के काल तक अवश्य बना रहा क्योंकि आईन–ए–अकबरी में अजयगढ़ के पर्वतीय दुर्ग के विवरण प्राप्त होते हैं।[48] मडफा कालिंजर से 26 किमी0 उत्तर पूर्व में स्थित चन्देलों का महत्वपूर्ण दुर्ग था।[49] प्राकृतिक प्रतिरक्षा से भी रक्षित इस दुर्ग के खण्डहर आज शेष हैं।[50] इस किले का

उल्लेख किसी मुस्लिम इतिहासकार ने नहीं किया है, इस आधार कनिंघम का अनुमान है कि कालिंजर के पतन के पश्चात इसकी ख्याति हुयी।[51] जनश्रुति में इसे अधूरा किला माना जाता है। इस दुर्ग के निर्माता निस्संदेह चन्देल शासक थे, परन्तु दुर्ग के निर्माता का नाम प्राप्त नहीं होता।

महोबा का प्राचीन दुर्ग मदनसागर तालाब, के उत्तर में एक छोटी पहाड़ी पर स्थित था। दुर्ग के ध्वंसावशेषों में केवल कुछ चन्देल शिल्प के स्तम्भ शेष हैं। दुर्ग 1625 फुट लम्बा और लगभग 600 फुट चौड़ा था।[52] इसके दो मुख्य दरवाजों में भैंसा दरवाजा पश्चिम तथा दरीबा दरवाजा पूर्व की ओर है। 80 फुट लम्बी तथा 25 फुट चौड़ी परिमार्दिदेव की बारादरी अब एक मस्जिद के रूप में यहां विद्यमान है।[53]

कालिंजर तथा अजयगढ़ के अतिरिक्त मनियागढ़ चन्देलों का एक महत्वपूर्ण दुर्ग था। मनियागढ़ दुर्ग छतरपुर जनपद में खजुराहो से 12 मील दूर स्थित है। दुर्ग 600 से 800 फुट ऊंची पहाड़ी पर स्थित है तथा चन्देलों की कुलदेवी मनियादेवी के नाम पर जाना जाता है। मनियागढ़ दुर्ग में चन्देल शासक धंग ने सर्वेश्वर मठ का निर्माण कराया था।[54] 1758–76 ई0 में पन्ना नरेश हिन्दूपत ने इस दुर्ग को ठीक कराने का प्रयास किया तथा तालाबों के निकट छोटे महल का निर्माण कराया। अब इस दुर्ग में 7 मील लम्बी पत्थर की प्राचीर मात्र शेष है।[55]

बिलहरी कटनी से 10 मील पश्चिम में स्थित है तथा इसका प्राचीन नाम पुष्पावती था।[56] बिलहरी के दुर्ग का पुनरूद्धार करवाया। किले के निर्माता का निश्चित निर्धारण करना कठिन है, परन्तु 150 वर्षो तक बिलहरी कलचुरियों का प्रसिद्ध स्थान रहा है। संवत् 1210 में चन्देलों ने बिलहरी कलचुरियों से छीन लिया तथा यहां शासन के लिये सूबेदार नियुक्त किया।[57] वर्तमान में दुर्ग के अवशेष ही बचे हैं, जिससे इसके काल का स्पष्ट निर्धारण करना कठिन है। यहां से पुरातात्विक अवशेष भी प्राप्त हुये हैं।

मदनपुर नगर एवं दुर्ग का निर्माण चन्देल शासक मदनवर्मन ने करवाया।[58] मदनपुर चन्देलकाल का बड़ा नगर था, अतः अच्छे शासन प्रबन्ध हेतु दुर्ग निर्माण मदनवर्मन ने करवाया। मदनपुर में एक बारादरी के अवशेष हैं, जिसमें पृथ्वीराज तृतीय की परमाल विजय का शिलालेख है।[59]

कालपी दुर्ग की सामरिक स्थिति सदैव महत्वपूर्ण रही है। इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार कन्नौज के राजा वासुदेव ने इसका निर्माण करवाया था परन्तु स्थानीय जनश्रुतियों के अनुसार इसका निर्माण किसी प्राचीन राजा कालिवदेव ने करवाया था।[60] दुर्ग चन्देल काल तक निर्मित हो चुका था। यमुना के खड़े कगार पर पुरानी दीवारों और खण्डित कक्ष ही अब शेष हैं।[61] देवगढ़ दुर्ग के निर्माता का नाम एवं वंश अज्ञात है। कीर्तिवर्मन चन्देल का वि0सं0 1154 का एक शिलालेख यहां से प्राप्त हुआ है, जिससे दुर्ग पर चन्देलों के अधिकार की पुष्टि होती है।[62] परन्तु सम्भवतः कालान्तर में दुर्ग चन्देलों के हाथ से निकल गया था, क्योंकि आल्हखण्ड में आल्हा को गोंड राजाओं को देवगढ़ से निकालने का श्रेय दिया गया है। संभव है कि देवगढ़ दुर्ग पर कुछ समय के लिये गोंडों का अधिपत्य रहा हो।[63]

सिरसागढ़ दुर्ग पहूज नदी के तट पर था। सिरसागढ़ चन्देलों का महत्वपूर्ण दुर्ग एवं नगर थां पृथ्वीराज तृतीय ने चन्देलों के विरूद्ध अभियान में सर्वप्रथम सिरसागढ़ पर आक्रमण किया था। उस समय मलखान यहां का शासक था। दुर्ग निर्माण सम्भवतः चन्देलकाल में हुआ था, जिसके ध्वंसावशेष भी बचे हैं। जबलपुर के समीप गढ़ा के दुर्ग को कुछ विद्वान चन्देल दुर्ग मानते हैं।[64] गढ़ा गोंड शासन के अधिकार में अधिकंश समय रहा है।[65] परन्तु अनेक तथ्यों से ऐसा प्रतीत होता है कि गढ़ा दुर्ग का निर्माण चन्देल काल में हो चुका था। निश्चित रूप से गोंड शासकों ने इस दुर्ग में अनेक परिवर्तन किये, जिसके कारण इसे गोंड दुर्ग स्वीकार किया जाने लगा। दसवें गोंड राजा मदनसिंह ने सन् 1100 में यहां विशिष्ट मदन महल का निर्माण करवाया।[66]

हटा दुर्ग अनेक शिखरों से युक्त हैं, जो उत्तर की ओर नुकीले होते चले गये हैं। दुर्ग युद्धक चहार दीवारी से ढका हुआ है।[67] दुर्ग के अन्दर एक राजप्रसाद के भग्नावशेष हैं। उल्लेखनीय है कि दुर्ग का निर्माण चन्देलों द्वारा करवाया गया। अधिकांश इतिहासकार इसे गोंडो द्वारा निर्मित मानते हैं। एक मन्तव्य में ग्यारहवीं सदी में गोंड शासक हरी सिंह द्वारा इसका निर्माण हुआ। निश्चित रूप से गोंड शासकों ने इस दुर्ग का पूर्ण रूप से कायाकल्प किया। 17वीं शताब्दी में बुन्देलों तथा बाद में मराठों द्वारा भी इस किले में निर्माण एवं विस्तार किये गये।[68]

रसिन कर्वी तथा कालिंजर के मध्य स्थित है। रसिन में चन्देलकाल की अनेक पुरानी इमारतें हैं। रसिन में चन्देलकाल का ईंटों तथा मिट्टी से बना हुआ दुर्ग है।[69] दुर्ग के साथ–साथ उरई चन्देलकाल का प्रमुख नगर था, जिसके अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। उरई में दुर्ग निर्माण चन्देल शासकों द्वारा करवाया गया। उरई चन्देल कालीन राजा माहिल का केन्द्र था। दुर्ग के अवशेष प्राप्त नहीं होते हैं। क्योंकि 10 मई 1858 को ह्यूरोज ने किला नष्ट कर दिया था।[70]

खजुराहो चन्देलों की सांस्कृतिक राजधानी था। चन्देल नरेशों द्वारा निर्मित पाषाण मन्दिर स्थापत्य एवं सौंदर्य की दृष्टि से आज भी सर्वोत्कृष्ट हैं। खजुराहो में चन्देल शासकों ने महलों का निर्माण करवाया, जो शासन प्रबन्ध एवं निवास हेतु आवश्यक था।[71]

2.2.3 मुस्लिम शासकों के दुर्ग

पूर्व मध्यकाल में बुन्देलखण्ड में मुस्लिम शासकों का योगदान नहीं के बराबर था। मुईजुद्दीन गोरी के गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक ने विदेशी आक्रमणकारी की हैसियत से सर्वप्रथम कालिंजर पर घेरा डाला तथा 11 माह के घेरे के पश्चात चन्देल सत्ता को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया। यह एक मुस्लिम सत्ता का बुन्देलखण्ड में प्रथम मजबूत कदम था, परन्तु यह घटना पूर्वमध्य काल के अन्तिम चरण में घटी।[72] कुतुबुद्दीन तथा उसके उत्तराधिकारियों ने बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण में कोई रूचि प्रदर्शित नहीं की। परिणामतः पूर्व मध्यकाल में बुन्देलखण्ड में कोई मुस्लिम निर्माण प्राप्त नहीं होता।

2.2.4 अन्य शासक एवं प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा निर्मित दुर्ग

पूर्वमध्यकाल में दुर्ग निर्माण उल्लेखनीय योगदान क्षेत्रीय शासकों ने भी दिये। क्षेत्रीय सत्ताओं द्वारा निर्मित दुर्गो में गढ़कुंडार तथा सिंगोरगढ़ के प्रसिद्ध दुर्गो के अतिरिक्त स्योंढ़ा (दतिया), आलीपुर, मऊ सहानियां, ललितपुर तथा महौनी के प्रमुख दुर्ग निर्मित पूर्वमध्यकाल में निर्मित एक महत्वपूर्ण दुर्ग था। टीकमगढ़ जिले में स्थित

गढ़कुंडार दुर्ग के चन्देल कालीन सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। दुर्ग के निर्माता के सन्दर्भ में कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती। गढ़कुण्डार दुर्ग का सम्बन्ध खंगारों तथा चन्देलकालीन "बौना चोर" से भी रहा। 13वीं शताब्दी में सोहनपाल बुन्देला ने गढ़कुण्डार को खेतसिंह खंगार से छीन लिया तथा गढ़कुंडार सर्वप्रथम बुन्देला राजधानी बना।[73] वीरसिंह देव बुन्देला ने दुर्ग का पुनरूद्धार करवाया था। काले ग्रेनाइट से निर्मित इस दुर्ग में एक पांच मंजिला भवन, कई तलघर तथा गुप्त मार्ग हैं। विशिष्ट शैली का यह बहुखण्डी दुर्ग सुरक्षित अवस्था में हैं।

पूर्व मध्यकाल में गढ़कुंडार के अतिरिक्त सिंगोरगढ़ दुर्ग एक अभेद्य दुर्ग था। दमोह जिले में स्थित सिंगोरगढ़ दुर्ग के निर्माण का श्रेय परिहार शासक गजसिंह परिहार को हैं,[74] यद्यपि कुछ विद्वासन दुर्ग के निर्माण का श्रेय चन्देल शासक बेलों को देते हैं।[75] सिंगोरगढ़ परिहार सत्ता के पश्चात गोंउ दुर्ग के रूप में प्रसिद्ध हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी में गोंड शासक दलपतशाह ने दुर्ग का पुनरूद्धार करवाया। बुन्देलखण्ड–बघेलखण्ड सीमा पर स्थित गोंड सत्ता के तीन शक्ति प्रतीकों में से एक सिंगोरगढ़ दुर्ग में अब केवल प्राचीर और बुर्ज ही शेष हैं। आन्तरिक भाग में झाड़ियों में खण्डहर बिखरे हैं।[76]

गढ़कुंडार तथा सिंगोरगढ़ के अतिरिक्त पूर्व मध्यकाल में क्षेत्रीय शासकों द्वारा निर्मित दुर्गों में स्योंढ़ा, आलीपुर, मऊ–सहानियां, ललितपुर तथा महौनी प्रमुख थे। दतिया जिले में स्योंढ़ा में चन्देल कालीन दुर्ग के पुराने खण्डहर प्राप्त होते हैं। महमूद गजनवी ने 1018 में दुर्ग पर अधिकार किया था। दुर्ग का निर्माता अज्ञात है, परन्तु निश्चित रूप से स्योंढ़ा दुर्ग पर प्रारम्भिक अधिकार चन्देलों का रहा। 'कन्हरगढ़' के नाम से प्रसिद्ध स्योंढ़ा दुर्ग मुगलों तथा बुन्देलों के अधीन रहा। दुर्ग का पुनरूद्धार 1810 ई0 में राजा बखत सिंह ने कराया। सिन्ध नदी के किनारे स्थित कन्हरगढ़ दुर्ग में महल, रनिवास, दीवाने आम तथा गोविन्द सिंह (1907–56) द्वारा निर्मित कोठी प्राप्त होती है। इस काल के अदृश्य हो चुके दुर्गों में अलीपुर दुर्ग का नाम महत्वपूर्ण है। छतरपुर जनपद में स्थित आलीपुर परिहार शासकों का महत्वपूर्ण केन्द्र था। निस्संदेह पूर्वमध्यकाल में आलीपुर में दुर्ग अस्तित्व में था। अब यहां मात्र एक गढ़ी मौजूद है।,

जिसका निर्माण बाद का प्रतीत होता है। छतरपुर जनपद में ही स्थित मऊ–सहानिया छठीं शताब्दी में महत्वपूर्ण स्थान बन चुका था। परिहार शासकों ने चन्देलों के पूर्व इस अधिकार किया। सम्भव है कि मऊ–सहानियां के दुर्ग का निर्माण परिहार शासकों ने करवाया हो। प्रसिद्ध चन्देल शासक धंग ने मऊ–सहानियां दुर्ग में महादेव मठ का निर्माण करवाया। छत्रसाल बुन्देला ने सामरिक रूप से महत्वपूर्ण मऊ–सहानियां दुर्ग में महल तथा रनिवास का निर्माण करवाया। आज दुर्ग की प्राचीर मात्र शेष है।[78]

ललितपुर जनपद के मुख्यालय ललितपुर में चन्देलकाल में दुर्ग विद्यमान था। जनश्रुति के अनुसार दक्षिण के किसी शासक सुमेर सिंह ने अपनी पत्नी ललिता के नाम पर नगर बसाया तथा दुर्ग एवं तालाब का निर्माण करवाया। फिरोजशाह तुगलक द्वारा निर्मित 'बन्सा' नामक छोटा निर्माण यहाँ प्राप्त होता है, जो चन्देल भवनों के अवशेषों से निर्मित किया गया था।[79] बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) में इस काल में महौनी दुर्ग प्रसिद्ध था। महौनी जालौन जिले में प्राचीन स्थल है। विद्वान महौनी दुर्ग की स्थापना का श्रेय वीरभद्र सिंह (1017–84 स्थापना काल) को देते हैं। वीरभद्र के उत्तराधिकारियों कर्णपाल (1087–1122), कन्नरशाह इत्यादि ने दुर्ग को दृढ़ता प्रदान की। 1231 ई0 में सोहनपाल बुन्देला ने यह दुर्ग विजित कर इसे बुन्देला राज्य मिला लिया।[80]

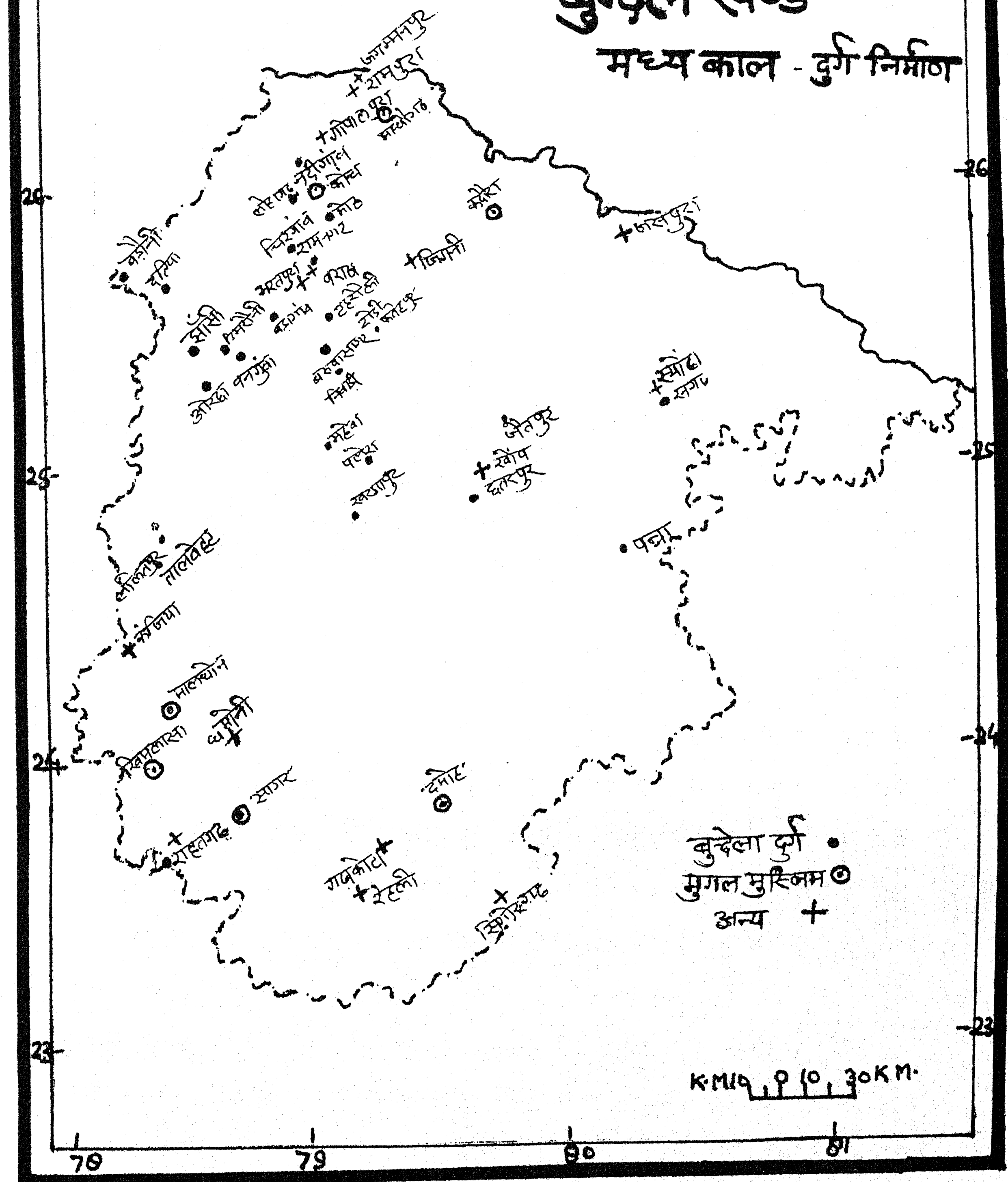
2.3 मध्य काल

बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण की दृष्टि से मध्यकाल सर्वाधिक महत्वपूर्ण कालखण्ड है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में सल्तनत काल तथा मुगलकाल के संयुक्त नाम से जाना जाने वाला यह कालखण्ड बुन्देलखण्ड के इतिहास में चन्देलों की अन्तिम सत्ता तथा दुर्धर्ष बुन्देलों के लिये जाना जाता है। इस काल में बुन्देलों शासकों के अतिरिक्त मुगल एवं मुस्लिम शासकों तथा अन्य क्षेत्रीय सत्ताओं ने दुर्ग निर्माण में अत्यधिक रूचि प्रदर्शित की। आगे की पंक्तियों में मध्यकालीन बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण परंपरा का क्रमबद्ध अध्ययन प्रस्तुत है।

2.3.1 मुगलों एवं मुस्लिमों द्वारा दुर्ग निर्माण

सल्तनत काल में बुन्देलखण्ड में मुस्लिम निर्माताओं द्वारा तीन प्रमुख दुर्गो का निर्माण करवाया गया, जिनमें दमोह तथा बरियागढ़ का नाम महत्वपूर्ण है। दमोह जिले में नरसिंहगढ़ दुर्ग का निर्माण हाकिमशाह तैयब ने करवाया साथ ही मस्जिद का निर्माण करवाया, परन्तु निर्माणकाल स्पष्ट रूप से प्राप्त नही होता। वर्तमान समय में दमोह के पहाड़ी खण्डहर दुर्ग से 1383 का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है, जिससे दुर्ग पर मुस्लिम अधिकार प्रमाणित होता है।[81] वस्तुतः दमोह दुर्ग के पुनर्निर्माण का श्रेय मालवा के गयासुद्दीन खिलजी को जाता है, जिसने सल्तनत काल 1480 में मन्दिरों को तोड़कर प्राप्त सामग्री से दुर्ग का निर्माण करवाया।[82] नरसिंहगढ़ तथा दमोह के अतिरिक्त दमोह जिले में बटियागढ़ को शक्तिकेन्द्र मुस्लिम शासकों ने सल्तनतकाल में बनाया। बटियागढ़ के खण्डहर दुर्ग से गुलाम नासिरूद्दीन महमूद का शिलालेख 1385 वि0सं0 प्राप्त होता है।[83] विवरण के अनुसार शिलालेख सूबेदार जलाल खोजा ने लगवाय। सम्भवतः दुर्ग का निर्माण नासिरूद्दीन महमूद के आदेश से हुआ।

अकबर (1556–1605) द्वारा मुगल साम्राज्य का विस्तार लगभग सम्पूर्ण उत्तर तथा मध्य भारत में किया गया। बुन्देलखण्ड क्षेत्र भी मुगल शासन के प्रभाव में दीर्घकाल तक रहा, जब तक कि छत्रसाल ने स्वयं को मुगल प्रभाव से स्वतंत्र घोषित नहीं कर दिया।[84] मुगल शासन में मुगल मनसबदारों तथा कुछ स्वतंत्र मुस्लिम शासकों ने दुर्ग निर्माण में रूचि प्रदर्शित की, यद्यपि इनकी संख्या बहुत कम रही। मुगल प्रभाव में निर्मित किलों में कोंच तथा माधोगढ़ दोनों ही स्थानीय शासन के पुराने केन्द्र थे तथा दोनों स्थानों पर दुर्ग निर्माण का श्रेय मुगल पादशाह अकबर के अधीनस्थों को है। सेंगर शासकों की पुरानी राजधानी रहे माधोगढ़ में दुर्ग का निर्माण अकबर के मनसबदार आसफ खां ने करवाया। इसी प्रकार कोंच में भी ऊंचे टीले पर अकबर के किसी अज्ञात अधीनस्थ द्वारा दुर्ग निर्माण करवाया गया। अकबर के शासन काल में जालौन जिले में बेतवा तट पर कोटरा की गढ़ी का निर्माण हुआ। आगरा, अटक, इलाहाबाद तथा लाहौर के प्रसिद्ध दुर्गों का निर्माण कराने वाले अकबर ने बुन्देलखण्ड


बुन्देल खण्ड
मध्य काल - दुर्ग निर्माण
78
79
80
81
26
25
24
23
रामपुरा
गोपालपुरा
कोंच
दतिया
झाँसी
ओरछा
महोबा
जैतपुर
छतरपुर
पन्ना
ललितपुर
तालबेहट
मालथौन
खिमलासा
सागर
दमोह
राहतगढ़
गढ़ाकोटा
रेहली
बुन्देला दुर्ग
मुगल मुस्लिम
अन्य
K.M. 0 10 30 KM.

क्षेत्र में न तो किसी उल्लेखनीय दुर्ग का निर्माण करवाया और नही इस क्षेत्र में दुर्ग निर्माण में रूचि प्रदर्शित की। सम्भवतः इसका कारण यह था कि 1569 में कालिंजर दुर्ग को हस्तगत करने के पश्चात अकबर ने इस क्षेत्र में दुर्ग निर्माण की आवश्यकता महसूस नहीं की।[85] अकबर के उत्तराधिकारियों ने भी अकबर की रूचि से समानता प्रदर्शित की। झांसी जिले में स्थित समथर के मैदानी दुर्ग के निर्माण का श्रेय अकबर के अधीनस्थ शमशेर खां को दिया जाता है।[86] तथा कुछ विद्वान समथर दुर्ग को सत्रहवीं सदी में दतिया के शासक इन्द्रजित द्वारा निर्मित मानते हैं। मुगलों की तुलना में स्वतंत्र तथा अर्ध स्वतंत्र क्षेत्रीय मुस्लिम शासकों ने दुर्ग निर्माण में अधिक रूचि प्रदर्शित की। सागर जिले में मालथौन, खिमलासा तथा सागर दुर्गों का निर्माण मुस्लिम शासकों द्वारा करवाया गया। प्रारम्भ में अकबर के अधीनस्थ रहे अर्धस्वतंत्र शासक मुहम्मद खां ने 1600 में मालथौन दुर्ग की नींव रखी जिसका पुनः निर्माण 1808 में शाहगढ़ के मर्दन सिंह ने करवाया था।[87] खिमलासा दुर्ग का निर्माण मालवा के अज्ञात मुस्लिम सरदार ने करवाया। दुर्ग के अन्दर दरगाह तथा 1572 की एक मस्जिद मौजूद है। सागर दुर्ग का निर्माण 1660 में निहालशाह के वंशज सदनशाह ने करवाया, जिस पर कुरवाई के के नवाबों का अधिकार रहा।[88] बाँदा जनपद में लोखरी पहाड़ी पर निर्मित लौंडी दुर्ग में दुर्ग निर्माता से सम्बन्धित शिलालेख लगा हुआ है। संवत 1526 के शिलालेख से यह ज्ञात होता है कि दुर्ग को वीरसिंह देव के सेवक इब्राहीम खां पुत्र फफूंद खां ने बनवाया। उपर्लिखित दुर्गों के अतिरिक्त कदौरा भी एक दुर्ग था, जो मुस्लिम शासकों द्वारा निर्मित हुआ। जालौन जिले में कदौरा या बावनी के छोटे दुर्ग का निर्माण हैदराबाद के शासक नवाब गाजीउद्दीन ने करवाया तथा कदौरा को मुस्लिम शासन केन्द्र के रूप में स्थापित किया।[89]

तुलनात्मक रूप से सल्तनतकाल में निर्मित तीन प्रमुख दुर्गों नरसिंहगढ़, दमोह तथा बरियागढ़ की तुलना में मुगलकाल में बुन्देलखण्ड में अधिक दुर्गों तथा गढ़ियों का निर्माण हुआ।

2.3.2 बुन्देलों द्वारा निर्मित दुर्ग

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बुन्देलों की उदीयमान शक्ति चन्देलों एवं खंगारों की पतनशीलता का परिणाम थी। बुन्देलखण्ड क्षेत्र, में बुन्देला शक्ति के प्रथम स्थापन का श्रेय सोहनपाल बुन्देला को है। सोहनपाल (1231–59) ने 1257 ई में खूबसिंह खंगार को परास्त कर गढ़कुंडार का दुर्ग विजित किया।[90] सोहनपाल के उत्तराधिकारियों ने बुन्देला सत्ता का विस्तार किया तथा दुर्ग निर्माण की परम्परा को ऊंचाई प्रदान की। बुन्देला शासकों ने मध्यकाल में ओरछा, झांसी, दतिया, छतरपुर, पन्ना के प्रमुख दुर्गों के अतिरिक्त मोंठ, पलेरा, खरगापुर, महेबा–नुना, अमरगढ़, बंगरा, तालबेहट, बडौनी, संग्रामपुर तथा जैतपुर के दुर्गों एवं गढ़ियों का निर्माण किया। मध्यकाल में बुन्देलों की शक्ति के प्रतीक रहे इन दुर्गों एवं गढ़ियों का क्रमबद्ध अध्ययन उपयुक्त होगा जिससे बुन्देलों की मध्यकालीन दुर्ग निर्माण परम्परा का सांगोपांग विश्लेषण हो सके।

ओरछा– बुन्देला शासक रूद्रप्रताप ने (1501–31) ने 1531 में ओरछा नगर की नींव रखी तथा सुरक्षा के बिन्दु पर राजधानी गढ़कुंडार से ओरछा स्थानान्तरित कर दी परन्तु रूद्र प्रताप ओरछा का दुर्गीकरण प्रारम्भ करने के पूर्व ही 1531 में कोथरपुर दुर्ग के घेरे के समय एक शेर के साथ लड़ाई में मृत्यु को प्राप्त हुये।[91] रूद्र प्रताप के उत्तराधिकारी भारतीचन्द्र (1531–54) ने ओरछा में निर्माण प्रारम्भ किये।[92] भारतीचन्द्र ने राजधानी के भवनों का निर्माण कार्य द्रुत गति से किया तथा 1539 तक ओरछा में राजा तथा रानी के महल व अन्य आवश्यक सैन्य इमारतों का निर्माण कार्य पूरा हो चुका था।[93] राजा भारतीचन्द्र के अतिरिक्त उनके उत्तराधिकारी राजा मधुकरशाह ने भी निर्माण कार्यो में योगदान दिया। बेतवा नदी पर निर्मित महलों की सुरक्षा हेतु नगर प्राचीरों का भी क्रमागत निर्माण हुआ, परन्तु ओरछा में महत्वपूर्ण निर्माण कार्य बीर सिंह देव प्रथम ने किये। बीर सिंह देव ने जहांगीर के सम्मान में जहांगीरी महल का निर्माण करवाया जो भूतल से पांच खण्ड का है। महल के प्रवेश द्वार पर चतुर्भुज गणेश की मूति स्थापित है तथा द्वार के दोनों ओर माला पद्धति (Garland style) के ब्रैकेट उकेरे गये हैं। उपरोक्त शासकों के अतिरिक्त पहाड़ सिंह (1641–53) तथा सावंत सिंह (1752–65) ने भी

सुरक्षात्मक निर्माण कार्य ओरछा में करवाये। महाराजा उदैतसिंह ने 1763 में जहांगीर महल से लगा हुआ शीशमहल या ग्लास पैलेस का निर्माण करवाया, जिसमें रंगीन टाइलों का प्रयोग किया गया है। सुरक्षा प्राचीर के घेरे में बीर सिंह देव के सेनापति कृपाराम की हवेली भी महत्वपूर्ण है। टीकमगढ़ जिले की पृथ्वीपुर तहसील में स्थित ओरछा एक धर्मस्थल तथा पर्यटन स्थल के रूप में है, क्योंकि 1783 ई0 में राजा विक्रमाजीत ने ओरछा के स्थान पर टीकमगढ़ को राजधानी बनाकर स्थान के राजनीतिक महत्व का पतन प्रारम्भ कर दिया।[94] आज ओरछा मुख्यरूप से रामराजा मन्दिर के लिये जाना जाता है।

झाँसी दुर्ग– किलों की पांत में, झाँसी किले का स्थापत्य शिल्प सौन्दर्य भले ही उन्नत न हो, परन्तु अपनी मजबूती में अत्यन्त बेजोड़ है।[95] 11 किमी0 के दायरे में फैले परकोटे, 10 द्वारों, बुर्जों तथा फसीलों की उन्नत श्रृंखला झाँसी दुर्ग में है। किले ने इतिहास की धारा को नया मोड़ प्रदान किया है। तथा महारानी लक्ष्मीबाई इसका प्रतीक थीं।, जिनमें रणकौशल तथा संगठन क्षमता को ब्रिटिश सेनापति सर ह्यूरोज ने माना। इसी कारण किले का भावात्मक महत्व अधिक है। झाँसी दुर्ग का निर्माण बुन्देला बीर सिंह देव ने 1613 में बंगरा नामक पहाड़ी पर करवाया था।[96] वीर सिंह देव ने झाँसी दुर्ग का निर्माण ओरछा की रक्षात्मक पंक्ति में करवाया तथा ओरछा से 17 किमी0 दूर स्थित इस किले तथा स्थान का नाम बलवन्तनगर रखा परन्तु कालान्तर में यह नाम 'झाँसी' के रूप में परिवर्तित हो गया क्योंकि ओरछा से झाँसी दुर्ग की आकृति 'झॉई सी' लगती थी। किले का ढाँचा तथा प्रयुक्त सामग्री मूलरूप से चन्देलों के समय की प्रतीत होती है।[97] मौजूदा किले का मुख्य भाग वीर सिंह देव द्वारा निर्मित है। बाद में कई शासकों ने बुर्ज, प्राकार तथा प्रासाद के निर्माण करवाये। प्रमुख रूप से मराठा सरदार नारू शंकर द्वारा निर्मित दुर्ग का विस्तार (1742 ई0) में किया तथा नगर प्राचीर का निर्माण कर झाँसी का स्तर एक दुर्ग–नगर के रूप में उठाया। नारूशंकर ने दुर्ग का नाम 'शंकर दुर्ग' रखा परन्तु यह नाम प्रचलित नहीं हुआ।[98] किले के विस्तार अन्य महत्वपूर्ण योगदान महाराजा गंगाधरराव (1843–53) ने दिया। उन्होंने महलों तथा

सैनिक आवासों का निर्माण कर विस्तार में योगदान दिया यद्यपि उनकी रूचि स्थापत्य से अधिक संगीत में थी।[99] झॉसी दुर्ग के एक क्षतिग्रस्त बुर्ज का पुनरूद्धार फील्डमार्शल करिअप्पा ने स्वतंत्रता के पश्चात करवाया था।

दतिया– झाँसी से 30 किमी0 दूर स्थित दतिया दुर्ग का निर्माण वीर सिंह देव बुन्देला ने शेख अबुल फज्ल पर विजय के उपलक्ष्य में करवाया था। दतिया दुर्ग के निर्माण में 8 वर्ष 10 माह 26 दिन लगे तथा बत्तीस लाख नब्बे हजार नौ सौ अस्सी रूपये खर्च हुये।[100] ग्रेनाइट के ऊँचे टीले पर स्थित इस पॉच मंजिला दुर्ग की ऊँचाई लगभग 45 मीटर है। वीर सिंह देव द्वारा निर्मित यह दुर्ग यद्यपि मुगलकालीन है तथापि आकार तथा परिकल्पना में यह मुगल शैली से भिन्न है। इसे एक पूर्ण दुर्ग के लक्ष्य को ध्यान में रखकर बनाया गया है ताकि दूर से इसकी चौकसी की जा सके। इसकी बनावट इस प्रकार है कि कहीं से भी देखने पर उसके पार्श्व और कोंण दृष्टिगोचर होते हैं। यह दुर्ग वीर सिंह देव ने शुभकरण बुन्देला (1656–63) को सौंप दिया था।[101] चारों ओर अष्टभुजी गुम्बदों से घिरा हुआ यह वर्गाकार वास्तुविन्यास सुन्दर वास्तुकला का श्रेष्ठ नमूना है। ऊँचा दुर्ग आज भी सुरक्षित अवस्था में हैं।

अष्टगढ़ी तथा अन्य निर्माण– बुन्देलखण्ड में मध्यकाल में बुन्देला शासकों द्वारा निर्मित गढ़ियों में अष्टगढ़ी उल्लेखनीय है। अष्ट गढ़ियों में बड़ागाँव, दुरबई, विजना, टहरौली, टोड़ीफतेहपुर, बंकापहाड़ी, भसनेह तथा बनगवाँ सम्मिलित हैं। झाँसी जिले में बड़ागाँव बेतवा तट पर एक बुन्देला गढ़ी थी, जो अब नष्ट हो चुकी है। झाँसी जिले की गरौठा तहसील में स्थित भसनेह की गढ़ी अब नष्ट प्राय है।[102] स्थानीय मान्यतायें भसनेह को एक दैत्य शासक भस्मासुर से सम्बद्ध करती है, जिसके नाम पर इसे क्रमशः 'भस्मा दीह' तथा भसनेह कहा गया। गढ़ी के निर्माण तथा पुनरूद्धार का श्रेय राज हर सिंह को है। राजा हर सिंह को यह स्थान जागीर के रूप में राजा मधुकर शाह ने प्रदान किया था।[103] बंकापहाड़ी तथा बनगवाँ की गढ़ियाँ भी समाप्तप्राय हैं। अष्टगढ़ियों में टोड़ी फतेहपुर का दुर्ग अपनी स्थिति के कारण महत्वपूर्ण रहा है, इस दुर्ग का

निर्माण बुन्देलाशासकों द्वारा पहाड़ की टोड़ी पर करवाया गया था। टहरौली की गढ़ी का पतन ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ में ही हो गया था।

उपरोक्त अष्टगढ़ियों के अतिरिक्त मध्यकाल में बुन्देला शासकों ने तालबेहट, जैतपुर तथा छतरपुर के महत्वपूर्ण किले निर्मित किये, जो बुन्देला सत्ता के शक्ति–स्तम्भों के रूप में अपना योगदान देते रहे। ललितपुर जिले में तालाब से घिरे पहाड़ पर निर्मित तालबेहट दुर्ग गोंडों का प्राचीन स्थान था। तालबेहट दुर्ग का निर्माण 1618 ई0 में भरतशाह पुत्र संग्रामशाह बुन्देला ने करवाया। दुर्ग के आन्तरिक हिस्सों में फर्श पर कौड़ियों के चूरे की पॉलिश तथा दुर्ग के शिखर पर निर्मित बारादरी की दीवारों के भित्तिचित्र उल्लेखनीय हैं बार तथा चन्देरी के शासक भरतशाह ने दुर्ग निर्मित कर इसका नाम 'नृसिंहगढ़' रखा था।[104] दुर्ग के एक गुम्बद पर तुगरा शैली में तिथि रहित कैलीग्राफी का अंकन मौजूद है। देवीसिंह बुन्देला ने दुर्ग का विस्तार किया था। सर ह्यूरोज की तोपों की मार से जर्जरित प्राचीरों का यह दुर्ग अवशेष रूप में सुरक्षित है।[105] इस काल के दुर्गों में हमीरपुर जनपद में स्थित जैतपुर दुर्ग सामरिक दृष्टि से सदैव महत्वपूर्ण रहा है। जैतपुर दुर्ग का निर्माण 1525 में दैलवर्मन द्वारा किया गया, जबकि स्थानीय मान्यतायें दुर्ग का निर्माता केसरी सिंह को मानती है।[106] बेलाताल नामक विशाल झील द्वारा पूर्वी सीमा से सुरक्षित जैतपुर दुर्ग के विस्तार एवं महत्व प्रदान करने का श्रेय छत्रसाल के पुत्र जगतसिंह को है। झील तट पर लम्बाई में निर्मित दुर्ग का आधुनिक स्वरूप जगत सिंह की देन है। दुर्ग का सर्वेक्षण ब्रिटिश पुरातत्वविद टीफैन्थेलर ने अठारहवीं शताब्दी के मध्य में किया था। छतरपुर नगर एवं दुर्ग की स्थापना छत्रसाल बुन्देला ने 1707 में की थी। हिन्दू तथा उत्तर मुगल शैली के स्थापत्य छतरपुर की नगर प्राचीर के अन्दर प्राप्त होते है।[107] छतरपुर नगर छत्रसाल ने एक संत बाता लालदास की आज्ञानुसार बसाया था।[108]

मध्यकालीन बुन्देला निर्माण परम्परा में आधुनिक ललितपुर जनपद में मेहरौनी के पास बार नामक गढ़ी यद्यपि कम महत्वपूर्ण है, तथापि मध्यकाल में यह एक जागीर के रूप में विद्यमान थी। 1608 में रामशाह द्वारा स्थापित तथा 1616 में उसके पुत्र भरतशाह द्वारा विस्तारित यह गढ़ी नष्ट हो गयी है। इसी प्रकार मोंठ की गढ़ी का

निर्माण वीर सिंह देव बुन्देला ने करवाया जो कि गुसांई सत्ता का परवर्ती काल में केन्द्र बिन्दु बनी।[109] तीकमगढ़ स्थित पलेरा की गढ़ी का निर्माण दतिया के शासक भगवान राव के पुत्र धरमान ने किया था। यह गढ़ी भी अब नष्ट प्राय है।

बुन्देलखण्ड की दुर्ग निर्माण परम्परा में वीर सिंह देव बुन्देला का नाम सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। वीर सिंह देव ने झांसी, धमौनी, दतिया के किलों का निर्माण करवाया तथा गढ़कुण्डार, ओरछा तथा दतिया में महलों के निर्माण का श्रेय इसको है।[110] जैसा कि चर्चा की जा चुकी है कि बुन्देलों की अष्टगढ़ियों में अधिकांश के निर्माण का श्रेय भी वीर सिंह देव को है।

2.2.3 अन्य शासकों के दुर्ग

मध्यकाल में बुन्देला तथा मुस्लिम शासकों के अतिरिक्त क्षेत्रीय सत्ताओं ने दुर्ग निर्माण की परम्परा में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा राहतगढ़, धमौनी तथा गढ़ाकोटा के प्रमुख दुर्गो समेत कंजिया, रहली, जगम्मनपुर, मऊ, सेहुँड़ा (बाँदा), बाँसी तथा शाहगढ़ के दुर्गो एवं गढ़ियों का निर्माण करवाया। प्रमुख दुर्गो का कमबद्ध विवरण अध्ययन हेतु उपयुक्त होगा।

राहतगढ़— राहतगढ़ सागर जिले में बीना नदी के तट पर स्थित परमार शासकों का प्रसिद्ध दुर्ग था। यह स्थान पूर्व मध्यकाल से ही धारा के परमार शासकों के अवशेषों के लिये प्रसिद्ध है। यह दुर्ग रानी दुर्गावती तथा बाद में मुगल शासकों के अधीन रहा। 66 एकड़ क्षेत्रफल में निर्मित यह दुर्ग 5 द्वारों से युक्त है तथा इसकी बाहरी सुरक्षा प्राचीर में 26 मीनारें हैं। किले के अंदर सर्वाधिक ऊंचाई पर स्थित बादल महल दर्शनीय है। राहतगढ़ दुर्ग अधिकांश सुरक्षित अवस्था में है।[111]

धमौनी— विद्वान सागर जिले में स्थित धमौनी के प्रसिद्ध दुर्ग के निर्माण का श्रेय गढ़मण्डल के शासक सूरतशाह को देते हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी में निर्मित धमौनी दुर्ग पर प्रारम्भिक अधिकार गोंडों का रहा, परन्तु कालान्तर में यह मुगल छावनी बना तथा अन्ततः इस पर बुन्देलों ने अधिकार कर लिया। धमौनी दुर्ग को एक दृढ़ केन्द्र बनाने का श्रेय बुन्देला शासक वीर सिंह देव को हैं, जिन्होंने 10 लाख रूपये की लागत से 52

एकड़ में फैले इस दुर्ग का पुनर्निर्माण करवाया। नदी की दो धारों के मध्य निर्मित यह दुर्ग एक न्यून त्रिकोण का निर्माण करता है[112] तथा इसका परकोटा 50 फुट ऊंचा तथा 15 फुट चौड़ा है। अरण्य में स्थित यह दुर्ग आज वीरान है तथा इसके कुछ निर्माण सुरक्षित अवस्था में है।[113]

गढ़ाकोटा— सागर जिले में स्थित गढ़ाकोटा मूलतः गोंडों का स्थान है। गढ़ाकोटा दुर्ग का निर्माता अज्ञात है, परन्तु किले के पुनर्निर्माण का श्रेय सत्रहवीं शताब्दी में गोंड शासक चन्द्रशाह को जाता है। मूलतः इसे कोट कहा जाता था। तथा दुर्ग निर्माण के पश्चात इसे गढ़ाकोटा कहा जाने लगा। बुन्देलखण्ड के दुर्गम किलों में गढ़ाकोटा का नाम महत्वपूर्ण है। गढ़ाकोटा दुर्ग के समीप एक ग्रीष्मकालीन महल के अवशेष हैं, जिसे राजा मर्दनसिंह ने बनवाया था।[114] इस इमारत में 100 फुट ऊंची एक चतुराकार मीनार उल्लेखनीय है। गढ़ाकोटा दुर्ग अवशेषों के रूप में सुरक्षित है।

सिहुँड़ा (बाँदा)— दुर्गो के इस वर्ग में बाँदा जनपद में स्थित सिहुँड़ा का विस्तृत दुर्ग महत्वपूर्ण है। जनश्रुतियां दुर्ग के निर्माण का श्रेय एक अज्ञात शासक राजा पिथौरा को देती है। खत्री पहाड़ी की अन्तिम सीमा में स्थित इस दुर्ग पर अकबर के शासन में मुगलों का अधिकार हो गया जिन्होंने इस दुर्ग का विस्तार किया। 1732 के पश्चात बुन्देला शासक कीरत सिंह ने इस पर अधिकार किया। केन नदी के तट पर स्थित सिहुंड़ा दुर्ग के खण्डहर विस्तृत क्षेत्रों में फैले हुये है।[115]

मध्यकाल में क्षेत्रीय शासकों द्वारा निर्मित दुर्गों में सागर जिले में स्थित कंजिया या करंजिया दुर्ग महत्वपूर्ण है। कंजिया दुर्ग के निर्माण का श्रेय चन्देरी के शासक देवी सिंह को है, जिन्होंने शाहजहाँ से अनुमति प्राप्त कर 1634–36 में दुर्ग का निर्माण करवाया।[116] सागर जिलें में ही स्थित रहली दुर्ग को बनाने का श्रेय चौदहवीं शताब्दी में अहीरों को है। दो एकड़ क्षेत्रफल वाले रहली दुर्ग के खण्डहर अब शेष है।[117] क्षेत्रीय शासकों द्वारा निर्मित गढ़ियों में जालौन जिले में स्थित जगम्मनपुर तथा मऊ की गढ़ियां ऐतिहासिक महत्व की हैं। जगम्मनपुर की गढ़ी यमुना तट से 4 किमी0 दूर पंचनदा के बीहड़ों में स्थित है। जगम्मनपुर की गढ़ी के निर्माण का श्रेय सेंगर शासक कर्णदेव

(936 ई0) की 29वीं पीढ़ी के वंशज जगम्मनशाह को है। जगम्मनशाह ने 07 एकड़ में फैले विस्तृत दुर्ग का निर्माण 1593 ई0 में करवाया था। जगम्मनपुर के अतिरिक्त जालौन जिले में पहूज तट पर स्थित मऊ बुन्देलखण्ड में बुन्देलों की प्रथम राजधानी थी, जिसको अधिकृत करने का श्रेय अर्जुनपाल को है जबकि 13वीं सदी में निर्मित मऊ दुर्ग के निर्माण एवं दृढ़ता प्रदान करने का श्रेय सोहनपाल बुन्देला को है। ललितपुर जिले में स्थित बाँसी की गढ़ी को निर्मित करने का श्रेय चन्देरी के शासक भरतशाह के भाई कृष्णराव को है, जिसने 1618 में इस गढ़ी का निर्माण किया था। गढ़ी आज भी सुरक्षित अवस्था में है।[118] सागर जिले में स्थित शाहगढ़ की गढ़ी का निर्माण गोंडों ने करवाया था। इस गोंड केन्द्र को विजित कर छत्रसाल ने इसे बुन्देला शक्ति का केन्द्र बनाया था।

2.4 आधुनिक काल

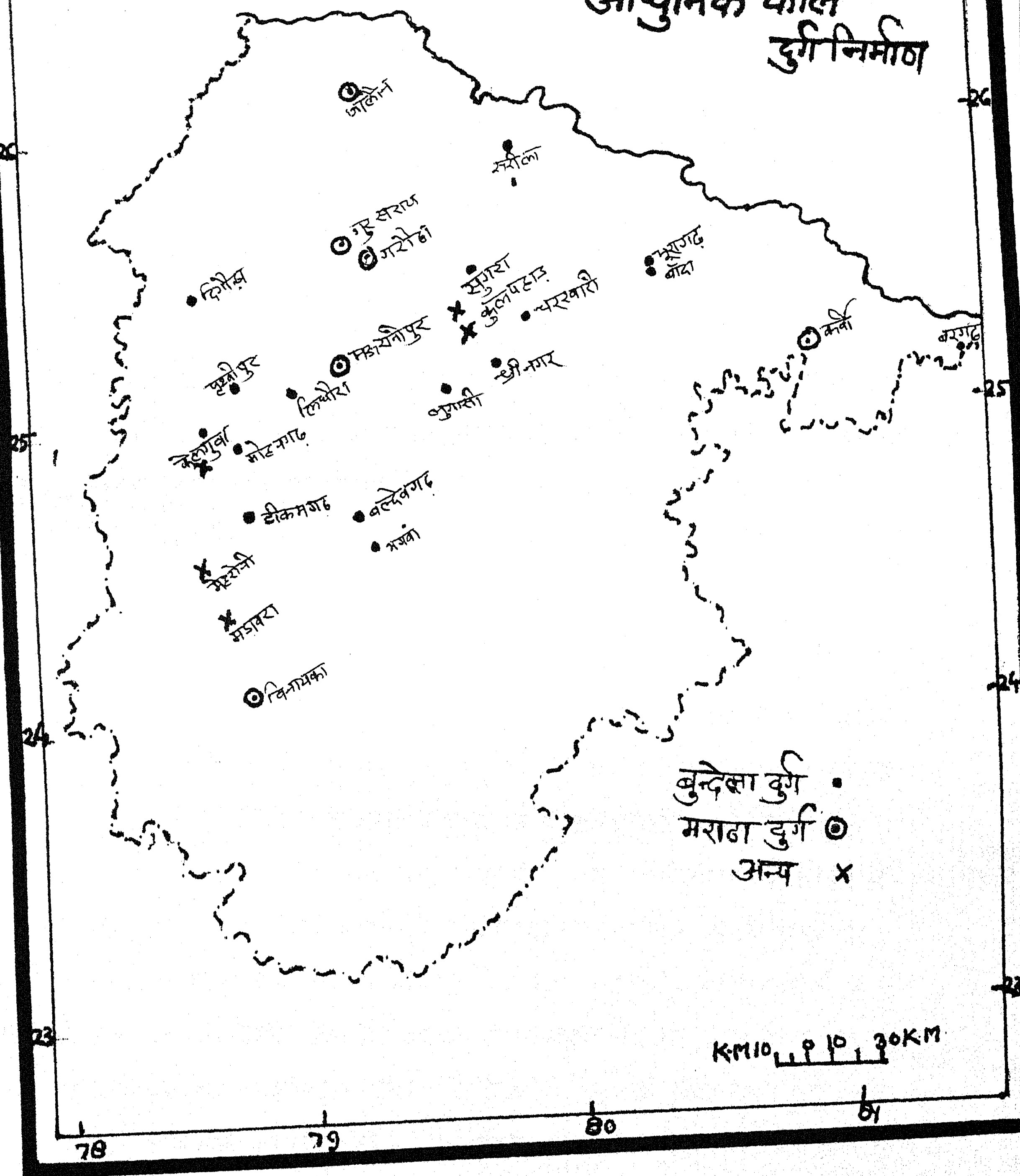
औरंगजेब आलमगीर (1658–1707 ई0) के पश्चात मुगलों की केन्द्रीय शक्ति का पतन प्रारम्भ हो गया था। बुन्देलखण्ड में भी छत्रसाल बुन्देला की मृत्यु के पश्चात बुन्देला साम्राज्य का विभाजन हो गया। इस काल में बुन्देलों की सत्ता के अतिरिक्त मराठों ने दुर्ग निर्माण के क्षेत्र में अपना नवीन योगदान प्रस्तुत किया। मराठों की उदीयमान शक्ति के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रीय सत्ताओं ने भी दुर्ग निर्माण में अपनी रूचि प्रदर्शित की। दुर्ग–निर्माण परम्परा के क्रम में आधुनिक काल का अध्ययन महत्वपूर्ण है। क्योंकि 1857 का स्वतंत्रता संग्राम बुन्देलखण्ड में दुर्ग विनाश का कारण बन कर आया तथा दुर्ग निर्माण की परम्परा का अन्त ब्रिटिश नीतियों का सीधा परिणाम था। आधुनिक कालखण्ड में बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण परम्परा का क्रमबद्ध अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

2.4.1 बुन्देलों द्वारा दुर्ग निर्माण

छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात विभाजित बुन्देला साम्राज्य के विभिन्न अंगों ने दुर्ग निर्माण परम्परा का क्रम अवाध गति से जारी रखा। बुन्देला शासकों ने इस कालखण्ड में बल्देवगढ़, टीकमगढ़, लिधौरा, भूरागढ़ तथा चरखारी के प्रमुख दुर्गो के अतिरिक्त

दिगौड़ा, पृथ्वीपुर, मोहनगढ़, बाँदा, श्रीनगर, लुगासी, सरीला तथा भगवॉ की गढ़ियों का निर्माण किया। इस काल के बुन्देला शासकों में विक्रमाजीत बुन्देला (1776–1817) का नाम दुर्ग निर्माताओं के मध्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं, जिसने दिगौड़ा, बल्देवगढ़, टीकमगढ़ के दुर्गो एवं गढ़ियों का निर्माण करवाया।[119] टीकमगढ़ को विक्रमाजीत बुन्देला ने ओरछा के स्थान पर राजधानी बनाया तथा इसे दुर्गीकृत किया। महेन्द्र सागर नामक तालाब के किनारे बने दुर्ग को विक्रमाजीत तथा उत्तराधिकारियों सुजान सिंह, हमीर सिंह तथा प्रताप सिंह ने समय–समय पर उचित प्रबन्धन के द्वारा सुरक्षित रखा। इसी प्रकार टीकमगढ़ जनपद में ही बलदेवगढ़ दुर्ग ग्वाल सागर नामक तालाब के तट पर बनवाया गया। विक्रमाजीत बुन्देला द्वारा निर्मित यह दुर्ग आज भी अच्छी अवस्था में है। टीकमगढ़ जिले की जतारा तहसील में लिधौरा दुर्ग बुन्देला वास्तुकला का एक अच्छा उदाहरण है। लिधौरा दुर्ग का निर्माण बुन्देला शासक हेत सिंह ने करवाया था।[120] बाँदा जनपद में केन तट पर भूरागढ़ दुर्ग का निर्माण छत्रसाल के पुत्र तथा बांदा के शासक राजा गुमान सिंह ने सत्रहवीं शताब्दी में करवाया। दुर्ग में पूर्व दिशा में एकमात्र प्रवेश द्वार है, तथा एक बुर्ज पर तोप लगाने का प्लेटफार्म बना हुआ है। भूरागढ़ दुर्ग का पश्चिमी हिस्सा पूरी तरह से ध्वस्त हो चुका है तथा अवैध अतिक्रमण से ग्रसित है।[121] महोबा जिले में चरखारी का दुर्ग बुन्देला वास्तु के उत्तरकालीन युग का उत्कृष्ट नमूना है। चरखारी को 1761 में राजा खुमाण सिंह ने राजधानी बनाया। तालाबों की नगरी चरखारी में खुमाण सिंह द्वारा निर्मित दुर्ग का क्रमागत विस्तार विजय बहादुर तथा राजा रतन सिंह द्वारा किये गये। रंजीता पहाड़ी पर बने चरखारी दुर्ग को 'मंगलगढ़' नाम दिया गया।[122] यह दुर्ग वर्तमान में भारतीय सेना के संरक्षण के कारण सुरक्षित अवस्था में है।

परवर्ती बुन्देला शासकों द्वारा निर्मित उपरोक्त महत्वपूर्ण दुर्गो के अतिरिक्त निर्मित कढ़ियों में टीकमगढ़ जिले में पृथ्वीपुर तथा मोहनगढ़ प्रमुख हैं। पृथ्वीपुर की गढ़ी का निर्माण पृथ्वी सिंह बुन्देला (1736–65) द्वारा किया गया। पृथ्वीपुर की गढ़ी के अवशेष आज भी मौजूद हैं।[123] टीकमगढ़ जिले की जतारा तहसील में मोहनगढ़ की गढ़ी स्थानीय बुन्देला शासक द्वारा बनवायी गयी थी। जतारा तहसील में ही दिगौड़ा



बुन्देलखण्ड
आधुनिक काल
दुर्ग निर्माण
जालौन
सरीला
गुरसराय
गरोठा
कुलपहाड़
चरखारी
श्रीनगर
लिधौरा
टीकमगढ़
बल्देवगढ़
मडावरा
भूरागढ़
बाँदा
कर्वी
बरगढ़
बुन्देला दुर्ग •
मराठा दुर्ग ⊙
अन्य ×
KM10 0 10 30KM
78
79
80
81
26
25
24
23

की गढ़ी का निर्माण बुन्देला शासक विजयशाह ने किया। दिगौड़ा प्राचीन ऐतिहासिक स्थल है। कीर्तिवर्मन चन्देल के अजयगढ़ शिलालेख से इसकी पुष्टि होती हैं।[124] बांदा में सुरक्षा इमारतों का प्रारम्भिक निर्माण राजा गुमान सिंह ने निम्नीपार इलाके में किये थे परन्तु ये निर्माण बांदा के नवाबों द्वारा नष्ट कर दिये गये थे तथा नवाबों ने विशेषकर अलीबहादुर द्वितीय ने कुछ निर्माण करवाये। छतरपुर जिले में लगभग 275 वर्ष पुराने स्थान राजनगर की गढ़ी का निर्माण कुंवर सोनेशाह ने करवाया। वर्तमान में राजनगर की गढ़ी ध्वस्त हो चुकी है। राजनगर की गढ़ी का प्रारम्भिक ढॉचा सरनेत सिंह ने तैयार करवाया था। छतरपुर जिले में राजगढ़ दुर्ग एवं महल परवर्ती बुन्देला इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। राजगढ़ नगर की नींव पन्ना के शासक हिरदेशाह ने रखी थी। राजगढ़ में पन्ना के शासक हिन्दूपत के द्वारा बनवाया गया एक महल ही शेष है। इस महल का जीर्णोद्धार महाराजा विश्वनाथ सिंह ने 1925–26 में करवाया।[125] राजगढ़ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण यहाँ मनियाँगढ़ दुर्ग के अवशेष हैं। आधुनिक काल में निर्मित उपरोक्त बुन्देला दुर्गो एवं गढ़ियों ने मध्यकालीन बुन्देला निर्माण परम्परा का अनुसरण करते हुये दुर्ग निर्माण को एक नवीन आयाम प्रदान किया।

2.4.2 मराठों द्वारा निर्मित दुर्ग

बंगश के विरूद्ध छत्रसाल बुन्देला की सहायता के कम में मराठा पेशवा बाजीराव प्रथम ने बुन्देलखण्ड में मराठों को प्रवेश का अवसर प्रदान किया। बंगश के विरूद्ध जैतपुर युद्ध की विजय ने तथा कमागत रूप से छत्रसाल की उदारहता ने मराठों के पैर बुन्देलखण्ड की जमीन पर जमा दिये। इस कालखण्ड में मराठों ने बुन्देलखण्ड में 6 दुर्गो एवं गढ़ियों के निर्माण आवश्यकतानुसार किये। इनमें मऊरानीपुर, गुरसरॉय, गरौठा, जालौन, कुर्वी तथा विनायका के निर्माण महत्वपूर्ण थे तथा झाँसी दुर्ग के विस्तार का श्रेय भी मराठों को है। मराठा दुर्ग निर्माण परम्परा में बाजीराव प्रथम (1720–40) के अतिरिक्त गोविन्द बल्लाल खेर, हरी विट्ठल डिंगणकर तथा कृष्णा जी अनन्त तांबे ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।[126] गोविन्द राव पंत तथा गंगाधर राव के योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। गरौठा की गढ़ी का निर्माण मराठों द्वारा किया गया

था, जबकि यह स्थान मूलतः एक राजपूत गरई सिंह द्वारा स्थापित किया गया था। गढ़ी के अवशेष अब प्राप्त नहीं होते हैं। मऊरानीपुर में दुर्ग निर्माण तत्कालीन झाँसी के मराठा सूबेदार रघुनाथ राव हरि ने करवाया था। परन्तु 1857 में ब्रिटिश तोपों की मार के समक्ष यह किला ढह गया अब इसके अवशेष भी प्राप्त नहीं होते हैं।[127] मराठों द्वारा निर्मित कर्वी की गढ़ी सुरक्षित अवस्था में है। उत्तर की ओर दो बुर्जो तथा प्रवेश द्वार से युक्त इस गढ़ी में आधुनिक पुलिस थाना संचालित है। जालौन में धौती बाजार इलाके में मराठों द्वारा निर्मित गढ़ी के खण्डहर प्राप्त होते हैं। 1857 में यह गढ़ी भी ब्रिटिश तोपखाने से हार मान गयी।[128] ललितपुर जिले में मंडावरा के किले के निर्माण का श्रेय अठारहवीं शताब्दी के मध्य में मराठा गवर्नर बलवंत राव को है। विनायका दमोह जिले में निर्मित एक बुन्देला दुर्ग था, जिसे मराठों ने नये सिरे से निर्मित एवं विस्तारित किया। ऊंची मीनारों से युक्त विनायका दुर्ग खण्डहर अवस्था में है।[129] मराठों में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दुर्ग निर्माण परम्परा में उल्लेखनीय योगदान दिया तथा क्षेत्र में अपना प्रभाव तथा परम्परायें स्थापित करने में सफल रहे है।

2.4.3 अन्य शासकों द्वारा दुर्ग निर्माण

आधुनिक काल में बुन्देलखण्ड में बुन्देलों तथा मराठों की शक्ति के अतिरिक्त क्षेत्रीय शक्तियों का दुर्ग निर्माण में योगदान महत्वपूर्ण है। क्षेत्रीय शासकों ने इस कालखण्ड में मेहरौनी, कुलपहाड़, राजनगर, समथर, सुमेरपुर के दुर्गो एवं गढ़ियों के अतिरिक्त लखनगुवाँ, पहाड़गाँव, ईसानगर–खटोला, राजगढ़, एवं तिंदवारी की गढ़ियों का निर्माण किया। इस कालखण्ड में निर्मित समथर के मैदानी दुर्ग के निर्माण का श्रेय दतिया के शासक इन्द्रजीत को है। समथर पूर्व में शमशेरगढ़ के नाम जाना जाता था। कुछ विद्वान इस दुर्ग के निर्माण का श्रेय अकबर के अधीनस्थ शमशेरखां को देते हैं। समथर दुर्ग शासक वर्ग का निवास बने होने के कारण सुरक्षित अवस्था में हैं। विजावर की नींव गढ़–मण्डल राज्य के बीजा जी सिंह द्वारा डाली गयी थी। छतरपुर जनपद में स्थित विजावर के दुर्ग एवं महल के निर्माण का श्रेय पन्ना के शासक हिन्दूपत (1758–76) को है।[130] विजावर दुर्ग सुरक्षित अवस्था में है। हमीरपुर जनपद में स्थित

सुमेरपुर में दो किलों के निर्माण के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। ये दोनों किले अठारहवीं शताब्दी के प्रथम अर्ध में निर्मित हुये। एक किले के निर्माण का श्रेय मुहम्मद बंगश को है तथा दूसरे किले के निर्माण का श्रेय खुमान सिंह को है। सुमेरपुर स्थित इन दोनों किलों के अवशेष प्राप्त नहीं होते हैं।[131] महोबा जिले में स्थित कुलपहाड़ में बुन्देला काल में निर्मित अनेक निर्माणें के अवशेष एवं खण्डहर प्राप्त होते हैं। अज्ञात निर्माता द्वारा निर्मित सेनापति महल आज सुरक्षित अवस्था में है।[132] छतरपुर जिले में स्थित राजनगर लगभग 250 वर्ष पुराना है। राजनगर को कुँवर सोनेशाह ने बसाया था। स्थानीय मान्यताओं के अनुसार राजनगर की गढ़ी के निर्माता 14 राजपूत थे, जिन्हें सोनेशाह ने परास्त कर दिया था। राजनगर की गढ़ी आज भी सुरक्षित अवस्था में है।[133] ललितपुर स्थित मेहरौनी की गढ़ी का निर्माण चन्देरी के शासक राजा मान सिंह द्वारा 1750 ई0 में किया गया। मेहरौनी की गढ़ी में आज पुलिस थाना संचालित है।[134] बांदा नगर के समीप स्थित मौदहा को बसाने का श्रेय स्थानीय मान्यताओं के अनुसार मिश्र देश के शेख अहमद को है। परिहार शासकों ने इसके पश्चात मौदहा का विस्तार किया। मौदहा दुर्ग के निर्माण का श्रेय चरखारी के शासक विजय बहादुर को है। आज दुर्ग के अवशेष प्राप्त नहीं होते हैं। दुर्ग के स्थान बांदा के नवाब अली बहादुर द्वितीय द्वारा बनावायी गयी मस्जिद प्राप्त होती है।[135]

दमोह जिले में स्थित रानेह तथा तेजगढ़ की गढ़ियां आधुनिक कालखण्ड में महत्वपूर्ण हैं। रानेह की गढ़ी का निर्माता अज्ञात है तथा कालान्तर में इस गढ़ी पर रिछारिया ब्राम्हणों का अधिकार रहा।[136] दमोह से 20 मील दूर स्थित तेजगढ़ की गढ़ी नष्ट हो चुकी है। तेजगढ़ के निर्माण का श्रेय 17वीं शताब्दी में तेजसिंह लोधी को है।

छतरपुर जिले में महाराजपुर की गढ़ी एवं महल के निर्माण का श्रेय दीवान चामण्ड राय को है। महल आज सुरक्षित अवस्था में है।[137] लोंडी तहसील में स्थित गौरिहार की गढ़ी नष्ट हो चुकी है। गौरीहार में निर्माण का श्रेय पं0 राजाराम को है।[138] ईसानगर–खटोला की गढ़ी के निर्माण का श्रेय विजय विक्रमजीत बहादुर (1782–1829) को हैं।

बाँदा जिले में इस कालखण्ड में तिंदवारी एवं औगासी की गढ़ियां महत्वपूर्ण हैं। तिंदवारी में गढ़ी के निर्माण का श्रेय गुसांई हिम्मत बहादुर को है परन्तु तिंदवारी की गढ़ी अधिक दिनों तक अस्तित्व में नहीं रही।[139] 1746 ई0 से इसका पतन तीव्रगति से हुआ। यमुना तट पर स्थित औगासी एक मध्य कालीन स्थल है। सन् 1200 ई0 में सैयद हमदू ने इस क्षेत्र को विजित किया था, परन्तु औगासी की गढ़ी के निर्माण का श्रेय दिखित राजपूतों को है। अब इसके अवशेष मात्र बचे हैं।[140]

पन्ना जिले में स्थित सिमिरियागढ़ के किले का निर्माण 1842 में जैतपुर के शासक राजा परीक्षित ने अंग्रेजों से लोहा लेने के लिये किया था। यह जर्जर किला अभी अस्तित्व में है।[141] पन्ना जिले में स्थित पवई, वरौधा या वनधौरा की छोटी गढ़ियॉ अपना अस्तित्व समाप्त कर चुकी है।[142] पन्ना जिले में ही नैगवॉ–रिबई की गढ़ी के निर्माण का श्रेय लक्ष्मण सिंह दौआ को है, परन्तु यह गढ़ी अब नष्ट प्राय है।[143] पन्ना जिले में स्थित नचना–कुठार एक प्रसिद्ध गुप्त कालीन स्थान है। यहाँ पर पुरातात्विक सामग्री से युक्त 'लखुरा दुर्ग के अवशेष प्राप्त होते है।[144] लखुरा दुर्ग कुछ आधुनिक विस्तारों के अतिरिक्त प्राचीन है, परन्तु अब यह खण्डहर हो चुका है।[145]

आधुनिक काल में निर्मित गढ़ियों की संख्या तो अधिक हैं पर इन्हें अधिक महत्व नहीं मिला। जय सिंह द्वारा निर्मित जयसिंह नगर की गढ़ी, सन 1800 में समथर के शासक पहाड़ सिंह द्वारा निर्मित पहाड़गाँव की गढ़ी, 1811 में, पुर प्रहलाद द्वारा निर्मित केलगुवाँ की गढ़ी, अठारवीं शताब्दी में नौने अर्जुन सिंह पँवार द्वारा निर्मित सूपा की गढ़ी तथा अठारवीं शताब्दी के प्रारम्भ में राम सिंह राजपूत द्वारा निर्मित सुँगरा (कुँवरपुरा) की गढ़ी पर्याप्त महत्व रखती है जबकि जशपुरा, लटैनी, तैदोंल, इन्दरगढ़, गौराझामर तथा दलीपुर की गढ़ियॉ अधिक महत्व की नहीं हैं तथा इनमें से अधिकांश अस्तित्व में नहीं हैं।

2.4.4. 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का दुर्ग निर्माण पर प्रभाव

1857 का स्वतंत्रता संग्राम बुन्देलखण्ड के इतिहास में एक मील का पत्थर सिद्ध हुआ। 1857 में ब्रिटिश नीतियों एवं शासन के विरूद्ध भारतीय जनमानस में विद्रोह मुख्य

रूप से सैनिक विद्रोह के रूप से प्रस्फुटित हुआ। दिल्ली के नाम मात्र के मुगल पादशाह बहादुरशाह 'जफर' के नाम पर सैनकों असंगठित विद्रोह किया था।[146] यह सशस्त्र संघर्ष पूरे बुन्देलखण्ड क्षेत्र में व्याप्त हो गया। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में कुद अपवादों के अतिरिक्त देशी रियासतों ने संघर्ष में योगदान दिया। इन अपवादों में समथर, ओरछा, विजावर तथा चरखारी इत्यादि की शक्तियाँ शामिल थीं। देशी राजाओं तथा ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के मध्य हुये संघर्ष का तात्कालिक एवं दूरगामी प्रभाव दुर्गो पर तथा दुर्ग निर्माण परंपरा रखने वाले। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में ब्रिटिश विजय की नींव रखने वाले सर ह्यूरोज (मऊ केन्द्र) तथा जनरल ह्विटलॉक (सीहोर केन्द्र) ने दुर्गो तथा गढ़ियों का महत्व अच्छी तरह से समझ लिया था अतः उन्होने विद्रोहियों से निपटने के लिये बुन्देलखण्ड क्षेत्र के किलों एवं गढ़ियों को निशाना बनाया।[147] पिछले पृष्ठों में अनेक किलों एवं गढ़ियों के सन्दर्भ में यह लिखा जा चुका है कि इन्हें ब्रिटिश तोपों का सामना अपने अस्तित्व के संघर्ष के लिये करना पड़ा। भूरागढ़, जैतपुर, खुरई, नरयावली, सागर, जालौन, झाँसी इत्यादि दुर्ग संघर्ष में अस्तित्व बचाने में सफल रहे, जबकि ललितपुर, मऊरानीपुर, उरई जैसे अनेक किलों ने अपना अस्तित्व खो दिया।

बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण परम्परा ब्रिटिश प्रभाव में अचानक दम तोड़ बैठी। 1857 के पश्चात ब्रिटिश नीतियों के कारण 'अधीनस्थ संघ' में शामिल होने वाली बुन्देलखण्ड की देशी रियासतों ने ब्रिटिश सरकार का साथ दिया[148] तथा अपने अस्तित्व को बचाने में सफल रहीं, जबकि अधिकांश किले अपने संरक्षकों के ही महत्व को खो बैठे। 1857 का स्वतंत्रता संग्राम बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण परम्परा को समाप्त करने वाली एक रेखा की भाँति है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. सिंह, राजेन्द्र,'' डायमेन्शन्स ऑफ स्ट्रक्चरल ग्रोथ इन क्लास वन एण्ड क्लास टू टासन्स ऑफ बुन्देलखण्ड (यू0पी0)'' नेशनल सेमीनार में प्रस्तुत शोध पत्र, अतर्रा,1994, पेज–1

2. वही, पेज –1,2

3. सिंह, राजेन्द्र,'' बुन्देलखण्डः ए ट्रेडीशनल लैण्ड ऑफ फोर्ट काम्प्लेक्स'', द डेकेन ज्योग्राफर, द डेकेन ज्योग्राफिकल सोसायटी, पुणे, 1994, अंक –2 , पेज–1

4. लाहा, विमल चरन,' हिस्टोरिकल ज्योग्राफी आफ एनसिएण्ट इण्डिया', लखनऊ, 1972, पेज–83

5. वहीं पेज–83,216

6. सिंह, राजेन्द्र,'' फोर्ट्सः द कोरीडोर ऑफ अरबन एनवायरनमेन्ट इन बुन्देलखण्ड (यू0 पी0)'', अंतराष्ट्रीय सेमीनार में प्रस्तुत शोध पत्र, वाराणसी, 1990, पेज–2

7. महाभारत, हिन्दी अनुवाद–पं0 रामनारायण दास शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर, सभा पर्व, 5/38

8. तिवारी, गोरेलाल,' बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास' काशी नागरी प्रचारणी सभा , वाराणसी, 1933, पेज–2

9. राव, वी0डी0, गोखले, बी0के0, डिसूजा, ए0 एल0,' एनसियेन्ट हिस्ट्री एण्ड कल्चर', बम्बई,1966, पेज–258

10. शास्त्री, नीलकण्ठ के0ए0,' ए कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया,' खण्ड–2, वाराणसी, पेज–20

11. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–20

12. सिंह, राजेन्द्र, पूर्वोधृत, पेज–4

13. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–21

14. वहीं, पेज–27

15. वहीं, पेज–28,29

16. वहीं, पेज–27

17. जनपद गजेटियर झाँसी, 1965, पेज–331, टिप्पणी–प्रसिद्व पुरातत्वविद ई0 बी0 हावेल ने अपनी पुस्तक, आर्यन रूल इन इण्डिया,' लंदन, 1956 में जराय मठ को चन्देल कृति माना है, परन्तु यह चन्देल कृति नही है।

18. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–38

19. राय, बी0ए0,' कालंजर : ए हिस्टोरिल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल,'इतिहास विभाग, पं0 जे0 एन0 कॉलेज, बाँदा, 1992, पेज–17 (अंग्रेजी खण्ड)

20. सिंह, राजेन्द्र,'' बुन्देलखण्ड : ए ट्रेडीशनल लैण्ड ऑफ फोर्ट काम्पलेक्स' द डेकेन ज्योग्राफर, वोल्यूम–32, नं0–2 पुणे, 1994, पेज–4

21. पाण्डेय, ए0पी0,' चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास' हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1968, पेज–215

22. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–59

23. मित्रा, एस0 के0,' द अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो,' कलकत्ता, 1958, पेज–6

24. रॉय, बी0 एन0, पूर्वोधृत, पेज–17

25. महाभारत, पूर्वोधृत, वन पर्व , श्लोक–56,57

26. भागवत पुराण, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1906, षष्ठ स्कन्ध, श्लोक–20,21

27. हरवंशपुराण, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1906, पर्व–1 अध्याय–21, श्लोक–24–26

28. ब्रम्ह पुराण, क्षेमराज श्री कृष्णदास, बम्बई, 70/16–18

29. वायुपुराण, सम्पादक– राजेन्द्र लाल मित्रा, कलकत्ता, 1880, 23/204, श्लोक–

तत्रः कालंजरोनाम तदा गिरिवरोत्तमें।
तेन कालंजरोनाम भविष्यति सः पर्वतः।।

30. वामन पुराण, सम्पादक– हृषीकेश शास्त्री, गिरीश विद्या रत्न प्रेस, कलकत्ता, 76/14

31. पद्म पुराण, सम्पादक– विष्णु नारायण, पूना,1893, भूमिखण्ड, 91/36 तथा महाभारत, पूर्वोधृत अनुशासन पर्व, 13–26–33

32. पद्म पुराण, पूर्वोधृत,90/34

33. महाभारत, पूर्वोधृत, आरण्यक पर्व, 3/83/53

ततः कांलजर गत्वा पर्वत लोकविश्रुतम।
ततृ देवह्रते स्नात्वा गोसहस्त्र फल लभेत।।

34. सिंह, राजेन्द्र, '' कनवरजन ऑफ तीर्था इन टू सेन्टर ऑफ पोलिटिकल एलीट – ए जियो कल्चरल स्टडी आफ कालिंजर'' अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार में प्रस्तुत शोधपत्र, मथुरा 1992 पेज–3,4

35. एपिग्राफिया इण्डिया, भाग–26, पेज–25

36. एपिग्राफिया इण्डिया, भाग–19, पेज–18

37. एपिग्राफिया इण्डिया, भाग–4, पेज–279

38. एपिग्राफिया इण्डिया, पूर्वोधृत, पेज–56, पाद टिप्पणी–4

39. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–32

40. कनिंघम, आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, पुनर्मुद्रित, 2000, भाग–21, पेज–22

41. एपिग्राफिया इण्डिया, भाग–4, पेज–126,128

42. सिंह राजेन्द्र, पूर्वोधृत, पेज–4

43. मित्रा, एस0 के0 , पूर्वोधृत, पेज–37

44. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–40

45. रॉय, बी0 एन0, पूर्वोधृत, पेज–11

46. इण्डियन आर्क्योलोजीः ए रिल्यू, 1958–59, दिल्ली, पेज–93

47. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–66

48. आईन–ए–अकबरी, अनु0 एच0 एस0 जेरेट, खण्ड–2, कलकत्ता, 1949, पेज–116

49. जनपद गजेटियर बाँदा, लखनऊ ,पूर्वोधृत,1988, पेज–298

50. वही, पेज–299

51. पाण्डेय, ए0पी0 ,पूर्वोधृत, पेज–216

52. पाण्डेय, ए0पी0 ,पूर्वोधृत, पेज–217

53. जनपद गजेटियर हमीरपुर, भोपाल,1982, पेज–275

54. जनपद गजेटियर छतरपुर, भोपाल,1982, पेज–321

55. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–67

56. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–68

57. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–68

58. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–68

59. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–68

60. पाण्डेय, ए0पी0 ,पूर्वोधृत, पेज–217

61. जनपद गजेटियर जालौन, लखनऊ ,पूर्वोधृत,1989, पेज–292

62. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–70

63. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–70

64. पाण्डेय, ए0पी0 ,पूर्वोधृत, पेज–217

65. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–70

66. दुबे, दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–302

67. पाण्डेय, ए0पी0 ,पूर्वोधृत, पेज–217

68. दुबे, दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–146

69. जनपद गजेटियर बाँदा, लखनऊ ,पूर्वोधृत, पेज–302

70. जनपद गजेटियर जालौन, लखनऊ ,पूर्वोधृत, पेज–300

71. बोस, एन0 एस0,' हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज,' कलकत्ता,1956, पेज–17

72. रिजवी, एस0ए0ए0,' आदि तुर्ककालीन भारत' अलीगढ़, 1956, पेज–275

73. लुआर्ड, सी0ई0,' ईस्टर्न स्टेट्स गजेटियर,' खण्ड–6ए लखनऊ ,1907, पेज–14

74. जनपद गजेटियर दमोह ,भोपाल,1998, पेज–300

75. कनिंघम,' आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स,' खण्ड–9, पेज–50

76. जनपद गजेटियर दमोह ,पूर्वोधृत, पेज–209

77. जनपद गजेटियर दतिया, भोपाल,1977, पेज–307

78. जनपद गजेटियर छतरपुर ,पूर्वोधृत, पेज–317,318

79. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–351

80. जनपद गजेटियर जालौन ,पूर्वोधृत, पेज–299

81. जनपद गजेटियर दमोह ,पूर्वोधृत, पेज–205

82. वहीं, पेज–192

83. वहीं, पेज–186

84. गुप्ता, बी0डी0,' महाराजा छत्रसाल बुन्देला,' दिल्ली,1958, पेज–76

85. सिंह प्रताप,' मध्यकालीन भारत' (1526–1658) जयपुर, 1998, पेज–420

86. जनपद गजेटियर झॉसी,पूर्वोधृत, पेज–361

87. जनपद गजेटियर सागर ,भोपाल,1998, पेज–521,522

88. वहीं, पेज–519,520

89. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–322,323

90. लुआर्ड, सी0 ई0, पूर्वोधृत, पेज– 14

91. इलियट एवं डॉसन,' द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियंस, खण्ड –4, 1873, पेज–407

92. लुआर्ड, सी0 ई0, पूर्वोधृत, पेज– 18

93. चक्रवर्ती, के0के0,' आर्ट ऑफ इण्डिया– ओरछा,' नई दिल्ली, 1984, पेज–17

94. जनपद गजेटियर टीकमगढ़ ,भोपाल,1998, पेज–354,355

95. दुबे, दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–143

96. रिछारिया, रामसेवक,' बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियाँ' झाँसी, 2001,पेज–143

97. दुबे, दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–143

98. जनपद गजेटियर झाँसी,पूर्वोधृत, पेज–344

99. लेब्रा, जॉय सी0,' भाट्स एण्ड बर्ड्स इन द कोर्ट ऑफ झाँसी एट द टाइम ऑफ महाराजा गंगाधर राव,' बुन्देलखण्ड दर्पण, पष्ठ बिम्ब , झाँसी, 1998, पेज–189

100. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–322,323

101. जनपद गजेटियर दतिया, पूर्वोधृत, पेज–302

102. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–332

103. वही, पेज–332, 333

104. वही, पेज–365

105. दुबे, दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–141

106. जनपद गजेटियर हमीरपुर ,पूर्वोधृत, पेज–268

107. जनपद गजेटियर छतरपुर ,पूर्वोधृत, पेज–305

108. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–230

109. जनपद गजेटियर झाँसी,पूर्वोधृत, पेज–356

110. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–144

111. जनपद गजेटियर सागर ,पूर्वोधृत, पेज–523

112. वही, पेज–510

113. वही, पेज–511

114. वही, पेज–514,515

115. जनपद गजेटियर बाँदा, पूर्वोधृत, पेज–303

116. जनपद गजेटियर सागर ,पूर्वोधृत, पेज–518

117. वही, पेज–526

118. जनपद गजेटियर झाँसी,पूर्वोधृत, पेज–329

119. जनपद गजेटियर टीकमगढ़,पूर्वोधृत, पेज–349–357

120. वही, पेज–351

121. जनपद गजेटियर बाँदा, पूर्वोधृत, पेज–280

122. जनपद गजेटियर हमीरपुर ,पूर्वोधृत, पेज–265

123. जनपद गजेटियर टीकमगढ़,पूर्वोधृत, पेज–356

124. त्रिपाठी, आभा,' चन्देलकालीन भूमिदान पत्रों का महत्व ,' इतिहास , अंक –1 ,भाग–1, दिल्ली,2003,पेज–96

125. जनपद गजेटियर छतरपुर ,पूर्वोधृत, पेज–321

126. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–241

127. जनपद गजेटियर झाँसी,पूर्वोधृत, पेज–354

128. जनपद गजेटियर जालौन ,पूर्वोधृत, पेज–290

129. जनपद गजेटियर दमोह ,पूर्वोधृत, पेज–198

130. जनपद गजेटियर छतरपुर ,पूर्वोधृत, पेज–303

131. रिछारिया, रामसेवक, पूर्वोधृत, पेज–89

132. जनपद गजेटियर हमीरपुर ,पूर्वोधृत, पेज–271

133. वही, पेज–320

134. जनपद गजेटियर झाँसी,पूर्वोधृत, पेज–356

135. जनपद गजेटियर हमीरपुर ,पूर्वोधृत, पेज–278

136. जनपद गजेटियर दमोह ,पूर्वोधृत, पेज–207

137. जनपद गजेटियर छतरपुर ,पूर्वोधृत, पेज–317

138. वही, पेज–307

139. जनपद गजेटियर बाँदा ,पूर्वोधृत, पेज–303

140. ब्रोकमैन, डी0 एल0 ड्रेक,' डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ आगरा एण्ड अवध' बाँदा , इलाहाबाद,1909, पेज–200

141. जनपद गजेटियर पन्ना ,भोपाल 1994, पेज–378

142. वही, पेज–377

143. वही, पेज–374

144. कनिंघम,' आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोट्स खण्ड –21, पूर्वोधृत , पेज–96,99

145. इंडियन आर्क्योलोजी : ए रिव्यू 1962–63, दिल्ली, पेज–69

146. चन्द्रा, बिपिन,' भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, दिल्ली 1998, पेज–2

147. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–356

148. वही, पेज–354, 355

अध्याय – 3
निर्माण स्थल एवं स्थिति

भारतीय सामाजिक चेतना प्रारम्भ से ही आवास स्थल के चुनाव में जागरूक एवं भावप्रधान रही है। दुर्ग रक्षा और सत्ता से जुड़े हुये महत्वपूर्ण निर्माण हैं। भारतीय परम्परा आवास निर्माण के लिये स्थल का निर्णय लेते समय सूक्ष्मता से निरीक्षण करने की अनुशंसा करती रही है। शास्त्रीय निर्देशानुसार आवासीय भूमि का चयन करते समय भूमि का वर्ण, गंध, स्वाद तथा प्लवन का निश्चय अवश्य ही करना चाहिये।[1] रक्तगंधा, क्षारगंधा, धृतगंधा तथा विष्टानुगन्धनी आदि गंधवाली, श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण वर्ण वाली एवं चारों दिशाओं में अलग–अलग झुकाव वाली भूमि की चर्चा करते हुये युक्तिकल्पतरू, समरांगण सूत्रधार एवं अपराजित पृच्छा आदि ग्रंथ उनके अलग–अलग प्रभाव का निर्देश करते हैं। कतिपय ग्रन्थों में दुर्ग विधान के लिये अनुपयुक्त भूमि का निरूपण करते हुये "दुर्गन्धनी, शवगन्धा, सकण्टत करूणा, महासर्पाश्रिता...... वास्तुशास्त्रविदां विधानं तदेव स्याद्वर्जितम्"[2] वहां निर्माण के लिये प्रतिषेध करते हैं। शुक्रनीति का निर्देश है कि जो भूमि नाना प्रकार के वृक्षों, लताओं, पशु–पक्षियों से युक्त हो, जहां फल तथा अन्न की उपलब्धता हो तथा तृण एवं काष्ठ की प्रचुरता हो, सन्निकट नदी अथवा समुद्र एवं पर्वत की स्थिति हो, ऐसी सुरम्य भूमि में राजा को निवास करना चाहिये।[3]

3.1 दुर्ग निर्माण स्थल

दुर्ग निर्माण के लिये स्थल का चुनाव करते समय निश्चित रूप से आत्मरक्षार्थ उसकी दुर्गमता को सर्वाधिक महत्व दिया जा रहा है, किन्तु यह एक अकेला कारक दुर्ग स्थल के चुनाव हेतु उत्तरदायी नही कहा जा सकता। विशेष रूप से जल स्रोत की उपलब्धता, सेनाओं के गमन मार्ग, सामान्य मार्ग तथा तात्कालिक रूप से रणनीतिक स्थिति आदि आवश्यकतायें भी महत्वपूर्ण कारक थीं जो किसी स्थान पर दुर्ग निर्माण के लिये प्रेरित करती थीं।[4] प्राचीन ग्रन्थों में दिये गये दुर्ग प्रकार में विभाजन का मुख्य आधार प्रायः वह विशिष्ट भौगोलिक स्थल है, जहां पर दुर्ग का निर्माण किया गया है।

महाभारत में 6 प्रकार के दुर्गों की चर्चा की गयी है– धन्व दुर्ग, मही दुर्ग, गिरि दुर्ग, मानव दुर्ग, अब् दुर्ग, वन दुर्ग[5] मत्स्य पुराण में भी दुर्गों के 6 प्रकार मान गये हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं– धन्व दुर्ग, मही दुर्ग, नर दुर्ग, वार्न दुर्ग, अम्बु दुर्ग, गिरि दुर्ग।[6] जबकि शुक्रनीतिसार में 9 प्रकार के दुर्ग बताये गये हैं– एरण दुर्ग, पारिख दुर्ग, पारिध दुर्ग, वन दुर्ग, धन्व दुर्ग, जल दुर्ग, गिरि दुर्ग, सैन्य दुर्ग, सहाय दुर्ग[7] इसी प्रकार दुर्गों के प्रकार की सूचनी मनुस्मृति[8], अग्निपुराण[9], विष्णु धर्मोत्तर[10] पुराण खण्ड–2 में भी दी गयी है। इन सभी सूचियों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि पुराण काल में विभाजन के तीन आधार थे। प्रथम, वह प्राकृतिक स्थल जहां पर दुर्ग का निर्माण किया गया जैसे– पर्वत, पठार, मैदान, नदी, जलाशय एवं सागरतट अथवा वनादि। दूसरा आधार रक्षात्मक पद्धति की विशेषता का जैसे– परिखा, प्राकार, प्राचीर, पारिध आदि। तीसरा आधार जैसे सैन्य अथवा जन उपलब्धता तथा निवास आदि थे।[11]

विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध दुर्ग प्रकारों में सर्वाधिक महत्व प्राकृतिक स्थल पर आधारित दुर्ग विभाजन पर दिया गया है, क्योंकि उनके नाम सभी ग्रन्थों में न केवल समान रूप से उपलब्ध हैं, बल्कि उनकी प्रशंसा करते हुये उन्हें विशेष महत्व भी प्रदान किया गया है। कारण स्पष्ट है कि किसी दुर्ग के अपने लक्ष्य प्राप्ति में सबसे सहायक महत्वपूर्ण उपदान उसकी स्थिति होती है। प्राचीन काल में प्राकृतिक रूप से दुर्गम स्थल जैसे पहाड़ी, वनाच्छादित अथवा जलधाराओं से अगम्य, बीहड़ आदि स्थलों को दुर्ग निर्माण के लिये सबसे अधिक उपयुक्त माना जाता था, परन्तु क्रमशः जैसे–जैसे आवश्यकतायें एवं प्राथमिकतायें बदलीं, इनके निर्माण गम्य मैदानी भागों में भी हुये।[12] उपरोक्त विश्लेषण से पूर्णतः स्पष्ट है कि दुर्ग निर्माण में स्थल और स्थिति का चुनाव अत्यधिक महत्वपूर्ण होता था। अतः आने वाले पृष्ठों में बुन्देलखण्ड में निर्मित दुर्गों का उनके निर्माण स्थलों एवं स्थिति के आधार पर विभाजन एवं विश्लेषण उपयुक्त होगा।

3.1.1 पहाड़ी दुर्ग

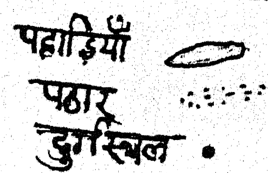
इस कोटि के दुर्ग को पर्वन दुर्ग, गिरि दुर्ग, श्रृंग दुर्ग एवं प्रान्तर दुर्ग आदि नामों से अभिहित किया गया है। दुर्ग निर्माण में इस कोटि के दुर्गों को सर्वाधिक महत्वपूर्ण

एवं विशिष्ट स्वीकार किया गया है। मत्स्य पुराण में 'सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गम् प्रशस्यते' कहकर पहाड़ी दुर्ग को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसी प्रकार मनु, कौटिल्य आदि ने भी पहाड़ी दुर्ग को श्रेष्ठ दुर्ग स्वीकार किया है।[13] शुक्रनीति के अनुसार जो दुर्ग एकान्त में पहाड़ी के ऊपरी भाग में निर्मित हो और उसमें जलाशय भी निर्मित किये गये हों, उसे गिरि दुर्ग कहा जाता है[14] ममयत् गिरिमध्यम्, गिरिपार्श्वम् गिरिशिखरम् पार्वतम् दुर्गम्[15] कहकर गिरिदुर्ग को शिखर के समीप, ढालांश अथवा उपत्यका में स्थित बताकर पुनः गिरिदुर्ग के 4 भेद कर देते हैं। ठीक इसी प्रकार मानसार में भी पर्वतावृत्त, पर्वतस्य समीपे और पर्वताग्रप्रदेशे कहकर पर्वतीय दुर्गों के तीन विशिष्ट स्थलों का निर्देश किया गया है।[16] कौटिल्य विशाल चट्टानों अथवा पर्वताकन्दराओं से युक्त दुर्ग को पर्वत दुर्ग मानते हैं।[17] यह उल्लेखनीय है कि गिरि दुर्ग में गुफाओं और कन्दराओं का महत्व अन्यत्र भी प्राप्त होता है।18 बुन्देलखण्ड का अधिकांश भाग पर्वतीय श्रृंखलाओं, श्रेणियों एवं उपत्यकाओं से परिपूर्ण है और इसके उत्तरी भू–भाग में जहां समतल मैदान है, वहां भी यत्र तत्र छोटी पहाड़ियों की स्थिति है। यद्यपि निर्मित दुर्गो में सर्वाधिक संख्या नहीं दुर्गो की है तथापि यह कहा जा सकता है कि बुन्देलखण्ड के इतिहास में यश अर्जित करने वाले लगभग सभी दुर्ग गिरि प्रान्तों में स्थित रहे। सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में स्वयं के द्वारा किये सर्वेक्षण से पहाड़ी दुर्गो की संख्या लगभग 27 आती है, जिनमें दुर्ग निर्माण में पहाड़ियों का विशेष महत्व है। यह भी उल्लेखनीय है कि अन्य बहुत से किले छोटी पहाड़ियों में स्थित है किन्तु वहां पहाड़ी के अलावा नदी अथवा तालाब जैसे दूसरे कारक भी महत्वपूर्ण हैं। इन 27 किलों में झांसी, दिगारा, कालिंजर, मड़फा, रसिन, तरौंहा, लौंडी, जैतपुर, सिंगोरगढ़, सुगरा, चरखारी, बांसी, दमोह, हिंडोरिया, सिंगोरगढ़, बरेठा, गढ़पहरा, मालथौन नरयावली, अजयगढ़, कुंडार, करैरा, भांडेर किलों के नाम लिये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त टोड़ी फतेहपुर, बटियागढ़ नोहटा, गढ़ाकोटा, राहतगढ़ पहाड़ियों पर बने हुये ऐसे दुर्ग हैं, जहां नदी भी महत्वपूर्ण कारक है। जबकि बरूआसागर, मोहनगढ़, तालबेहट में पहाड़ी के साथ तालाब भी महत्वपूर्ण है। पर्वतीय दुर्ग निर्माण में बुन्देलखण्ड में निर्माण की दो पद्धतियाँ देखने को मिलती है। प्रथम, एक ऐसी पहाड़ी को जिसका सर्वोच्च भाग में समतल

बुन्देल खण्ड

पर्वतीय दुर्गस्थल

K.M10 0 10 30 K.M



पठार तुल्य हो, ऊँची प्राचीर से घेर दिया जाना तथा द्वितीय किसी छोटी पहाड़ी को पूर्ण या आंशिक रूप से दीवाल निर्मित कर सुरक्षा प्रदान कर देना। मध्य तथा दक्षिण बुन्देलखण्ड में फैली हुयी विन्ध्यन, विजावर, पन्ना, पाठा आदि की पर्वत श्रृंखलाओं ने बुन्देलखण्ड के इतिहास में दुर्ग निर्माण को अत्यधिक प्रोत्साहित किया है। यह भी स्मरणीय है कि उस समय ये स्थल घने वनों से आच्छादित थे, अतः यहाँ सहज अगम्यता अनायास ही प्राप्त थी। ऐसे स्थलों में शासक वर्ग दुर्ग निर्माण कर स्वयं को अत्यधिक सुरक्षित कर लेते थे।

कालिंजर[19] तथा अजयगढ[20] के दुर्ग जो एक दूसरे से अधिक दूर नहीं हैं, क्रमशः कालंजर और केदार नाम की पहाड़ियों पर निर्मित हैं। इनकी ऊँचाई सामान्य तल से लगभग 300 मीटर है तथा लगभग समान हैं दोनों ही विन्ध्यन श्रेणियों के अन्तिम सिरों पर स्थित हैं। इसी प्रकार बाँदा जिले में स्थित मड़फा दुर्ग 378 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है[21], जबकि रसिन दुर्ग पुलिन्दर पहाड़ी पर स्थित है।[22] सिंगोरगढ़ ऊँचीं पहाड़ी पर झबेरा दर्रे के ऊपर बना हुआ उल्लेखनीय गढ़ है।[23] मनियागढ़ केन तट पर स्थित श्रृंखलाओं में लगभग 200 मीटर की ऊँचाई पर निर्मित किया गया था जिसने लम्बाई में पहाड़ी को घेर रखा था।[24] झाँसी बंगरा नाम की पहाड़ी पर पूर्णतः घेरकर निर्मित किया गया था[25] तथा मालथौन पहाड़ी श्रृंखला की ढलान पर निर्मित दुर्ग रहा है।[26] देवगढ़ दुर्ग भी खड़ी ढाल वाली पहाड़ी की ऊँचाई पर निर्मित किया गया था, जिसके समीप ही गहरी घाटी (गार्ज) का निर्माण करती हुयी बेतवा प्रवाहित है।[27]

चिरगॉव, बंकापहाड़ी, जैतपुर, कुलपहाड़, दमोह, बरेठा, गढ़पहरा, नरयावली आदि ऐसे दुर्ग हैं, जिन्होंने उल्लेखनीय है कि पहाड़ी दुर्गो को प्रायः वनों से भी सुरक्षा प्राप्त होती रही है, लबकि नदियों के पार्श्व भाग से भी अनेक दुर्ग लाभान्वित हुये हैं। कुण्डार[28], चरखारी, हिण्डोरिया ऐसे दुर्ग हैं जिन्हें देखकर बुन्देलखण्ड में छोटी पहाड़ियों पर दुर्ग निर्माण की शैली को अच्छी तरह समझा जा सकता है। टीकमगढ़ जिले में स्थित गढ़कुंडार एक सम्पूर्ण छोटी पहाड़ी पर बनाया गया, जो चारों ओर निकटस्थ पहाड़ियों से घिरा हुआ है। परिणामतः आगे बढ़ते हुये व्यक्ति को दुर्ग नहीं दिखाइ पड़ता है और अचानक सामने सम्पूर्णता से प्रकट होता है। गढ़कुंडार का स्थल चयन

राजस्थान के आमेरगढ़ शैली में हुआ है।[29] चरखारी का दुर्ग लम्बाई में फैली हुयी एक पहाड़ी को घेरकर बनाया गया है, जिसे मोहनगढ़ नाम दिया गया है। इस पहाड़ी का तदनुरूप दुर्ग का आकार इस प्रकार है कि इसके नीचे बने राजप्रासादों एवं नगर की सुरक्षा आसानी से की जा सकती थी।[30] लौंडी की छोटी गढ़ी लोखरी नामक पहाड़ी को घेरते हुये लम्बाई में है।[31] यहाँ धमौनी दुर्ग का उल्लेख भी आवश्यक है, यद्यपि इसके निर्माण स्थल में नदी का भी बड़ा योगदान है, किन्तु जिस प्रकार से नुकीली पहाड़ी पर इसकी स्थिति है, इसने दुर्ग को अत्यधिक अजेयता प्रदान की है।[32]

पहाड़ी दुर्ग न केवल वास्तुशिल्प वरन् रणनीति एवं सुरक्षा के दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण दुर्ग स्वीकार किये जाते रहे हैं, परन्तु इन दुर्गों की उत्तरजीविता में अनेकों कठिनाइयाँ भी थीं, जिनमें सर्वाधिक कठिनाई जल उपलब्धता की रही है। ऊँची पहाड़ियों पर निर्मित दुर्गों में विशाल सततवाही जलाशयों का निर्माण एक कठिन समस्या होती थी क्योंकि किले की घेरेबन्दी के समय पानी की कमी ही दुर्ग पतन का कारण बनती थी। उल्लेखनीय है कि जिन पहाड़ी दुर्गों के अन्दर भूमिगत जल के बड़े भण्डार थे वे पर्वत दुर्ग दीर्घजीवी रहे, उदाहरणार्थ– कालिंजर।[33]

3.1.2 नदी तटीय दुर्ग

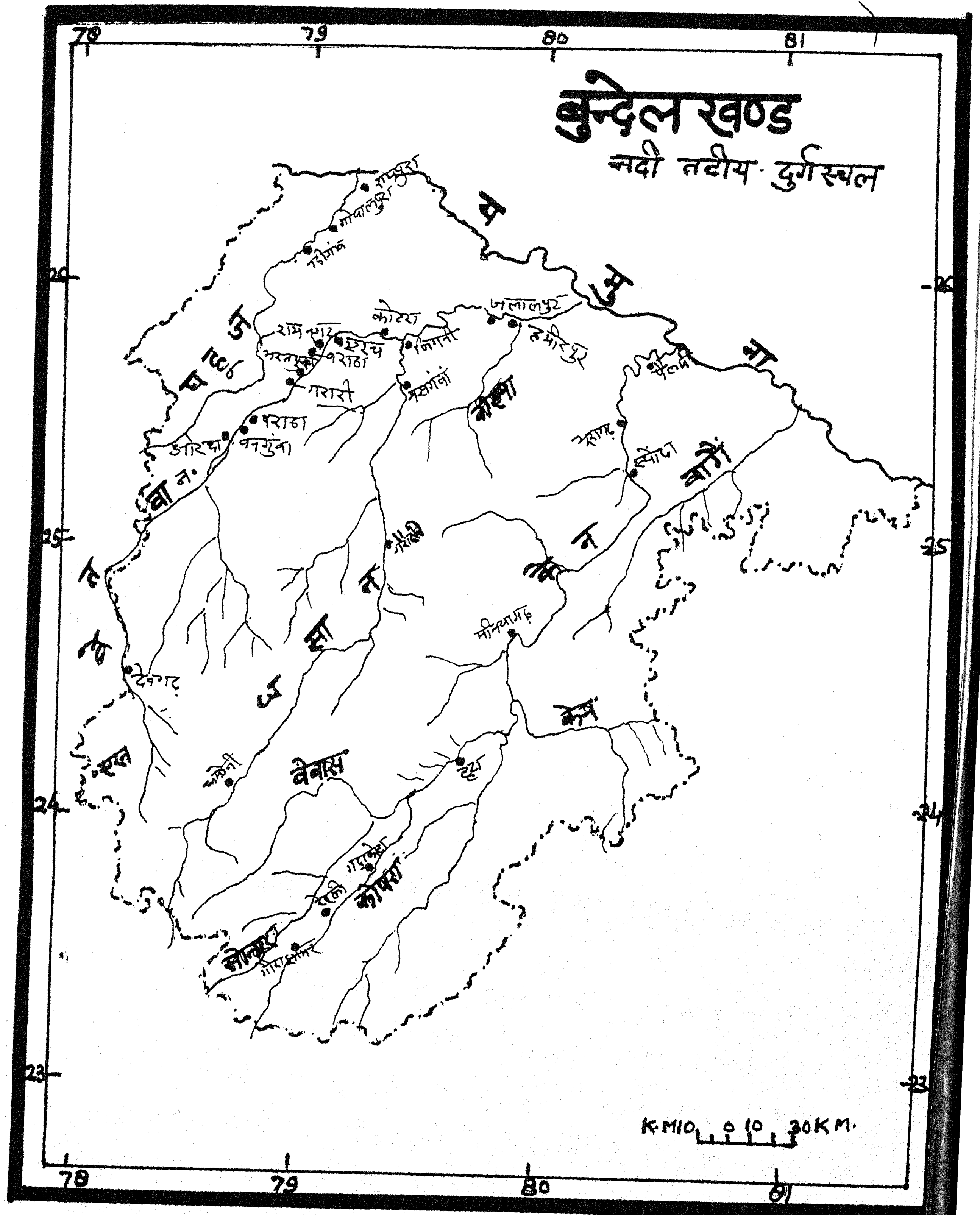
जनसमुदाय एवं सैनिकों के लिये दुर्ग में जल उपलब्धता का स्रोत सर्वश्रेष्ठ रूप से नदियाँ ही हो सकती थीं। प्राचीन काल में सामान्य रूप से नगरों के बसाव के लिये नदी तट सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। महाभारत के अनुसार नदी तट पर स्थित नगर स्वास्थ्यवर्धक एवं मंगलकारी सिद्ध होते थे। ये नगर की वृद्धि और नागरिकों के विकास में सहायक होते थे।[34] कौटिल्य का मानना है कि पुर निर्माण के लिये नदियों के संगम का उत्तम स्थल प्राप्त न हो तो इसे नदी तट अथवा पर्वत के किनारे बसाया जाय।[35] इसी प्रकार समरांगण सूत्रधार[36] 'नदीभिः पुलिनप्रान्त विंचित्रद्रुमशालिभिः' कहकर नदी तट पुर की प्रशसा करता है।

बुन्देलखण्ड जैसा कि इसके भौगोलिक परिचय में दर्शाया गया है, नदी प्रवाहों के कारण अपनी विशेष पहचान रखता है। इसकी उत्तरी सीमा का निर्माण करने वाली

यमुना नदी सबसे बड़ी नदी है, जबकि पहूज, बेतवा, केन आदि नदियाँ दक्षिण की ओर से प्रवाहित होती हुयी यमुना से मिलती हैं। बेतवा की सहायक नदियों में धसान सबसे बड़ी है। लगभग 15 अन्य सहायक छोटी नदियाँ इन नदियों का साथ देती हैं। यदि बुन्देलखण्ड के सभी दुर्ग स्थलों को उनके स्थल के आधार पर विभाजित कर दिया जाये तो लगभग 4 दर्जन किलों का निर्माण नदी तट पर हुआ है। इनमें सर्वाधिक आकर्षण स्थल बेता एवं उसकी सहायक नदियॉ रही है। बेतवा तट पर 11 दुर्ग स्थल हैं। बराठा, रामनगर, भरतपुरा, गरारी, एरच, बरेठी, बनगवाँ , कोटरा, जलालपुर, देवगढ़ एवं ओरछा बेतवा तट के दुर्ग स्थल हैं, जबकि धसान तट पर मझगवाँ जिगनी, गरौली नैगवॉ, रिबई, धमौनी स्थित है। दुर्गों की इस विशाल श्रृंखला में प्राचीन से लेकर आधुनिक काल तक दुर्गो का निर्माण किया गया है।

बेतवा तट : बेतवा तट पर निर्मित दुर्गो में देवगढ़ जो वर्तमान ललितपुर की सुदूर द0पू0 सीमा पर स्थित हैं, सबसे प्राचीन दुर्ग स्थल है, जिसके सन्दर्भ गुप्त काल से प्राप्त होते हैं।[37] देवगढ़ दुर्ग को वनाच्छादित पहाड़ी की सुरक्षा के साथ घेरती हुयी बेतवा की धार भी उपलब्ध थी। झॉसी की उत्तर पूर्व सीमा में स्थित एरच निश्चित रूप से प्राचीन दुर्ग स्थल है जिसे हिरण्यकश्यपु से सम्बद्ध किया जाता है। बेतवा की खड़ी कगार पर सुविस्तीर्ण टीले पर दुर्ग का निर्माण कराया गया था जिसके अवशेष ही बचे हैं।[38] बेतवा तक के दुर्गो में ओरछा की चर्चा प्रथमतः होनी चाहिये, जहॉ से बुन्देलों ने एक विस्तृत राज्य की स्थापना की तथा इसे बुन्देलखण्ड नाम दिया। एक विस्तृत चट्टान पर बने विशाल दुर्ग को यहॉ बेतवा अर्धवृत्त में घेरती है। बरेठी, बनगवॉ, भरतपुरा, बराठा, रामनगर और जलालपुर आदि की छोटी गढ़ियाँ बेतवा के कगारों पर निर्मित की गयी थी जिन्हें एक तरफ से बेतवा की सुरक्षा और जल प्राप्ति दोनों होती थी। इनमें से कुछ दुर्गो को नदी बीहड़ों की भी सुरक्षा प्राप्त थी।

बेतवा की सहायक धसान वतट पर निर्मित दुर्गों में धमौनी का उल्लेख महत्वपूर्ण है। यहॉ त्रिकोण पहाड़ी को धसान नदी अपनी दो धाराओं से घेरती है।[39] धमौनी का यह दुर्गस्थल रणनीतिक दृष्टि से इतना विशिष्ट है कि 4 दिसम्बर 1835 को यहाँ पहुँचे



बुन्देल खण्ड
नदी तटीय · दुर्गस्थल
78
79
80
81
24
25
23
जलालपुर
हमीरपुर
कोटरा
रामनगर
गरारी
ओरछा
देवगढ़
बेनास
मनियागढ़
K.M10 0 10 30KM.

स्लीमैन ने लिखा– "यहाँ एकमात्र असाधारण वस्तु भत्य किला है जो विन्ध्य पर्वत श्रेणी के एक छोटे नुकीले भाग पर निर्मित है। दोनों ओर दो अत्यधिक गहरी खाइयाँ हैं, जिनके बीच से धसान नदी की दो शाखायें उच्च समभूमि से निकलकर बुन्देलखण्ड के मैदान में बहती हैं। सूर्य की किरणें इन गहरी खाईयों के तल पर शायद ही पहुँच पाती हो।"[40] धमौनी का यह दुर्ग गोंडों मुस्लिमों और बुन्देलों के अनेक युद्धों का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। धमौनी के अतिरिक्त नैगवाँ, गरौली, जिगनी और मझगवाँ में धसान तट पर छोटी गढ़ियों का निर्माण विशेष रूप से बुन्देला काल में किया गया। ये गढ़ियाँ प्रायः नदी के बीहड़ों पर बनी है, जिनमें नैगवॉ रिबई के बीहड़ दर्शनीय हैं।[41]

केन नदी तट : केन तट पर स्थित 5 दुर्गस्थल मनियागढ़, रनगढ़, भूरागढ़, स्योढ़ा तथा जसपुरा हैं। मनियागढ़ पर्वत श्रृंखलाओं पर स्थित चन्देलों का विशिष्ट स्थल है, जो केन नदी के उद्गम स्थल से प्रथम दुर्ग हैं।[42] रनगढ़ दुर्ग केन नदी की धारा में स्थित एक विशिष्ट दुर्ग है। केन नदी की धारा में स्थित रनगढ़ दुर्ग नदी प्रवाह की दिशा में एक बालुका स्तूप बनाता है। रनगढ़ दुर्ग की पश्चिमी दीवाल ही पूर्णतया सुरक्षित बची है। स्योंढ़ा दुर्ग केन के तट पर एक छोटी पहाड़ी खत्री के अन्तिम सिरे पर निर्मित मुस्लिम शासकों का स्थल रहा है। दुर्ग के बिखरे खण्डहरों से दुर्ग का वास्तविक सीमांकन करना एक दुष्कर कार्य है। भूरागढ़ दुर्ग बाँदा नगर के विपरीत तट पर ऊंचे कगार पर बना हुआ बुन्देला दुर्ग है, जिसका पूर्वी भाग सुरक्षित है। जसपुरा में एक छोटी गढ़ी कभी हुआ करती थी। केन तट के ये पाँचों दुर्ग प्रायः खण्डहरों में परिवर्तित हो चुके हैं।[43]

बुन्देलखण्ड की पश्चिमी सीमा पर प्रवाहित नदी पहूज पश्चिमी मार्गो का अवरोध करती थी, इसलिये इसके तट पर निर्मित गोपालपुरा, रामपुरा, सिरसागढ़, नदीगाँव तथा मऊ के दुर्ग यद्यपि छोटे रहे हैं, परन्तु सदैव महत्वपूर्ण रहे हैं। ये दुर्ग नदी के दोनों तटों पर बनाये गये थे। उल्लेखनीय है कि इनकी स्थिति उत्तरी झाँसी जिला, जालौन और दतिया जिले नदी तटीय बीहड़ों में है। पहूज के प्रारम्भिक प्रवाह में किलों का निर्माण न होना तथा उत्तर प्रवाह में 5 किलों के निर्माण होने के पीछे सम्भवतः उत्तर

भाग में नदी में पर्याप्त जल होना रहा होगा। पहूज तट के दुर्गो में सिरसागढ़ चन्देल काल तथा मऊ प्रारम्भिक बुन्देला काल का है। शेष किले बाद के हैं। सोनार तथा सुखनई ये दो महत्वपूर्ण नदियाँ हैं, जिनके तट पर 7 दुर्गस्थल मौजूद हैं। सोनार तट पर हटा, नरसिंहगढ़, रहली और गढ़ाकोटा हैं, जबकि सुखनई तट पर टोड़ी फतेहपुर दुर्गो में गढ़ाकोटा, नरसिंहगढत्र और टोड़ी फतेहपुर के दुर्ग विशेष उल्लेखनीय हैं। हटा और रहली भी प्रसिद्ध स्थान रहे हैं। मऊरानीपुर और महेवा–नुना की गढ़ियाँ समाप्त हो चुकी हैं। छोटी नदियों में बीना नदी की चर्चा भी उल्लेखनीय है जिसके तट पर एरन और राहतगढ़ है।[44] राहतगढ़ का दुर्ग आज भी दर्शनीय एवं अनेकों घटनाओं का साक्षी है, जबकि एरन सम्भवतः इस क्षेत्र की प्राचीन गुप्तकालीन राजधानी थी।

अन्य : यमुना नदी के दक्षिण तट पर केवल एक ही प्रसिद्ध स्थान कालपी स्थित है, जिसके दुर्गावशेष एक ऊँची कगार पर दीवार के रूप में देखने को मिलते हैं[45] किन्तु निश्चय ही इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण स्थान रहा। जगम्मनपुर का किला यमुना तट से कुछ दूरी पर स्थित है।[46] यमुना के दक्षिण तट पर दुर्गो का निर्माण न होना एक आश्चर्यजनक तथ्य है, जिसका कारण सम्भवतः यह रहा होगा कि गंगा के मैदान के आक्रमणकारियों से उनके इतने समीप लोहा लेना बुन्देलखण्ड के शासक उचित नहीं मानते रहे होंगे। नदी तट के अन्य दुर्ग स्थलों में शहजाद तट पर ललितपुर, जामनी पर कैलगुवाँ, सिलमार पर मऊ–सहानियाँ, बेंक या झूसी तट पर बटियागढ़, पातर तट पर फतेहपुर, सुखचैन पर देवरी, देहार पर रामगिर, बेबसी पर सानौधा तथा सिन्ध तट पर स्योंढ़ा (दतिया) के दुर्ग स्थल स्थित हैं। इनमें बटियागढ़ तथा नोहटा के दुर्ग महत्वपूर्ण रहे हैं।

संगम स्थल : दो नदियों के संगम स्थल पर दुर्ग निर्माण और नगर बसाव को शास्त्रीय पद्धति में सबसे अधिक महत्व दिया गया है। अपराजित पृच्छा में 'नदी नाम संगमेषु' कह कर यह निर्देश दिया गया है कि संगम तट बसाव के लिये सबसे प्रशस्त भूमि है।[47] इसी प्रकार कौटिल्य ने भी भरसक नदियों के संगम पर नगर निर्माण की अनुशंसा की है– 'वास्तुकप्रशस्ते देशे नदी संगमे'[48] निश्चय ही नदी संगमों पर स्थित

दुर्ग अति सुरक्षित होते थे किन्तु आगे चलकर गमनागमन अवरोध के कारण यहाँ की बस्तियाँ अधिक विकसित नही हो सकीं। अध्ययन क्षेत्र में 6 दुर्गस्थल ऐसे हैं, जो दो नदियों के संगम स्थल पर स्थित हैं। हमीरपुर यमुना व बेतवा, जिगनी बेतवा व धसान, नोहटा व्यरमा व गुरूया, एरन बीना एवं रेवता, गढ़ाकोटा गधेरी व सोनार, रहली सोनार एवं देहार नदियों के संगम स्थल पर स्थित हैं। इनमें एरन, गढ़ाकोटा एवं रहली अपने समय में महत्वपूर्ण थे।

बुन्देलखण्ड की नदियाँ दक्षिण के पहाड़ी एवं पठारी भाग से निकलकर उत्तर की ओर प्रवाहित होती हैं और अन्त में अपने साथ लायी गयी मिट्टी से निक्षेपित उपजाऊ एवं विस्तृत मैदान का निर्माण करती हैं। यह मैदान इन नदियों के दो आबों में विभाजित है जिसमें एक विशिष्ट काल में दुर्ग निर्माण की परम्परा को प्रश्रय दिया।[49]

जलाशय तटीय दुर्ग : बुन्देलखण्ड अर्धशुष्क जलवायु का क्षेत्र है। अतः यहाँ जलापूर्ति समस्या सदैव से विद्यमान रही है। यही कारण है कि बुन्देलखण्ड की जनकल्याणकारी सत्ताओं ने क्षेत्र में विशाल जलाशयों के निर्माण को अत्यधिक महत्व दिया, जिसमें चन्देलों और बुन्देलों की सत्ता प्रशंसनीय रही है। तालाबों का यह क्षेत्र बुन्देलखण्ड के धरातलीय संक्रमण क्षेत्र में जहाँ पठार एवं पहाड़ियों का अन्त होता है और मैदान प्रारम्भ होता है, लगभग 24^0 30′ से 25^0 3′ उत्तर अक्षांश के मध्य स्थित है। यहाॅ जलाशय निर्माण की सबसे आदर्श परिस्थितियाॅ मौजूद रही है।[50] चन्देलों और बुन्देलों द्वारा निर्मित जलाशयों में अनेक तो इतने विशाल है कि उनके नाम के साथ 'सागर' शब्द जुड़ गया है। जैसे उ0प्र0 बुन्देलखण्ड में कीरतसागर, मदनसागर, विजयसागर, राहिलसागर, बरूआसागर तथा म0प्र0 बुन्देलखण्ड में राधासागर, ग्वालसागर, महेन्द्रसागर आदि।[51]

छोटी पहाड़ी पर स्थित महोबा दुर्ग को मदनसागर और कीरतसागर जैसे विशाल तालाबों का आश्रय प्राप्त था, यद्यपि आज दुर्ग के अवशेषों में एक चन्देलकालीन बारादरी शेष है।[52] इसी प्रकार लम्बी पहाड़ी पर स्थित चरखारी दुर्ग के नीचे पाँच विशाल तालाब मौजूद हैं। वर्तमान समय में भारतीय थल सेना द्वारा अधिकृत चरखारी

दुर्ग के अनेक भाग सुरक्षित हैं। प्रसिद्ध जैतपुर दुर्ग जो 1857 की क्रान्ति का गवाह है, बेलाताल नामक विशाल जलाशय के किनारे छोटी पहाड़ी पर स्थित है।[53] टीकमगढ़ दुर्ग महेन्द्रसागर नामक विशाल तालाब के तट पर स्थित है जबकि इसी जिले में जतारा और बलदेवगढ़ की गढ़ियाँ क्रमशः मदनसागर और ग्वालसागर नामक तालाब के निकट हैं मोहनगढ़ में भी एक विशाल तालाब है। बरूआसागर दुर्ग एक छोटी पहाड़ी के ढाल पर बरूआसागर नामक विशाल तालाब के तट पर बना हुआ है। इसी प्रकार तालबेहट दुर्ग जिस लम्बी पहाड़ी निर्मित है, उससे सटा हुआ एक विशाल तालाब है।[54] मेहरौनी की गढ़ी नैनसुख सागर के तट पर थी और बड़ौनीखुर्द दुर्ग के समीप रामनगर तालाब था। गढ़ोला, हीरापुर और पिठोरिया की गढ़ियाँ भी बड़े तालाबों के निकट ही निर्मित हुयी। और यह भी शोध का विषय है कि बुन्देलखण्ड में इन दुर्गो के कारण विशाल तालाबों का निर्माण हुआ है या इन विशाल तालाबों ने किलों को आश्रय प्रदान किया है।[55]

3.1.3 मैदानी दुर्ग

समतल एवं कृषि योग्य मैदान जनसंख्या को सदैव आकर्षित आकर्षित करते रहे हैं, अतः विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों में जनबसाव के दृष्टिकोण से ये सदैव महत्वपूर्ण रहे हैं। यद्यपि पहाड़ी, नदी जैसी प्राकृति सुरक्षा इन मैदानों में उपलब्ध नहीं थी, तथापि जनबसाव, खाद्यान्न उत्पादन आदि ने इन मैदानों में शासकों को दुर्ग–निर्माण के लिये प्रोत्साहित किया। दुर्ग दुर्गम स्थलों पर निर्मित करने की परम्परा रही है, जबकि जनसंख्या का केन्द्रीकरण उपजाऊ मैदानों में होता रहा है। इस दृष्टिकोण से मैदानी क्षेत्रों में दुर्गो का निर्माण होते भी दूसरे कारक से अधिक प्रभावी प्रतीत होता है, तथापि उत्तर भारत के मैदानी भाग में चली दुर्ग परम्परा बुन्देलखण्ड में भी देखने को मिलती है।[56]

बुन्देलखण्ड का उत्तरी भू–भाग, यहाँ प्रवाहित नदियों के निक्षेपण से बना हुआ समतल मैदान है। जालौन, हमीरपुर के अलावा झाँसी, महोबा तथा बाँदा जिलों के उत्तरी भाग इस मैदान के अन्तर्गत आते हैं।[57] उत्तरी मैदान अतिरिक्त दक्षिण के पहाड़ी

तथा पठारी भू–भाग की संक्रमण पट्टी में भी अनेक छोटे छोटे मैदान स्थित हैं, जहाँ विभिन्न कालखण्डों में अनेक गढ़ियों एवं किलों का निर्माण होता रहा है। अध्ययन क्षेत्र में ऐसे दुर्ग स्थल जिनका निर्माण मैदानी भू–भागों में हुआ है, की संख्या लगभग 50 है। मैदानी स्थल के दृष्टिकोण से बड़ागाँव, मोंठ, समथर, दुरबई, भसनेह गरौठा, टहरौली (जनपद–जालौन), सुमेरपुर, मौदहा (जनपद–हमीरपुर), छतरपुर, खिमलासा, खजुराहो (जनपद–छतरपुर), लिधौरा, परेरा (जनपद–टीकमगढ़), बानपुर एवं दतिया को सम्मिलित किया जा सकता है। इस सूची में समथर, उरई, कोंच, मौदहा, बानपुर, दतिया, खिमलासा के दुर्ग ऐसे रहे हैं, जिन्होंने इतिहास में अपने हस्ताक्षर अंकित किये हैं। वर्तमान में उरई, कोंच तथा मौदहा के दुर्ग अदृश्य हो चुके हैं, जबकि बानपुर, खिमलासा तथा लिधौरा के दुर्ग खण्डहर में खण्डहर में परिवर्तित हो चुके हैं। समथर दुर्ग उपजाऊ समतल मैदान में लगभग वृत्ताकार आकार का बना हुआ है, जबकि दतिया का दुर्ग मैदान में स्थित है, परन्तु चट्टानी स्थल पर निर्मित है। टूट जाने के बाद भी अमरगढ़, कटेरा, भसनेह, टहरौली, माधवगढ़, राजनगर, पलेरा आदि स्थलों की गढ़ियाँ शोधार्थियों के लिये आकर्षण का केन्द्र हो सकती हैं। बानपुर दुर्ग ऊँचे टीले पर निर्मित था, जो 1857 की क्रान्ति में ध्वस्त कर दिया गया।

मैदानी भाग में दुर्ग निर्माण के समय स्थल के रूप में किसी ऊंचे टीले का चयन किया जाता था। यदि इस प्रकार का स्थल उपलब्ध नहीं है, तो समतल मैदान में मिट्टी को इकट्ठा करके दुर्ग निर्माण के लिये उच्च पृष्ठभूमि तैयार की जाती थी। प्राचीन ग्रंथों में उल्लेख है कि परिखा निर्माण के समय जो मिट्टी निकलती थी, उससे इस ऊंची पृष्ठभूमि को तैयार किया जाय।[58] 'परिखात्खातया मृदा' कहकर समरांगण सूत्रधार भी इसका समर्थन करता है।[59] इस मिट्टी को एकत्रित करने जो विशाल चबूतरा तैयार होता था, उसको पशुओं विशेषकर हाथियों के द्वारा अच्छी तरह से दबाया जाता था।[60] इस चबूतरे का आकार–प्रकार और ऊंचाई दुर्ग के आकार प्रकार पर निर्भर करती थी। 36 फुट ऊंचे कृत्रिम टीले निर्मित कर दुर्ग निर्माण के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[61] यहाँ अवश्य उल्लेखनीय है कि मैदानी भागों में मिट्टी के किलों के भी सन्दर्भ प्राप्त होते हैं जैसे– औगासी और सुमेरपुर। मैदानी किलों के प्राचीर सीधे और

सुगढ़ बनते थे। बस्तियों को नगर प्राचीर से घेरने की परम्परा भी मैदानी हिस्सों में देखने को मिलती है। झाँसी और दतिया नगर इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। चिरगाँव भी कभी नगर प्राचीर से घिरा था।[62]

3.1.4 बीहड़ दुर्ग

कुछ नदियाँ विशिष्ट धरातलीय एवं मृदा पृष्ठभूमि में अत्यधिक कटाव करती हैं, गमनागमन में बाधक होती हैं, बल्कि डरावने एवं बस्तियों की दृश्यता में भी बाधक होती हैं, उदाहरणार्थ– भारत में चम्बल के बीहड़ अधिक प्रसिद्ध हैं। बुन्देलखण्ड की नदियों ने भी कुछ स्थलों पर बीहड़ का निर्माण किया है, यद्यपि न तो ये बहुत अधिक विस्तृत हैं और न ही ये संख्या में अधिक हैं। इन बीहड़ों में दुर्ग निर्माण के लिये स्थल का चुनाव किसी ऊंचे स्थान पर किया जाता था, जिससे न केवल शत्रु दूर से दिखाइ पड़ जाता था बल्कि शत्रु को दुर्ग तक पहुंचने में अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता था। बीहड़ के कटावों से अच्छी तरह से परिचित दुर्ग सैन्य शक्ति शत्रुओं पर गुरिल्ला युद्ध को थोप देती थी।[63]

बुन्देलखण्ड में कालपी और हमीरपुर के प्रसिद्ध दुर्ग यमुना के बीहड़ों में नदी तट पर स्थित रहे हैं। इसी प्रकार एरच दुर्ग भी बेतवा के बीहड़ों में निर्मित दुर्गो में श्रेष्ठ रहा है।[64] नदीगाँव, सिरसागढ़ एवं रामपुरा की गढ़ियाँ पहूज नदी के बीहड़ों में स्थित हैं, जिनमें नदीगाँव और रामपुरा की गढ़ियाँ अभी भी अच्छी स्थिति में है। जिगनी एवं नैगवाँ रिबई धसान के बीहड़ों पर, जसपुरा केन बीहड़ तथा देवरी सुकचैन नदी के बीहड़ों पर स्थित स्थल हैं, जहाँ पर कभी छोटे दुर्गो के निर्माण किये गये थे, परन्तु यह सभी ध्वस्त हो चुके हैं। बीहड़ दुर्गों के निर्माण में यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि नदियों को पार करने के लिये जो सुपरिचित घाट होते थे, यदि उनके निकट बीहड़ स्थित है, तो वहाँ दुर्ग निर्माण को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। उदाहरण के तौर पर कालपी को उद्धृत किया जा सकता है जिसे 'गेटवे ऑफ बुन्देलखण्ड' कहा जाता है।[65] ठीक इसी प्रकार जालौन से महोबा के मार्ग में बेतवा और धसान को पार करने के लिये

एरच और जिगनी के घाटों पर प्रतिरोध के लिये वहाँ स्थित बीहड़ों में दुर्ग निर्माण बुन्देलखण्ड के शासकों का रणनीतिक चातुर्य था।

बुन्देलखण्ड की दुर्ग निर्माण परम्परा में बीहड़ दुर्ग अधिक महत्वपूर्ण नहीं रहे हैं।

3.1.5 पठारी या ऊँचे टीले पर स्थित दुर्ग

चूँकि दुर्ग निर्माण स्थल ऊँचाई पर चयनित करने की परम्परा रही है, इसलिये मैदानी भागों में स्थित ऊँचे टीले अथवा अपधर्षित पहाड़ियाँ, जो देखने में कठोर चट्टानी पठारी स्वरूप की होती थी, दुर्ग निर्माण के लिये अच्छे स्थल के रूप में चुने जाते थे।[66] पूर्व वर्णित पर्वतीय दुर्गो के खण्ड में अनेक ऐसे छोटे दुर्ग और गढ़ियॉ हैं, जो कम ऊँची और अपद्यर्षित पहाड़ियों पर बने हैं, कि वस्तुतः उन्हें पठारी दुर्ग की श्रेणी में रखा जाना चाहिये। इन स्थलों में निर्मित किलों या गढ़ियों का यह लाभ होता था कि समीपवर्ती खेतिहर मैदानों के किसानों और व्यापारियों पर शासकीय दृष्टि आसानी से रखी जा सकती थी। इन्हें मैदानी क्षेत्र के किले की कहना चाहिये क्योंकि उत्तर के मैदान में बिखरे चत्र–तत्र चट्टानी हिस्सों में इन्हें निर्मित किया गया था। लोहागढ़, अमरगढ़ बंकापहाड़ी और चिरगाँव के छोटे दुर्ग ऐसे ही पथरीले टीलों पर बने हुये हैं। कटेरा, डिमरौनी के किले भी पहाड़ी चट्टानों पर ही निर्मित किये गये हैं जबकि महेवा, राजनगर और गुरसराय के दुर्गो का निर्माण प्राकृतिक रूप से ऊँचे मिट्टी के टीलों पर किया गया था। अतः ये दुर्ग किसी भी प्रकार की प्राकृतिक सुरक्षा को प्राप्त नहीं करते। परिणामः इन दुर्गो को अति सुरक्षित नहीं माना जा सकता। यही कारण है कि सुरक्षा को मजबूत करने के लिये कई स्थलों पर एक से अधिक प्राचीर अथवा खाइयाँ निर्मित देखी जा सकती हैं।[67]

3.1.6 वन दुर्ग

घने वनों के मध्य सुरक्षा को दृष्टिगत करते हुये निर्मित किये गये दुर्गो को वन दुर्ग की संज्ञा दी जाती है। परिणामतः इस प्रकार दुर्ग ऐसे क्षेत्रों में स्थित होते थे जहाँ बस्तियाँ विरल होती थीं मुख्य बिन्दु होता था। बुन्देलखण्ड का दक्षिण पर्वतीय एवं

पठारी भाग, जो अनेक नदियों के द्वारा क्षतविक्षत भी है, प्राचीन काल में वनों से भरा हुआ था। अतः इस क्षेत्र में निर्मित अधिकांश दुर्गों को वन्य दुर्गमता सहज ही सुलभ हो जाती थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वन्य दुर्ग के रूप में रंखांकित किये जा सकने वाले सभी दुर्ग या तो पहाड़ी या किसी नदी के किनारे स्थित हैं।[68] अतः मूल रूप से उन्हें पर्वतीय या नदी तटीय दुर्ग ही कहा जाना चाहिये। पिछले पृष्ठों में इनकी चर्चा की जा चुकी है। इस प्रकार दुर्गों में धमौनी, मनियागढ़, देवगढ़, कालिंजर, मड़फा, अजयगढ़, रसिन, सिंगोरगढ़, राहतगढ़, बटियागढ़, देवरी और बनगवाँ के किलों को पूर्व में सघन वन आश्रय प्राप्त था। इनमें से अजयगढ़, सिंगोरगढ़ राहतगढ़, देवगढ़, धमौनी और मड़फा में वर्तमान में भी पर्याप्त जंगल मौजूद है। इन दुर्ग क्षेत्रों में बड़े तथा घने वृक्षों वाले जंगल के साथ–साथ कटीली झांड़िया बहुतायत में रहती थी, जिनके कारण गमनागमन बाधित होता था। धमौनी, मनियागढ़, देवगढ़, राहतगढ़ और बटियागढ़ नदी तट में पहाड़ियों पर बने हुये दुर्ग हैं जबकि कालिंजर, मड़फा, रसिन तथा अजयगढ़ जंगलों के मध्य पहाड़ी पर स्थित थे। बनगवाँ की छोटी गढ़ी जो अब अदृश्य हो गयी है, सघन वन के कारण ही बनगवाँ कही जाती थी।

3.1.7 बहुआयामी स्थल वाले दुर्ग

दुर्ग निर्माण का सिद्धान्त दुर्गमता से सुरक्षा प्राप्त करने के विचार पर टिका हुआ सिद्धान्त है। इसलिये प्राकृतिक रूप से दुर्गम स्थलों पर किले का निर्माण कर शासक लोग सुरक्षा प्राप्त करते थे। स्वाभाविक रूप से पर्वत, नदी, वन जैसे प्राकृतिक दुर्गमता वाले स्थलों को इसके लिये चयनित किया जाता था। यदि इन प्राकृतिक स्थलों में से कोई ऐसा स्थल प्राप्त हो, जिसमें एक से अधिक प्राकृतिक आधार सुलभ हों, तो निश्चय ही वह दुर्ग निर्माण के लिये श्रेष्ठ स्थल स्वीकार किया जायेगा। इस दृष्टिकोण से जब बुन्देलखण्ड के दुर्ग स्थलों का विश्लेषण किया जाता है तो यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि लगभग 50 प्रतिशत किले एक से अधिक आकर्षण रखते हैं। इस प्रकार के किलों को बहुआयामी स्थल वाले दुर्ग कहना समीचीन होगा। बहु आयामों में पहाड़ी, नदी एवं वन तथा पहाड़ी एवं नदी, पहाड़ी एवं तालाब; नदी एवं वन तथा नदी एवं

बीहड़ लोकप्रिय बहु आयाम रहे हैं। नदी, वन तथा पहाड़ी तीनों की उपस्थिति में निर्मित दुर्गो में धमौनी, देवगढ़, मनियागढ़, ओरछा और सिंगोरगढ़ को विशेष रूप उद्धृत किया जा सकता है। इन सभी दुर्गो ने अपने वैभव काल में न केवल शत्रुओं से सुरक्षा प्राप्त की वरन अपनी निर्माण शैली में भी प्रशंसा प्राप्त की है। 4 दिसम्बर 1835 को धमौनी दुर्ग को देखकर स्लीमैन ने लिखा कि यहाँ एकमात्र असाधारण और भव्य वस्तु यह दुर्गम किया है।[69] देवगढ़ पहाड़ी से नीचे गहरे ढाल, वक्र बेतवा, घने जंगल से न केवल सुरक्षा प्राप्त करता था, वरन एक मनोहारी दृश्य भी प्रस्तुत करता था।[70] यही स्थिति मनियागढ़ और सिंगोरगढ़ की भी है। टोड़ी फतेहपुर, ओरछा, रामगिर, नरसिंहगढ़, राहतगढ़ तथा बटियागढ़ जैसे दुर्गो को पहाड़ियों के अतिरिक्त छोटी नदियों का भी आश्रय प्राप्त था। बरूआसागर, तालबेहट, मोहनगढ़ और महोबा के दुर्ग पहाड़ियों के अतिरिक्त विशाल तालाबों का भी आश्रय प्राप्त करते थे। बुन्देलखण्ड के दुर्गो के द्वय आयामों में दूसरा महत्वपूर्ण आयाम नदी या विशाल तालाब परिलक्षित होता है। स्पष्टतया इसका कारण सुरक्षा के साथ जल उपलब्धता रही है।[71]

दुर्ग निर्माण के लिये स्थल का चुनाव किसी भी शासक के लिये महत्वपूर्ण कला होती थी। प्राचीन ग्रंथों में दुर्ग निर्माण स्थल चयन के लिये ज्यातिषियों, वास्तुशिल्पकारों, रणनीतिज्ञों के अतिरिक्त धर्मगुरूओं से भी परामर्श किया जाता था। वास्तुशिल्प में स्थलों का तुलनात्मक महत्व उपलब्ध है। किसी भी शासक के लिये अपने राज्य क्षेत्र में दुर्ग स्थल चयन करते समय शत्रुओं के आक्रमण मार्गो का भी विशेष ध्यान रखना पड़ता था। राज्य की केन्द्रीय राजधानी के अतिरिक्त राज्य सीमाओं में प्रतिरोधात्मक शक्ति के प्रतीक स्वरूप किलों और गढ़ियों का निर्माण कराया जाता था। वांछित क्षेत्र में इतने अधिक तथ्यों को ध्यान में रखते हुये उपयुक्त स्थल का चुनाव निश्चय ही एक जटिल प्रक्रिया होती थी, जिसके परिणाम को सहस्त्रों वर्षो बाद जनसमुदाय उस राजा के सौभाग्य या दुर्भाग्य के तराजू में तौलता था।

3.2 दुर्ग की स्थिति

बुन्देलखण्ड एक ऐतिहासिक क्षेत्र के साथ ही एक भौगोलिक इकाई भी है। इस शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में यह चर्चा की जा चुकी है कि लम्बी अवधि तक समीपवर्ती प्रदेशों के शासक यहाँ शासन करते रहे। जब कुछ राजवंशों ने बुन्देलखण्ड को अपना क्षेत्र स्वीकार किया और इसे केन्द्र मानकर सत्ता स्थापित की तब रक्षात्मक केन्द्रों के रूप में दुर्गो की स्थिति पर विचार किया गया होगा। दुर्ग की स्थिति किस क्षेत्र में हो, इसके पीछे कई कारक कार्य करते हैं। नदी, पहाड़ियों, वन पेटियाँ आदि भौगोलिक तथ्य क्षेत्र को कुछ प्रतिरक्षा जोन में विभाजित करते हैं तथा इन प्रतिरक्षा क्षेत्रों की माँग के अनुसार दुर्ग निर्माण होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक शासन सत्ता अपनी राज्य सीमाओं पर दृढ़ दुर्गो की अर्गला चाहती है, जिससे राज्य को सुरक्षित किया जा सके। बुन्देलखण्ड में छोटे राजवंशों के सीमित क्षेत्र रहे हैं जैसे– कलचुरि, डाहर, पश्चिमी बुन्देलखण्ड, उत्तरी मैदानी बुन्देलखण्ड आदि।[72] क्षेत्रीय शासक अपने शासन में आवश्यकतानुसार दुर्ग निर्माण के लिये क्षेत्र सुनिश्चित करते थे। यह भी उल्लेखनीय है कि कालक्रमानुसार बुन्देलखण्ड के दक्षिणी और उत्तरी भागों में दुर्ग निर्माण की गति एवं संख्या में अंतर दिखाई पड़ता है।[73] इन सन्दर्भो में बुन्देलखण्ड में दुर्गो की क्या स्थिति रही है, इसका विश्लेषण यहाँ समीचीन होगा।

बुन्देलखण्ड में दुर्गो की क्षेत्रीय स्थिति का विश्लेषण करने के लिये इसकी ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से बुन्देलखण्ड के सीमावर्ती राज्यों का यदि अवलोकन किया जाय तो स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में बुन्देलखण्ड के उत्तर कौशाम्बी, उत्तर पश्चिम मे हस्तिनापुर, पश्चिम में गोणाद्रि एवं पुष्पावती, दक्षिण पश्चिम में उज्जयिनी, दक्षिण में त्रिपुर, दक्षिण–पूर्व में विदर्भ और उत्तर पूर्व में मगध राज्य स्थित थे। जो मित्र और शत्रुभाव से बुन्देलखण्ड क्षेत्र को प्रभावित करते रहे हैं। परवर्ती काल में कन्नौज, आगरा, ग्वालियर, नरवर, विदिशा, जबलपुर, रीवा, कड़ा एवं प्रयाग के राज्य बुन्देलखण्ड को बाहर से प्रभावित करते थे, जिनका प्रभाव बुन्देलखण्ड क्षेत्र के दुर्ग निर्माण एवं वितरण

पर स्पष्ट रूप से पड़ा।[74] इसी प्रकार भौगोलिक रूप से दक्षिणी पहाड़ी एवं पठारी क्षेत्र, मध्य का संक्रमणीय क्षेत्र एवं उत्तर के मैदानी क्षेत्र ने, जिन्हें पुनः कई उप विभागों में बाँटा जा सकता है, दुर्ग निर्माण की क्षेत्रीय स्थितियों को प्रभावित किया। दक्षिण से उत्तर की प्रवाहित होने वाली नदियों ने बुन्देलखण्ड को आन्तरिक रूप से रक्षात्मक खण्डों में विभाजित किया और इनकी सीमाओं पर दुर्ग निर्माण कर सुरक्षा को प्रखरता प्रदान की गयी। इन ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दोनों कारकों के समन्वित प्रभाव को देखते हुये अलग–अलग ऐतिहासिक कालखण्डों में दुर्ग निर्माण की दशा और दिशा को भी रेखांकित किया जा सकता है। इन सभी को ध्यान में रखते हुये आगे के पृष्ठों में बुन्देलखण्ड में दुर्गों की स्थिति को तीन प्रमुख भागों में विभाजित कर विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

3.2.1 क्षेत्रीय वितरण

बुन्देलखण्ड के धरातल, जलवायु एवं मुदा को संदर्भित करते हुये बुन्देलखण्ड को तीन प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है। पुनश्च इसके फिर अनेक उप विभाग हो सकते हैं।[75] इन भौगोलिक कारकों ने समग्र रूप से विभाजित विशिष्ट क्षेत्रों में ऐतिहासिक कारकों के प्रभाव के साथ दुर्ग निर्माण को प्रभावित किया। अतः इन्हीं क्षेत्रों में विभाजित कर दुर्ग निर्माण के क्षेत्रीय वितरण को देखा जा सकता है।

दक्षिणी बुन्देलखण्ड उच्च नदी बेसिन– दक्षिणी बुन्देलखण्ड का पहाड़ी एवं पठारी वह उच्च भू–भाग है जिसमें धसान है, केन, सोनार आदि नदियाँ अपनी प्रारम्भिक अवस्था में हैं तथा अनेक छोटी नदियों एवं नालों से यह क्षेत्र कटा फटा हुआ है।[76] इस क्षेत्र को दक्षिण में कलचुरियों और गोंडों के तीव्र प्रभाव को झेलना पड़ा है। मालवा की ओर से आने वाली सैन्य शक्तियों का प्रतिरोध सहना पड़ा है। कई बार उत्तर–पूर्व की ओर से बघेलखण्ड के राजाओं ने भी इस क्षेत्र को अपना निशाना बनाया है। दक्षिण में स्थित नर्मदा नदी घाटी क्षेत्र से अलग इसका जल प्रवाह उत्तर और उत्तर पूर्व की ओर है, अतः दक्षिण की ओर से आने वाली राजनीतिक हर्म हवाओं से प्रभावित होने

वाला बुन्देलखण्ड का यह पहला क्षेत्र है। दक्षिण के इस उच्च बेसिन को पुनः तीन भागों में विभाजित कर देखा जा सकता है।

अ) सागर पठार : उच्च बेसिन का यह पश्चिमी भाग है और मालवा से सीधा जुड़ा हुआ है। एरण प्राचीन काल में मालवा की ओर से बुन्देलखण्ड का प्रमुख द्वार था, जिसका दुर्ग अब नष्ट हो चुका है, किन्तु अनेक महत्वपूर्ण पुरातात्विक रचनायें यहॉ अभी भी उपलब्ध हैं। एरण में पुरातात्विक अवशेष गुप्तकाल से प्राप्त होते हैं फिर भी यहाँ से प्राप्त सिक्कों से ज्ञात होता है कि ईसा पूर्व काल में भी यह स्थान आबाद था।[77] एरण की वाराह मूर्ति, स्तम्भ एवं अन्य मूर्तियाँ महत्वपूर्ण पुरातात्विक सम्पत्ति हैं। सागर पठार में धमौनी दुर्ग सर्वाधिक महत्वपूर्ण दुर्ग माना जा सकता है, जो इस क्षेत्र के उत्तरी भाग में एक ऊँची पहाड़ी पर धसान नदी की दो धारों के बीच गहरी खाइयों के मध्य स्थित है। धमौनी का वर्तमान दुर्ग राजा बीर सिंह देव के द्वारा निर्मित किया गया था किन्तु निश्चय ही यह पूर्व में भी किला स्थल रहा है। इस दुर्ग ने बुन्देला राज्य तथा अन्य शासकों के अनेक युद्धों का सामना किया है।[78] सागर पठार के अन्य दुर्गो में गढ़प हरा, विनायका, पिठौरिया, नरयावली, खिमलासा, राहतगढ़ और सागर का नाम लिया जा सकता है। खिमलासा 20 फुट ऊँचाई पर जर्जर अवस्था में एक बुर्जदार किला है, जिसके दरवाजे दर्शनीय हैं। राहतगढ़ बीना घाटी में अत्यन्त ऊँचाईयों पर स्थित दुर्ग अपने कगूरों, प्राचीर, द्वारों महल के अवशेष, मन्दिरों ओर मस्जिदों के कारण दर्शनीय दुर्ग रहा है। सागर दुर्ग भी तालाब के उत्तर पश्चिम में लगभग 20 से 40 फुट की ऊँचाई पर स्थित है और इसमें 20 गोलाकार बुर्ज हैं।[79] गढ़पहरा दुर्ग कभी दाँगी राज्य की राजधानी भी रहा है। इस किले तक चढ़ावपूर्ण सड़क से पहुँचा जा सकता है, जहाँ शीशमहल नामक एक महल भी है। सागर पठार के अन्य किले भी सदैव महत्वपूर्ण रहे हैं।[80]

ब) सोनार उच्च भूमि : सोनार उच्च भूमि सागर जिले की पूर्वी सीमा और दमोह की पश्चिमी सीमा पर, सोनार नदी जो कि यहाँ अपनी प्रारम्भिक अवस्था में हैं, के नाम पर है। यहाँ गोंड और उनसे पहले अहीर शासक रहे हैं। गढ़कोटा, रहली, गौराझामर, देवरी और खनौधा इस क्षेत्र में स्थित प्रसिद्ध गढ़ रहे हैं। देवरी की स्थापना का श्रेय

किसी चन्देल शासक को है। गोंड शासन में देवरी क्षेत्रीय मुख्यालय रहा और इस समय गोंड शासक दुर्गा सिंह ने इसका पुनर्निर्माण कराया। यह किला 1767 के बाद लगभग 45 वर्षो तक मराठों के अधिपत्य में रहा। गढ़ाकोटा भी गोंड दुर्ग है और यह कहा जाता है कि गोंड सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में बसे। देवरी के सम्बन्ध में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सन 1810 ई0 से 1857 ई0 तक के घटनाक्रम स्पष्ट करते हैं कि देवरी तत्कालीन बुन्देला शासकों का दक्षिण दिशा में दूरस्थ अंतिम गढ़ था। गौराझामर देवरी के पश्चात स्थापित गोंड शासन का गढ़ था। यह संग्रामशाह के अधीन रहा और ओरछा के मधुकरशाह को जागीर में मिला।[81] छत्रसाल की मृत्यु के पश्चात यह पेशवाओं को मिला तथा भोंसले और सिन्धिया के अधिकार में रहा। जनश्रुति के अनुसार रहली दुर्ग की स्थापना चौदहवीं शताब्दी में अहीरों द्वारा की गयी थी। यह किला सोनार नदी पर अत्यन्त मनोरम स्थान पर स्थित है। किले के भीतर विस्तृत स्थान है, जो मराठों द्वारा बनवाये गये खण्डहरों से भरा पड़ा है। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में इस दुर्ग को बहुत नुकसान पहुँचा।[82]

स) दमोह पठार : दमोह पठार बुन्देलखण्ड के दक्षिणी पूर्वी हिस्से में स्थित भू–भाग है जिसमें यत्र तत्र अनेक ऊँची पहाड़ियाँ भी स्थित हैं। इस क्षेत्र में विरल जंगल तथा कटीली झाड़ियाँ प्रारम्भ से ही मौजूद रही है। क्षेत्र का सबसे प्रसिद्ध किला सिंगोरगढ़ के नाम से प्रसिद्ध है इसके अतिरिक्त दमोह नोहटा, शाहनगर, रानेह और हटा के दुर्ग भी अपनी ख्याति रखते हैं। सिंगोरगढ़ दुर्ग का निर्माण भाण्डेर और कैमूर श्रेणियों में स्थित जबेरा दर्रे पर हुआ जो अत्यन्त रणनीतिक बिन्दु है। दुर्ग के पश्चिम में कभी एक विशाल झील स्थित थी। स्लीमैन का विचार है कि सिंगोरगढ़ दुर्ग मूलरूप से चन्देलों द्वारा निर्मित किया गया।[83] जबकि कनिंघम इसे परिहार राजाओं द्वारा निर्मित मानते हैं।[84] एक प्रस्तर लेख में इसे गजसिंह दुर्ग कहा गया है जिसमें सम्वत 1364 की तिथि अंकित है। यह दुर्ग कलचुरियों के बाद गोंड राजाओं का प्रसिद्ध दुर्ग रहा। यहाँ रानी दुर्गावती ने आसफ खाँ के विरूद्ध प्रसिद्ध युद्ध लड़ा था। दमोह मुसलमानों एवं मराठों द्वारा शासित रहा है। दमोह दुर्ग बहुत महत्वपूर्ण नहीं था परन्तु मराठा शासन में दमोह का किला शासन का केन्द्र बिन्दु बना रहा। हटा का दुर्ग अब ध्वस्त हो चुका है।

इसका निर्माण ग्यारहवीं शताब्दी में गोंड राजाओं द्वारा किया गया था। यह सोनार तट पर उसकी मध्य घाटी में स्थित है। गोंड राजाओं पश्चात यह दुर्ग बुन्देला और मराठा शासकों के हाथ में रहा।[85] नोहटा दुर्ग के लिये जनश्रुति है कि यह चन्देलों के द्वारा शासित रहा है। दुर्ग का भवन अब मिट चुका हे, किनतु खण्डहर बिखरे हुये हैं। रामगिर, शाहनगर और रानेह में भी दुर्गो के अवशेष देखने को मिलते हैं।

दक्षिणी बुन्देलखण्ड उच्च नदी बेसिन में लगभग 18 किलों का निर्माण हुआ, जिनमें 7–8 किलों ने विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मध्य बुन्देलखण्ड उच्च भूमि– मध्य बुन्देलखण्ड का क्षेत्र जिसमें विन्ध्यन श्रेणियों और अन्य पहाड़ियाँ स्थित हैं, पठार के रूप में परिवर्तित होते उत्तर की ओर अन्ततः समतल मैदान में बदल जाता है। बुन्देलखण्ड के पश्चिम में ग्वालियर सीरीज की श्रृंखला दतिया, नरवर होते हुये दक्षिणी ललितपुर के पास पूर्व की ओर मुड़ जाती है और यहाँ इसे विन्ध्यन श्रेणी का नाम दिया जाता है। बिजावर सीरीज की पहाड़ियाँ मूलतः बिजावर, छतरपुर तथा आंशिक रूप से टीकमगढ़ जिले में भी देखने को मिलती हैं। भाण्डेर सीरीज की श्रृंखला पन्ना के दक्षिणी–पश्चिम भाग से कालिंजर, चित्रकूट होती हुयी कर्वी जिले के पाठा क्षेत्र में समाप्त होती है।[86] इस मध्य पहाड़ी एवं पठारी उच्च भूमि में अनेक दुर्गो का निर्माण हुआ। क्षेत्रीय विभाजन के दृष्टिकोण से इसे तीन हिस्सों में विभाजित किया जा सकता है।

अ) बुन्देलखण्ड नीस पठार : यह क्षेत्र झाँसी, टीकमगढ़ और महोबा जिलों में विस्तृत है। इसमें दो तीन पर्वत श्रृंखलायें पूर्व एवं उत्तर–पूर्व की ओर फैली हुयी है। इस पूरे क्षेत्र में अनेक किलों का निर्माण हुआ। झाँसी, ओरछा, तालबेहट, टीकमगढ़, पृथ्वीपुर, लिधौरा, मोहनगढ़, जीरौन, गढ़कुण्डार, टोड़ी फतेहपुर, जतारा, पलेरा, लुगासी, मऊ–सहानियाँ, आलीपुर, कुलपहाड़, जैतपुर, महोबा, चरखारी, सुगरा, महराजपुर, महेवा, पचेर, कुटेरा, बल्देवगए, खरगापुर आदि स्थानों पर किलों एवं गढ़ियों का निर्माण किया गया। इन किलों में झाँसी, ओरछा, तालबेहट, टीकमगढ़, गढ़कुण्डार, टोड़ीफतेहपुर, जैतपुर और चरखारी के किले अपने आकार प्रकार एवं निर्माण शैली के कारण चर्चित

रहे हैं तथा आज भी उनकी स्थिति अस्तित्व में है। महोबा दुर्ग चन्देलों का केन्द्र रहा है, किन्तु अब मिट चुका है। गढ़कुण्डार (बौना चोर का किला) चन्देलकाल में प्रकाश में आया। खंगारों ने यहाँ शासन किया तथा बुन्देलों ने यही से अपनी सत्ता का विस्तार किया।[87] यहाँ से ओरछा और फिर टीकमगढ़ में बुन्देलों ने सुन्दर किलों का निर्माण किया। परवर्ती काल में इस क्षेत्र के सम्पूर्ण किलों और गढ़ियों में बुन्देला शासन रहा है। पृथ्वीपुर, लिधौरा, मोहनगढ़, जतारा, बल्देवगढ़, फुटेरा आदि गढ़ियाँ बहुत बाद में निर्मित हुयीं किन्तु क्षेत्र में इनका योगदान महत्वपूर्ण रहा।

ब) विन्ध्यन पठारी पश्चिमी श्रेणियाँ : इस भू–भाग में दक्षिणी ललितपुर , दक्षिणी छतर के साथ उत्तरी–पूर्वी छतरपुर का भाग भी शामिल है। सागर जिले की उत्तरी हिस्से को भी इसमें शामिल किया जा सकता है। इस क्षेत्र के प्रमुख दुर्गो में देवगढ़, मण्डावरा, बानपुर, मालथौन, बिजावर और छतरपुर हैं। खजुराहों भी इसी पेटी में आता है। इसके अतिरिक्त मदनपुर, महरौनी, खिमलासा, दलीपुर, मेंगवासी, राजनगर, सिलोन की गढ़ियॉ भी इसी पेटी में आती है। देवगढ़ इस क्षेत्र का सबसे पुराना दुर्ग है। गुप्तकालीन इस दुर्ग में गुर्जन–प्रतिहार, गोंड, दिल्ली और कालपी के मुस्लिम, मालवा के शासक, बुन्देला तथा मराठा शासकों ने अपनी सत्ता स्थापित की। पश्चिमी बुन्देलखण्ड का यह सुदृढ़ दुर्ग बेतवा के खड़े ढालों पर निर्मित है। वर्तमान में इस छोटे से गाँव में अनेकों पुरातात्विक सामग्री बिखरी हुयी हैं, जिनमें दशावतार मन्दिर तथा जैन मूर्तियाँ महत्वपूर्ण है।[88] बानपुर दुर्ग बुन्देला शासको का गढ़ रहा है। जनुश्रुति के अनुसार इसकी स्थापवना महाभारत कालीन बाणासुर ने की थी। राजा मर्दन सिंह ने यही से 1857 का ब्रिटिश विरोध युद्ध लड़ा, परिणामतः किला तोड़ दिया गया।[89] बिजावर और छतरपुर दोनों ही बुन्देला शासकों के अधीन प्रसिद्ध स्थान रहे हैं, किन्तु इन स्थलों पर दुर्ग आकार में कोई भवन अब देखने को नहीं मिलते। मान्यता है कि महाराजा छत्रसाल ने सन 1707 में छतरपुर की स्थापना की थी किन्तु इस मान्यता को कनिंघम जैसे विद्वान स्वीकार नहीं करते।[90] बुन्देलखण्ड की यह मध्य पेटी दक्षिण बुन्देलखण्ड को उत्तर बुन्देलखण्ड से साँस्कृतिक रूप में हल्की भिन्नता प्रदान करती

है, जो विशेष रूप से भवन निर्माण शैली में परिलक्षित होती है। इस पेटी में भी 20 किले निर्मित हुये जिनमें 4–5 ने महत्व प्राप्त किया।

स) विन्ध्यन पठारी पूर्वी श्रेणियाँ : ये श्रेणियाँ पन्ना के समीप से प्रारम्भ होकर उत्तर–पूर्व की ओर फैली हुयी हैं। इस क्षेत्र में केवल बुन्देलखण्ड के प्राचीन वरन महत्वपूर्ण दुर्ग स्थित है। चन्देलकालीन ख्यातिप्राप्त कालिंजर, अजयगढ़ और मनियागढ़ के दुर्ग इसी पट्‌टी पर स्थित हैं। प्राचीन केन्द्र बिलहरी भी इसी क्षेत्र में है। राजनगर गौरिहार, स्योंढ़ा भी इसी पट्‌टी में है। दक्षिण में इसकी सीमा पन्ना दुर्ग है तथा उत्तर पूर्व में बरगढ़। रसिन और मड़फा दुर्ग भी इसी क्षेत्र में स्थित है। मान्यता के अनुसार चन्देलों के प्रसिद्ध अष्ट दुर्ग प्रसिद्ध थे। जिनमें से पाँच, कालिंजर, अजयगढ़, मनियागढ़, मड़फा और रसिन इसी क्षेत्र में मौजूद है।[91] यदि इन पाँचों में सभी को अष्ट दुर्ग में सम्मिलित न भी माना जाय, तब भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन किलों के दृष्टिकोंण से चन्देलों की कर्मभूमि यही रही है। यह भी एक विशिष्ट तथ्य है कि इस क्षेत्र किलों की संख्या बहुत अधिक नहीं रही, फिर भी पुरातात्विक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण किले इस क्षेत्र में स्थित हैं।

मध्य बुन्देलखण्ड उच्चभूमि और पहाड़ी श्रेणियों के इस भाग में बुन्देलखण्ड के सर्वाधिक किलों और गढ़ियों का निर्माण हुआ, जिनकी संख्या 50 से अधिक है।

उत्तरी मैदानी क्षेत्र– उत्तर में यमुना के दक्षिण में यह मैदानी पट्‌टी पश्चिम से पूर्व की ओर फैली हुयी है, जिसका निर्माण दक्षिण से आने वाली नदियों द्वारा निक्षेपित मिट्‌टियों से हुआ है। उत्तर का यह उपजाऊ मैदान दिल्ली और गंगा के मैदानी क्षेत्र के राजाओं के लिये आकर्षण का केन्द्र रहा है। अतः इस मैदान को सदा ही ऐतिहासिक महत्व प्राप्त रहा है।[92] मैदान उत्तर से दक्षिण अपने ढाल और मृदा संरचना के अनुसार तीन भागों में विभाजित है– यमुना तटीय बीहड़ क्षेत्र पट्‌टी, मध्य उपजाऊ मैदानी भाग, दक्षिणी मोटी मिट्‌टियों का मैदान (पेनी प्लेन)। नदियों के द्वारा ये तीनों पेटियॉ पश्चिम से पूर्व की ओर अलग–अलग भागों में विभाजित है।[93]

अ) बीहड़ क्षेत्र– पश्चिमी यमुना बीहड़ क्षेत्र पूर्वी यमुना बीहड़ क्षेत्र

ब) मध्य मैदानी क्षेत्र– जालौन मैदानी क्षेत्र, हमीरपुर मैदानी क्षेत्र, बॉदा मैदानी क्षेत्र

स) उच्च पेनी प्लेन

अ) यमुना बीहड़ क्षेत्र : यमुना न केवल बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा बनाती है वरन प्राचीन काल में उत्तर से इसको सुरक्षा भी प्रदान करती थी। यमुना की दक्षिणी पेटी में दो तीन किमी0 की बीहड़ पट्टी यमुना के समानान्तर फैली हुयी है जिसमें पानी कटाव से तथा कटीली झाड़ियों की उपस्थिति से अगम्यता रही है। पश्चिमी यमुना बीहड़ क्षेत्र का प्रसिद्ध दुर्ग कालपी रहा है। कालपी बुन्देलखण्ड का उत्तर की ओर से प्रवेशद्वार माना जाता रहा है। यही कारण है कि गंगा के मैदान की सत्तायें कालपी को अपना विश्राम स्थल मानकर बुन्देलखण्ड की ओर बढ़ती थीं। जबकि बुन्देलखण्ड की सत्ता उन्हें कालपी में ही रोक देना चाहती थी। कालपी का दुर्ग यमुना के खड़े कगार पर निर्मित था जहाँ से दूर–दूर तक नजर रखी जा सकती थी। किन्तु अब दुर्ग ध्वस्त हो चुका है।[94] रामपुरा गढ़ी जालौन जिले के उत्तरी पश्चिमी कोने में पंचनदा के बीहड़ों में स्थित है। यह अभी अच्छी स्थिति में है और कछवाहा राजपूतों द्वारा शासित रही है। रामपुरा गढ़ी पहूज की तरफ खड़े बीहड़ और टूटे हुये भू–भाग में जंगली क्षेत्र में स्थित है।[95] रामपुरा से ढाई किमी0 बीहड़ों में तिहार नामक एक और गढ़ी मौजूद है। जगम्मनपुर और उमरी की गढ़ियॉ पश्चिमी यमुना बीहड़ क्षेत्र के सीमावर्ती भाग में स्थित हैं। जगम्मनपुर की गढ़ी अभी ठीक स्थिति में है, जबकि उमरी जगम्मनपुर की गढ़ी अभी ठीक स्थिति में है, जबकि उमरी की गढ़ी अदृश्य हो चुकी है। पूर्वी यमुना बीहड़ क्षेत्र में पंचखुरा, हमीरपुर, जसपुरा, पैलानी और औगासी की गढ़ियाँ स्थित थीं, परन्तु इनमें से अब कोई भी अस्तित्व में नहीं है। हमीरपुर का किला यमुना और बेतवा के संगम पर हम्मीर देव द्वारा निर्मित किया गया था और कुछ समय तक इसने बहुत अच्छा प्रतिरक्षात्मक उत्तरदायित्व निभाया था।[96] ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वी यमुना बीहड़ की गढ़ियाँ आक्रमण कर छुपने के दृष्टिकोण से निर्मित करायी गयी थी।

ब) मध्य मैदानी क्षेत्र : मध्य मैदानी क्षेत्र उपजाऊ मिट्टियों से निर्मित समतल मैदान है। अतः इस क्षेत्र में प्रबल प्रतिरोधात्मक क्षमता वाले दुर्गो का निर्माण सम्भव नहीं था। इस क्षेत्र में निर्मित अधिकांश दुर्ग और गढ़ियाँ शान्तिकाल में सुचारू शासन के संचालन में अवश्य सहायक थी। इस मैदान का पश्चिमी भाग जालौन मैदानी क्षेत्र कहलाता है।, जिसमें उरई, कोंच, नदीगाँव, गोपालपुरा, जालौन, कदौरा और पहाड़गाँव के दुर्ग स्थल हैं। ये सभी गढ़ियाँ अब विलुप्त हो चुकी हैं। केवल नदीगाँव का छोटा किला अभी अस्तित्व में है।[97] उरई दुर्ग जो एक तालाब के किनारे ऊँचे टीले पर स्थित था, चन्देलकालीन शासक माहिल की राजधानी कहा जाता है। कोंच की गढ़ी भी अठारवीं–उन्नींसवीं सदी में महत्वपूर्ण गढ़ी थी। गोपालपुरा में में रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों से बुन्देलखण्ड की भूमि में अन्तिम मुठभेड़ ली थी। मैदानी क्षेत्र के मध्य भाग में स्थित हमीरपुर, मौदहा, राठ और मजगवाँ की गढ़ियाँ स्थित थी, इनमें से कुछ चन्देलकालीन थीं तथा कुछ बुन्देला शासकों से सम्बन्धित थीं। सरीला के महल को छोड़कर इनमें से अब कोई भी अस्तित्व में नहीं है। मौदहा का किला बुन्देला शासन में महत्वपूर्ण दुर्ग था, किन्तु इसमें भी कुछ दीवारें ही शेष हैं। पूर्व के बाँदा मैदानी क्षेत्र में भूरागढ़ अकेला दुर्ग है जिसका लगभग आधा हिस्सा नष्ट हो गया है। बाँदा की पुरानी गढ़ी (निम्नीपार क्षेत्र) के अब निशान मिट चुके हैं। यहाँ बाँदा के नवाबों के कुछ निर्माण शेष है। कमासिन की गढ़ी विलुप्त हो चुकी है, केवल ऊँचा टीला शेष है।[98]

स) उच्च पेनी प्लेन : उत्तर के मैदान का दक्षिणी भाग बुन्देलखण्ड पेनी प्लेन के नाम से जाना जाता है। पेनी प्लेन वह भू–भाग होता है, जहाँ पठार भूमिगत होने लगते हैं और उनके ऊपर मैदानों का निर्माण होता है। यह बुन्देलखण्ड के दक्षिणी पठार और उत्तरी मैदान के मध्य एक संक्रमण पेटी है, जिसे कठोर और मोटी मिट्टियों का मैदान कहा जा सकता है। इस पेटी में दुर्ग निर्माण अपेक्षाकृत महत्वपूर्ण रहा है, क्योंकि इन दुर्ग केन्द्रों से उत्तर के खेतिहर मैंदानों पर कुछ सीमा तक दृष्टि रखी जा सकती थी।[99] इस पट्टी के प्रमुख किलों तथा गढ़ियों में इन्दरगढ़, समथर, मोंठ एरच, गुरसराय, चिरगाँव, अमरा, भरतपुरा, टहरौली और भसनेह के नाम लिये जा सकते हैं। एरच को छोड़कर इनमें सभी किले अभी मौजूद हैं, भले ही वे अत्यधिक टूट चुके हों।

समथर का किला पूरे उत्तर मैदानी क्षेत्र के किलों में सबसे अच्छी स्थिति हैं, क्योंकि शासक वंश अभी भी किले में निवास करता है। मोंठ, गुरसराय, चिरगाँव की गढ़ियाँ काफी ज्यादा टूट चुकी हैं। अमरा (अम्बरगढ़), टहरौली, और भसनेह की गढ़ियाँ अपेक्षाकृत कुछ ठीक स्थिति में है। एरच बेवता तट पर एक लम्बी अवधि तक प्रसिद्ध दुर्ग रहा है, किन्तु मुस्लिम शासन में टूटने के बाद अब समाप्त हो चुका है।[100]

सम्पूर्ण उत्तरी मैदानी क्षेत्र में लगभग तीन दर्जन किले और गढ़ियाँ विभिन्न शासन सत्ताओं द्वारा निर्मित की गयीं। बुन्देलखण्ड के इस क्षेत्रीय विभाजन के उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि दुर्ग निर्माण में भौगोलिक तथा ऐतिहासिक दोनों कारकों ने मिलकर प्रभाव डाला है, जिससे अलग अलग क्षेत्रों में इन सुरक्षा केन्द्रों के निर्माण का महत्व अलग–अलग रहा है। परिणामः दुर्गो की उपस्थिति संख्या में क्षेत्रवार भिन्नता देखने को मिलती है।

3.2.2 रक्षात्मक परिक्षेत्रों का विभाजन

यह स्पष्ट है कि दुर्ग निर्माण का उद्देश्य शासक, बस्ती एवं समीपवर्ती क्षेत्र की रक्षा का होता था। दुर्ग रक्षात्मक शक्ति एवं युद्ध की सफलता को कई गुना बढ़ा देता था।

एक शतम बोधयति प्रकारारस्थो धनुर्धरः।
शतं दस सहस्त्राणि तस्याद् दुर्ग विधीयते।[101]

अर्थात मनुस्मृति के अनुसार दुर्ग का एक धनुर्धारी सैनिक 100 शत्रु सैनिकों तथा 100 धनुर्धारी योद्धा 1000 योद्धाओं से युद्ध कर सकते हैं, इसलिये दुर्ग का निर्माण किया जाना चाहिये। दुर्ग निर्माण के महत्व के साथ ही तत्कालीन सत्ताओं के लिये हय भी विचारणीय होता था कि शासित क्षेत्र की रक्षा के लिये किन स्थानों पर दुर्ग और गढ़ियों का निर्माण किया जाय, जिससे शत्रु को अपने भू–भाग में प्रवेश करने से पहले ही विफल मनोरथ किया जा सके।[102] यह संकल्पना कुछ इस प्रकार थी जिसमें शासक अपने केन्द्रीय दुर्ग से दूर राज्य सीमाओं पर कई बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुये दुर्ग श्रृंखलायें तैयार करता था। इनके निर्माण में शत्रु के आक्रमण की सम्भाव्य दिशा का

विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था। बुन्देलखण्ड में प्रवेश करने वाली सैनिक शक्तियॉ उत्तर में गंगा के मैदान से यमुना पर करती हुयी बुन्देलखण्ड में प्रवेश करती थीं। पश्चिम में दिल्ली, आगरा और ग्वालियर से चलने वाली सेनाओं का प्रतिरोध करने की आवश्यकता पड़ती थी। दक्षिण से मालवा एवं विदर्भ बुन्देलखण्ड को आंतकित कर सकते थे। जबकि पूर्व में कोशल और बघेलखण्ड के शासक बुन्देलखण्ड की शांति भंग कर सकते थे। इस प्रकार से राज्य कुछ विशिष्ट रक्षा परिक्षेत्रों में विभाजित हो जाता था। सम्भवतः दशार्ण, डाहल आदि नाम रक्षा परिक्षेत्रों के कारण अस्तित्व में आये।

बुन्देलखण्ड विभिन्न शासन सत्ताओं के द्वारा शासित रहा और विभिन्न कालों में इसकी सीमायें भी परिवर्तित होती रहीं। यही कारण है कि अलग–अलग कालखण्डों के रक्षा परिक्षेत्र वर्तमान अध्ययन में ओवरलैप करते हुए दिखाई पड़ते हैं, किन्तु यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि बुन्देलखण्ड में बुन्देलखण्ड को रक्षा परिक्षेत्रों में विभाजित करने वाली इन रक्षा पंक्तियों का निर्धारण करने में प्राकृतिक कारकों का अधिक योगदान रहा है। विशेष रूप से पहाड़ी श्रृंखलायें और नदियाँ जो स्वयं रक्षक पंक्ति की तरह यहॉ स्थित हैं, ने दुर्ग रखा पंक्तियों को प्रोत्साहित किया है।

बुन्देलखण्ड की सीमाओं से लगे हुये बड़े शासन केन्द्रों में उत्तर की ओर कौशाम्बी, प्रयाग, कन्नौल, पश्चिम की ओर पुष्कलावती, ग्वालियर, नरवर, दक्षिण में विदिशा और त्रिपुर तथा पूर्व में बैरागढ़ और रीवाँ उल्लेखनीय थे। प्राचीन और पूर्व–मध्य काल में बुन्देलखण्ड दक्षिणी एवं दक्षिणी पश्चिमी शक्तियों से अधिक प्रभावित होता रहा। जबकि उत्तर मध्यकाल तथा पूर्व आधुनिक काल में दिल्ली आगरा की मुगल सत्ता ने सर्वाधिक प्रभावित किया है। इन तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में बुन्देलखण्ड के रक्षा परिक्षेत्रों का आंकलन किया जा सकता है।

नदियों द्वारा विभाजित रक्षा परिक्षेत्र– बुन्देलखण्ड की नदियाँ जो दक्षिण से उत्तर तथा उत्तर–पूर्व की ओर प्रवाहित होती है, प्रमुख रूप से बुन्देलखण्ड को 04 बड़े भागों में बाँटती हैं।[103]

1. काली सिन्ध तथा बेतवा के मध्य का उत्तरी भाग

2. बेतवा तथा धसान के मध्य का दक्षिणी भाग
3. धसान एवं केन के मध्य का मध्य एवं उत्तरी भाग
4. केन का पूर्वी रक्षा परिक्षेत्र भाग

जैसा कि पूर्व के अध्ययन में चर्चा की जा चुकी है कि दुर्ग निर्माताओं ने नदी तट की सुरक्षित पेटियों में दुर्ग निर्माण में सर्वाधिक रूचि दिखाई, परिणामतः इन नदियों के मध्य के भू–भाग रक्षा परिक्षेत्रों में विभाजित हो गये। नदियों द्वारा विभाविज ये परिक्षेत्र मुस्लिम शासन काल की लम्बी अवधि में सर्वाधिक प्रभावी रहे हैं। इस काल में बुन्देलखण्ड के शासकों के प्रमुख केन्द्र कालपी, कुण्डार, ओरछा, टीकमगढ़, छतरपुर, धमौनी, भूरागढ़ आदि रहे हैं। समय–समय पर इन केन्द्रों में शासन करने वाली सत्ता का विस्तार एवं संकुचन होता रहा है, किन्तु ये रक्षा परिक्षेत्र सदैव प्रभावी रहे हैं। बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा विशाल यमुना प्रवाह द्वारा परिरक्षित रही है।[104]

(अ) काली सिन्ध एवं बेतवा के मध्य का उत्तरी भू–भाग– यह रक्षा परिक्षेत्र उत्तर–पश्चिम से होने वाले आक्रमणों विशेषरूप से आगरा, ग्वालियर, इटावा आदि की ओर से आने वाली सेनाओं का सामना करता रहा है। इस परिक्षेत्र में पश्चिम की ओर बरौनी और स्योंढ़ा (दतिया) के दुर्ग में स्थित थे, जबकि उत्तर की ओर कालपी दुर्ग के अतिरिक्त यमुना पट्टी में रामपुरा, जगम्मनपुर और पचखुरा की गढ़ियाँ स्थित थीं। यदि सेनायें सिन्ध नदी को पार कर आगे बढ़ आती थीं तब गोपालपुरा, नदीगाँव, लोहागढ़ और समथर (सभी पहूज तट पर स्थित) के किलों में उनका प्रतिरोध किया जाता था। दिल्ली के चौहान के युद्ध से लेकर महारानी लक्ष्मीबाई तथा अंग्रेजों के मध्य हुये गोपालपुरा की भीषण मुठभेड़ तक पहूज की यह रक्षापंक्ति अनेक युद्धों की गवाह है।[105] कालपी जो उत्तर की ओर बुन्देलखण्ड का प्रमुख द्वार था, अनेकों युद्धों का गवाह रहा है। उत्तर में गंगा के मैदान विशेष रूप से कन्नौज, फर्रूखाबाद की ओर से शत्रुओं के आक्रमण का इसने प्रतिरोध किया है। इस रक्षा परिक्षेत्र में झाँसी दुर्ग का भी योगदान रहा है।[106]

(ब) बेतवा एवं धसान के मध्य का दक्षिणी भाग– यह रक्षा परिक्षेत्र छत्रसाल के पूर्व के बुन्देला शासकों की अभय क्रीड़ास्थली रहा है। यहाँ कुण्डार से अपना शासन प्रारम्भ कर वे ओरछा और टीकमगढ़ तक गये तथा बेतवा और धसान नदियों के किनारे दुर्गो एवं गढ़ियों की अर्गला का निर्माण किया है, जिनकी कुल संख्या 30 से भी अधिक है। बेतवा तट पर बुन्देलों की प्रसिद्ध राजधानी ओरछा, दक्षिण में देवगढ़ तथा उत्तर में एरच के मध्य बेतवा तटा पर स्थित रामनगर, बराठा, भरतपुरा, गरारी, बनगुंआ आदि अनेक गढ़ियों से सुरक्षित थी। धसान तट पर स्थित धमौनी का विशाली दुर्ग दक्षिण की ओर से इस रक्षा परिक्षेत्र को सीमांकित करता था, जबकि उत्तर की ओर से जिगनी और मझगवाँ की गढ़ियाँ स्थित थीं। इस परिक्षेत्र की सीमाओं पर स्थित एरच, ओरछा, देवगढ़, धमौनी के ख्याति प्राप्त दुर्गो के अतिरिक्त तालबेहट, जाखलौन, मालथौन, बानपुर, बानपुर, मदनपुर, मोहनगढ़, मालवीथा, जतारा, लिधौरा, पृथ्वीपुर, टोड़ी फतेहपुर, गुरसराय, बंकापहाड़ी टहरौली जैसे छोटे दुर्ग स्थित थे। इनके अतिरिक्त भी अनेकों किलो और गढ़ियाँ यहॉ स्थित थीं, जिनसे रक्षित इस रक्षा परिक्षेत्र में सम्पूर्ण बुन्देला काल में कोई भी वाह्य शत्रु यहाँ अधिक दिनों तक नही रूक सका।

(स) धसान एवं केन के मध्य का मध्य–उत्तरी भाग– इस रक्षा परिक्षेत्र का महत्वपूर्ण भाग इसका दक्षिणी हिस्सा है, जिसमें इतिहास प्रसिद्ध खजुराहो, महोबा, बिलहरी, मनियागढ़ और बिजावर के किले स्थित हैं। वस्तुतः यह क्षेत्र चन्देलों की क्रीड़ास्थली रहा है, जबकि इसका दक्षिणी भाग गोंड शासन के लिये जाना जाता रहा है। दक्षिणी भाग में नदियों की अनेक धाराये हैं, जो पतली एवं गम्य हैं तथा पर्वतीय एवं नदी तट की उपलब्धता ने यहाँ दुर्ग रक्षा पंक्तियों प्रोत्साहित किया है। केन तट पर पवई, सिमिरिया, मनियागढ़, रनगढ़, राजगढ़, बिलहटी, स्योंढ़ा के दुर्ग पूर्व और उत्तर पूर्व से प्रवेश करने वाली सेनाओं का विरोध करते थे। इस रक्षा परिक्षेत्र में लुगासी, महाराजपुर, मऊ–सहानियाँ, महेवा, खोंप, लखनगवाँ, भगवाँ, दलीपुर, कूपी, सिलोन और राजनगर की गढ़ियाँ इस क्षेत्र को संरक्षित करती थीं।

इसके उत्तरी भू–भाग में श्रीनगर, जैतपुर, कुलपहाड़, चरखारी, मौदहा, सरीला, मझगवाँ, सुँगरा, पहरा, गौरिहर आदि किले एवं गढ़ियाँ स्थित थे, जबकि यमुना तट पर

हमीरपुर, सुरावली, जसपुरा और पैलानी की गढ़ियाँ इसे उत्तर से सुरक्षित करती थी। उल्लेखनीय है कि ये भू–भाग स्वतंत्रता प्रेमी प्रसिद्ध बुन्देला शासक छत्रसाल की क्रीड़ा स्थली रहा है और चन्देलों को छोड़कर अधिकांश किले एवं गढ़ियाँ बुन्देलों के द्वारा ही निर्मित हुये हैं।

द) केन का पूर्वी रक्षा परिक्षेत्र भू–भाग– केन के पूर्व में स्थित बुन्देलखण्ड का भू–भाग संभवतः बुन्देलखण्ड का सबसे पुराना परिक्षेत्र है, क्योंकि न केवल यहाँ प्राचीनतम बुन्देलखण्ड का जीवित दुर्ग कालिंजर स्थित है वरन् अजयगढ़, मड़फा, रसिन जैसे चन्देलकालीन प्राचीन दुर्ग स्थित हैं। केन के पश्चिम स्थित खजुराहों और मनियागढ़ भी चन्देलकालीन दुर्ग हैं, जबकि भूरागढ़, पैलानी, औगासी, तरौंहा आदि गढ़ियॉ परवर्ती काल की हैं।

पर्वतीय रक्षात्मक परिक्षेत्र– बुन्देलखण्ड का दक्षिणी भाग जो पर्वतीय एवं पठारी भाग है, बुन्देलखण्ड का एक विशिष्ट रक्षा परिक्षेत्र है। इस रक्षा परिक्षेत्र का पश्चिमी भाग इतिहास प्रसिद्ध एरण से प्रारम्भ होता है और इसमें बरौनियाँ, राहतगढ़, जौसीनगर, गढ़पहरा, सागर तथा सिंगोरगढ़ स्थित है। ऊँची पहाड़ियों के समतल शिखर और सम्बद्ध तेज ढाल पर्वत श्रृंखला के इन विशिष्ट लक्षणें को दुर्ग निर्माण के आदर्श स्थलों के रूप में बहुत पहले ही पहचान लिया गया था। ग्वालियर, नरवर, चन्देरी, माण्डू, अजयगढ़, बांधवगढ़ के अतिरिक्त यह श्रेणी बुन्देला तथा अन्य शासकों के दुर्गों से भी पड़ी हुयी है।[107] इस परिक्षेत्र के दुर्गो ने उज्जैन, मालवा, विदिशा आदि स्थलों से आने वाली सेनाओं की चोट को सहा है। पर्वतीय रक्षा परिक्षेत्र का मध्य भाग जिसे दक्षिणी बुन्देलखण्ड का भाग भी कह सकते हैं; जबलपुर, विदर्भ की ओर से आने वाली सेनाओं का प्रतिरोध करता रहा है। आंशिक रूप से चन्देल और प्रमुख रूप से गोंडों द्वारा निर्मित दुर्ग इस क्षेत्र की शान है। सिंगोरगढ़, गौरझामर, देवरी, देवरी, रहली, गढ़ाकोटा, बरौंधा, बटियागढ़, हटा के दुर्ग इस क्षेत्र में स्थित है।[108] दमोह की भी ख्याति है। इस सन्दर्भ में ख्याति प्राप्त दुर्ग सिंगोरगढ़ की चर्चा समीचीन होगी, जो भाण्डेर और कैमूर श्रेणियों के मध्य जबेरा पास में स्थित है। इसकी इस स्थिति ने इसे इतिहास में दक्षिण

रक्षा परिक्षेत्र में उद्भूत होने वाली छोटी नदियों का भी योगदान कम नहीं है। पर्वतीय रक्षा क्षेत्र का तीसरा भाग इसका पूर्वी भू–भाग है, जिसमें पवई, शाहनगर, जोधपुर, सिमिरिया की गढ़ियॉ स्थित हैं। अपनी दुर्गमता के कारण यह रक्षा परिक्षेत्र अलग दिखाई पड़ता है।[109]

3.3.3 ऐतिहासिक कालक्रमानुसार दुर्गो की स्थिति

पिछले पृष्ठों में दुर्ग निर्माण में प्राकृतिक कारकों का प्रभाव स्पष्ट हो चुका है। समयानुसार राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियॉ परिवर्तनशील होती हैं, किन्तु प्राकृतिक कारक दीर्घजीवी होते हैं। मानव ने अपना जीवन पर्वतीय कन्दराओं एवं वनों से प्रारम्भ किया था, जो अब दुनिया के विशाल मैदानों में वृहद बस्तियों के रूप में रह रहा है। अपने आवासों को सुरक्षित करने के लिये प्रथमतः मानव प्राकृतिक सुरक्षा का आश्रय लेता रहा किन्तु सुदृढ़ दुर्ग निर्माण की कला के विकास के साथ ही प्राकृतिक सुरक्षा का महत्व घटता गया और कालान्तर में खुले मैदानों में दुर्ग निर्मित हुये। भारत के सभी प्राचीन दुर्गो की स्थिति दुर्गम, पर्वतीय तथा वनस्थलों से सम्बन्धित थी, जो इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। यह भी महत्वपूर्ण है कि बड़ी सेनाओं और अधिक जनसंख्या के भरण पोषण के लिये दुर्गो का उपजाऊ मैदानों से दूर होना भी उचित नहीं होता था। बुन्देलखण्ड पर्वतीय, पठारी एवं मैदानी धरातल के मिश्रित स्वरूप वाला क्षेत्र है। आगे के पृष्ठों में यह जॉंच करने का प्रयत्न किया गया है कि ऐतिहासिक कालक्रमानुसार अलग–अलग कालखण्डों में क्षेत्र अलग–अलग भू–भागों में दुर्ग निर्माण को प्रोत्साहन मिला। इसके साथ जिन कारणों से किसी काल में अथवा किसी विशेष राजवंश के द्वारा किसी विशिष्ट भू–भाग पर दुर्ग निर्माण किये जाने के तथ्यों का अन्वेषण करने का भी प्रयास किया गया है।

प्राचीन काल– बुन्देलखण्ड के प्राचीन दुर्गो में शुक्तिमती एवं शाहगति के दुर्गस्थल अभी तक ज्ञात नहीं हो सके हैं। एरण, बिहरी, देवगढ़ निश्चित रूप से प्राचीन काल के दुर्ग है, जबकि अधिकांश विद्वान कालिंजर दुर्ग को भी प्राचीन काल का ही दुर्ग मानते हैं, भले ही उसने अपना वैभव पूर्व मध्य–काल में प्राप्त किया हो। इसी प्रकार खजुराहो

का जन्म भी चन्देल शासन से पूर्व हो चुका था, क्योंकि ह्वेनसॉग ने न केवल इसके विवरण दिये हैं वरन् एक अच्छे प्राचीर युक्त नगर के रूप में इसका वर्णन किया है।[110] झाँसी जिले में स्थित एरच को जन परम्पराओं में हिरण्यकश्यपु की राजधानी कहा जाता है।, यहाँ का दुर्ग एक से अधिक बार बना और नष्ट हुआ, किन्तु उसका प्रथम अस्तित्व प्राचीन काल में ही स्वीकार किया जाता है।[111] इसी प्रकार बानपुर को महाभारत कालीन बाणासुर का स्थान माना जाता है। परवर्ती काल में यहाँ गोंड दुर्ग रहा जिसे परिवर्तित एवं परिवर्धित कर वर्तमान दुर्ग बनाया गया। छतरपुर जिले में स्थित बिलहरी कलचुरियों का स्थान रहा है। जहॉ कलचुरि बुद्धराजा ने विदिशा को बाद 608 ई0 में बिलहरी को महत्व प्रदान किया।[112] इन प्राचीन दुर्गो में वर्तमान समय में देवगढ़, कालिंजर और बानपुर के दुर्ग ही पूर्ण या आंशिक रूप में अस्तित्व में है। जबकि शेष केवल ऐतिहासिक स्थल के रूप में विख्यात हैं।

बुन्देलखण्ड में इन दुर्गो की स्थिति को देखने पर स्पष्ट होता है कि एरच और खजुराहो को छोड़कर लगभग प्राचीन काल के सभी दुर्ग वर्तमान बुन्देलखण्ड के पश्चिम, दक्षिण एवं पूर्वी सीमाओं पर स्थित हैं। एरच और खजुराहो को छोड़कर ये सभी दुर्ग पहाड़ियों पर स्थित हैं। उल्लेखनीय है कि देवगढ़, बानपुर, बिलहरी, और कालिंजर के दुर्गो का निर्माण उस संक्रमण पेटी में हुआ है जहाँ दक्षिणी पहाड़ियाँ और पठार उत्तर के मैदान से मिलते हैं और आगे उत्तर की ओर धीरे–धीरे विलुप्त हो जाते हैं जबकि एरन अध्ययन क्षेत्र की दक्षिणी पश्चिमी सीमा का रक्षक दुर्ग रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दुर्गो के निर्माण में प्राचीन बुन्देलखण्ड (चेदि प्रदेश) की सीमाओं को कीजित करने के साथ साथ उत्तर के मैदान से सम्पर्क एवं दक्षिण के राज्यों से प्रतिरोध की भावना केन्द्रित रही है।

पूर्व मध्य काल– बुन्देलखण्ड में पूर्व मध्यकाल चन्देलों का वैभवकाल माना जाता है। चन्देलों का वास्तविक आवासीय क्षेत्र कालिंजर, खजुराहों व महोबा रहे हैं। महोबा धार्मिक राजधानी, खजुराहो सांस्कृतिक कारण है कि महोबा और खजुराहो के दुर्ग समाप्त हो गये। चन्देलो के द्वारा निर्मित अष्ठ दुर्ग इतिहास में प्रसिद्ध है, किन्तु इनके

नामों के मध्य विभिन्न विद्वानों में मतभेद है। कालिंजर, अजयगढ़, मडफा, मनियागढ़ नामक 4 दुर्ग निश्चय ही या तो चन्देलों द्वारा निर्मित हैं अथवा उनके द्वारा परिवर्धित एवं समुन्नत किये गये है।[114] इन 4 के अतिरिक्त इस काल में दक्षिण में हटा, पश्चिमी सीमा में कन्हरगढ़ (स्योंढ़ा) और कालपी के दुर्ग (वासुदेव चन्देल) भी चन्देल शासकों द्वारा निर्मित हैं सिरसागढ़, रसिन क्रमशः मलखान तथा राहिल के द्वारा निर्मित दुर्ग है। इस प्रकार से यदि देवरी (सागर) को भी चन्देलों के द्वारा निर्मित मान लिया जाय तो इस काल में चन्देलों के द्वारा 9 दुर्ग अपने वैभव को प्राप्त हुये जिनमें से कालजयी कालिंजर दुर्ग अभी पूर्ण अस्तित्व में है।[115] जयपुर दुर्ग (अजयगढ़) भी अभी अच्छी स्थिति में है।[116] इसके अतिरिक्त सिरसागढ़, मड़फा, रसिन, मनियागढ़, और हटा के दुर्ग नष्टप्राय है। स्थिति के दृष्टिकोण से यह उल्लेखनीय है कि चन्देलों द्वारा निर्मित प्रमुख 6 दुर्ग बुन्देलखण्ड की मध्य पूर्व की पेटियों मे निर्मित हुये जबकि सिरसागढ़, कन्हरगढ़, हटा पश्चिम और दक्षिण के सीमान्त गढ़ हैं। इसी सीमा पर मदनवर्मन द्वारा बसाया गया मदनपुर स्थित हैं।

पूर्व मध्यकाल में बुन्देलखण्ड में गोंड राज्य भी महत्वपूर्ण रहा है यद्यपि गोंडवाना की सीमा में अर्थात दक्षिणी बुन्देलखण्ड में ही इनके द्वारा दुर्गो का निर्माण किया गया। पूर्वमध्यकाल में इन्होंने शाहगढ़, पवई, शाहनगर, जोधपुर, जयसिंह नगर और लुहारी जैसे अल्पज्ञात स्थानों पर छोटे किलों का निर्माण किया क्योंकि इनके उन्नत एवं विशाल दुर्ग मध्यकाल में ही यश प्राप्त कर सके हैं। उल्लेखनीय है कि गोंड राज्य की उत्तरी सीमा में पचेर (टीकमगढ़) अन्तिम दुर्ग था।[117] चन्देल तथा गोंडों के अतिरिक्त कुछ अन्य शासकों ने भी कुछ गढ़ियों तथा छोटे दुर्गो का निर्माण किया। हमीरपुर और जलालपुर कुद समय तक अस्तित्व में रहे। आलीपुर, मऊ–सहानियॉ और उरई के दुर्ग परिहारों के द्वारा निर्मित हुये। महौनी तथा कुण्डार क्रमशः वीरभद्र प्रथम तथा परगारों के द्वारा अस्तित्व में आये। कुण्डार परवर्ती काल में लगभग 120 वर्षो तक खंगारों के हाथ में रहा तथा परिवर्धित हुआ।[118]

पूर्व मध्य काल लगभग 22 दुर्ग और गढ़ियॉ अस्तित्व में आयी और यह आश्चर्यजनक तथ्य हैं कि इनमें से अधिकांश बुन्देलखण्ड की मध्य संक्रमण पेटी में

स्थित हैं। निश्चित रूप से बिखरी पहाडियॉ, पठारी जंगल और समीपवर्ती छोटे छोटे मैदानों ने यहा। इस विशिष्ट कालखण्ड में दुर्ग निर्माण को आकर्षित किया। यह भी महत्वपूर्ण है कि बुन्देलखण्ड के दक्षिण और पूर्व की तत्कालीन सशक्त सत्तायें जिनमें कलचुरि प्रमुख थे, भी इस पट्टी में दुर्ग निर्माण को महत्व प्रदान किया।[119] इसी काल में बुन्देलखण्ड की पश्चिमी सीमा में करैरा दुर्ग की नींव पड़ी, जिसे आगे चलकर बुन्देलों ने परिवर्धित किया।[120] इस कालखण्ड के प्रमुख स्थलों में उरई, कालपी, सिरसागढ़, मड़फा, रसिन, महोबा, मनियागढ़, अजयगढ़, हटा, महौनी, मऊ–सहानियाँ, मढ़कुण्डार और हमीरपुर के दुर्ग, जिनकी संख्या 13 है, आने वाले समय में भी लम्बी अवधि तक महत्वपूर्ण बने रहे।

मध्यकाल– मध्यकाल जो बुन्देलखण्ड के इतिहास में बुन्देलाकाल के नाम से जाना जाता है, सर्वाधिक महत्वपूर्ण कालखण्ड रहा है। इसमें न केवल बुन्देलों ने किलों एवं गढ़ियों का निर्माण कराया वरन मुगल एवं मुस्लिमों के साथ अन्य क्षेत्रीय शासकों ने भी छोटे दुर्गो को जन्म दिया। यही कारण है कि इस काल में अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक 64 दुर्गो एवं गढ़ियों का निर्माण हुआ, जिनमें से 20 किलों ने न केवल अपने समय में वरन भविष्य में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराये रखीं इस काल में कुछ उल्लेखनीय दुर्ग भी इतिहास के बिन्दु बने।

बुन्देला शासकों ने अपने इस वैभव काल में लगभग 32 स्थानों पर अपने रक्षक ठिकाने निर्मित किये, जिनमें छोटी गढ़ियों से लेकर झाँसी, टोड़ी फतेहपुर, मोंठ, ओरछा, बरूआसागर, तालबेहट, छतरपुर, दतिया, बड़ौनी, पन्ना जैसे विशिष्ट स्थलों के दुर्ग महत्वपूर्ण हैं। झाँसी, ओरछा, तालबेहट, दतिया, बरूआसागर, जैतपुर के दुर्ग आज भी बुन्देला इतिहास में बाद में ख्याति प्राप्त करने वाले अष्टगढ़ी (बड़ागाँव, दुरबई, विजना, टहरौली, टोड़ीफतेहपुर, बंकापहाड़ी, भसनेह, बनगवाँ) का निर्माण इस काल में हुआ। इसके अतिरिक्त डिमरौनी, रामनगर, पलेरा, खरगापुर, महेवा–नुना, बरेठी, निवाड़ी, करेरा, नदीगाँव, बँगरा, बार, बड़ौनी, बरौदिया–कलॉ जैसी गढ़ियों का निर्माण भी हुआ। यदि छोटी गढ़ियों की भी गणना कर ली जाय तो बुन्देलों ने इस काल में 32 निर्माण

किये जिनमें से दक्षिण में सिपफ 3 थे, जबकि मध्य पेटी में 11 तथा उत्तरी मैदानों में 18 स्थानों पर निर्माण किये गये। यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि जिस प्रकार से चन्देलों ने पूर्व मध्य पेटी को निर्माण के लिये चुना, उसी प्रकार इस काल में बुन्देलों ने मध्य पश्चिमी पेटी को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया।

मध्यकाल में मुगल और अन्य द्वारा लगभग 10 स्थलों पर अपने ठिकाने बनाये गये जिनमे अधिकांश निर्माण 16वीं एवं 17वीं सदी के थे। मालथौन, खिमलासा, सागर, रानगीर, कोंच, माधौगढ़, कदौरा, लोख्री, दमोह एवं नरसिंहगढ़ में इनके द्वारा निर्माण किये गये। इन निर्माणों में सर्वाधिक 6 दक्षिण में स्थित हैं, जबकि 3 उत्तर में। मध्य पेटी में केवल एक ही निर्माण हुआ जो यह प्रमाणित करता है कि इस काल में बुन्देलखण्ड की मध्य पेटी पूर्णतः बुन्देलों के दबाव में थी।

अन्य शासकों के द्वारा इस काल में लगभग 22 निर्माण हुये जिनमें परमार, परिहार, कछवाह के अतिरिक्त गोंड, खँगार एवं दाँगी राजाओं के द्वारा किलों और अधिकांशतः गढ़ियों का निर्माण किया गया। प्रमुख स्थलों में राहतगढ़, हमीरपुर, सिंगोरगढ़, मऊ, जगम्मनपुर, धमौनी, गढ़ा कोटा, रामपुरागढ़ी और स्योंढ़ा (बाँदा) का नाम लिया जा सकता है। इनके अतिरिक्त छोटी गढ़ियों में कंजिया, रहली, रावली, भरतपुरा, बराठा, हिंडोरिया, गोपालपुरा, तरौहा, जसपुरा, जिगनी, खोंप, जटाशंकर आदि प्रमुख हैं। इस काल में निर्मित दुर्गो में धमौनी, राहतगढ़, गढ़ाकोटा के दुर्गो ने इतिहास में महत्वपूर्ण हिस्सेदारी निभाई है। अन्य राजाओं के द्वारा निर्मित दुर्गो में 9 दक्षिण में स्थित हैं जबकि 9 उत्तर के मैदान में 1 पठारी संक्रमण पेटी में केवल 4 दुर्ग निर्मित हुये।

बुन्देलखण्ड में मध्यकाल ने केवल दुर्ग निर्माण के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण रहा है वरन उसे इस लिये भी स्मरण किया जायेगा कि इस काल में बुन्देला न केवल सशक्त हुये बल्कि उन्होंने अपना स्थायी क्षेत्र भी निर्धारित किया। उन्होंने बुन्देलखण्ड के मध्य पश्चिमी एवं मैदानी पश्चिमी पेटी पर एकाधिकार जैसा कर लिया। यदि क्षेत्रीय वितरण के दृष्टिकोण से आकलित किया जाय तो सर्वाधिक दुर्गो का निर्माण (30) उत्तर के मैदानी क्षेत्र में हुआ, जबकि संक्रमण की मध्य पेटी में 16 तथा दक्षिण के पठारी–पहाड़ी

भू–भागों में 18 दुर्ग स्थल विकसित हुये। यह भी ध्यान देने योग्य है कि मैदानी हिस्से में जितनी गढ़ियों का निर्माण इस काल में हुआ, उतना अन्य किसी समय में नहीं हुआ। पिछले पृष्ठों में बुन्देला रक्षा पंक्तियों के सन्दर्भ में इसकी चर्चा की जा चुकी है।

आधुनिक काल– बुन्देलखण्ड में इस काल में लगभग 42 गढ़ियों तथा किलों का निर्माण हुआ, जिनमें सर्वाधिक क्षेत्रीय राजाओं के निर्माण दिखायी पड़ते हैं बुन्देलों तथा मराठों का इस काल में अच्छा योगदान रहा है। 1857 की क्रान्ति के पश्चात कोई उल्लेखनीय निर्माण नहीं हुआ, क्योंकि स्पष्टतः अंग्रेजों ने क्रान्ति में गढ़ियों और किलों का महत्व जान लिया था। यह भी उल्लेखनीय है कि इस क्रान्ति के समय और उसके बाद बुन्देलखण्ड के किले और गढ़ियों का दुर्भाग्य प्रारम्भ हुआ। बहुत से इस क्रान्ति में तोड़ दिये गये और शेष को ब्रिटिश नीति एवं सन्धियों ने महत्वहीन कर दिया।

इस कालखण्ड में बुन्देला राजाओ ने ओरछा से अपना मुख्यालय टीकमगढ़ में स्थापित किया। परिणामतः टीकमगढ़ के आसपास बल्देवगढ़, पृथ्वीपुर, लिधौरा, मोहनगढ़ की मजबूत गढ़ियाँ तैयार हुयी।[121] इसके अतिरिक्त बुन्देलों के द्वारा भूरागढ़, श्रीनगर, रनगढ़, मौदहा, चरखारी, लुगासी, सरीला और भगवाँ में भी दुर्ग निर्माण किया गया। दिगौड़ा की गढ़ी भी बुन्देला द्वारा निर्मित है। इस तरह से बुन्देलों लगभग 14 किले और गढ़ियों इस काल में निर्मित किये, जिनमें उल्लेखनीय रूप से बुन्देलखण्ड के दक्षिणी हिस्से में एक भी नहीं था। मध्य संक्रमित पट्टी में 10 एवं उत्तरी मैदान में इनकी संख्या 04 है। इन निर्माणों में टीकमगढ़ और चरखारी के दुर्ग विशेष रूप से उल्लेखनीय है जबकि बल्देवगढ़, लिधौरा और भूरागढ़ के दुर्ग भी इतिहास में अपना स्थान रखते हैं।

इस कालखण्ड में मराठे बुन्देलखण्ड में प्रभावी हो चुके थे और उन्होंने लगभग 06 स्थानों पर अपने ठिकाने बनवाये। इनमें मऊरानीपुर, गुरसराय, गरौठा, जालौन, कर्वी और विनायका सम्मिलित हैं। रक्षात्मक दृष्टिकोण से केवल गुरसराय दुर्ग ही महत्व रखता है, शेष सभी अब नष्ट प्राय हैं।[122] इन निर्माणों में 03 उत्तर के मैदान में तथा 03 मध्य संक्रमण पेटी में स्थित हैं।

इस कालखण्ड में बुन्देलखण्ड की राजनीतिक स्थिति अस्थिर रही, अतः परवर्ती काल में अनेक क्षेत्रीय राजा प्रकाश में आये। उन्होंने विभिनन स्थानों पर गढ़ियों का निर्माण किया। इनमें अधिकांश राजपूत शासक थे तथा कुछ मुस्लिम, लोधी, गुर्जर आदि भी हैं। इस काल में अन्य शासकों द्वारा निर्मित लगभग 22 दुर्गस्थल प्रकाश मे आये जिनमें समथर, राजगढ़ तथा राजनगर के दुर्ग उल्लेखनीय हैं। रानेह, जयसिंहनगर तथा बरौधा, सिमरिया, बसई, रानगिर, जसपुरा, पवई, लखनगुवाँ बिजावर, गौरिहार, सुमेरपुर, तिंदवारी, पहाड़गॉव, नैगवा।, सुगरा, कुलपहाड़, कैलगवाँ, मेहरौनी और मंडावरा की गढ़ियों का निर्माण इस समय हुआ। अन्य राजाओं द्वारा निर्मित इन निर्माणों में 06 उत्तरी मैदान में, 06 दक्षिणी भू–भाग में जबकि सर्वाधिक 10 मध्य की पेटी में निर्मित किये गये हैं।

कालक्रमानुसार दुर्ग निर्माण– के क्षेत्रीय वितरण उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मध्य काल को छोड़कर बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण के लिये सर्वाधिक महत्व मध्य संक्रमण पेटी को दुर्ग निर्माताओं ने दिया। सम्भवतः इसका मूल कारण यह था कि दिल्ली एवं गंगा के मैदान के आक्रमणकारियों से उत्तरी बुन्देलखण्ड के खुले मैदानों में होने वाले युद्ध उनके हित में नहीं थे। यद्यपि मध्यकाल और आधुनिक काल में उत्तर के मैदानों में भी गढ़ी एवं दुर्ग निर्माण में गतितीव्र हुयी तथापि सर्वकालिक दृष्टिकोण से मध्यपेटी सदैव महत्वपूर्ण बनी रही। दक्षिण के सागर दमोह और पन्ना जिले की दक्षिणी पर्वतीय भूमि में महत्वपूर्ण दुगो। का निर्माण हुआ किन्तु ये संख्या में अधिक नही रहे। कुछ अल्पज्ञात या कम महत्वपूर्ण दुर्गस्थलों को यदि छोड़ दिया जाय, तो बुन्देलखण्ड में सभी कालखण्डों में कुल 136 स्थानों में 50 उत्तरी मैदान पेटी में, 55 मध्य की संक्रमित पट्टी में, जबकि 30 दक्षिण की पेटी में स्थित हैं। केवल मध्यकाल में मध्यपेटी में दुर्ग निर्माण कम हुआ (मध्यपेटी में 16, मैदान में 30, दक्षिण में 18) जबकि अन्य तीन कालखण्डों में मध्यपेटी शेष दो पेटियों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण रही है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. समरांगण सूत्रधार, सम्पादक –गणपति शास्त्री, गवर्नमेन्ट प्रेस त्रिवेन्द्रम, 1912, पेज–48

2. मानसार, सम्पादक– डा0 पी0 के0 आचार्य, आक्सफोर्ड यूनीवसिटी प्रेस, अध्याय–4

3. शुक्रनीतिसार, अनुवादक– विनय कुमार सरकार, सम्पादक बी0 डी0 बसु, द पाणिनि ऑफिस , प्रयाग, 1914, अध्याय–1, पेज–213,14

4. सिंह, राजेन्द्र,' बुन्देलखण्डः ए ट्रेडीशनल लैण्ड ऑफ फोर्ट काम्प्लेक्स,' द डेकेन ज्योग्राफर, वोल्यूम–32, अंक –2 पुणे, 1994, पेज–2

5. महाभारत, हिन्दी अनुवाद– पं0 रामनारायण दास शास्त्री गीता प्रेस, गोरखपुर, शान्तिपर्व, 12.87.5

6. मत्स्य पुराण, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1896, 217,6–7

7. शुक्रनीति, सम्पादक– मिहिरचन्द्र पण्डित, बम्बई, 1926, पेज –6 श्लोक –1–5

8. मनुस्मृति, सम्पादक– गोपाल शास्त्री नेने, बनारस, 1935, अध्याय–7, श्लोक–70,71

9. अग्नि पुराण, सरस्वती प्रेस, कलकत्ता,1988,222,4–5

10. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, खण्ड–2, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई ,1912 अध्याय–26, श्लोक–6,7

11. सिहं, राजेन्द्र,' फोर्ट्सः द कॉरीडोर ऑफ अरबन एनवायरनमेन्ट इन बुन्देलखण्ड (यू0पी0),' अंतर्राष्ट्रीय सेमीनार में प्रस्तुत शोध पत्र, वाराणसी, 1990, पेज–3

12. सिंह, राजेन्द्र ,' इम्पैक्ट आफ फोटोफिकेशन आन इंडिजिनियस अरबन हैबिटेट इन बुन्देलखण्ड (यू0पी0) 'सेटेलमेंन्ट सिस्टम इन इडिया' खण्ड–2 संपा0 –एस0डी0 मौर्या, चुप पब्लिकेशन, इलाहाबाद, 1991, पेज–210

13. मत्स्य पुराण, पूर्वोधृत,217,6–7

14. शुक्रनीतिसार, पूर्वोधृत, अध्याय–4 प्रबन्ध–6, श्लोक–4

15. मयमतम्, सम्पादक–टी0 गणपति शास्त्री, गवर्नमेण्ट प्रेस, त्रिवेन्द्रम,1919, अध्याय–10, श्लोक–37

16. मानसार, पूर्वोधृत, अध्याय–10,92–93

17. अर्थशास्त्र, सम्पादक–यौली, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, 1923, अधिकरण–2, अध्याय–3, पेज–21

18. देवी पुराण, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1906, 72–57

19. जनपद गजेटियर बाँदा , लखनऊ ,1988, पेज–288

20. जनपद गजेटियर पन्ना, भोपाल ,1994, पेज–368

21. जनपद गजेटियर बाँदा , पूर्वोधृत , पेज–299

22. वही, पेज–302

23. जनपद गजेटियर दमोह ,भोपाल ,1998, पेज–209

24. वही, पेज–321

25. जनपद गजेटियर झाँसी, लखनऊ ,1965, पेज–344

26. जनपद गजेटियर सागर ,भोपाल ,1970, पेज–521

27. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–335

28. सिंह, विकास वैभव,' गढ़कुडार महल' बुन्देलखण्ड दर्पण, सप्तम बिम्ब, झाँसी, 1999, पेज–75

29. दुबे, दीनानाथ, 'भारत के दुर्ग', दिल्ली, 1999, पेज–88,89 तथा ट्वाय, सिडनी,' 'द स्ट्रांग होल्ड्स ऑफ इण्डिया', विलियम हेनीमेन लिमिटेड, लंदन, 1957, पेज–97,98

30. जनपद गजेटियर हमीरपुर, लखनऊ ,1965, पेज–344

31. द्विवेदी, मुरारी लाल,' करैरा दुर्ग' बुन्देलखण्ड दर्पण, सप्तम् बिम्ब,1999, पेज–58

32. जनपद गजेटियर सागर, पूर्वोधृत , पेज–510,511

33. सिंह, राजेन्द्र,' कनवर्जन आफ तीर्था इन टू सेन्टर ऑफ पोलिटिकल एलीट', अंतर्राष्ट्रीय सेमीनार में प्रस्तुत शोधपत्र, मथुरा, 1992, पेज–2

34. राय, यू0 एन0,' प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन,' हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद,1965,पेज–213

35. अर्थशास्त्र, पूर्वोधृत, प्रकरण, पेज–49

36. समरांगण सूत्रधार, पूर्वोधृत, पेज–49

37. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–335,336

38. वही, पेज–339,340

39. जनपद गजेटियर सागर , पूर्वोधृत, पेज–511

40. स्लीमैन, डब्ल्यू0 एच0,' रैम्बल्स एण्ड रीकलेक्शन्स आफ एन इण्डियन आफीसियल, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लन्दन 1915 से उद्धृत

41. रिछारिया, रामसेवक,' बुन्देलखण्ड के किले एवं गढियाँ झाँसी ,2001, पेज–140

42. जनपद गजेटियर ,छतरपुर, पूर्वोधृत, पेज–321

43. जनपद गजेटियर बॉदा , पूर्वोधृत, पेज–280

44. जनपद गजेटियर सागर, पूर्वोधृत, पेज–523,524

45. जनपद गजेटियर जालौन, लखनऊ ,1989, पेज–292

46. वही, पेज–289

47. राय, यू0 एन0 पूर्वोधृत, पेज–234

48. अर्थशास्त्र, पूर्वोधृत, प्रकरण–21, पृष्ठ–31

49. सिंह राजेन्द्र,' बुन्देलखण्डः ए ट्रेडीशनल लैण्ड आफ फोर्ट काम्प्लेक्स, पूर्वोधृत, पेज–6

50. सिंह पुरूषोत्तम, "हिस्टोरिकल टैंक्स आफ बुन्देलखण्ड : यूनीक सोर्स आफ इकोलोजिकल बैजेस" इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस 65 वें सत्र में प्रस्तुत शोध पत्र, बरेली, 2004, पेज–1

51. वहीं, पेज–2, 3 सारणी

52. जनपद गजेटियर हमीरपुर, लखनऊ , पूर्वोधृत, पेज–273,274

53. वहीं पेज–268

54. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–363

55. सिंह, पुरूषोतम, पूर्वोधृत, पेज–6,7

56. सिंह, राजेन्द्र, पूर्वोधृत, पेज–4

57. वहीं, पेज–1

58. अर्थशास्त्र, पूर्वोधृत , पेज–51, टिप्पणी– 'खाता द्वप्रमकारयेत'

59. समरांगण सूत्रधार, पूर्वोधृत, पेज–40

60. राय, यू0 एन0, पूर्वोधृत, पेज–255

61. अर्थशास्त्र, पूर्वोधृत , पेज–52

62. सिंह, राजेन्द्र, पूर्वोधृत, पेज–6

63. सिंह, राजेन्द्र, 'इम्पैक्ट ऑफ फोर्टीफिकेशन आन इंडीजिनियस अरबन हैबिटेट इन बुन्देलखण्ड (यू0 पी0), पूर्वोधृत, पेज–210

64. वहीं, पेज–211

65. जनपद गजेटियर जालौन, पूर्वोधृत, पेज–293

66. सिंह, राजेन्द्र,' फोर्ट्सः द कोरीडोर ऑफ अरबन एनवायरनमेट इन बुन्देलखण्ड (यू0पी0), ' पूर्वोधृत पेज–3

67. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–356

68. सिंह, राजेन्द्र,' पूर्वोधृत, पेज–3

69. जनपद गजेटियर सागर, पूर्वोधृत, पेज–110

70. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–335

71. सिंह, राजेन्द्र,' पूर्वोधृत, पेज–3

72. सिंह, राजेन्द्र,' बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण', बुन्देलखण्ड दर्पण , अष्टम विम्ब , झाँसी ,2000, पेज–35,36

73. वही ,पेज–35

74. हीरालाल, रायवहादुर,' मध्य प्रदेश का इतिहास' काशी नागरी प्रचारणी सभा, संबत 1996, पेज–25

75. त्यागी, आर0 के0 ,' ग्रासलेण्ड एण्ड फॉडर एटलस ऑफ बुन्देलखण्ड, झॉसी, 1997, पेज–4

76. वहीं , पेज–4,5

77. जनपद गजेटियर सागर, पूर्वोधृत, पेज–511

78. गुप्त, बी0डी0,' लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ महाराजा छत्रसाल बुन्देला,' दिल्ली,1980, पेज–60

79. जनपद गजेटियर सागर, पूर्वोधृत, पेज–524

80. वही, पेज–516

81. वही, पेज–515

82. वही, पेज–518

83. स्लीमैन, डब्ल्यू0 एच0, पूर्वोधृत, पेज–170

84. कनिंघम, ए0,' आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स' , खण्ड–9 , पेज–50

85. जनपद गजेटियर दमोह ,भोपाल ,1998, पेज–198

86. सक्सेना, जे0 पी0,' जियोलोजिकल कन्ट्रोल आन द इवोल्यूशन ऑफ बुन्देलखण्ड टोपोग्राफी,' जरनल ऑफ ज्योग्राफी, यूनीवर्सिटी ऑफ जबलपुर, न0 –2 1960, पेज–19,20

87. सिंह, विकास वैभव, पूर्वोधृत, पेज–75

88. ब्राउन पर्सी,' इडियन आर्कीटेक्टरः बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू पीरियड्स,' बम्बई,1956, पेज–61

89. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–70

90. जनपद गजेटियर छतरपुर, पूर्वोधृत, पेज–305

91. तिवारी, गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–64,67

92. सिंह, राजेन्द्र,' ए ट्रेडीशनल लैण्ड ऑफ फोर्ट काम्प्लेक्स' पूर्वोधृत, पेज–3,4

93. वही, पेज –3,4

94. वही, पेज –4

95. जनपद गजेटियर जालौन, पूर्वोधृत, पेज–301

96. जनपद गजेटियर हमीरपुर, पूर्वोधृत, पेज–267

97. जनपद गजेटियर जालौन, पूर्वोधृत, पेज–299

98. ब्रोकमैन, डी0 एल0 ड्रेक, 'डिस्टिक्ट गजेटियर्स ऑफ यूनाइटेड प्रोविन्सेज आगरा एण्ड अवध' – बाँदा, इलाहाबाद,1909, पेज–200

99. सिंह राजेन्द्र, पूर्वोधृत, पेज–3

100. वही, पेज–3,4

101. मनुस्मृति, पूर्वोधृत , प्रकरण–9, अध्याय–3

102. राय , यू0 एन0 , पूर्वोधृत, पेज–241

103. सिंह राजेन्द्र, पूर्वोधृत, पेज–4

104. वही, पेज–4,5

105. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–352

106. सिंह राजेन्द्र, पूर्वोधृत, पेज–4

107. जनपद गजेटियर दमोह ,भोपाल , पूर्वोधृत, पेज–215

108. जनपद गजेटियर सागर, पूर्वोधृत, पेज–511,521

109. वहीं, पेज–518,521

110. जनपद गजेटियर छतरपुर, पूर्वोधृत, पेज–308

111. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–339

112. जनपद गजेटियर छतरपुर, पूर्वोधृत, पेज–24

113. रॉय, बी0एन0, 'कालंजर : ए हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल' बाँदा, 1992,पेज–2

114. वही , पेज–13

115. ब्रोकमैन, डी0 एल0 ड्रेक, पूर्वोधृत, पेज–245

116. जनपद गजेटियर पन्ना, पूर्वोधृत, पेज–368

117. रिछारिया, रामसेवक, पूर्वोधृत, पेज–261

118. जनपद गजेटियर टीकमगढ़ , पूर्वोधृत, पेज–351

119. हीरालाल, रायबहादुर, पूर्वोधृत, पेज–30,47

120. द्विवेदी, मुरारीलाल, पूर्वोधृत, पेज–58

121. जनपद गजेटियर टीकमगढ़ , पूर्वोधृत, पेज–68

122. जनपद गजेटियर झाँसी , पूर्वोधृत, पेज–48

अध्याय – 4
निर्माण में प्रयुक्त सामग्री एवं वास्तुशिल्प

बुन्देलखण्ड के विस्तृत क्षेत्र में बिखरे हुये दुर्ग न केवल ऐतिहासिक वैभव की कहानी कहते हैं, वरन अपने वास्तुशिल्प के माध्यम से बुन्देलखण्ड की बदलती हुयी सामाजिक एवं सांस्कृतिक धारा का प्रतिपादन भी करते हैं। वास्तुशिल्प भारत में एक शास्त्रीय विषय रहा है और किसी भी भवन के निर्माण के लिये भूमि चयन एवं भूमि मापन से लेकर भवन निर्माण एवं उसमें प्रवेश तक की एक निश्चिम पद्धति का विधान प्राचीन ग्रंथों में किया गया है। भवन निर्माण के लिये प्रयुक्त सामग्री के विषय में इतने विस्तृत विवरण इन ग्रंथों में नहीं मिलते हैं, जितने कि वास्तुशिल्प के सम्बन्ध में। ऐसा प्रतीत होता है कि समीपवर्ती क्षेत्र में वह निर्माण सामग्री, जो भवन को अधिक दृढ़ता प्रदान कर सके, का प्रयोग करने की स्वतंत्रता रही है। इस अध्याय में बुन्देलखण्ड में निर्मित दुर्गो में प्रयुक्त निर्माण सामग्री के संक्षिप्त विवरण के साथ वास्तुशिल्प के विविध आयामों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

4.1 निर्माण सामग्री

भवन निर्माण सामग्री का इतिहास प्रायः प्रस्तर खंडों और पकी ईंटों के पीछे छुपा हुआ है। कच्ची मिट्टी, कच्ची ईटों और पुनः पकी हुयी ईटों का प्रयोग भवन निर्माण के लिये क्रमशः विकास की कथा है। भारत के प्राचीनतम आवासीय स्थलों में हड़प्पा, कालीबंगन, लोथल इत्यादि स्थलों से प्राप्त उत्खनन अवशेषों से स्पष्ट है कि प्रायः सभी स्थलों में कच्ची एवं पकी हुयी ईटों के प्रयोग हुये हैं।[1] इन पकी हुयी ईटों की स्थिति एवं आकृति से पुरातत्वविदों द्वारा स्थल की प्राचीनता का निर्धारण भी किया जाता है। स्पष्ट है कि प्राचीन काल से दुर्ग निर्माण के लिये ईटों का प्रयोग होने लगा था। तक्षशिला, कौशाम्बी आदि के उत्खनन में 14 x 8 x 2.5 इंच आकार वाली न केवल ईटें प्राप्त हुयी हैं वरन दीवारों पर प्लास्टर चढ़ाये जाने के प्रमाण भी मिले हैं।[2] यह

उल्लेखनीय है कि पुरातात्विक प्रमाणों से निर्माण सामग्री के विषय में जितना स्पष्ट ज्ञान होता है, उतना साहित्य से नहीं होता।[3]

भवन निर्माण सामग्री के विषय में दो महत्वपूर्ण तथ्य हैं– 1. भवन निर्माण में प्रयुक्त अधिकांश सामग्री उस भौगोलिक परिवेश से प्राप्त की जाती थी, जहाँ निर्माण किया जाता था। 2. भवन निर्माण में प्रयुक्त सामग्री चूँकि भारी होती थी, अतः इसका परिवहन प्रायः नही होता था। केवल वे पदार्थ जो बहुमूल्य होते थे तथा भारी नहीं होते थे, उनका परिवहन सम्भव था।[4] इस दृष्टिकोण से बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण में प्रयुक्त सामग्री में तुलनात्मक रूप से विविधता दिखाई पड़ती है, क्योंकि इस क्षेत्र में समतल नदी निक्षेपित मैदान, प्राचीन पठार और पहाड़ियों की श्रेणियॉ मौजूद है। बहुत बड़े भू–भाग में घनों वनों की उपलब्धता रही है। स्पष्ट है कि दुर्ग निर्माण में प्रयुक्त होने वाली आधारभूत सामग्री मिट्टी, पत्थर और लकड़ी तीनों की उपस्थिति रही है। यह बता देना भी अनुचित नहीं होगा कि वर्तमान समय में भी बुन्देलखण्ड के दक्षिण में भवन निर्माण में प्रयुक्त होने वाले पत्थर का उल्लेखनीय उत्पादन होता है। दुर्ग निर्माण करते समय प्राकार के जो भेद प्राचीन साहित्य में किये गये हैं, उनमें प्रमुख है– 1. पांसु प्राकार, 2. इष्टिका प्राकार, 3. प्रस्तर प्राकार।[5] यह प्राकार भेद स्पष्टतः निर्माण सामग्री के आधार पर किया गया है, जिसमें मिट्टी, ईटों तथा पत्थरों से बनायी गयी दीवार का अभिप्राय है। बुन्देलखण्ड के दुर्गो में प्रयोग की गयी सामग्री का विवरण निम्नवत है।

4.1.1 कच्ची मिट्टी एवं कच्ची–पक्की ईंटों का प्रयोग

मिट्टी से बने हुये दुर्ग स्वाभाविक रूप से दीर्घकालिक नहीं हो सकते थे। शिल्पशास्त्र में पांसु प्राकार से अभिहित दुर्ग के लिये ही मृदु दुर्ग एवं धूलकोट आदि शब्द भी प्रयोग किये गये है।[6] मिट्टी से बनाये गये कोट की चौड़ाई अत्यधिक होती थी, फिर भी इन्हें दीर्घकालिक जीवन नहीं मिला जिससे कि इनके अस्तित्व को वर्तमान में देखा जा सके। बुन्देलखण्ड के उत्तरी मैदान में नदी निक्षेपित मिट्टी भुरभुरी होने के कारण भवन निर्माण के लिये उपयुक्त नहीं है। यही कारण है कि आज भी बुन्देलखण्ड

में गंगा यमुना दो आब की तरह कच्ची मिट्टी की छतें डालने का प्रचलन नहीं है। बाँदा जिले के औगासी नाम स्थल पर कभी दिखित राजपूतों द्वारा मिट्टी का किला बनाये जाने के संकेत मिलते है; किन्तु अब इसके कोई अवशेष शेष नहीं है।[7] इसी प्रकार बांदा जिले में ही तिंदवारी नामक स्थान पर हिम्मत बहादुर गुसांई ने मिट्टी का किला बनवाया था जो शीघ्र ही लड़ाइयों में नष्ट हो गया।[8] हमीरपुर जिले के सुमेरपुर में सुमेर सिंह खंगार नामक शासक द्वारा मिट्टी के किले के निर्माण के सन्दर्भ मिलते हैं।[9] मोंठ दुर्ग के चारों ओर मिट्टी के भीटे जैसी विशाल रचना है, जो सम्भवतः परकोटे की तरह रही होगी।[10] उपरोक्त के अतिरिक्त रहली की गढ़ी भी मिट्टी के द्वारा निर्मित थी।[11] ये सभी दुर्ग आधुनिक काल के थे। सम्भव है कि प्राचीन काल तथा पूर्व मध्यकाल में भी मृद दुर्गों का निर्माण हुआ हो, किन्तु अब उनके चिन्ह शेष नहीं हैं। मध्य एवं दक्षिणी बुन्देलखण्ड में वहाँ की पथरीली मिट्टी के चरित्र को देखते हुये मृद दुर्ग निर्माण की सम्भावना न्यून प्रतीत होती है।[12] यह भी अनुमान है कि मध्यकाल में उपर्लिखित मोंठ की भाँति दुर्ग के चारों ओर मिट्टी का चौड़ा परकोटा निर्मित किये जाने का कारण यह भी हो सकता है, कि तोपों के गोले इसमें धँस जाते थे तथा गोलों का संवेग कम हो जाता था।

ईटों का प्रयोग– दुर्ग निर्माण में कच्ची एवं पक्की ईटों का प्रयोग भारत में प्रारम्भ से होता रहा है। इष्टिका प्राकार में ईटों का चिनाई से ही परकोटे का निर्माण किया जाता था और इस प्राकार को अर्थशास्त्र एष्टक प्राकार कहता है।[13] समरांगण सूत्रधार परकोटे के निर्माण में ईटों का प्रयोग किये जाने का निर्देश करता है।[14] ऐसा प्रतीत होता है कि परकोटे के लिये प्रयोग की जाने वाली ईटों विशिष्ट होती थीं, क्योंकि पाणिनि ने इन्हें 'प्राकारीया इष्टिकाः' नाम दिया है।[15]

बुन्देलखण्ड के मैदानी भाग में निर्मित सभी दुर्गो में ईटों का प्रयोग किया गया है, किन्तु केवल पकी हुयी ईटों से दुर्ग का पूर्ण निर्माण हुआ हो, ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है। पत्थर की स्थानीय उपलब्धता के कारण किलों की नींव में पत्थरों का प्रयोग किया गया है, किन्तु मैदानी दुर्गों में परकोटे का निर्माण करते समय बाहर की ओर

पत्थर और अन्दर की ओर पकी हुयी ईटों की चिनाई की गयी है। कहीं–कहीं पत्थरों की परतों के बीच में पकी हुयी ईटों का प्रयोग दिखायी पड़ता है।[16] ये ईटें स्थानीय क्ले मिट्टी से बनायी गयी है और इनका आकार प्रकार वर्तमान ईटों से भिन्न है। इन्हें क्षेत्रीय भाषा में खखरी ईंट कहते हैं और वर्तमान ईटों की तुलना में लम्बाई, चौड़ाई ज्यादा तथा मोटाई कम होती है। अलग–अलग काल में बनने वाली ईटों के आकार में भी भिन्नता है। एरण दुर्ग में 43 X 25 X 7.5 सेमी0 ईटों का प्रयोग किया गया था।[17] जबकि मध्यकाल में ईटों की लम्बाई 30 सेमी0 से अधिक नहीं देखी गयी। बुन्देला काल में निर्मित ईटों का आकार 22 X 14 X 3.5 सेमी0 होता था।[18] यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि बुन्देलखण्ड में दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ने पर दुर्गो में ईट के प्रयोग को बढ़ता हुआ पाते हैं। लगभग सुदूर उत्तरी भाग में स्थित एरच के लिये प्रसिद्ध कहावत 'नरवर चढ़े न बेड़नी, एरच पके न ईंट' वहाँ ईंट के बाहुल्य को प्रदर्शित करती है।[19] बुन्देलखण्ड के दुर्गो में वाह्य प्राचीरों में अनिवार्य रूप से पत्थरों का प्रयोग किया गया है, किन्तु आन्तरिक भाग में निर्मित आवासीय भवन विशेष रूप से जो बुन्देला–मराठा काल में निर्मित हुये हैं, केवल ईटों का प्रयोग दिखाई पड़ता है। ईटों की चिनाई के लिये चूने का प्रयोग किया गया है। और दीवारों पर प्लास्टर भी चूने से निर्मित मसाले के द्वारा किया जाता था। कुछ स्थानों पर चिनाई के लिये उपलब्ध लाल–पीली मिट्टी, जिसमें चिपचिपाहट अधिक होती है, का भी प्रयोग देखा गया है।[20] कुछ दुर्गो में प्रयुक्त ईटों के आकार प्रकार में मिलने वाला पर्याप्त अंतर स्पष्टतः पुनर्निर्माण अथवा नवीनीकरण के संकेत देता है। मड़फा के प्राचीन दुर्ग से लेकर एरच और धमौनी तक ये संकेत देखे जा सकते हैं। बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण के लिये कच्ची ईटों का प्रयोग न तो सन्दर्भ ग्रन्थों में और न ही सर्वेक्षण कार्य में दिखाई पड़ता है।

4.1.2 प्रस्तर सामग्री

प्रस्तरों से बने परकोटों को प्रस्तर प्राकार के लिये प्राचीन ग्रन्थों में शिलाभित्तिका शब्द का प्रयोग भी मिलता है।[21] दुर्ग दृढ़ता के द्योतक है और प्रस्तर

दृढ़ता का आधार। अतः भारत का कोई दुर्ग पत्थर के प्रयोग के बिना शायद ही निर्मित हुआ हो। बुन्देलखण्ड के पत्थर यहाँ के दुर्गो के निर्माण का प्रमुख आधार थे। इस शोध प्रबन्ध में नामांकित दुर्गों में आधे से अधिक निर्माण में केवल पत्थरों का प्रयोग किया गया है और शेष में भी 80 प्रतिशत निर्माण में पत्थरों का प्रयोग है। भवन निर्माण में प्रयुक्त होने वाले पत्थरों जैसे ग्रेनाइट, बालुका पत्थर और शेल आदि के सन्दर्भो में बुन्देलखण्ड धनी क्षेत्र है। यहाँ निर्मित अनेक दुर्ग और गढ़ियाँ इन पत्थरों के संरचनात्मक एवं स्मारकीय महत्व को स्वयं सिद्ध करते हैं परन्तु ये अत्यधिक भारी होने के कारण परिवहनीय नहीं है। अतः स्थानीय रूप से इनका प्रयोग हुआ है।[22] विन्ध्यन चट्टानें बहुमूल्य हैं और इनका सैंडस्टोन उत्तम कोटि का भवन निर्माण पत्थर है। इसका प्रयोग शताब्दियों तक भवन निर्माण में किया गया। साँची, भरहुत के स्तूपों से लेकर 11वीं सदी के खजुराहों मंदिर तथा 15 वीं शताब्दी के ग्वालियर महल के अतिरिक्त अनेक बड़े दुर्ग जो विन्ध्यन पठार के महत्वपूर्ण स्थलों पर निर्मित किये गये हैं, वे इसी से निर्मित है।[23]

बुन्देलखण्ड में भौगोलिक दृष्टिकोण से ट्रांजीशनल सिस्टम और आर्कियन सिस्टम की चट्टाने मौजूद हैं। ट्रांजीशनल सिस्टम में ग्वालियर श्रेणी जो दतिया जिले के उत्तरी हिस्से में मौजूद है ग्रेनाइट, बालुका पत्थर तथा चूना बालुका पत्थर वाली है। लोअर विन्ध्यन सिस्टम में भाण्डेर श्रेणी और कैमूर श्रेणी दोनों में बालुका पत्थर लब्ध है। कहीं–कहीं शेल और चूना पत्थर भी उपलब्ध है।[24] आर्कियन सिस्टम का प्रसिद्ध ग्रेनाइट हल्के गुलाबी, भूरे तथा राख के रंग में मिलते हैं। ये महोबा और कबरई के क्षेत्र में मौजूद हैं। चट्टानों के इस संक्षिप्त क्षेत्रिय वितरण से अलग–अलग दुर्गो के निर्माण में प्रयुक्त पत्थरों के गुण–चरित्र को समझने में सरलता होगी, क्योंकि यह स्थानीय रूप से प्रयोग किया गया है। सामान्य रूप से अध्ययन क्षेत्र के सभी दुर्गो में बालुका पत्थर का प्रयोग किया गया है।, यद्यपि अलग श्रेणियों में इसकी गुणवत्ता उपरोक्तानुसार भिन्न–भिन्न है।

दुर्ग निर्माण के लिये पत्थरों को चौकोर आकृति में काटा जाता था, किन्तु अनगढ़ पत्थरों का बहुतायत प्रयोग हुआ है। प्राचीन ग्रंथों में विश्वकर्मा के जिन चार

विशेष सहायकों (स्थपित, सूत्रग्राही, वर्धति तथा तक्षक) का उल्लेख है उनमें तक्षक पत्थरों को मनोवांछित ढंग से काटने में कुशल होता था।[25] निश्चय ही इतने विशाल दुर्गो के निर्माण के लिये पत्थरों का उत्खनन एवं कटाई के साथ ऊँचे स्थानों पर ढुलाई एक पुष्कर कार्य था। प्राचीन काल के दुर्गो में कई प्राकार इन पत्थरों से निर्मित हैं। उनमें चिनाई के लिये किसी भी प्रकार के मसाले (मोर्टार) का प्रयोग दिखाई नहीं पड़ता। पत्थरों की कटाई तथा फंसाकर उन्हें रखने की कला में दक्ष लोगों ने इस प्रकार की दीवारों का निर्माण किया कि बिना किसी मसाले के ही दीवारों ने दृढ़ता प्राप्त की। कालिंजर, खजुराहो आदि के नगरीय परकोटे इसी पद्धति से बनाये गये थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दुर्ग के अन्दर अनेक भवनों के निर्माण में, छतों में भी पत्थरों का प्रयोग किया गया है। अलग–अलग चौड़ाई एवं लम्बाई के पत्थर आपस में जोड़कर छत को ढकते थे और उसके बाद चूने का प्लास्टर किया जाता था। अजयगढ़, मड़फा दुर्ग में प्रयुक्त काला बालुका पत्थर, देवगढ़ दुर्ग क लाल बलुवा पत्थर और गढ़कुण्डार में प्रयुक्त काला ग्रेनाइट शताब्दियों से बुन्देलखण्ड के पत्थरों के भवन निर्माण में योगदान को प्रमाणित करते रहे हैं।[26]

4.1.3 काष्ठ का प्रयोग

बुन्देलखण्ड का दक्षिणी हिस्सा अपनी वन सम्पदा के लिये सदैव ख्याति प्राप्त रहा है। यहाँ सागौन बहुतायत में रहा हैं[27], इसके अतिरिक्त अन्य भवन निर्माण योग्य वृक्ष जैसे साखू, साल, खैर, शीशम आदि पर्याप्त मात्रा में थे। दुर्गो के विशाल भवनों के निर्माण में इन वृक्षों की लकड़ी का पर्याप्त रूप से प्रयोग किया गया। साल, सागौन, शीशम आदि अत्यन्त मजबूत तथा मौसम से जल्दी न प्रभावित होने वाली लकड़ी है अतः इसका प्रयोग छतों में प्रयुक्त पत्थरों को गर्डर अथवा बीम की तरह आधार प्रदान करने के लिये किया गया। आश्चर्य है कि अनेक भवनों में लकड़ी के गर्डर शताब्दियों तक सुरक्षित बने रहे। कालिंजर दुर्ग में प्रयुक्त लकड़ी की बीमें इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि कई शताब्दियों तक वे अपना अस्तित्व बनाये रखने में सक्षम रही हैं। इन्हीं बीमों में की गयी नक्काशी शासकों की सौन्दर्य प्रियता को प्रमाणित करती है।[28] मोटी

लकड़ी के तख्तों का प्रयोग किलों में फाटक निर्माण के लिये किया जाता था। मजबूत लकड़ी के मोटे तख्तों को लम्बे समय तक तेल में डुबाकर उन्हें दृढ़ता प्रदान की जाती थी।[29] पीतल, लोहे, आदि धातुओं से सजावट भी की जाती थी। यद्यपि वर्तमान में ये फाटक प्रायः नष्ट हो गये हैं, फिर भी कुछ नमूने जैसे चरखारी महल, समथर महल, दतिया का गोविन्द महल, झाँसी की नगर प्राचीर के फाटक अभी भी दृटव्य हैं। इन पर की गयी नक्काशी शासको की रूचि के प्रमाण हैं बुन्देलखण्ड खेत्र में लकड़ी की उपलब्धता एवं उसके उपयोग का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि देवगढ़ का गुप्तकालीन दुर्ग लकड़ी से ही बनाया गया था।[30]

4.1.4 चूना एवं अन्य पदार्थो का प्रयोग

बुन्देलखण्ड के इन विशाल दुर्गो में पत्थरों एवं ईटों की चिनाई के लिए जिस पदार्थ (मोर्टार) का प्रयोग किया जाता थ, उसका रासायनिक संगठन बहुत स्पष्ट प्राप्त नहीं होता। परन्तु यह स्पष्ट है कि मूलरूप से इसमें चूने का उपयोग किया जाता था। बुन्देलखण्ड की भौगर्भिक संरचना में चूने की चट्टानें अनेक स्थानों पर मौजूद है। भाण्डेर श्रेणी, ग्वालियर श्रेणी, कैमूर श्रेणी, एवं नागोद श्रेणी में चूने की चट्टानें उपलब्ध हैं। इनके शोधन के पश्चात् चिनाई के मसाले के रूप में प्रयोग किया जाता था।[31] भाण्डेर श्रेणी का चूना पत्थर कड़ा एवं स्थूल, रंग में गुलाबी क्रीम और गहरे धूसर रंग का होता है। इसके छोटे निक्षेप उपलब्ध होते हैं और चूना बनाने के लिये अनुकूल है।[32] कर्वी जिले में अनेक स्थानों में सफेद चूने की चट्टानें उपलब्ध थीं, जिनसे लगभग 18 घंटे के शोधन के पश्चात् उत्तम गुणवत्ता का चूना प्राप्त होता था।[33] कुछ निर्माणों में स्थानीय रूप से कंकड़ों को तपाकर भी चूना बनाने के प्रमाण मिलते हैं। जले हुये चूने को एक गोल भारी पत्थर से बैलों द्वारा चलाकर अच्छी तरह से बारीक किया जाता था और इसमें अन्य पदार्थो को मिलाकर वह लेप तैयार होता था, जिसकी पकड़ पत्थरों और ईटों को जोड़ने में अत्यधिक मजबूती प्रदान करती थी। ख्यातिप्राप्त भवनों के निर्माण हेतु चूने के इस लेप में गुड़, बेल और गोंद जैसे पदार्थो का तथा इनके अतिरिक्त चमक के लिये सीपियों एवं कौड़ियों, शंखों का योग किया जाता था तथा

प्लास्टर के लिये तैयार चूने के घोल में सुर्खी मिट्टी तथा विविध रंगों का प्रयोग किया जाता था।[34]

अन्य पदार्थो में परवर्ती काल में आंशिक रूप में लोहे का प्रयोग दिखायी पड़ता है। लोहे का कहीं–कहीं परवर्ती दुर्गो में छतों को आधार प्रदान करने के लिये अथवा छत की पटियों को आपस में बाँधे रखने के लिये प्रयोग किया गया है। लोहे का यह अल्प प्रयोग परवर्ती बुन्देला दुर्गो में मिलता है। लोहे के अतिरिक्त पीतल, चाँदी, एवं सोने का भी कहीं–कही प्रयोग किया गया था। अंतरंग कक्षों में छतों या दीवारों में, जहॉ उत्कीर्णन की डिजाइनें बनती थीं, धनी शासक सामर्थ्यानुसार पीतल, चाँदी, अथवा सोने का पिघला घोल डलवाकर उसे भव्यता प्रदान करते थे। इसी प्रकार महलों एवं मन्दिरों में शिखर कलशों को स्वर्ण एवं रजत से निर्मित करने की परम्परा रही है। ओरछा, समथर, पन्ना, महेवा आदि के महलों में स्वर्ण शिखरों के अतिरिक्त ओरछा तथा टोड़ी फतेहपुर मन्दिरों हैं।[35] वर्तमान में ये कलश पूर्णतया अदृश्य हैं, जिसमें ओरछा का कई मन वजनी स्वर्ण कलश 70 के दशक में चोरी चला गया था।

4.1.5 बाहर से आयातित सामग्री

बुन्देलखण्ड के दुर्गो के निर्माण में बाहर से आयातित सामग्री का बहुत कम प्रयोग दिखाई पड़ता है। संगमरमर का प्रयोग बहुत कम स्थलों पर सौन्दर्य वृद्धि के लिये किया गया है[36], जिसे वाह्य स्थानों से मंगाया जाता था। इसी प्रकार पश्चिमी बुन्देलखण्ड में कुछ स्थानों पर सौन्दर्य वृद्धि के लिये धौलपुर के लाल बालुका पत्थर का प्रयोग किया जाता था। सम्भव है कि लोहे जैसा धातुयें भी बाहर से आयात की जाती रही हों। सारांशतः बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण में प्रयुक्त सामग्री के वाह्य स्थानों से आयात के उदाहरण नगण्य है।

4.2 निर्माण शिल्प

भारत में भवन शिल्प के जिस आध्यात्मिक एवं शास्त्रीय स्वरूप की स्थापना प्राचीन काल में ही हो चुकी थी, आज के विकसित देश उसकी कल्पना भी नहीं कर

सकते। कौटिल्य के अर्थशास्त्र (300 ई0पू0) से लेकर वासव भूपाल कृत शिवतत्व रत्नाकर (1684 ई0) के मध्य वास्तुविद्या पर गहन अध्ययन एवं मनन हुआ है। इस अवधि में वृहद संहिता, मानसार, मयमत नीतिसार, चिन्तामणि, समरांगण सूत्रधार, विश्वकर्माप्रकाश, नारद शिल्पशास्त्र, मान सोल्लास, विश्वकर्मा वास्तुशास्त्र, कामन्दक नीतिसार, वास्तु राजवल्लभ, वास्तुमंजरी आदि ग्रन्थ दक्षिणी और उत्तरी परंपरा में रचे गये। इन ग्रंथों में मानसार तथा समरांगण सूत्रधार अत्यन्त बृहद ग्रंथ है।[37] वास्तुशास्त्र के ये स्थापित ग्रन्थ दुर्ग, राजप्रासाद, प्राकार, परिखा, वप्र, अट्टालक, गोपुर, तोष, पथ, वीथ, चैत्य, वापी, तोरण द्वार, गुप्तमार्ग तथा भूमि चयन इत्यादि के बारे में दिशा निर्देश, निर्माण पद्धति और फलाफल का निर्देश करते हैं।

दुर्ग निर्माण का प्रमुख उद्देश्य पुर एवं सन्निवेश की रक्षा होता था तथापि राज प्रासादों से युक्त होने के कारण इनके विविध वास्तु आयाम आकर्षण का विषय रहे हैं। वस्तु शिल्प के सम्बन्ध में अनेकों पुराणों में भी प्रचुर चर्चा है। दुर्ग के निर्माण में भी ग्रहादि की भाँति भी, 'एकाशीतिपद' वास्तु मंडल करना होता था और वास्तु याज्ञ एवं वास्तुपूजा भी आवश्यक होती थी।[38]

बुन्देलखण्ड दुर्ग निर्माण शिल्प विभिन्न शताब्दियों एवं राजवंशों में यात्रा करता हुआ अपनी उत्कृष्टता को प्राप्त हुआ है। क्षेत्र की दुर्गमता ने दुर्ग निर्माण में सदैव उसकी दृढ़ता एवं दुरूहता को प्राथमिकता दी है फिर भी अनेक दुर्गो का शिल्प सौन्दर्य कम सराहनीय नहीं है। भहात नगर की विजय के लिये प्रयाण करते समय सुल्तान महमूद गजनवी का विवरण उल्लेखनीय है– "नगर के चारों ओर एक प्राचीर है, जिसकी ऊँचाई केवल ग्रधों से नापी जा सकती है। इसके रक्षक सैनिक यदि चाहें, तो तारिकाओं से बातें कर सकते हैं। इसका शिखर उत्तुंगताम आकाश की ऊँचाई के समान है और मीन राशि के समानान्तर है।"[39]

चन्देल शासकों की कला स्थापत्य के क्षेत्र में अजेय दुर्गो के निर्माण में पराकाष्ठा पर पहुँची। देश की सुरक्षा के इतिहास में अपनी पर्वतीय स्थिति के कारण चन्देल दुर्ग वाह्य आक्रमण के विरूद्ध सुदृढ़ अजेयता के कारण अद्भुत स्थान रखते हैं। सैनिक दुर्गो की रचना के अतिरिक्त नगरों की सुरक्षा की व्यवस्था तत्कालीन नगर

निर्माण कला का एक विशेष अंग थी, जिसमें नगर दुर्भेद्य प्राचीरों द्वारा परिवेष्टित किये गये थे।[40] अध्ययन क्षेत्र में मध्यकाल एवं बुन्देला–मराठा शासन में भी यह परम्परा अक्षुण्ण रही।

सामान्यतः दुर्ग रचना में उसके आकार प्रकार के अतिरिक्त रक्षात्मक रचनायें विशेष महत्व की होती है। आक्रमण हेतु किये गये निर्माण, गुप्त निर्माण, आवासीय निर्माण तथा जलापलब्धि कराने वाले निर्माण दुर्ग वास्तुशिल्प के अति आवश्यक भाग हैं। बुन्देलखण्ड के दुर्गो में इन सभी की स्थिति, स्वरूप, संरचना आदि का विचार अग्रिम पृष्ठों में किया गया।

4.2.1 किलों का आकार एवं आकृति

प्राचीन भारत में दुर्ग निर्माण एवं नगर स्थापना की पद्धतियाँ विभिन्न सन्दर्भो से विस्तृत रूप में प्राप्त होती है। भूमि का चुनाव, भूमि का मापन एवं निर्माण योजना इत्यादि विशेषज्ञों द्वारा पूर्व में ही निर्धारित कर लिये जाते थे। मानसार एवं मयमत ग्रन्थों में भू–परीक्षा कर उपयुक्त भूमि का संकलन अनिवार्य बताया गया है। शुक्रनीतिसार के अनुसार भूमि के चयन के समय मानवीय अधिवास की पूर्ण सुविधाओं की उपलब्धता का ध्यान रखना चाहिये ताकि निवासी सुखी रह सकें।[41] प्राचीन ग्रंथ अनुपयुक्त भूमि के लक्षणों का निरूपण करते हुये वहाँ दुर्ग विधान का निषेध करते हैं। शुक्रनीति शिल्पकारों को आराम कृत्रिम वन कारिणः, दुर्ग कारिणः एवं मार्गकारिणः आदि तीन भागों में विभक्त करती है।[42] दुर्ग निर्माण में स्थपति, सूत्रगाही, वर्द्धक तथा तक्षक की चर्चा मिलती है। स्थपति जो मूल रूप से निर्माण कार्य करता था उसे दक्ष, धीमान, मर्मज्ञ आदि गुणों से युक्त बताया गया है तथा वह दुर्ग योजना एवं पुरभूमि वितरण के अनुसार रक्षा विभाग प्राकार निवेश दुर्गकर्म, बुर्ज एवं राजप्रासाद आदि का निर्माण करता था।[43] अपराजित पृच्छा में स्थापित के विषय में भू–परीक्षा, मापन, प्रासाद निर्माण और नगर योजना उसके कार्य बताये गये हैं।[44] उसे वास्तु विद्या मर्मज्ञ तथा महाप्राज्ञ स्वीकार किया गया है। सूत्रग्राही का काम नाम–जोख करना तथा तक्षक वस्तुओं का वांछित ढंग से काटने में कुशल होता था। इस प्रकार से पूर्ण एवं पूर्व नियोजन के साथ

दुर्ग निर्माण प्रारम्भ होता था, जिसमें उसका आकार एवं आकृति का निश्चय पूर्व में ही कर लिया जाता था।

दुर्ग आकृति– वास्तु ग्रंथों में दुर्ग आकृति की चर्चा वर्गाकार, आयताकार, अर्धचन्द्राकार, त्रिभुजाकार के रूप में की गयी है। इन आकृतियों के शुभ एवं अशुभ लक्षणें की भी चर्चा है, किन्तु ये आकृतियाँ भू–संकलन पर अधिक आधारित होती थी। जब भूमि चयन पर्वतीय अथवा नदी व जलाशयतटीय भू–भागों किया जाता था, तब दुर्ग का आकार एवं आकृति पूर्ण मनोवांछित रूप से नहीं हो पाती। वस्तुतः मनोवांछित आकृति एवं आकार के दुर्ग का निर्माण समतल एवं मैदानी भू–भाग में ही किया जा सकता है। जिस प्रकार से प्राचीन ग्रन्थों ने पर्वत दुर्ग को महत्व प्रदान किया है, इसमें तो दुर्ग की आकृति चयनित पहाड़ी की आकृति के समान स्वाभाविक रूप से हो जाती है।

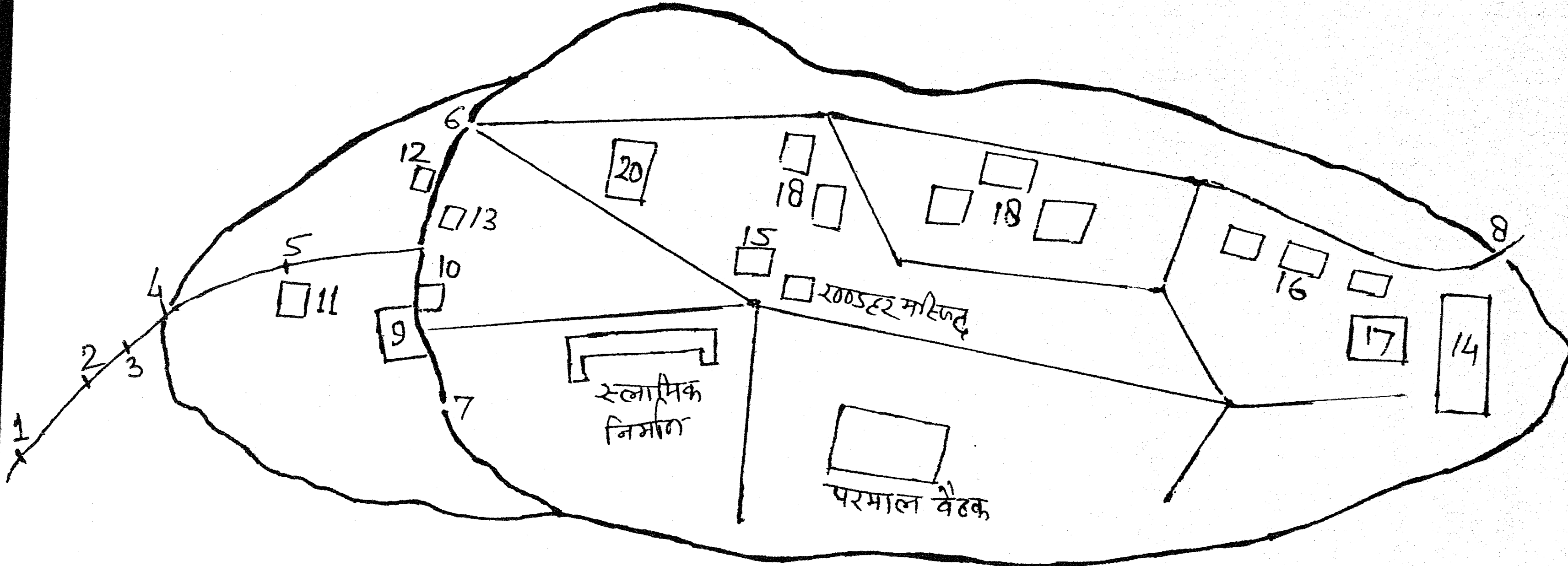
जैसा कि पिछले पृष्ठों में चर्चा की जा चुकी है कि बुन्देलखण्ड के दुर्गो ने प्रायः प्राकृतिक सुरक्षित स्थलों (पर्वत, नदी, वन आदि) आश्रय लिया है, अतः उनकी कोई निश्चित आकृति नहीं रह गयी है। पहाड़ी अथवा नदी ने जिस आकृति का धरातल प्रदान किया, दुर्ग भी उसी आकृति का निर्मित हुआ। बुन्देलखण्ड के कुछ विशिष्ट दुर्गो की आकृति का अन्वेषण निम्नवत है।[45]

(क) वृत्ताकार आकृति : वृत्ताकार आकृति के दुर्गो का निर्माण त़ीन प्रकार के स्थलों में ही सम्भव है– छोटी शंक्वाकार पहाड़ी या टीला या समतल मैदान, तथापि समतल मैदान ही एक ऐसी स्थिति है, जहाँ पूर्ण वृत्ताकार दुर्ग, निर्मित हो सकता है। बुन्देलखण्ड के वृत्ताकार दुर्गो को पूर्ण वृत्त के स्थान लगभग वृत्ताकार आकृति क़ा माना जा सकता है। चन्देलकालीन दुर्ग मड़फा लगभग वृत्ताकार आकृति का रहा है। इसका नामकरण ही मण्डप की आकृति का होने के कारण अपभ्रंश रूप में मड़फा हुआ है। झाँसी जिले में स्थित समथर दुर्ग को वृत्ताकार दुर्ग के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।[46] समतल मैदान में स्थित तिहरी प्राचीरों से युक्त यह अकेला वृत्ताकार दुर्ग है। रनगढ़ भी लगभग वृत्ताकार पहाड़ी में बने होने के कारण इस कोटि में रखा जा

ख)

कालिंजर दुर्ग

(अभिन्यास आरेख)



1 आलमगीर दरवाजा 2 गणेश द्वार 3 चण्डी द्वार 4 बुध्द भद्र द्वार 5 हनुमान द्वार 6 लाल दरवाजा 7 पन्ना द्वार 8 पूर्वी द्वार (नवीन) 9 नीलकण्ठेश्वर मन्दिर 10 पाताल गंगा 11 हनुमान कुण्ड 12 सीता सेज 13 बुड्ढा-बुड्ढी 14 अमान सिंह महल 15 शनीचरी तलैया 16 चन्देलकालीन भवनों के अवशेष 17 कोटि तीर्थ 18 चौबे महल 19 रानी महल 20 व्यंकट बिहारी पैलेस

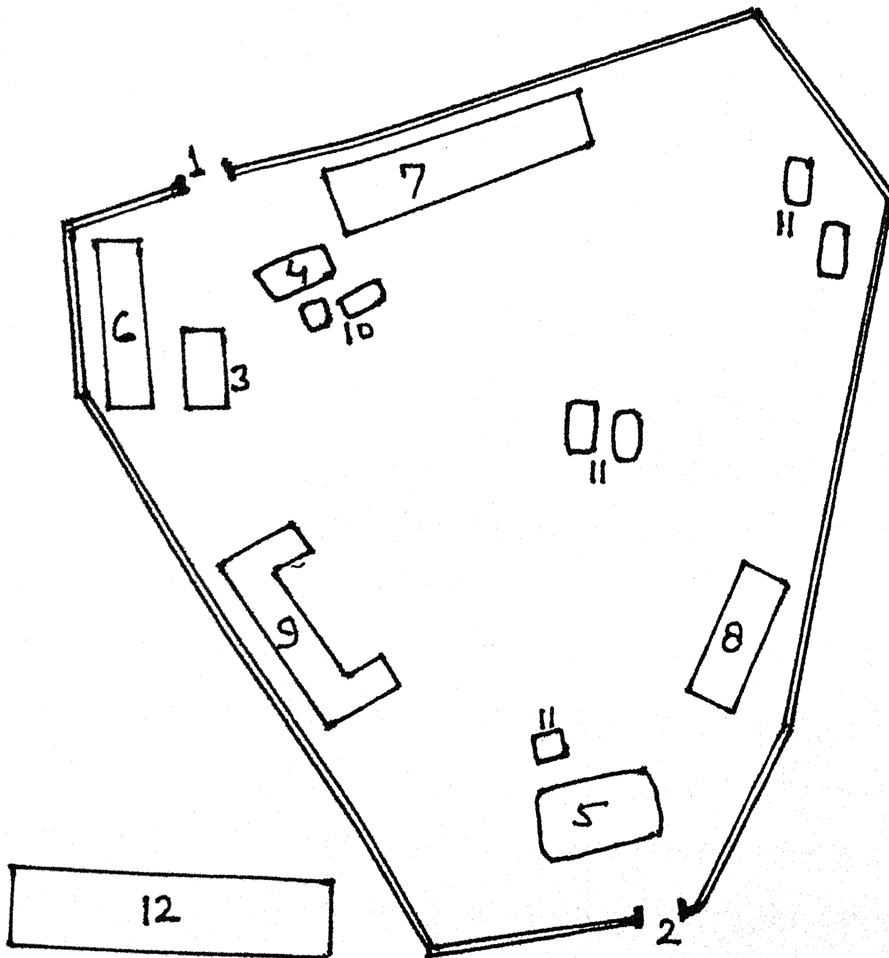
सकता है। गुरसराय का छोटा दुर्ग एक ऊँचे टीले पर निर्मित हुआ था और यह भी लगभग वृत्ताकार है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि जिन स्थलों में मुख्य दुर्ग भवन के अतिरिक्त नगर प्राचीरों का निर्माण किया गया था, उनमें से अनेक लगभग वृत्ताकार है। इन नगर प्राचीरों के एक सिरे पर अथवा मध्य में मुख्य दुर्ग भवन का निर्माण देखा जाता है। झाँसी एवं दतिया के मुख्य दुर्ग स्वयं में वृत्ताकार नहीं है परन्तु यदि इनकी नगर प्राचीरों को सम्मिलित कर लिया जाय तो इनकी आकृति लगभग वृत्ताकार हो जाती है, जिनमें मुख्य दुर्ग एक पार्श्व में स्थित है।

(ख) वर्गाकार, आयताकार एवं समलम्ब आकृति : इस प्रकार की आकृतियों वाले दुर्गों के लिये समुचित स्थल समतल मैदान या चौरस पठार ही हो सकते हैं बुन्देलखण्ड में इस कोटि की आकृति वाले दुर्गों में मोंठ, दतिया, ओरछा, गढ़कुण्डार, टीकमगढ़, लिधौरा, जगम्मनपुर, जतारा, पृथ्वीपुर आदि दुर्गों एवं गढ़ियों को रखा जा सकता है। इनमें से गढ़कुण्डार आश्चर्यजनक रूप से पहाड़ी पर स्थित होते हुये भी चतुष्फलकीय आकृति का है। दुर्गों में स्थित महल आमतौर पर इन्हीं आकृतियों में देखने को मिलते हैं। शेष संरचना नष्ट हो जाने पर इन प्राचीन महलों में इस प्रकार की आकृति शेष बची है। दतिया के दोनों प्राचीन राजमहल क्रमशः वर्ग एवं आयत की आकृति के हैं। इसी प्रकार ओरछा का जहाँगीरी महल 45 मीटर भुजा का एक वर्ग है, जबकि राजमहल की लम्बी भुजा 77 मीटर लम्बी है।[47] यह ध्यान देने योग्य है कि चतुर्भुज अथवा आयताकार दुर्गों में प्रायः बुर्जो की संख्या कम (4 या 6) रहती है इसलिये इनकी दृढ़ता प्रभावित होती है, फिर भी मैदानी हिस्सों में यह आकृति सर्वाधिक प्रचलित होती रही। सागर दुर्ग का मुख्य भवन आयताकार आकृति में 1200 फुट लम्बी तथा 600 फुट चौड़ी आकृति में था, जिसमें 20 बुर्ज थे।[48] अध्ययन क्षेत्र के पश्चिम सीमांत में स्थित करैरा दुर्ग की लम्बाई 1900 फुट तथा चौड़ाई 700 फुट है। यह धरातल से 115 फुट की ऊँचाई पर निर्मित हुआ है।[49]

(ग) त्रिभुजाकार आकृति : त्रिभुजाकार आकृति को भारतीय वास्तुकार भवन निर्माण हेतु बहुत उपयुक्त नहीं मानते। इस प्रकार की आकृति का दुर्ग या तो नदी संगम स्थल में या त्रिभुजाकार पहाड़ी में निर्मित करने की परंपरा रही है। बुन्देलखण्ड में इसके दो

अजयगढ़ दुर्ग

(अभिन्यास आरेख)



1 उत्तरी दरवाजा	5 परमाल तालाब	9 आस्था शक्ति
2 तरहौनी दरवाजा	6 अजयपाल ताल महल	10 अजयपाल बाबा का मन्दिर
3 गंगा ताल	7 चन्देली महल	11 टूटे हुये मन्दिर
4 यमुना ताल	8 त्रैलोक्य वर्मन महल	12 नीचे का महल

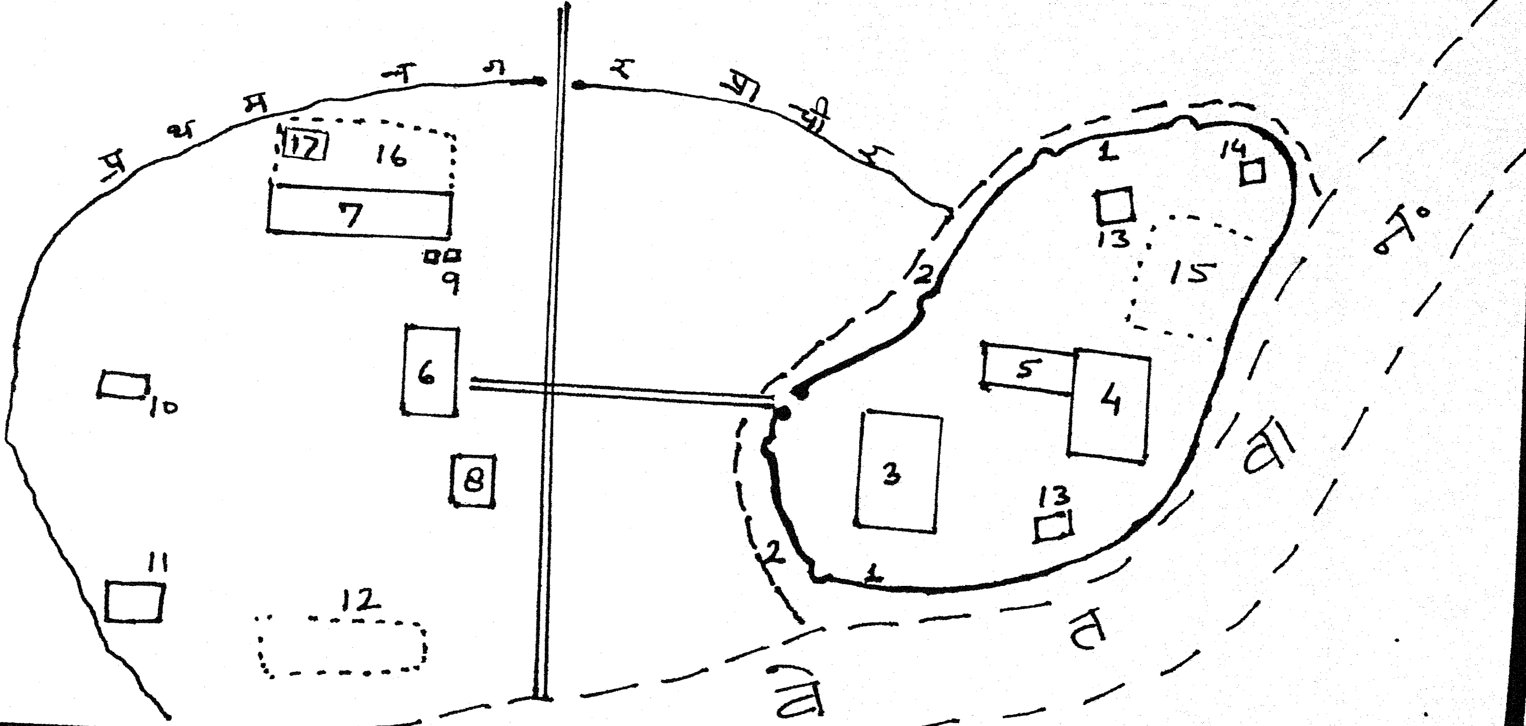
उदाहरण प्राप्त होते हैं– अजयगढ़ एवं धमौनी चन्देलकालीन अजयगढ़ दुर्ग धरातल से 260.6 मीटर की ऊँचाई पर निर्मित है। उत्तर–पश्चिम इसकी लम्बाई 1.6 किमी0 है जबकि आधार रेखा लगभग 0.9 किमी0 है। इस प्रकार दुर्ग प्राचीर का घेरा लगभग 4.8 किमी0 है।[50] पहाड़ी का शिखर सर्वत्र समतल न होने के कारण प्राचीर में उतार चढ़ाव है। धमौनी का प्रसिद्ध दुर्ग भी अत्यन्त खड़े चढ़ाव पर त्रिभुजाकार आकृति में 50 फुट ऊँचे तथा 15 फुट चौंड़े प्राचीर से निर्मित हुआ है। 4 दिसम्बर 1835 को जब स्लीमैन ने यहॉ की यात्रा की तब उसने इस दुर्ग की आकृति एवं दुर्गमता की अत्यधिक प्रशंसा की है।

(घ) अण्डाकार या दीर्घवृत्ताकार आकृति : इस आकृति को कहीं–कहीं पर सर्पाकार आकृति भी कहा जाता है। वस्तुतः जब लम्बी पहाड़ी को घेरती हुयी प्राचीरों का निर्माण होता है, तब इस प्रकार की आकृति उभरती है। इस प्रकार आकृति वाले दुर्ग के निर्माण के लिये लम्बी पहाड़ी, जिसका पृष्ठ भाग चौरस हो, सर्वथा उपयुक्त तालबेहट, टोड़ीफतेहपुर, जैतपुर, मनियागढ़, आदि दुर्ग इस कोटि में आते हैं। कालिंजर दुर्ग सागर तल से 375 मीटर तथा समवर्ती भूमि से 275 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है।[51] पहाड़ी के पृष्ठ भाग में जिसका कुछ भाग सम तथा अधिकांश विषम है, लगभग 6 से 8 किमी0 की परिधि का प्राचीर है, जिसकी आकृति को लगभग अण्डाकार कहा जा सकता है।[52] तालबेहट दुर्ग लम्बी पहाड़ी के एक ओर विशाल तालाब तथा दूसरी ओर शहर है। पहाड़ी की चौड़ाई कम होने के कारण दुर्ग के अन्दर अनेक निर्माण लम्बाई में फैले हुये है। इसी प्रकार टोड़ीफतेहपुर में एक ओर नदी है और पहाड़ी के निचले हिस्से (टोड़ी) पर प्रमुख द्वार है, जहाँ से पहाड़ी ऊँची होती चली जाती है तथा उसकी लम्बाई भी क्रमशः बढ़ती जाती है। यहाँ सर्वोच्च स्थल पर पानी का कृत्रिम टैंक निर्मित था, जिसके बाद पुनः पहाड़ी का ढाल प्रारम्भ हो जाता था। इसी प्रकार बेलाताल नामक विशाल जलाशय से एक ओर से सुरक्षित जैतपुर दुर्ग लम्बाई में फैला हुआ है तथा इसकी चौड़ाई कई स्थानों पर अत्यधिक कम हो गयी है। तालबेहट, टोड़ी फतेहपुर तथा जैतपुर तीनों दुर्ग निर्माणों को दीर्घ वृत्ताकार कहा जा सकता है। चन्देलकालीन दुर्ग मनियागढ़ एक लम्बी पहाड़ी को घेरता था। सारांश में कहा जा

ओरछा दुर्ग

(अभ्यास आरेख)

1 परकोटा
2 खाई
3 राजमहल
4 जहांगीरी महल
5 शीश महल
6 राम राजा (पुराना विलास महल)
7 पालकी महल
8 चतुर्भुज मन्दिर
9 सावन भादौं
10 केशव भवन
11 राय प्रवीण भवन
12 छतरियाँ
13 अन्य आवास
14 मन्दिर
15 उपवन
16 फूल बाग
17 हरदौल जू समाधि



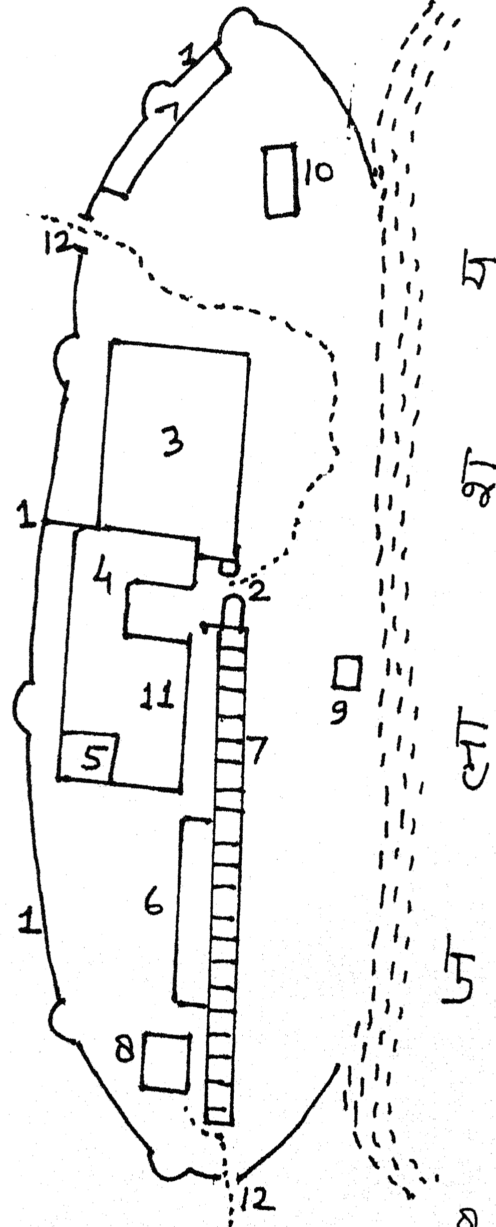
सकता है कि पहाड़ियों की लम्बी आकृति के कारण दुर्गो की इस प्रकार की आकृतियाँ उभरती थीं।

(ड) बहुभुजाकार आकृति : कुछ दुर्ग ऐसे भी देखे गये जिनके निर्माण में 4 से अधिक भुजा वाली प्राचीर का प्रयोग किया गया है। इनमें भूरागढ़, बानपुर, सेहुँड़ा (बाँदा) और झाँसी दुर्गों को रखा जा सकता है। भूरागढ़ का ध्वस्त दुर्ग, जो केन नदी के तट पर एक चट्टानी ऊँचे स्थल पर निर्मित था, पाँच भुजा वाला था। इसी प्रकार झाँसी, बानपुर तथा सेहुँड़ा के दुर्ग भी 6 से अधिक भुजा वाले है। सेहुँड़ा दुर्ग ध्वस्त हो चुका है। बानपुर दुर्ग के अवशेष बचे हैं तथा झाँसी दुर्ग की सभी प्राचीरें अभी सुरक्षित एवं दर्शनीय हैं।

(च) आकृति विहीन दुर्ग : परम्परागत रूप से निर्धारित आकृतियों के वर्गीकरण में आकृति रहित रचनायें समाहित नहीं होती हैं अतः उन्हें एक अलग वर्ग आकृतिविहीन के नाम से रखा जा सकता है। वस्तुतः जब निर्माण स्थल (पहाड़ी या टीला) की स्वयं कोई आकृति नहीं होती है और आवश्यकतानुसार सम्पूर्ण क्षेत्र को घेरना होता है, तब इस प्रकार के आकृतिविहीन दुर्गो का निर्माण होता है। बुन्देलखण्ड के अधिकांश दुर्ग इस कोटि में रखे जा सकते है। रामपुरा, चरखारी, राजनगर, राहतगढ़, विनायका, रनगढ़, देवगढ़, सिंगोरगढ़ आदि सभी दुर्ग पहाड़ियों पर निर्मित है और इनकी कोई सुपरिभाषित आकृति नहीं है। पहाड़ी को घेरने के लिये आकृतिविहीन प्राचीर का निर्माण कर अनेक बुर्जो से इसे दृढ़ता प्रदान की जाती है। किसी दुर्ग निर्माण के लिये यदि स्थल चयन को महत्ता दी जाती है। तो दूसरी ओर किसी क्षेत्र विशेष में तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार दुर्ग निर्माण की बाध्यता होती थी। उसी में दुर्ग निर्माण किया जाता था, भले ही शास्त्रीय पद्धति तथा वास्तुशास्त्र के दृष्टिकोण से निर्मित होने वाली आकृति आकृतिविहीन ही क्यों न हो।

दुर्ग आकार : दुर्ग के आकार से तात्पर्य उसकी विशालता से है। तकनीकी भाषा में कहा जाय तो दुर्ग के अन्दर कितना क्षेत्रफल है, जिसे दुर्ग का संरक्षण एवं सुरक्षा प्राप्त है, 'आकार' से निरूपित किया जायेगा। दुर्ग की विशालता दो आधारभूत तथ्यों पर

तालबेहट दुर्ग (अभिन्यास आरेख)



1 परकोटा

2 सिंहपौर

3 महल

4 बावड़ी

5 जेल

6 पौरचारक कक्ष

7 बैरक

8 नर सिंह मन्दिर

9 मन्दिर

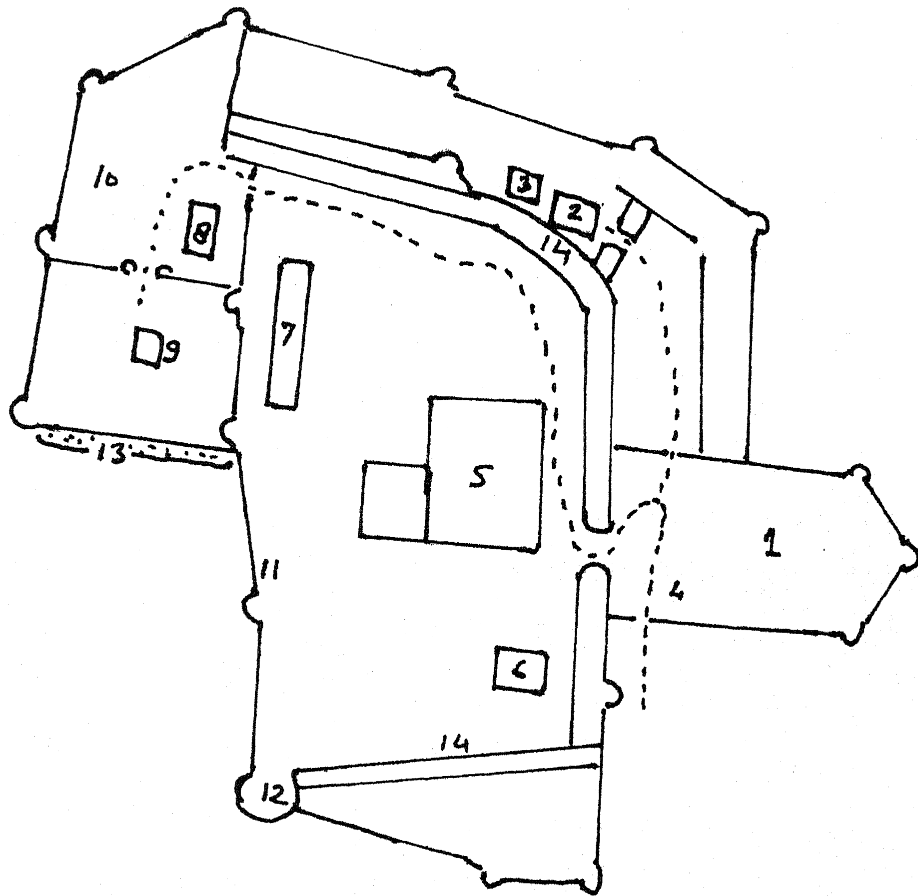
10 बैठक

11 अन्य आवास

12 दुर्ग द्वार

टिकी हुई थी। प्रथमतः अधिकाधिक को सुरक्षा प्रदान करने की क्षमता तथा दूसरा निर्माता के वैभव का प्रदर्शन। अधिकाधिक को सुरक्षा प्रदान करने के लिये अनेक बार प्रमुख दुर्ग भवन के अतिरिक्त नगर को भी प्राचीर से घेर दिया जाता था तथा इसे सुरक्षा प्रदान की जाती थी। आपत्तिकाल में नगर प्राचीर के अन्दर निवास करने वाले विशिष्ट लोगों को भी मुख्य द्वार के अन्दर ले लिया जाता था।

बुन्देलखण्ड में 3 से 7 हजार वर्गफुट की क्षमता से लेकर बड़ी पहाड़ियों को घेरने वाले विशालकाय दुर्ग स्थित हैं, अतः इन्हें आकार की दृष्टि से वर्गीकृत करना उचित नहीं है। इतिहासकारों ने इन्हें बड़े दुर्ग और गढ़ियों के नाम से ही पुकारा है। कालिंजर दुर्ग का पहाड़ी घेरा 6 किमी0 से अधिक है तथा इसका क्षेत्रफल 2850 हेक्टेयर के लगभग है।[53] कालिंजर दुर्ग की बस्ती, जो पहाड़ी के पार्श्व में थी, नगर प्राचीर से घिरी हुयी थी। यह नगर प्राचीर कामता, पन्ना तथा रेवा नाम के तीन द्वारा से युक्त थी। इस प्रकार कालिंजर दुर्ग का प्रभावी क्षेत्रफल और भी अधिक हो जाता है। इसी प्रकार अजयगढ़ दुर्ग भी विस्तृत था, आज इसका परकोटा लगभग 4.8 किमी0 है।[54] गढ़ाकोटा, गढ़कुण्डार, दतिया, सिंगोरगढ़, झाँसी, धमौनी, चरखारी, टीकमगढ़, ओरछा, राहतगढ़ आदि दुर्गो को विशाल आकार के दुर्गो में लिया जा सकता है। राहतगढ़ दुर्ग का क्षेत्रफल 66 एकड़ है।[55] करैरा, समथर, बरूआसागर, टोड़ी फतेहपुर, बानपुर, तालबेहट, रामपुरा आदि दुर्गो को मध्यम आकार के दुर्गो में रखा जा सकता है। रनगढ़, बल्देवगढ़, जतारा, लिधौरा, विनायका, नदीगाँव, जगम्मनपुर, बिसहरी तथा रहली आदि को छोटे किलों अथवा गढ़ियों के रूप में निरूपित किया जा सकता है। जगम्मनपुर किले का क्षेत्रफल 7 एकड़[56], रहली का क्षेत्रफल 2 एकड़ है।[57] नदीगाँव का तीन एकड़ तथा इतना ही लगभग लिधौरा गढ़ी का है। 'दुर्ग आकार' शब्द का प्रयोग करते समय उसकी भत्यता, विशालता और दृढ़ता का भी भाव आता है, इनकी चर्चा आने वाले पृष्ठों में विभिन्न सन्दर्भो में की गयी है।



1 परेड ग्राउंड

2 गनेश मन्दिर

3 भवानी शंकर तोप

4 कड़क बिजली तोप

5 पंच महल

6 समाधि (गुलाम गौस खाँ मोतीबाई)

7 भूमिगत निर्माण

8 फांसीघर, ग्वालियर सुरंग

9 शिव मन्दिर

10 उपवन

11 रानी के घोड़ा कूदने का स्थान

12 बड़ी बुर्ज

13 खाई

14 बैरक

झाँसी दुर्ग

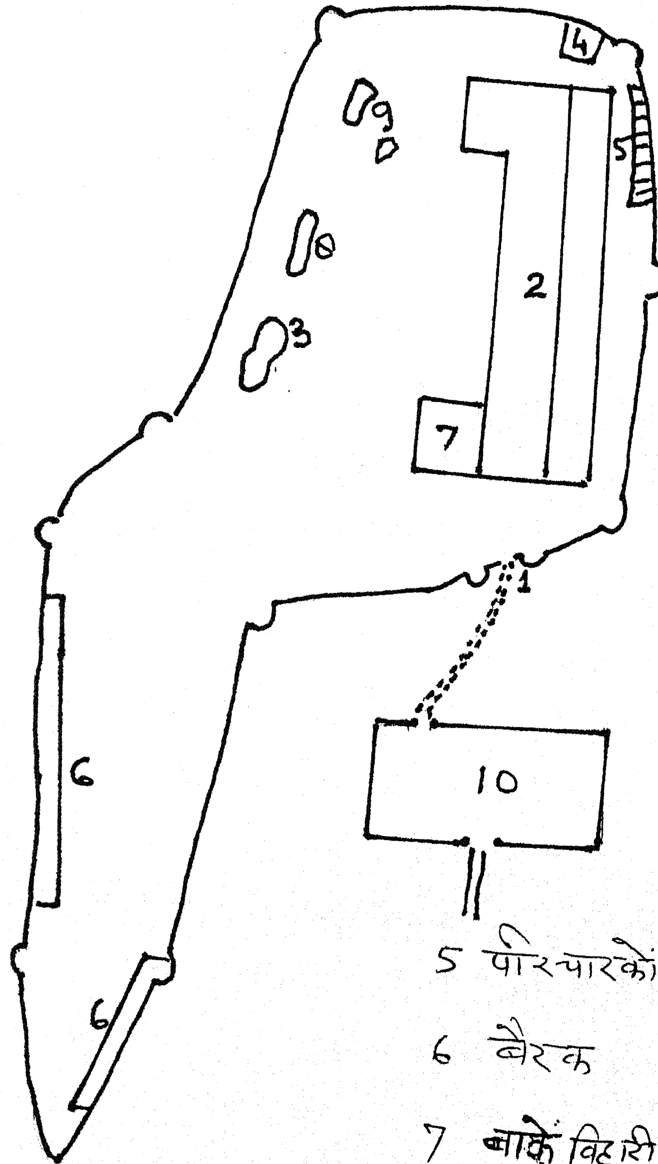
(अभिन्यास आरेख)

4.2.2 रक्षात्मक निर्माण

प्राचीन साहित्य में दुर्ग सन्निवेश के अन्तर्गत बहुत से निर्माण आते हैं, जैसे परिखा, वप्र, प्राकार, अट्टालक, राजप्रासाद, गोपुर, कोष, पथ, वीथ, धर्मस्थल, वापी, तोरणद्वार, भूमिगत कक्ष, गुप्त मार्ग, सैनिक आवास आदि।[58] दुर्ग निर्माण के समय आवश्यकता एवं सामर्थ्य के अनुसार निर्माता इन सभी को निर्मित करवाता था। इन भवनों में आमोद–प्रमोद, निवास स्थल तथा अन्य आवश्यक भवन सम्मिलित होते थे। दुर्ग का परम लक्ष्य एक ऐसे निर्माण से होता है, जो वाह्य आक्रमणकारियों से सुरक्षा प्रदान करें अतः दुर्ग सन्निवेश में रक्षात्मक निर्माण सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है, समरांगण सूत्रधार के अनुसार किलेबन्दी के 6 आवश्यक तत्व हैं– वप्र, परिखा, प्राकार, द्वार, अट्टालक और तोरण।[59] इनमें समय और स्थानिक परिस्थितियों के अनुसार अनेक प्रकार के परिवर्तन देखे जाते हैं तथा महत्व भी घटता बढ़ता रहता है। नदी तट, मैदान अथवा पहाड़ी पर बनने वाले दुर्गो में परिखा, वप्र और प्राकार में अत्यधिक अन्तर तथा अलग–अलग महत्व होता है। बुन्देलखण्ड के दुर्गो में सभी रक्षात्मक निर्माण देखने को मिलते हैं, यद्यपि क्षेत्रीय आवश्यकता के अनुसार कुछ महत्वहीन हैं तथा कुछ का महत्व अत्यधिक है। रक्षात्मक निर्माणों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है–

(क) परिखा– शिल्प शास्त्रों में दुर्ग निर्माण के समय सबसे पहले परिखा का विधान किया है। अर्थशास्त्र[60], महाभारत[61] में भी सर्वप्रथम परिखा निर्माण का विधान किया गया है। दुर्ग अथवा नगर प्राचीर के चारों ओर जलयुक्त कृत्रिम खाई निर्माण की परंपरा भारत में बहुत पहले से थी। मैदान में स्थित लगभग सभी प्राचीन नगर अयोध्या, इन्द्रप्रस्थ, मथुरा, पाटलिपुत्र आदि इन परिखाओं से युक्त थे। सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिये परिखाओं की संख्या एक से अधिक भी होती थी। समरांगण सूत्रधार 'विधेयम् परिखात्रयं' का निर्देश करता है।[62] अर्थशास्त्र भी 3 परिखाओं का विधान करता है। परिख निर्माण के लिये चिन्हित भूमि को पारिखेयी भूमि कहते थे।[63] अन्य ग्रन्थों में इसकी भिन्न मापें दी गयी हैं। अर्थशास्त्र 14 दण्ड, 12 दण्ड तथा 10 दण्ड चौड़ाई वाली परिखाओं की प्रशंसा करता है और चौड़ाई से आधी गहराई का विधान करता है।

चरखारी दुर्ग (अभिन्यास आरेख)



1 सिंह पौर

2 महल

3 बावड़ी

4 जेल

5 परिचारकों के कक्ष

6 बैरक

7 बांके बिहारी मन्दिर

8 बैठक

9 छोटे तालाब

10 नीचे का महल

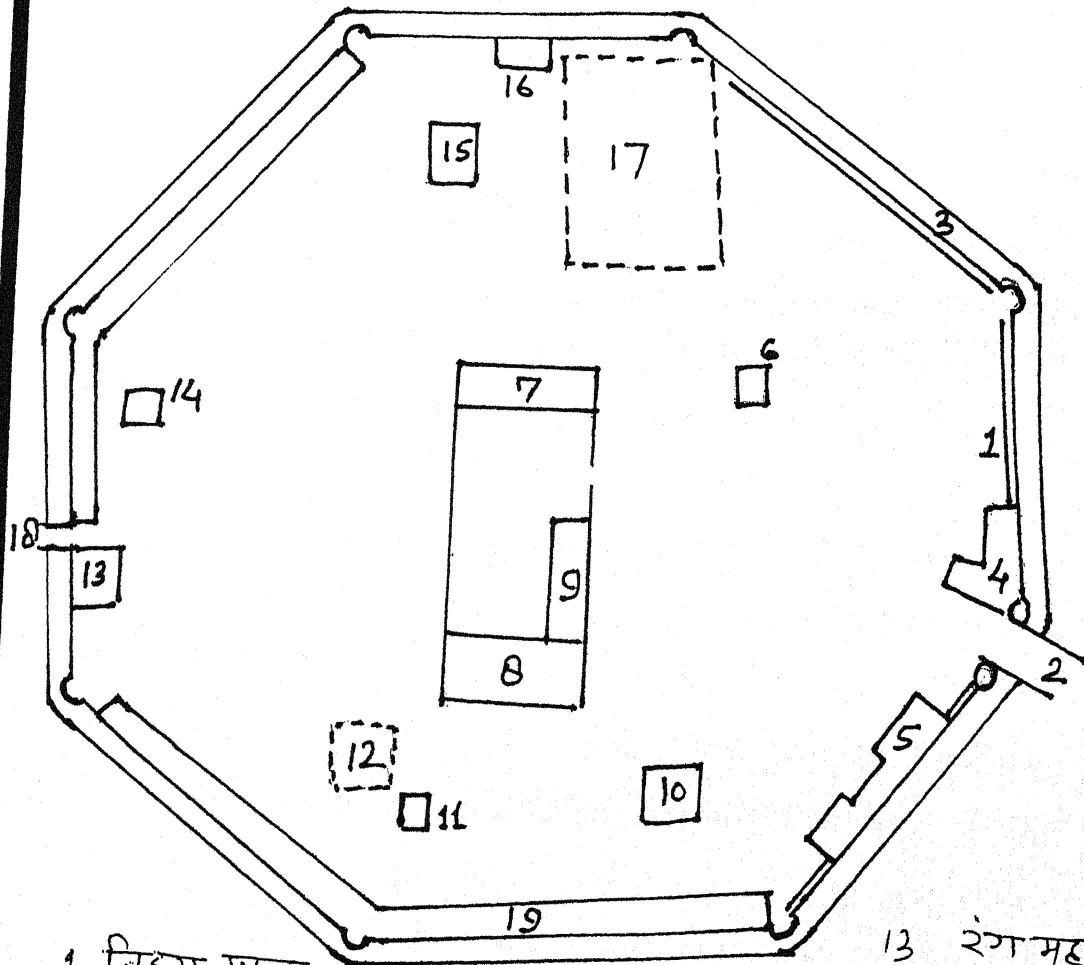
महाभारत, हरिवंश पुराण आदि में भी परिखा का परिमाप दिया गया है। इन ग्रन्थों में चौड़ाई से गहराई आधी अथवा चौथाई रखने के लिये कहा गया है।[64] प्रयोग में परिखा की गहराई त्रिपुरूषी अर्थात् 15 फुट मानी जाती थी।

परिखा उत्खनन के पश्चात उसे पत्थर और ईटों से सुदृढ़ किया जाता था। अर्थशास्त्र उदक परिखा, पंक परिखा और रिक्त परिखा की चर्चा करता है। उदक और पंक परिखाओं को घड़ियाल और जलचर जीवों से युक्त तथा कमल के फूलों से युक्त रखने को कहा गया है। घड़ियालों से भरी परिखा ग्राहवती तथा कमलों से भरी हुयी परिखा को पद्मवती परिखा को नाम दिया गया है।[65] परिखाओं को पारकर दुर्ग तक पहुँचने के लिये उठवाँ एवं तुड़वाँ पुलों की चर्चा मिलती है।66

बुन्देलखण्ड के अधिकांश किले पर्वतीय और नदी तटीय स्थलों पर निर्मित किये गये, इसलिये यहाँ खाई निर्माण की परंपरा अधिक महत्व नहीं प्राप्त कर सकी। नदी का किनारा अथवा विशाल तालाबों के तट दुर्गो को प्राकृतिक परिखा की अगम्यता का लाभ स्वतः प्रदान करते थे। पर्वतीय दुर्गों में परिखा निर्माण दुष्कर कार्य था तथा इसकी आवश्यकता भी इतनी अधिक नहीं थी। बुन्देलखण्ड में मोठ, समथर, भसनेह, गुरसराय, नदीगाँव तथा मौदहा के किलों में परिखा निर्मित थी, जिनमें से अधिकांश ध्वस्त हो चुकी हैं। इन खाईयों की चौड़ाई 20 से 25 फुट देखने को मिलती है, जिनकी दीवारों को पत्थरों से निर्मित किया गया है और निचली सतह भी पत्थरों से मजबूत की गयी है। गहराई 10 से 15 फुट के बीच में है। जगम्मनपुर की गढ़ी में 100 X 20 फुट, रामपुरा गढ़ी में 150 X 20 फुट की परिखा निर्मित की गयी थी।[67] गोपालपुरा गढ़ी में एक ओर 15 फुट चौड़ी परिखा मौजूद थी। झाँसी, राजनगर, ओरछा, दतिया और टोड़ी फतेहपुर के दुर्ग आंशिक रूप से परिखा परिवेष्टित थे। झाँसी दुर्ग में शंकरगढ़ की ओर दुग्र प्राचीर प्राचीर की ऊँचाई कम होने के कारण परिखा का निर्माण किया गया था। ओरछा दुर्ग में तीन ओर बेतवा नदी की स्थिति होने के कारण शेष एक ओर विशाल परिखा का निर्माण कर दुर्ग को अगम्य बनाया गया था। इसी प्रकार टोड़ी फतेहपुर में नदी की ओर से आंशिक रूप से दुर्ग परिखा युक्त है। इन नदी तटीय दुर्ग परिखाओं

समथर दुर्ग

(अभ्यास आरेख)



1 तिहरा प्राकार
2 मुख्य द्वार
3 खाई
4 मोती पैलेस
5 प्रशासनिक भवन एवं टकसाल
6 नर सिंह मन्दिर
7 राज मन्दिर
8 प्रमुख महल
9 दरबार हाल
10 न्यायालय
11 देवी मन्दिर
12 अन्नागार
13 रंग महल
14 राज गुरु निवास
15 बावड़ी
16 जेल
17 फूल बाग
18 पिछला द्वार
19 बैरक

में नदी जल ही आता था, अतः अलग से इनको जलपूरित करने को प्रयास नही करना पड़ता था।

(ख) वप्र– वप्र वस्तुतः मिट्टी का वह ऊँचा प्लेट फार्म होता था, जो मैदानी हिस्सों में दुर्ग निर्माण को आधार प्रदान करता था। परिखा को बनाते समय जो मिट्टी खोदी जाती थी, उसी से वप्र का निर्माण होता था।[68] अर्थशास्त्र 'खाताद्वप्रम् कारयेत' कहकर इसका समर्थन करता है।[69] परिखा से 4 दण्ड की दूरी पर इस मिट्टी को एकत्रित कर उसे पशुओं द्वारा भलीभाँति कुचलकर दृढ़ बनाने का विधान है। कुछ ग्रंथों में वप्र में कटीली झाड़ियाँ लगाने का निर्देश किया गया है।

वप्र निर्माण के निर्देशों से स्पष्ट है कि परिखा उत्खनन से निकली हुयी मिट्टी का उपयोग दुर्ग को ऊँचाई प्रदान करने के लिये किया जाता था। अतः स्पष्ट है कि वप्र निर्माण दो ही परिस्थितियों में किया जाता था– 1. जहाँ दुर्ग निर्माण स्थल को स्वाभाविक ऊँचाई उपलब्ध न हो तथा 2. समतल मैदान में जहॉं अनिवार्य रूप से परिखा का निर्माण किया गया हो। परिखाओं का खनन एवं वप्र का निर्माण संयुक्त कार्य है।[70] अध्ययन क्षेत्र में मोंठ, समथर, गुरसराय, जगम्मनपुर, गोपालपुरी और नदीगाँव के दुर्ग ऐसे हैं, जहॉं परिखा उत्खनन की मिट्टी को वप्र निर्माण के लिये प्रयोग किया गया था। मोंठ और गुरसराय में इसे स्पष्ट देखा जा सकता है।

(ग) प्राकार– निर्मित वप्र के ऊपर प्राकार का निर्माण किया जाता था और जितनी भूमि में इसका निर्माण होता था उसे प्राकारीय देश कहा जाता था।[71] प्राकार ही वह दृढ़ निर्माण है जिसके कारण वस्तुतः दुर्ग को दुर्गमता प्राप्त होती थी। इसे प्राचीर, परकोटा, कोट नामों से भी अभिहित किया गया है। नगर रक्षा के लिये एक से अधिक परकोटों का निर्माण भी देखा जाता है। अर्थशास्त्र न केवल एक से अधिक प्राकारों का निर्देश करता है, वरन उनके मध्य की दूरी भी बताता है।[72] यद्यपि प्राकार की ऊँचाई आवश्यकतानुसार रखी जाती थी और मुख्य लक्ष्य होता था कि वह इतनी ऊँची हो कि शत्रु इसे पार न कर सके।[73] फिर भी जातक ग्रन्थ इनकी ऊँचाई 18 हाथ मानते हैं।[74] जबकि ब्रम्हवैवर्त पुराण 20 हाथ ऊँचा (लगभग 30 फुट) प्राकार निर्मित करने का निर्देश

करता है।[75] जैसा के ऊपर की पंक्तियों में कहा गया है कि प्राकार की ऊँचाई आवश्यकतानुसार रखी जाती यही कारण हे कि इसकी ऊँचाई केवल 9 हाथ (14.5 फुट) रखने के भी सन्दर्भ प्राप्त होते है।[76] समरांगण सूत्रधार निर्देश देता है कि प्राचीर की ऊँचाई वप्र के विस्तार से दुगुनी होनी चाहिए।[77] यह 12 हाथ से लेकर 24 हाथ तक सम संख्या में निर्धारित होनी चाहिए तथा इसका ऊपरी भाग इतना चौड़ा हो कि जिसमें रथ आसानी से चलाया जा सके।[78]

बुन्देलखण्ड के दुर्गो में प्राकार निर्माण प्रायः पत्थरों से किया गया है। यह द्वार, बुर्ज, पथ, मारकछिद्रों तथा कँगूरों से युक्त निर्मित किये गये हैं। ये पर्याप्त ऊँची तथा मोटी दीवारें हैं, जिनमें शत्रु प्रवेश या तो दीवार को तोड़कर या फिर दीवार पर चढ़कर हो सकता है। प्रायः ग्रेनाइट पत्थर से निर्मित दुर्ग प्राचीरें बुन्देलखण्ड के दुर्गो का आकर्षण हैं। एक से अधिक प्राचीर वाले यहाँ अनेक दुर्ग मौजूद हैं जैसे– समथर, झाँसी, गुरसराय, कालिंजर, रामपुरा, ओरछा, टोड़ी फतेहपुर आदि। इन प्राकारों में दीवार की मोटाई 5 फुट से लेकर 10 फुट और कभी–कभी इससे भी ज्यादा देखी गयी है। जैसे बिसहरी (जनपद–बाँदा) की छोटी गढ़ी की दीवार 13 फुट से अधिक मोटी है। यहाँ यह ध्यानाकर्षित करने वाला तथ्य है कि एक ही दुर्ग में प्राचीर की मोटाई अलग अलग देखने को मिलती है। सम्भवतः जिस ओर से आक्रमण कर दीवार तोड़ने की विशेष संभावना होती है, उस ओर के प्राचीर की मोटाई बढ़ा दी जाती है। जबकि जिस ओर से शत्रु के प्राचीर पर चढ़कर पार करने की सम्भावना होती है। उस ओर से प्राचीर की ऊँचाई बढ़ायी जाती है। नदी या तालाबों के सहारे बने दुर्गो में यह स्पष्ट दिखायी देता है कि जिस ओर से जलाशय की सुरक्षा प्राप्त है, उस ओर प्राचीर की दीवार बहुत उल्लेखनीय नहीं है, जबकि इसके दूसरी ओर न केवल इसे दृड़ता प्रदान की गयी है, वरन ऊँचाई भी महत्व रखती है। तालबेहट, बरूआसागर, जैतपुर और भूरागढ़ के दुर्ग प्राचीर इस तथ्य को सिद्ध करते हैं। जिन दुर्ग निर्माणों में नगर को सुरक्षा प्रदान करने के लिये नगर प्राचीर का निर्माण किया गया था उनमें कालिंजर, अजयगढ़, दतिया, ओरछा, गुरसराय, झाँसी तथा सागर भी उल्लेखनीय है। ओरछा में विस्तृत वाह्य नगर प्राचीर के अतिरिक्त विशिष्ट लोगों के निवास क्षेत्र को घेरने वाली

द्वितीय नगर प्राचीर भी निर्मित थी, जो कि पूर्णतः ध्वस्त हो चुकी है। दुर्ग के अन्दर विशिष्ट स्थल जैसे राजभवन, कोषागार,, शस्त्रागार आदि पुनर्प्राकार से सुरक्षित किये जाने के चिन्ह भी कुछ दुर्गो में देखे जा सकते हैं। बुन्देलखण्ड में प्राचीन दुर्गो के प्राकार कहीं चौकोर तथा कहीं अनगढ़ पत्थरों से निर्मित है कुछ किलों में चिनाई के लिये मसाला (मोर्टार) का प्रयोग नही किया गया था। कालिंजर, अजयगढ़, मनियागढ़, आदि दुर्गो में ऐसी दीवारें देखी जा सकती है जिनमें पत्थरों को जोड़ने के लिये चूने या अन्य किसी पदार्थ का प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता है। प्राकार ही वह निर्माण है जो किसी भी दुर्ग को न केवल दुर्गमता प्रदान करता है। वरन उसे गोपनीयता, भय एवं भव्यता प्रदान करता है। कुछ प्रमुख प्राकारों की लम्बाई पिछले पृष्ठों (दुर्ग आकार) में दी जा चुकी है। पाणिनि प्राकार के 4 प्रमुख अंग मानते हैं– प्रतोली, अट्टालक, इंद्रकोष और देवपथ।[79] निश्चित रूप से अट्टालक, गोपर एवं प्रतोली सुरक्षा के दृष्टिकोंण से आवश्यक निर्माण है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत है–

(क) अट्टालक : अट्टालक या बुर्ज या टॉवर किसी भी दुर्ग का महत्वपूर्ण अंग है। ये प्राचीर को दृढ़ता प्रदान करने के लिये निर्मित किये जाते थे। इनकी संख्या और स्थिति दोनों ही प्राचीर की दृढ़ता को ध्यान में रखकर निर्धारित किये जाते थे। यह एक अलग तथ्य है कि दुर्ग को भव्यता प्रदान करने में इनका सर्वाधिक योगदान होता था। समरांगण सूत्रधार का निर्देश है कि प्राकार में प्रत्येक दिशा में अट्टालको का निर्माण किया जाये।[80] अर्थशास्त्र के अनुसार दो अट्टालकों के बीच तीस दण्ड (180 फुट) की दूरी रखनी चाहिये।[81] दो अट्टालकों के मध्य एक विशिष्ट कक्ष होता था जिसमें पहरेदार बैठते थे तथा इसे इन्द्रकोष कहा जाता था।[82] अर्थशास्त्र इन्द्रकोष में तीन धनुषधारियों की नियुक्ति की चर्चा करता है। प्राकार की ऊँचाई पर जिस पथ का निर्माण होता था, उसे देवपथ कहा गया है।[83] इसे कहीं–कहीं सुरपथ भी कहा गया है। वस्तुतः यह सुरक्षा ड्यूटी के समय सैनिकों के चलने का पथ था किन्तु इसकी ऊँचाई एवं भव्यता के कारण सम्भवतः इसे देवपथ कहा गया।

बुन्देलखण्ड के सभी दुर्गो में अट्टालक देखे जाते हैं, जिनकी संख्या अलग–अलग है। प्रायः ये गोलाकार आकृति में निर्मित है किन्तु कहीं–कहीं अष्टकोणीय तथा षट्कोणीय आकृति में भी है। छोटी गढ़ियों में न्यूनतम 4 की संख्या से लेकर इनकी संख्या 30–35 तक देखने को मिलती है। राहतगढ़ दुर्ग में 26 बुर्ज , सागर दुर्ग में 20 से लेकर 40 फुट ऊँचे 20 बुर्ज है।[83] कालिंजर, सिंगोरगढ़, हटा आदि दुर्गो में बुर्जो की की संख्या कहीं ज्यादा है। धमौनी, हटा के बुर्ज अत्यन्त ऊँचाई वाले भव्य बुर्ज हैं जो सीधे नीचे नदी तक जाते हैं कुछ अन्य दुर्गो में बुर्जो की संख्या इस प्रकार है– गुरसराय–11, समथर–10, मोंठ–9, झाँसी–7, तालबेहट–7, नदीगाँव–6। भूरागढ़ दुर्ग में 7 बुर्ज थे जिनमें 4 नष्ट हो गये हैं यहाँ यह उल्लेखनीय है कि कुछ किलों के बुर्ज अपनी विशिष्टता के कारण अलग नाम प्राप्त कर सके, जबकि प्रायः उन्हें दिशाओं के नाम पर (उत्तर बुर्ज, पश्चिम बुर्ज आदि) जाना जाता था, या मालथौन का कमल बुर्ज उल्लेखनीय है। राहतगढ़ दुर्ग का जोगन बुर्ज प्रसिद्ध है, जहाँ से मृत्युदण्ड प्राप्त के दियों को बीना नदी में फेंक दिया जाता था। परवर्ती काल में जब युद्ध में तोपों का प्रयोग होने लगा, तब इन बुर्जो का उपयोग भारी तोपें रखने में होने लगा। अतः इनका महत्व और भी बढ़ गया। दुर्ग के सभी द्वारों पर अनिवार्य रूप से बुर्जो का निर्माण किये जाने की परम्परा बुन्देलखण्ड में रही है।

(ख) कँगूरे तथा मारें : प्राकार के ऊपरी हिस्से में जो पथ निर्मित होता था, उसमें ओट के लिये सामान्य ऊँचाई की दीवार निर्मित की जाती थी, जो कँगूरों से युक्त होती थी तथा जिसके पीछे सैनिक छुप सकते थे। इस दीवार पर बन्दूक से गोली चलाने के लिये मारक छिद्रों का निर्माण किया जाता था, जो कई बार अन्दर से एक छिद्र होता था किन्तु बाहर की ओर से 2 या 3 कोणों अथवा दिशाओं में मारकर सकता था। सैनिक इन कँगूरों के पीछे छिपकर मारक छिद्रों के माध्यम से शत्रु पर प्रत्याक्रमण करते थे। झाँसी, दतिया, ओरछा, समथर, चरखारी, रामपुरा, जगम्मनपुर, टीकमगढ़, सागर, भूरागढ़ आदि सभी दुर्गो में इस प्रकार के मारक छिद्र देखे जा सकता है। प्राचीनकाल में जब अग्नेयास्त्रों का प्रयोग नहीं होता था, इन कँगूरों के पीछे दुर्ग रक्षक

धनुर्धर बैठते थे। पत्थरों, अस्त्र–शस्त्रों एवं खौलते तेल का संग्रह शत्रुविनाश के लिये यहीं किया जाता था। अर्थशास्त्र में संग्रह किये जाने वाले अस्त्रों में पाषाण, कुद्दाल, कुठारी, मुस्रष्ठि, मुद्गर, दण्ड, शतघ्नी तथा अग्नि संयोग का उल्लेख है।[84] अपराजित पृच्छा में दीवार के ऊपर इकट्ठा किये जाने वाले यन्त्रों के नाम भैरव यंत्र, भास्कर यंत्र, महिषासुर यंत्र और वाराह यंत्र है।

(ग) गोपुर एवं प्रतोली : 'पुरद्वारं तु गोपुरम्' के अनुसार नगर द्वार को गोपुर कहा जाता था।[85] अर्थशास्त्र भी गोपुर का यही अर्थ करता है। समरांगण सूत्रधार द्वार को तीन श्रेणियों में बॉटता है– महाद्वार, चक्रद्वार, पक्षद्वार। अर्थशास्त्र में 4 दिशाओं के 4 द्वारों को ब्राम्हय द्वार, ऐन्द्रय द्वार, याम्य द्वार तथा सेनापत्य द्वार नाम दिया।[86] प्रतोली उन छोटे द्वारों से आशय रखते हैं जो अपने से संयुक्त विशिष्ट कक्षा और सज्जा के कारण गोपुर से भिन्न होते हैं। द्वार अपनी ऊँचाई, सजावट और शैली के कारण अपनी पहचान बनाते हैं। बड़े दुर्गो के विशिष्ट गोपुर इतने बड़े होते थे कि चार हाथी राजा के छत्र समेत एक साथ प्रवेश कर सकें।[87]

बुन्देलखण्ड के दुर्ग द्वारों ने सदैव अपनी भव्यता एवं दृढ़ता की पहचान बनाये रखी है। बुन्देली भाषा में इन्हें पौर भी कहा जाता है। नगर प्राचीरों एवं दुर्गो के सभी द्वारों का नामकरण होता था और प्रायः नामकरण में प्राचीन भारतीय परम्परा 'अभिनिष्कामतिद्वारं' का पालन दिखाई पड़ता है।[88] अर्थात् उस द्वार से निकलकर आगे चलने पर जो नगर मिलेगा उसी के नाम पर द्वार का नाम रख दिया जाता था। राजस्थान, दिल्ली आदि दूसरे प्रान्तों में भी दुर्ग द्वार नामकरण की पद्धति यही रही है। झाँसी नगर प्राचीर के द्वारों का नामकरण खण्डेराव, दतिया, उन्नाव, ओरछा, बड़ागाँव, लक्ष्मी, सागर, सैंयर तथा भाण्डेर आदि इसी पद्धति पर किया गया।[89] प्रसिद्ध कालिंजर दुर्ग में सात द्वार है जिनके नाम आलमगीर, गणेश, गौर, बुधभद्र, हनुमान, लाल, नेमिद्वार हैं। इनमें लगे हुये पत्थरों पर अलग–अलग तिथियाँ अंकित हैं।[90] नीचे बसी हुयी कालिंजर बस्ती नगर प्राचीर से घिरी हुयी थी और उसके तीन द्वार कामता, पन्ना तथा रेवा थे।[91] इसी प्रकार अजयगढ़ दुर्ग में पाँच दरवाजे थे जिनमें तीन बहुत पहले

बन्द कर दिये गये थे। शेष एक को दरवाजा तथा दूसरे को तरहौनी दरवाजा कहा जाता है।[92] मड़फा दुर्ग के तीन द्वारों में से दो के नाम दिशाओ पर हैं जबकि तीसरे (मानपुर की ओर जाने वाले) को हाथी दरवाजा के नाम से पुकारा जाता था।[93] सारांश में सभी दुर्ग एवं नगर प्राचीर द्वार किसी विशिष्ट नाम से ही पुकारे जाते थे जैसे– गुरसराय के रिवारी एवं गिर्द द्वार ; चिरगाँव के सिया, हजारी एवं भाण्डेर द्वार; तालबेहट के कटीला द्वार एवं सिंह पौर; टोड़ी फतेहपुर के मातन एवं फतेहपुर द्वार; महोबा एवं मौदहा में हाथी द्वार तथा कालपी का श्री द्वार। बुन्देलखण्ड के दुर्गो में दुर्ग के प्रमुख द्वार को न्यूनकोंण के घुमावदार मार्ग में बनाने की परम्परा रही है, जिससे शत्रु दूर से सीधे द्वार पर टक्कर न दे सके। द्वार के दोनों ओर बने हुये बुर्जो पर बैठे सैनिक इस सँकरे स्थल पर आसानी से काबू पा सकते थे। द्वारों में मोटे, सुदृढ़, लकड़ी के तरख्तों वाले फाटक लगाये जाते थे। कौटिल्य ने कपाटों में लोहे फाटक लगाये जाते थे। कौटिल्य ने कपाटों में लोहे की मोटी मेंखो या कोण कीलों तथा सुदृढ़ अर्गलाओं का विधान किया है।[94]

वर्तमान में अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश दुर्गो के काष्ठ कपाट नष्ट हो चुके हैं फिर भी इन्हें अनेक किलों में देखा जा सकता है। ओरछा, रामपुरा, जगम्मनपुर और चरखारी के किलों की ये कपाट कीलें अभी भी आश्चर्य प्रदान करती है। राहतगढ़ के पाँच द्वारों में से एक कीलित कपाट था।

दुर्ग द्वारों में कुछ द्वार केवल विशिष्ट लोगों द्वारा ही प्रयोग किये जाते थे। शाही रनिवास एवं कुलीनों द्वारा प्रयोग किये जाने वाले ये द्वार मूर्तियों, चित्रकारी से युक्त होते थे। आकृति में मेहराबदार या त्रिपोली शैली, जाली एवं झरोखों से युक्त द्वार सहज ही आकर्षित करते थे। चरखारी की नीचे का द्वार पीतल से मढ़ा हुआ है इसी प्रकार जगम्मनपुर किले का द्वार पीतल से मढ़ा हुआ है। रामपुरा गढ़ी का 20 फुट ऊँचा प्रवेश द्वार आकर्षक शैली का बना हुआ है। द्वार निर्माण में बुन्देलखण्ड की एक विशिष्ट शैली रही है, जिसमें द्वार के दोनों ओर आलों का निर्माण किया जाता रहा है। सम्भवतः पर्व इत्यादि के समय इन आलों में प्रकाश किया जाता था।

4.2.3 आवास एवं बैठक स्थल

प्राचीन साहित्य में राजमहल के लिये राजप्रासाद, प्रासाद, राजभवन, राजगृह, राजगेह तथा राजनिवेशन आदि शब्द प्रयुक्त हुये हैं। दुर्ग के अन्दर यद्यपि आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार के आवासीय निर्माण देखने को मिलते हैं, किन्तु राजप्रासाद इनमें सर्वाधिक मूल्यवान, श्रेष्ठ, भव्य एवं अलंकृत होते थे। राजप्रासाद का निर्माण करने के लिये जिस भूमि का उपयोग किया जाता था, उसे प्रासादीय भूमि पुकारा जाता था।[95] ग्रन्थों में नगर की सम्पूर्ण भूमि की तुलना में प्रासादीय भूमि का अंश भी निर्धारित किया गया है।[96] राजभवन के निर्माण के लिये न केवल अत्यन्त विशेषज्ञ वास्तुविद लगाने की परंपरा रही है, वरन अत्यधिक द्रव्य भी खर्च किया जाता था। राजप्रासाद निर्माण की दृष्टि से स्कन्धवार, राजकुल तथा धवलगृह में विभक्त होता था।[97] राजप्रासाद का बहिर्भाग जिसे स्कन्धवार कहा जाता था, गजशाला, अश्वशाला आदि के लिये सुरक्षित होती थी। द्वितीय भाग जिसे राजकुल के नाम से जाना था, में वाह्य आगन्तुकों, सम्मानित व्यक्तियों एवं प्रजाजन आदि से मिलने के स्थान निर्मित किये जाते थे, जिनके लिये राजसभी, आस्थान, सभामण्डप, आस्थान मण्डप आदि शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। कुछ ग्रन्थों में वाह्य स्थान मण्डप और भुक्ता स्थान मण्डप जैसे शब्द प्रयोग किये गये हैं। इन्हें प्रचलित दरबारे आम और दरबारे खास की तरह समझा जा सकता है।[98] धवल गृह राजभवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतिहारों से सुरिक्षत राजा का निज निवास होता था। इसमें राज निवास, राजमहिषी कक्ष, आमोद शाला, चित्रशालिका आदि कक्षों के निर्माण का विधान किया गया है। इस सम्पूर्ण धवल गृह को शिल्प रचना एवं प्रयोग के दृष्टिकोण से प्रग्रीव, सौध तथा वासगृह से नाम से जाना जाता था।[99]

धवहगृह बड़े खुले वरान्डों, वातायनों, गवाक्षों और विस्तृत कक्षों से युक्त होता था। इसकी दीवारों पर नाना प्रकार के चित्रों का अंकन होता था। यह बहिर्द्वार के अतिरिक्त अनेक द्वारों वाला, अनेक झण्डों वाला, विविध सोपान युक्त, स्वच्छ लेप (सफेदी), वातायन, चित्रांकन, गृहवाटिका तथा विविध उपकरणों ये युक्त होता था।

बुन्देलखण्ड में निर्मित दुर्ग अत्यन्त जटिल प्राकृतिक स्थलों में बने हुये हैं और इनमें से अधिकांश का प्रयोग मात्र युद्ध के लिये ही किया जाता था। यही कारण है कि प्रायः दुर्गो में सुन्दर राजभवन एवं सुखद आवासीय स्थलों का अभाव रहा है। परन्तु यह भी सत्य है कि शायद ही कोई दुर्ग ऐसा रहा हो जिसमें राजआवास गृह का निर्माण न किया गया हो। यद्यपि इनमें से अधिकांश में उपरोक्त शास्त्रीय पद्धति का प्रयोग नहीं किया गया है, फिर भी अधिकांश दुर्गो में राजमहल, रनिवास, दरबार हाल (कचेहरी) और छोटे उद्यानों के चिन्ह देखने को मिलते हैं।[100]

कालिंजर के वृहद दुर्ग में निश्चित रूप से अच्छे महलों के निर्माण किये गये थे, किन्तु काल के थपेड़ों ने उन्हें पूर्णतया नष्ट कर दिया है। आज यहाँ चन्देलकालीन महलों के दो स्थानों पर स्पष्टतः खण्डहर प्राप्त होते हैं, एक कोटितीर्थ तालाब के ाास तथा दूसरा पहाड़ी के पश्चिमी हिस्से में परमाल की बैठक के पास। इन महलों के अवशेषों से प्रतीत होता है कि इनमें राज आवास के सभी लक्षण रहे होंगे तथा चन्देलकालीन पद्धति के अनुसार दीवारों के पत्थरों में मूर्तियाँ उकेरी गयी थीं। वर्तमान में बुन्देला काल का एक महल अमान सिंह महल के नाम से सुरक्षित अवस्था में है, जो सोलहवीं शताब्दी का निर्मित प्रतीत होता है, यह वर्गाकार महल विशाल द्वार युक्त दो मंजिला है।[101] किले के विभिन्न स्थलों में फैले हुये खण्डहरों और उनसे प्राप्त शिलालेखों से स्पष्ट पता चलता है कि यहाँ चन्देलों, बुन्देलों के साथ मुस्लिमों ने भी अनेक निर्माण करवाये। ये अब ध्वस्त हो चुके हैं।[102] चन्देलकालीन दुर्ग गढ़कुण्डार में पाँच मंजिला, चौकोर आकृति का सुन्दर भवन आज भी मौजूद है, परन्तु यह वीर सिंह देव के द्वारा निर्मित बताया जाता है। महल में अनेक दालान तथा झरोखे हैं और इसका बहुत बड़ा भाग भूमिगत है।[103]

बुन्देला राजाओं में वीर सिंह देव प्रथम (1605–27) को दुर्ग एवं महल निर्माण के लये सदैव याद किया जायेगा। महल निर्माण में उसकी श्रेष्ठ कृति दतिया का नृसिंह देव महल है, जिसे बाद में वीरसिंह के महल के नाम से भी जाना गया।[104] इसका निर्माण 1614 ई0 में हुआ तथा इसके निर्माण पर लगभग 32 लाख रूपये का खर्च आया। वर्गाकार आकृति का पाँच मंजिला भवन लगभग 45 मीटर ऊँचा है। भवन के

चारों कोनों में अष्टभुज आकृति की 4 मीनारें हैं।[105] पत्थर की जालियाँ, छतरियों, स्वर्ण कलश से युक्त गुम्बदों, झरोखों तथा दालानों से युक्त ये महल बुन्देलों की नायाब देन थी किन्तु इसकी सर्वाधिक दुर्दशा शरणार्थियों (रिफ्यूजी) के हाथों हुयी। अब यह पुरातत्व विभाग के अधीन है। कहा जाता है कि इस महल में राजाओं का स्थायी निवास कभी नहीं रहा। 1835 में जब स्लीमैन ने इस महल का आवास विहीन देखा तथा इस सम्बन्ध में वहाँ के नौकर से पूँछा, तब उसका उत्तर था– "आज इस स्तर के राजा और राज परिवार कहाँ हैं, जो इस महल में रह सकें। आज के लोग इतने विशाल महल में स्वयं को रेगिस्तान में अनुभाव करते हैं। पुराने समय के शासकों के लिये बना यह महल आज के राजाओं के हिसाब से भिन्न है।[106] इस महल की यह विशेषता है कि इसमें लोहे और लकड़ी का प्रयोग बिल्कुल नहीं किया गया है। दतिया में एक दूसरा राजमहल वीर सिंह महल के पश्चिम में ऊँचाई पर स्थित है, जिसे राजगढ़ के नाम से जाना जाता है। इन दोनों के अतिरिक्त भवानी विलास तथा गोविन्द निवास नामक दो राजमहल बहुत बाद में निर्मित हुये, जिनमें अभी भी राजपरिवार निवास करते हैं।

बुन्देला शासकों के राजमहलों में ओरछा के महल बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनमें राजमहल सर्वप्रथम निर्मित हुआ। यह सन 1539 में बन तैयार हुआ जिसका निर्माण राजा रूद्रप्रताप ने प्रारम्भ किया था तथा पूर्णता भारतीचन्द्र के शासनकला में हुयी। इसके निर्माण में 8 वर्ष लगे।[107] यह महल 77 मीटर लम्बाई की भुजा का आयताकार 3 से 5 मंजिल का भवन है तथा बड़े कक्षों, कई आँगन, सभी कक्ष तथा दालानों से युक्त हैं। ओरछा के महलों में राजमहल के समीप निर्मित जहाँगीर महल बुन्देला शैली का उत्कृष्ठ उदाहरण है इसे वीर सिंह देव प्रथम ने अपने हितैषी पादशाह जहाँगीर के सम्मान में बनवाया था।[108] 45 मीटर भुजा की वर्गाकार आकृति वाला यह महल 8 गुम्बदों वाला तथा तीन मंजिला है।[109] यहाँ बाहर की ओर निकली बालकनी तथा पत्थर की जाली का काम देखने लायक है। इस महल में अनेक मुगल एवं बुन्देला शासकों के प्रस्तर अभिलेख उपलब्ध हैं। मुख्य द्वार में सबसे ऊपर चतुर्भुज गणेश की मूर्ति है। जहाँगीरी महल से लगा हुआ शीश महल है जिसे बरूआसागर के बुन्देला शासक

उद्योत सिंह ने 1763 में निर्मित कराया था। सम्भवतः इसमें प्रयुक्त रंगीन पत्थरों के प्रयोग के कारण इसे शीशमहल कहा जाता है। इस छोटे महल का दरबार हाल उल्लेखनीय है।[110] यह आठ खम्भों पर टिका होने के कारण अठखम्भा नाम से जाना जाता है। उपरोक्त के अतिरिक्त ओरछा में पालकी महल, फूलबाग महल आदि निर्मित किये गये, जिनकी अपनी बुन्देली शैली है।

टीकमगढ़ के महलों का उल्लेख बुन्देला शासकों के निर्माण में आवश्यक रूप से किया जाना चाहिये। टीकमगढ़ दुर्ग कम विभिन्न महलों का समूह अधिक है। सन 1783 में राजधानी बनने से लेकर 1930 में राजा महेन्द्र प्रताप के शासन तक यहॉ महल निर्माण की सतत प्रक्रिया चली, जिसमें अनेक महलों का निर्माण हुआ। महेन्द्र सागर नामक विशाल तालाब के तट पर ऊँचाई में सभी महल निर्मित हैं जो बुन्देला शैली से लेकर आधुनिक कोठियों की शैली तक में निर्मित हैं। इन निर्माणों में तालकोठी, राजमहल, बैकुण्ठा, जुगुल निवास आदि प्रमुख है।[111] आधुनिकता से युक्त इन महलों में बड़े कक्ष, खुले ऑंगन और कई मंजिला भवन हैं। इसी क्रम में पन्ना के प्रसिद्ध राजमहल को लिया जा सकता है, जो देखने में दुर्ग के स्थान पर राजमहल स्पष्टतया प्रतीत होता है।[112] खण्डहर हो रहे भवनों में टोड़ी फतेहपुर का पॉंच मंजिला राजभवन, तालबेहट का तीन मंजिला राजभवन तथा बरूआसागर दुर्ग का पॉंच मंजिला राजभवन तथा बरूआसागर दुर्ग का पॉंच मंजिला राजभवन अब शीघ्र ही नष्ट होने वाले हैं। समथर का सात मंजिला राजभवन आज भी अच्छी स्थिति में है तथा निवास के लिये प्रयोग किया जाता है। चरखारी और नदीगॉंव के राजमहल नष्ट प्राय है। राहतगढ़ दुर्ग का बादलमहल तथा खिमलासा दुर्ग का नगीना महल कभी उल्लेखनीय राजमहल रहे होंगें। खिमलासा महल का केन्द्रीय गुम्बद 12 खम्भों पर टिका हुआ था। गुरसराय दुर्ग के चित्रकारी युक्त कक्ष अब नष्ट हो रहे हैं।[113] मनियागढ़ और धमौनी के राजमहल समाप्त प्राय हैं। इनमें निवास और कचेहरी आदि के खण्डहर स्पष्ट दिखाई देते हैं। करैरा दुर्ग में रनिवास एवं निवास के महल नष्ट हो गये हैं[114] जबकि हटा दुर्ग के अन्दर राजमहल के खण्डहर उसकी विशालता का परिचय देते प्रतीत होते हैं रामपुरा गढ़ी का छोटा राजमहल अभी अच्छी स्थिति में है तथा झॉंसी नगर प्राचीर के

अन्दर मराठों द्वारा निर्मित रानी महल भी अच्छी अवस्था में है।[115] स्योंढ़ा (दतिया) का रनिवास, दीवाने आम, फूलबाग नष्ट हो रहे हैं। बाद में गोविन्द सिंह द्वारा निर्मित सात मंजिला भवन अभी मौजूद है तथा कोठी के नाम से प्रसिद्ध है।[116]

बुन्देलखण्ड में बैठक नाम का निर्माण अधिकांश दुर्गो में देखने को मिलता है। यह सम्भवतः चन्देलकालीन दुर्गो से प्राप्त शब्द है क्योंकि महोबा और मदनपुर के दुर्गो में चन्देल बैंठकें मौजूद हैं। यह शब्द आगे चलकर कचेहरी और दरबार हाल के लिये भी प्रयोग किया जाने लगा। झाँसी, समथरख ओरछा, टीकमगढ़, कालिंजर आदि सभी दुर्गो में इस तरह के निर्माण किये गये। ये प्रायः कई स्तम्भों वाले खुले हुये हॉल होते थे। बड़ी बारादरियों को भी इस तरह से प्रयोग किया जाता था। इसमें राजा अथवा शासक के लिये उच्च स्थान निर्धारित रहता था और प्रायः दुर्ग में प्रवश के पश्चात् राजमहल का प्रारम्भिक भाग इसी उपयोग में होता था। जिन दुर्गो में एक से अधिक महलों का निर्माण हुआ है, उनमें एक से अधिक बैठकें भी प्राप्त होती हैं। उदाहरण के लिये ओरछा में राजमहल का दरबार हाल, शीश महल का अठखम्भा, फूलबाग महल का दीवानेआम इत्यादि अनेक बैठकें मौजूद है। ओरछा की बुन्देला बैठकें दीवारों पर प्रयुक्त पत्थरों बारीक खूबसूरत काम के कारण अत्यधिक प्रभावशाली प्रतीत होती है। पन्ना राजमहल में भी छत्रसाल द्वारा निर्मित बैठक उल्लेखनीय है। स्योंढ़ा (बॉदा) दुर्ग में ऊँचे मण्डल से युक्त बैठक दुर्ग के खण्डहरों में मध्य अलग दृष्टिगत होती है, जो सुरक्षित अवस्था में है। महोबा दुर्ग में विशिष्ट चन्देल चिन्हों से युक्त प्रस्तर स्तम्भों पर निर्मित परमाल की बारादरी में केवल कुछ स्तम्भ शेष हैं। अजयगढ़ दुर्ग में उत्तरी प्रवेश द्वार के समीप चन्देलकालीन बैठक सुरक्षित अवस्था में है। सारांश रूप में बैठकें दुर्ग में राजनीतिक दिनचर्या का अंग होने के कारण हमेशा महत्वपूर्ण रही हैं।

4.2.4 भूमिगत निर्माण एवं सैनिक आवास

दुर्ग में भूमिगत निर्माण एवं सैनिक आवास निर्मित करने की बुन्देलखण्ड में आवश्यक परम्परा दिखाई पड़ती है। यही कारण है कि लगभग सभी दुर्गो में इन स्थलों का निर्माण किया गया था। सभी दुर्गो में इन स्थलों का निर्माण किया गया था।

सर्वेक्षण के समय शोधार्थी के लिये ये अत्यंत उत्सुकता का विषय रहे, क्योंकि लगभग सभी भूमिगत निर्माण बन्द कर दिये गये हैं। सैनिक आवास अपनी उपेक्षा के कारण ध्वस्त प्राय है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत है–

(क) भूमिगत निर्माण– सभी दुर्गो के भूमिगत निर्माण वर्तमान में किवदन्तियों एवं आख्यानों की जनक हैं। इनमें से अधिकांश किसी भी सुविधा से रहित बन्द कमरे एवं लम्बी दालानें हैं। कुछ किलों में ये कई खण्ड के निर्मित किये गये थे। इनका प्रयोग निश्चित रूप से तीन उद्देश्यों से होता था– कोषागार (खजाना) की तरह, आयुध व गोला–बारूद भंडार को सुरक्षित करने में, दुर्दम्य बंदियों के लिये बंदीगृह के रूप में। ये अधिकांश गुप्त स्थान होते थे और इनकी विशिष्ट जानकारी राजपरिवार तथा कुछ लोगों को होती थी। विशेष रूप से कोषागार के लिये निर्मित किये जाने वाले भूमिगत कक्ष तक अत्यन्त विशिष्ट मार्ग से ही पहुँचा जा सकता था। इसमें मजबूत तथा गुप्त यांत्रिक विधियों वाले ताले लगाये जा सकते थे। इसी प्रकार गोला बारूद रखने के लिये अत्यन्त गहराई में निर्मित कक्षों को सभी वर्गो के लिये निषिद्ध कर दिया जाता था।

लगभग सभी दुर्गो में इस प्रकार के भूमिगत कक्षों की चर्चा सुनने को मिलती है, किन्तु कालिंजर, बरूआसागर, गुरसराय, टोड़ी फतेहपुर, चरखारी, गढ़कुण्डार, दतिया और ओरछा के दुर्गो में इन भूमिगत निर्माणों को स्पष्ट देखा जा सकता है। ओरछा राजमहल में दो खण्ड, दतिया नृसिंह महल में तीन खण्ड एवं गढ़कुण्डार में स्पष्टतः चार खण्ड भूमिगत हैं। गढ़कुण्डार निश्चित रूप से अत्यन्त रहस्यमय हैं, इसमें तीन खण्डों तक नीचे जाया जा सकता है, किन्तु किन्चित मात्र भी भूल जाने पर सुरक्षित लौटना कठिन है। शोधार्थी ने तीसरे भूमिगत खण्ड पर कई बड़े पक्के हौदे देखे, जिनके बारे में बताया गया कि चन्देलकालीन बौना चोर इनमें लूटी हुयी सम्पत्ति रखता था। नृसिंह महल के तलघर भी बन्द है। ये मजबूत खम्भों पर टिके हुये बड़े हाल की तरह प्रतीत होते हैं। ओरछा राजमहल, बरूआसागर, गुरसराय और टोड़ी फतेहपुर के तलघर अब निषिद्ध स्थल है तथा बन्द है। टोड़ी फतेहपुर दुर्ग में एक विशाल भूमिगत

कक्ष, जो अब ध्वस्त हो रहा है, कभी राजपरिवार के मनोरंजन कक्ष की तरह प्रयुक्त होता था। स्योंढ़ा (बाँदा) दुर्ग के भूमिगत निर्माण आश्चर्यजनक गइराई वाले हैं। स्योंढ़ा दुर्ग का भूमिगत अन्नागार सौ फुट से अधिक गहरा है। यह अन्नागार एक सूखे कुयें के तल पर आन्तरिक रूप से जुड़ा है। कुंये की गहराई से अन्नागार की गहराई का तुलनात्मक अनुमान लगाया जा सकता है। अन्नागार के ऊपर दो खण्ड भूमिगत कक्ष हैं, जिनका उपयोग सम्भवतः शस्त्रागार के रूप में होता था। भारतीय भूमिगत खजानों एवं दफीनों के जानकार लखपतराम शर्मा ने बुन्देलखण्ड के दुर्गो में गढ़कुण्डार, ओरछा, चरखारी, भूरागढ़, महोबा, कटेरा, झाँसी, चिरगाँव, मोंठ, समथर, अम्मरगढ़, कोटरा, उरई, भाण्डेर दुर्गो में खजाने के सन्दर्भ में इन भूमिगत निर्माणों की विशेष चर्चा की है।[117]

सुरंग : किलों में भूमिगत निर्माणों में सुरंग निर्माण की विशिष्ट परंपरा रही है। इन सुरंगों का निर्माण आपात काल में राजपरिवार के सुरक्षित बाहर निकलने के लिये किया जाता था। कभी–कभी इनका प्रयोग दुर्ग के बाहर डेरा डाले शत्रु सैनिकों पर धोखे से आक्रमण करने के लिये भी किया जाता था। कुछ दुर्गो में नगर के महत्वपूर्ण स्थलों को आपस में जोड़ने के लिये सुरंग निर्माण किये गये थे। अन्य भूमिगत निर्माणों की तरह सुरंग को भी गोपनीय रखा जाता था। क्योंकि जानकारी होने पर शत्रु इनके माध्यम से दुर्ग में प्रविष्ट हो सकता था। सभी दुर्गो की सुरंगें बहुत पहले ही बन्द कर दी गयी हैं तथा अधिकांश इनमें नष्ट हो चुकी हैं। लगभग 20 वर्ष पूर्व मौदहा दुर्ग की एक सुरंग उत्तर की ओर बड़े तालाब की ओर जाने वाले मार्ग के समानान्तर कुछ दूरी तक ध्वस्त हो गयी थी, जिससे पता चला कि इस पतली सुरंग में 4 व्यक्ति एक साथ खड़े होकर चल सकते थे। कालिंजर दुर्ग में अजयगढ़ की ओर खुलने वाली प्रसिद्ध सुरंग रही है। इसी प्रकार खुलने वाली प्रसिद्ध सुरंग रही है। इसी प्रकार झाँसी दुर्ग की ग्वालियर की ओर खुलने वाली सुरंग स्थल के मुख पर, जो अब बन्द है, इससे सम्बन्धित बोर्ड लगा हुआ है।[118] झॉसी दुर्ग में शहर में स्थित रानी महल तथा लक्ष्मी मन्दिर के लिये दुर्ग से सुरंग होने की ख्याति रही है।[119] इसी प्रकार नदीगाँव गढ़ी से बीहड़ों में खुलने वाली तथा गुरसराय दुग्र से एरच की ओर खुलने वाली सुरंगों की बात जन सामान्य में प्रचलित हैं। सारांश रूप में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि बहुत से दुर्गो में इस प्रकार

की सुरंगों का निर्माण किया गया था, उनका विस्तृत विवरण मिलना अब कठिन है। सुरंगों का विवरण रखने वाले मूल पत्रजात तथा अन्य स्रोत उपलब्ध नहीं हैं।

सैनिक आवास : दुर्ग में सतत सुरक्षा के लिये अनिवार्य रूप से प्रत्येक समय निश्चित अनुपात में कुछ सैनिकों को रखा जाता था। उनके निवास के लिये छोटी कोठरियों या सेल के निर्माण की परंपरा रही है। मूल रूप से सेना बड़े कैम्पों में नगर के बाहर निवास करती थी, किन्तु सेनापतियों तथा सिपहसालारों के आवास प्रायः परकोटों के भीतर ही होते थे। किले के अन्दर आवश्यक सैनिकों एवं रक्षकों के लिये सैनिक निवास निर्मित किये जाते थे। टोड़ी फतेहपुर दुर्ग में 1600 सैनिक प्रत्येक समय निवास करते थे, ऐसी सूचना सर्वेक्षण के समय प्राप्त हुयी। ये सैन्य कोठरियों या आधुनिक बैरक मुख्य प्राचीर में अन्दर की ओर श्रृंखला रूप में स्थित हैं कुछ दुर्गों में कम चौड़े तथा लम्बे दालानों में इस हेतु छोटे खुले द्वारों का निर्माण किया गया है। इन कोठरियों को देखने से स्पष्ट होता है। कि इनमें किसी भी प्रकार की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। अध्ययन क्षेत्र के लगभग सभी दुर्गों में इस तरह की सैनिक सेल आज भी मौजूद हैं, यद्यपि इनकी दशा विपन्न हो चुकी है। झाँसी, बरूआसागर, टोड़ी फतेहपुर, तालबेहट, समथर, पृथ्वीपुर, जतारा, करैरा, रनगढ़, कालिंजर, अजयगढ़, धमौनी आदि सभी दुर्गों को सैनिक कोठरियों के लिये सन्दर्भित किया जा सकता है।

4.2.5 भित्ति चित्र एवं जल स्रोत

दुर्ग में निर्मित राज प्रासादों में सज्जा प्रदान करने के लिये रंगीन पत्थरों के प्रयोग, शिखर को स्वर्ण या रजत कलशों से मंडित करने तथा दीवारों पर अनेक प्रकार के चित्रांकन की परंपरा रही है। धवलगृह के अंग वासगृह की दीवारों पर चित्र बनाये जाते थे, इस कारण इसे चित्रशालिका भी कहा जाता था।[120] चित्रकला को प्राचीन ग्रंथों में चित्र बने होते थे।[121] नाट्यशास्त्र 'जातसोभाषुचित्रकर्म्म प्रयोजयेत्' कहकर न केवल इसका महत्व दर्शाता है वरन पद्धति को स्पष्ट करते हुये कहता है कि दीवारों को भली–भाँति साफकर पहले उन्हें बराबर बना दिया जाये तथा उन पर विभिन्न प्रकार के लेप लगाये जाने तथा इसके उपरान्त विभिन्न विषयों का चित्रण किया जाये।[122] ख्याति

प्राप्त चित्रकार प्रतोलिका नाम की पेटी में विभिन्न वर्तिकायें, तूलिकायें एवं रंग लेकर चलते थे।[123]

बुन्देलखण्ड के दुर्गो में भित्ति चित्रांकन केवल मध्य एवं आधुनिक काल के भवनों में देखने को मिलता है। इसके पूर्व के चित्र सम्भवतः कमागत रूप से नष्ट हो गये। भित्ति चित्रों के अध्ययन में चित्र शैली, स्थान, चित्र विषय एवं रंगों का संयोजन महत्वपूर्ण माना जाता था। बुन्देला राजमहलों में उपलब्ध भित्ति चित्र विशेष रूप से बुन्देली शैली का प्रदर्शन करते हैं।[124] चित्रों में दर्शाये गये परिधान, आभूषण, श्रृंगार एवं भवन आदि से बुन्देली समाज की स्पष्ट झलक मिलती है। ऊँची धोती, झब्बेदार जूते, विशिष्ट पगड़ी से पुरूषों तथा इसी प्रकार से वस्त्र एवं श्रृंगार के माध्यम से इन चित्रों में बुन्देली महिलाओं की पहचान की जा सकती है। तूलिका प्रयोग एवं रंगों का संयोजन बुन्देली भित्ति चित्रों में कहीं–कहीं कोटा–बूँदी कलम तथा मुग़ल शैली की झलक भी दिखलाते हैं। भित्ति चित्र स्थल के दृष्टिकोण से प्रायः राजमहल के अंतरंग कक्षों का चुनाव किया गया है। यहाँ दीवारों पर 5 फुट की ऊँचाई के पश्चात तथा छतों में चित्रांकन मिलता हैं। दीवारों पर आयताकार तथा छतों में वृत्ताकार चित्रांकन की परंपरा देखने को मिलती है। कुछ स्थलों में चित्रांकन के लिये दरबार हाल को भी चुना गया है। ये ध्यान देने योग्य तथ्य है कि दुर्गो में स्थित देव मन्दिरों में भी भित्ति चित्र निर्माण की स्वस्थ परंपरा रही है। जहॉ तक भित्ति चित्र का सन्दर्भ है, अधिकांशतः इनमें धार्मिक कथानकों को लिया गया है। मुख्य रूप से रामायण एवं महाभारत की कथायें चित्रांकित करने की परंपरा रही है। धार्मिक कथानकों के अतिरिक्त राजदरबार संगीत, शिकार, मेला दृश्य, पशु चित्रांकन तथा पशु युद्ध तत्कालीन कलाकारों के प्रिय विषय रहे हैं। चूने की दीवारों पर जिन रंगों का प्रयोग किया गया है। चूने की दीवारों पर जिन रंगों का प्रयोग किया गया है, उनकी निर्माण प्रकिया को चित्रकारों द्वारा गोपनीय रखा जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राकृतिक वनस्पतियों के रस एवं खनिजों को मिलाकर रंगों का निर्माण किया जाता था। हरसिंगार, हिना, पलाश, जामुन, गेरू तथा रंगीन खड़िया आदि का अधिक प्रयोग होता था। नीला थोथा

एवं गोंद आदि से इसे मजबूती प्रदान की जाती थी। चित्र निर्माण में विशेषतया लाल, पीली, नीला तथा श्वेत रंग प्रयुक्त होते थे।[125]

बुन्देला शैली के भित्ति चित्रों के लिये ओरछा का उल्लेख किया जाना चाहिये, जहॉ इसका विस्तृत स्परूप राजमहल में मौजूद है। मन्द तथा तीव्र रंगों के संयोजन से यहॉ अनेक धार्मिक कथानक तथा अन्य विषय चित्रित किये गये हैं। आश्चर्यजनक रूप से इतना समय व्यतीत हो जाने के बाद भी इन रंगों ने अभी अपनी आभा नहीं खोयी है। ओरछा का लक्ष्मी मंदिर अपने भित्ति चित्रों के लिये प्रसिद्ध है परन्तु संरक्षण के अभाव में इसके अधिकांश चित्र नष्ट हो गये हैं। दतिया के नृसिंह देव महल में भित्ति चित्रों के केवल निशान दिखाई पड़ते हैं। जबकि झॉंसी के रानीमहल के ऊपरी खण्ड में अभी भी थोड़े से दर्शनीय भित्ति चित्र हैं। गुरसराय दुर्ग के एक छोटे महल के भित्ति चित्रों ने अपने अन्तिम समय तक अपनी आभा नहीं खोयी परन्तु महल के ध्वस्त होने के साथ–साथ भित्ति चित्रों के चिन्ह भी विदा ले रहे हैं। टोड़ी फतेहपुर दुर्ग के अन्दर विशेष रूप से मन्दिर के भित्ति चित्र उल्लेखनीय हैं, जिनमें प्रायः धार्मिक कथानकों का चित्रांकन किया गया है। ये भी नष्ट प्राय है परन्तु अच्छी स्थिति में है। समथर महल के अंतरंग कक्ष के भित्तिचित्र परवर्ती काल के हैं तथा सुरक्षित हैं। चन्देलकालीन महोबा की बारादरी में चित्रित भित्ति चित्र बुन्देलाकालीन प्रतीत होते हैं तथ इनके रंग क्रमशः क्षरित हो रहे हैं। पन्ना, चरखारी, टीकमगढ़, महेवा आदि के महलों में भी न्यूनाधिक रूप से भित्ति चित्र निर्मित हैं।

बुन्देलखण्ड के किलों में मौजूद एक युग एवं परंपरा के वाहक ये भित्तिचित्र अब अपनी अंतिम साँसें ले रहे हैं। टोड़ी फतेहपुर के सर्वेक्षण के समय यह जानकर आश्चर्य हुआ कि वहॉ के सम्मानित लोग भी इन कालजयी चित्रों के बड़े–बड़े टुकड़े काट कर तस्करों को बेंच रहे हैं।

जल स्रोत– बिना किसी अच्छे और पर्याप्त जल स्रोत की उपलब्धता के किसी दुर्ग की दीर्घ जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। प्रत्येक किले की प्राचीर के अन्दर जलस्रोत की उपलब्धता दुर्ग निर्माण का आवश्यक अंग थी। ये जल स्रोत प्राकृतिक

तथा मानव निर्मित दोनों प्रकार के होते थे। किले की घेरेबंदी के समय दुर्ग की दृढ़ता एवं अन्न–जल के भण्डार ही विजय अथवा पराजय का कारण बनते थे। इसीलिय दुर्ग निर्माताओं ने सदैव दुर्ग के अन्दर जलस्रोत का निर्माण कराया। वाली, कूप, तड़ाग आदि प्रमुख जलस्रोत होते थे। बुन्देलखण्ड के किलों में कुँयें, बीहर[126] तथा बावड़ी प्रमुख रूप से देखने को मिलते हैं। ये बावड़ियाँ प्राकृतिक स्रोत वाली हैं, जबकि कुछ मानव निर्मित हैं।

बुन्देलखण्ड के बहुत से किले जलाशयों के किनारे हैं, जिन्हें नदी अथवा तालाब से जल की प्राप्ति होती थी। नदी तट पर स्थित वे दुर्ग जिन्हें नदी से जल उपलब्ध होता था, उनमें ओरछा, देवगढ़, एरच, धमौनी को बेतवा से मनियागढ़, भूरागढ़, सिहुँड़ा, रनगढ़, केन नदी से तथा कालपी, टोड़ी फतेहपुर, राहतगढ़, क्रमशः यमुना, सुखनई और बीना से जल प्राप्त करते थे। यहाँ यह स्पष्ट होना चाहिये कि नदी तट के वे दुर्ग जो नदी से जल प्राप्त कर सकते थे, नदी से सटकर निर्मित थे एवं नदी की दिशा से सुरक्षित भी थे। इन प्राकृतिक स्रोतो के निकट स्थित दुर्गो को इनसे जल प्राप्त अवश्य होता था, फिर भी आपातकाल के लिये आन्तरिक व्यवस्था रखनी पड़ती थी। धमौनी दुर्ग में सामान्य दशा में एक मील दूर तालाब से पानी लाया जाता था।[127] नदियों की तरह विशाल तालाब के किनारे बने दुर्ग इन तालाबों से जल प्राप्त करते थे। टीकमगढ़ महेन्द्र सागर से, बरूआसागर बरूआ तालाब से, जैतपुर बेलाताल से, महोबा मदन सागर से, बड़ौनी रामसागर से, जतारा मदन सागर से, बलदेवगढ़ ग्वाल सागर से जल प्राप्त करते थे। तालबेहट, मेहरौनी, मोहनगढ़, और करैरा भी अपने निकट के बड़े तालाबों से जल प्राप्त करते थे।[128]

दुर्ग के प्राचीर के अन्दर स्थित जल स्रोतों में कालिंजर का नाम उल्लेखनीय है, जहाँ कई प्राकृतिक एवं कृत्रिम जलाशय आज भी मौजूद हैं। इनमें पाताल गंगा (सरगाह), पांडव कुण्ड, कोटितीर्थ, ऋषि विहार के अतिरिक्त सीता कुण्ड, बुढ़िया ताल, मृग धारा, शनीचरी तलैया प्रमुख है।[129] अजयगढ़ में दो छोटे तालाब गंगा और यमुना के नाम से हैं, जबकि बाहर परमाल ताल तथा अजयताल नामक बड़े तालाब है।[130] ये कालिंजर की भाँति अधिकांशतः भूमिगत स्रोतों से जुड़े हुये नहीं है। बुन्देलखण्ड के

दुर्गो में स्थित प्रमुख बावड़ियों में देवगढ़ दर्ग में बुर्रा की बावड़ी, बालाबेहट में बाला बावड़ी, चिरगाँव में तुलसी बावड़ी तथा तालबेहट, समथर, टोड़ी फतेहपुर, भूरागढ़ इत्यादि में बावड़ियाँ शामिल है।[131] चरखारी के पहाड़ी किले में 7 कृत्रिम बावड़ियों का निर्माण किया गया था, जिनमें वर्षा जल एकत्रित होता था। इनमें से अधिकांश नष्ट हो चुकी हैं। मैदानी हिस्से के सभी दुर्गों में कुओं का निर्माण किया गया था, जैसे गुरसराय में तीन, समथर में नौ, टोड़ी फतेहपुर में पाँच, तालबेहट में दो, स्योंढ़ा (बाँदा) में दो तथा रसिन, झाँसी, रनगढ़, भूरागढ़ के किलों में एक–एक कुँआं अभी भी मौजूद है। इन कुँओं से चरस (चमड़े का बड़ा थैला) अथवा चक (छोटी बाल्टियों की माला) के द्वारा पानी बाहर निकाला जाता था।

कुछ महलों में जलापूर्ति के लिये मिट्‌टी के पाइपों को जोड़कर पाइपलाइन बनायी जाती थी, तथा दीवारों एवं फर्श के अन्दर स्थित पाइप लाइनों से ऊँचे स्थान पर संग्रहीत जल को आवश्यक स्थानों तक पहुँचाया जाता था। इन पाइपों से जलापूर्ति स्नानागारों एवं फब्बारों आदि के लिये की जाती थी। टोड़ी फतेहपुर दुर्ग में नीचे स्थित विशाल कुँये से महल की सर्वोच्च ऊँचाई तक भूमिगत सीढ़ियाँ बनी है जिनसे बहुत से जलवाहक रात दिन पानी ढोकर ऊपर बड़े टैंक में इकट्‌ठा करते थे तथा एकत्रित जल पाईप लाइन द्वारा वितरित होता था। इस प्रकार की पाइपलाइन के के चिन्ह तालबेहट में भी मिलते हैं।

दुर्ग में जलस्रोतों के अत्यधिक महत्व को ध्यान में रखते हुये दुर्ग निर्माताओं ने जल उपलब्धता के सभी सम्भव उपाय किये थे। सन् 1202 जब कुतबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर के अभेद्य दुर्ग पर घेरा डाला और एक सशक्त मुकाबले के बाद परमर्दिदेव ने आत्मसमर्पण किया। इतिहासकार हस निजामी ने कालिंजर की इस पराजय का कारण दुर्ग के जल स्रोतों का सूख जाना बताया है।[132] यह घटना किसी अभेद्य दुर्ग के लिये भी जल उपलब्धता की महत्ता को प्रगट करती है। सम्भवतः अधिकतर निर्माता इस सम्बन्ध में जागरूक रहते थे। रानेह की प्रचलित कहावत "बावन कुँआ चौरासी ताल" तथा स्योंढ़ा (बाँदा) की कहावत "नब्बे कुँआ सत्तर मस्जिद" इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।

4.2.6 समकालीन शिल्प का प्रभाव

बुन्देलखण्ड की भौगोलिक अभिव्यक्ति को यहाँ के दुर्ग निर्माताओं ने सांस्कृतिक स्वरूप प्रदान किया तथा इसके लिये चन्देल एवं बुन्देला शासक प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे। चन्देलकालीन दुर्ग, भवन एवं मन्दिर निर्माण कला अतुलनीय थी।[133] बुन्देलों ने भी क्षेत्र को एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में गठित कर क्षेत्र को एक नया आयाम प्रदान किया। बुन्देलखण्ड में निर्माण शिल्प पर कुछ वाह्य प्रभाव क्रमागत रूप से परिलक्षित हुये, परन्तु ये सभी प्रभाव पूर्व मध्यकाल के पश्चात् पड़े। प्राचीन काल में नाग, वाकाटक, कलचुरि सत्ताओं ने निर्माण शिल्प में अपना योगदान दिया, परन्तु ये निर्माण वाह्य प्रभावों से रहित थे। समकालीन शिल्प को चन्देल शासकों ने असाधारण रूप से प्रभावशाली बनाते हुये एक नवीन संस्कृति को जन्म दिया, जो चन्देल संस्कृति के नाम से परिभाषित हुयी।[134] यह एक क्षेत्रीय संस्कृति थी तथा आवश्यकतानुसार औजारों, तकनीक तथा सुनिश्चित योजना से पनपी थी।[135] चन्देलों के निर्माण शिल्प के प्रमाण कालिंजर, अजयगढ़, महोबा, मड़फा तथा खजुराहो से प्राप्त होते हैं। चन्देल निर्माण शिल्प के प्रमुख चारित्रिक सूत्र निम्नवत थे–

(क) चन्देल निर्माणों में पत्थर की छत बनायी जाती थी। यह छत 8 चतुष्कोणीय फलकों से युक्त होती थी तथा इसमें प्रत्येक फलक अपने क्रमागत फलक से रैखिक रूप से समकोण बनाता था। इस प्रकार की छतों के उदाहरण 100 गज लम्बे कोटितीर्थ तालाब[136] के चारों ओर बिखरी चन्देल इमारतों के खण्डहरों में देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार महोबा में मदन सागर ताल में स्थित चन्देलकालीन करकादेव मन्दिर में छत का यह प्रकार दृष्टव्य है।[137] अजयगढ़ तथा खजुराहो में अनेक स्थानों पर यह आसानी से प्राप्त होता है।[138]

(ख) आयताकार घनाभों के रूप में काटे गये पत्थरों का उपयोग चन्देल निर्माण शिल्प में किया गया है। इन पत्थरों पर प्रतिमाओं के अंकन प्राप्त होते हैं। चन्देलों ने मूर्तिशास्त्र को नवीन शास्त्रीय आयाम प्रदान किया। प्रायः चन्देल दुर्गों में लगे स्तम्भों पर इनका अंकन किया गया है। प्रतिमायें शास्त्रीयता के आधार पर देव प्रतिमा,

सहायक (यक्ष, दिग्पाल) प्रतिमा ईश्वरीय प्रतिमा, लौकिक प्रतिमा में विभाजित है।[139] राज प्रतिमाओं का निर्माण चन्देलों ने नहीं किया।

(ग) कुछ विशिष्ट चिन्ह चन्देल निर्माण शिल्प की विशेषता थे। 'पूर्णघट तथा इससे बाहर निकलती हुयी जलराशि' चन्देलों का विशिष्ट अंकन था, जिसे कालिंजर, मड़फा, महोबा इत्यादि दुर्ग के निर्माणों में देखा जा सकता था।

उपरोक्त तथा अन्य चारित्रिक विशेषतायें वाह्य प्रभाव से रहित हैं तथा एक सुपरिभाषित एवं विशिष्ट शिल्प की ओर इशारा करती हैं।[140] समकालीन शिल्पों का प्रभाव दिल्ली सल्तनत की स्थापना के पश्चात के कालखण्ड में बुन्देलखण्ड पर न्यूनाधिक रूप से पड़ा, जिसका अध्ययन निम्न शीर्षकों के अर्न्तगत किया जा सकता है।

दिल्ली सल्तनत की शिल्प कला का प्रभाव : दिल्ली में सल्तनत की स्थापना के पश्चात् इण्डो–इस्लामी स्थापत्य कला का विकास हुआ।[141] इण्डो–इस्लामी शैली की मुख्य विशेषतायें गुम्बद, ऊँची मीनारें तथा मेहराबें थी। इसके अतिरिक्त माम्लूक, खलजी तथा तुगलक स्थापत्य शैलियाँ बीम–ब्रैकेट सिद्धान्त पर आधारित थी। सर जॉन मार्शल, पर्सी ब्राउन तथा ई0बी0हावेल ने इस शैली के प्रभावों का अध्ययन किया है। सल्तनत की स्थापत्य कला का बुन्देलखण्ड के शिल्प पर मामूली प्रभाव। कालिंजर में सातवें तथा मुख्य द्वार के पश्चात एक सल्तनतकालीन इमारत के खण्डहर हैं, जिस पर बीम–ब्रैकेट सिद्धान्त का प्रभाव है। इस इमारत में, जो कि चंदेल रचना नहीं है, आगे निकले हुये कोरबल ब्रैकेट हैं तथा छोटे चौकोर स्तम्भों का प्रयोग किया गया है। कालिंजर में शनीचरी तलैया के दक्षिण में एक छोटी मस्जिद है, जो कम ऊँचाई की दो मीनारों से युक्त है। दिल्ली सल्तनत की शैली के बुन्देलखण्ड पर प्रभाव न्यून हैं तथा इसके उदाहरणों की संख्या भी बहुत कम है। धमौनी, खिमलासा, हटा, दमोह, मालथौन जैसे दुर्गो में इस्लामिक शिल्प की झलक देखने को मिलती है। उल्लेखनीय है कि दिल्ली सल्तनत की निर्माण शैलियों के प्रभाव मुल्तान, मालवा, जौनपुर, बंगाल, गुजरात इत्यादि के क्षेत्रीय शिल्पों पर पड़ा था।[142] इसकी तुलना में बुन्देलखण्ड में दिल्ली सल्तनत की स्थापत्य शैली के प्रभाव को नगण्य कहा जाना चाहिये।

मुगल स्थापत्य कला प्रभाव : बुन्देलखण्ड के निर्माण शिल्प पर सल्तनत शैलियों की तुलना में मुगल स्थापत्य शैली का अधिक प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव बुन्देला शासको द्वारा निर्मित इमारतों में स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है। अकबर द्वारा सीकरी में निर्मित किये गये लाल पत्थर की इमारतों के कुछ लक्षण बुन्देला इमारतों में दिखायी पड़ते हैं सीकरी के पंचमहल की आकृति वाला नृसिंह महल वीर सिंह देव ने दतिया में बनवाया। सीकरी की कुछ इमारतों में छत पर छतरियाँ बनी हुयी हैं।[143] यह मुगल प्रभाव ओरछा में राजमहल व जहाँगीर महल में, दतिया में नृसिंह महल में दिखाई पड़ता है।, जहॉ छत पर कोनों तथा मध्य में छतरियाँ बनायी गयी हैं। एक महत्वपूर्ण मुगल प्रभाव राजमहलों में फब्बारें का निर्माण होना है। बुन्देलों ने मुगल शैली में फब्बारों का निर्माण करवाया जिन्हें ओरछा के राजमहल, जहाँगीर महल, फूलबाग महल के अतिरिक्त दतिया, पन्ना इत्यादि के महलों में देखा जा सकता है। मुगल प्रभावों की श्रृंखला में एक प्रभाव महलों में दीवाने आम का निर्माण है। मुगल दीवाने आम से प्रभावित बुन्देलों ने चित्रकारी एवं नक्काशी से युक्त दीवाने आम बनवाये। ओरछा, टीकमगढ़, पन्ना के महलों में दीवाने आम देखने में अत्यन्त प्रभावशाली हैं। स्थानीय बुन्देला शैली ने मुगल प्रभाव के अतिरिक्त कुछ नये तत्वों को ग्रहण किया। परवर्ती बुन्देला काल के महलों की छत वृत्ताकार कम में खड़ी ईटों एवं चूने के प्रयोग से बनने लगी। ईटों के कम के मध्य में एक बड़ा पत्थर फंसाया जाता था, जो इस विन्यास को मजबूती प्रदान करता था। भूरागढ़, जैतपुर, कुलपहाड़ के दुर्गो में इस शैली के प्रयोग को देखा जा सकता है।

राजधानी शैलियों के प्रभाव : राजस्थान के मेवाड़ी, मारवाड़ी, शेखावटी तथा हाड़ौती शिल्प शैलियों का मिश्रित प्रभाव बुन्देलखण्ड के दुर्गो में भित्ति चित्र के अंकन में देखा जा सकता है। भित्ति चित्रों के सन्दर्भ में इसका विवरण दिया जा चुका है। भित्ति शिल्प की कोई नयी शैली बुन्देलों ने विकसित नहीं की, परन्तु चित्रों का कथानक राजस्थानी कथानकों से भिन्न था।

मराठा स्थापत्य का प्रभाव : शिवाजी द्वारा स्थापित मराठा स्थापत्य की परम्पराओं का प्रभाव बुन्देलखण्ड में मराठा राजसत्ता के कारण पड़ा।[145] बुन्देलखण्ड में मराठा शिल्प के प्रभाव को झाँसी, सागर, कर्वी, मण्डावरा, विनायका इत्यादि में देखा जा सकता है। दुर्ग के प्रवेश द्वार पर गणेश का अंकन मराठा विशेषता है, जिसे उपर्लिखित दुर्गो में देखा जा सकता है। मराठों का प्रभाव शिल्प पर कम प्रशासन तथा सामाजिकता पर अधिक पड़ा।

निष्कर्ष रूप में, बुन्देलखण्ड का स्थापत्य शिल्प वाह्य प्रभावों के सम्पर्क में आया परन्तु अपनी स्थानीय विशेषताओं की तुलना में वाह्य शैलियों से बहुत कम प्रभावित हुआ। बुन्देलखण्ड के दुर्गो में मौदहा, कालपी इत्यादि में इस्लामी स्थापत्य के कुछ उदाहरण मिलते हैं।[146] सारांशतः यह कहा जा सकता है कि बुन्देलखण्ड के दुर्गो एवं उनके आन्तरिक निर्माणों में समकालीन शिल्प के बहुत कम एवं आंशिक प्रभाव देखने को मिलते हैं। समकालीन प्रभावों को आत्मसात करके शिल्प का एक अलग आयाम विकसित हुआ है, जिसे बुन्देली शैली कहा जाय तो अनुपयुक्त नहीं होगा। उदाहरण के लिये बीमा आधारित, मेहराबदार, वर्तुल शिखर आदि किसी भी द्वार के तीनों ओर आलों की श्रृंखला का निर्माण यहाँ की अपनी शैली है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. ह्वीलर, सर मॉर्टिमर,' इण्डस सिविलाइजेशन', कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 1953, पेज–35
2. आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स 1912–13, एक्सकैवेशंस ऑफ टेक्सिला, पेज–1,9
3. रॉय, यू0 एन0,' प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन,' हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद,1965, पेज–292
4. त्यागी, आर0 के0,'फोर्ट–टाउन्स इन वेस्टर्न यू0 पी0 : ए स्टडी इन अरबन ज्योग्राफी,' अप्रकाशित शोध प्रबन्ध,राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर,1970, पेज–36
5. हरिवंश पुराण, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1906, हरिवंश पर्व अध्याय–54, पंक्ति–116
6. अग्रवाल, वी0एस0,' इण्डिया एज नोन टू पाणिनि,' लखनऊ विश्वविद्यालय, 1953, पेज–144
7. ब्रोकमैन, डी0एल0 ड्रेक,' डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स आफ यूनाइनेड प्रोविन्सेज आगरा एण्ड अवध' –बाँदा, इलाहाबाद, 1909 पेज–200
8. जनपद गजेटियर बाँदा, लखनऊ, 1988, पेज–303
9. जनपद गजेटियर हमीरपुर ,लखनऊ, 1988, पेज–283
10. सिंह, राजेन्द्र,' बुन्देलखण्ड : ए ट्रेडीशनल लैण्ड ऑफ फोर्ट काम्पलेक्स,' द डेकेन ज्योग्राफर, अंक–2, पुणे,1994 , पेज–15
11. जनपद गजेटियर सागर ,भोपाल, 1970, पेज–526
12. सिंह, राजेन्द्र, पूर्वोधृत, पेज–15
13. अर्थशास्त्र, सम्पादक–यौली, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, 1923, पेज–52

14. समरांगण सूत्रधार, सम्पादक– टी गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, 1912, पेज–41

15. अग्रवाल, वी0एस0, पूर्वोधृत, पेज–143

16. टिप्पणी –प्रायः सभी बुन्देला द्वारा आधुनिक काल में निर्मित दुर्गो में यह प्रयोग मिलता है। यथा भूरागढ़

17. जनपद गजेटियर सागर ,भोपाल, पूर्वोधृत, पेज–513

18. टिप्पणी– ईट की माप सर्वेक्षण पर आधारित है। माप हेतु भूरागढ़ बिसहरी , जैतपुर, रनगढ़ से प्राप्त ईटों का प्रयोग किया गया।

19. वर्मा, डा0 वृन्दावन लाल,' मेरी साहित्य साधना के प्रेरणास्रोत, बुन्देलखण्ड दर्पण, सम्तम विम्ब, झॉसी, 1999 , पेज–24, टिप्पणी– डा0 वर्मा ने अपने प्रसिद्व उपन्यास 'मृगनयनी' की भूमिका में भी इस कहावत का उल्लेख किया गया है।

20. जनपद गजेटियर सागर ,पूर्वोधृत, पेज–526. टिप्पणी उपरोक्त का प्रयोग सर्वेक्षण के दौरान रह ली की गढी में मिला।

21. राय, यू0 एन0 , पूर्वोधृत, पेज–246

22. सिंह, रामलोचन,' इण्डियाः ए रीजनल ज्योग्राफी', नेशनल ज्योग्राफिकल सोसाइटी ऑफ इण्डिया, वाराणसी पुनर्मुद्रित, पूर्वोधृत, पेज–605

23. जनपद गजेटियर दमोह , पूर्वोधृत, पेज–215

24. सिंह, रामलोचन, पूर्वोधृत, पेज–605,606

25. मयमतम्, सम्पादक– टी गणपति शास्त्रर, त्रिकेन्द्रम, 1919, अध्याय–5

26. सिंह, राजेन्द्र,' फोर्ट्सः द कोरीडोर ऑफ अरबन एनवायसमेन्ट इन बुन्देलखण्ड (यू0पी0),' अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार में प्रस्तुत शोध पत्र, वाराणसी, 1990, पेज–11

27. जनपद गजेटियर दमोह , पूर्वोधृत, पेज–215

28. टिप्पणी– परवर्ती बुन्देला काल में निर्मित दो मंजिला भवनो में बीम तथा अन्य रूपों में प्रयुक्त लकड़ी पर नक्काशी प्राप्त होती हैं (सर्वेक्षण पर आधारित)

29. दुबे, दीनानाथ , ' भारत के दुर्ग' दिल्ली,1999, पेज–33

30. जनपद गजेटियर झाँसी , लखनऊ,1965, पेज–344

31. जनपद गजेटियर दमोह , पूर्वोधृत, पेज–6

32. जनपद गजेटियर सागर , पूर्वोधृत, पेज–11,12

33. ब्रोकमैन, डी0 एल0 ड्रेक , पूर्वोधृत, पेज–29

34. सिंह, राजेन्द्र,' पूर्वोधृत, पेज–9

35. सिंह, पुरूषोत्तम'' रिलीजियस स्पॉट्स विद इन फोर्टसः ए स्टडी इन कल्चरल हिस्ट्री आफ बुन्देलखण्ड'', इण्डियन हिस्ट्री कॉंग्रेस के 66 वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोध पत्र, शान्ति निकेतन,2006, पेज–7

36. टिप्पणी– रामसेवक रिछारिया ने अपनी पुस्तक में राजस्थान तथा अन्य क्षेत्रों से संगमरमर आयात का उद्वरण दिया है।

37. दुबे, दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–21

38. गरूण पुराण,'क्षेम राज श्री कृष्णदास, बम्बई, 1906, अध्याय–46

39. मिश्र केशरी ,' चन्देल एवं उनका राजत्व काल', पेज–231, मेमॉयर्स ऑफ महमूद ऑफ गजनी, पेज–332 से उदधृत

40. मिश्र केशरी, वही , पेज–231

41. शुक्रनीतिसार, अनु0 विनय कुमार सरकार , सम्पादक–बी0डी0 बसु, प्रयाग, 1914, अध्याय–1, पक्ति–213,214

42. वही, पक्ति–390,396

43. राय, यू0एन0, पूर्वोधृत, पेज–235

44. अपराजित पृच्छा, पेज–118

पुरप्राकारपरिखाप्रतोलीमार्गगोपुरम।
गृहं च राजवेश्माद्यं ज्ञायते सूत्र कर्मणा।।

45. टिप्पणी – आकृतियों का अन्वेषण मुख्यतः व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित है।

46. जनपद गजेटियर झाँसी ,पूर्वोधृत, पेज–361

47. चक्रवर्ती, के0के0,' आर्ट ऑफ इण्डियाः ओरछा', नई दिल्ली,1984,पेज–81

48. जनपद गजेटियर सागर ,पूर्वोधृत, पेज–527

49. द्विवेदी मुरारीलाल,' करैरा दुर्ग' बुन्देलखण्ड दर्पण, सप्तम बिम्ब झाँसी, 1999,पेज–58

50. जनपद गजेटियर पन्ना ,भोपाल, 1994,पेज–68

51. जनपद गजेटियर बाँदा, पूर्वोधृत, पेज–288

52. ब्रोकमैन, डी0एल0ड्रेक, 'पूर्वोधृत, पेज–245

53. पाण्डेय,जे0एन0, 'सेटेलमेन्ट्स एट कालिंजर,' कालंजर ए हिस्टोरिल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल–सम्पा0 –बी0एन0 रॉय से उद्धृत , पेज–40,41

54. जनपद गजेटियर पन्ना , पूर्वोधृत, पेज–54

55. जनपद गजेटियर सागर , पूर्वोधृत, पेज–524

56. जनपद गजेटियर जालौन, लखनऊ , 1989, पेज–289

57. जनपद गजेटियर सागर , पूर्वोधृत, पेज–526

58. मालीवाल,बी0एन0,'सैन्य विज्ञान', चन्द्रप्रकाश एण्ड ब्रदर्स हापुड़,1979 , पेज–39

59. समरांगण सूत्रधार, पूर्वोधृत, पेज–39,40

60. अर्थशास्त्र, सम्पा0– यौली, पूर्वोधृत, पेज–31

61. महाभारत, हिन्दी अनुसवाद, पं0 राम नारायण दास शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर, आदि पर्व,199,29–31

62. समरांगण सूत्रधार, पूर्वोधृत, पेज–40

63. अष्टाध्यायी, सम्पादक सतीश चन्द्र बसु , बनारस, 1897, 3, 1, 17

64. शुकनीतिसार, पूर्वोधृत, अध्याय–1, पेज–240

65. अर्थशास्त्र, पूर्वोधृत, पेज––51, टिप्पणी–'पाषाणेष्टका बद्वपार्श्वा वा'

66. दुबे , दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–28

67. सिंह, राजेन्द्र,' इम्पैक्ट ऑफ फोर्टीफिकेशन आन इंडीजिनियस अरबन हैबिटेट इन बुन्देलखण्ड (यू0पी0),' सेटेलमेन्ट सिस्टम इन इडिण्या' खण्ड–2, सम्पा0 –उस0डी0 मौर्या, चुघ पब्लिकेशन इलाहाबाद,1991, पेज–211

68. समरांगण सूत्रधार, पूर्वोधृत पेज–40, टिप्पणी – 'परिखौत्खतया मृदा'

69. अर्थशास्त्र, पूर्वोधृत, पेज–50

70. दुबे , दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–28

71. अग्रवाल,वी0एस0, पूर्वोधृत, पेज–143

72. अर्थशास्त्र, पूर्वोधृत, पेज–52

73. शुकनीतिसार, पूर्वोधृत, पक्ति–144

74. अग्रवाल,वी0एस0, पूर्वोधृत, पेज–145

75. ब्रम्हवैवर्तपुराण,'श्री वेकटेश्वर प्रेस बम्बई, अध्याय–103,पक्ति–120

76. अपराजित पृच्छा, पूर्वोधृत, पेज–173, टिप्पणी– 'प्राकार उत्तमः कार्यो नवहस्तैः समुच्छ्रितः ....'

77. समरांगण सूत्रधार पूर्वोधृत पेज–41

78. समरांगण सूत्रधार पूर्वोधृत पेज–41, 42

79. दुबे, दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–29

80. समरांगण सूत्रधार पूर्वोधृत, श्लोक–31, पेज–41 , टिप्पणी– 'प्राकारे अटट्लकास्तस्मिन दिक्षु दिक्षु चतुर्दिशम्......'

81. अर्थशास्त्र, पूर्वोधृत, पेज–52, टिप्पणी,– 'त्रिशदण्डान्तरं च द्वयोरट्टालककयोर्मध्ये.

82. अष्टाध्यायी, पूर्वोधृत, 5, 3, 100

83. जनपद गजेटियर सागर , पूर्वोधृत, पेज–524,526

84. अर्थशास्त्र, पूर्वोधृत, पेज–54

85. अमरकोष, सम्पादक– पण्डित शिवदत्त, निर्णय सागर मुद्रणालय, बम्बई,1929, पेज–77

86. अर्थशास्त्र, पूर्वोधृत, पेज–56

87. दुबे , दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–31

88. अग्रवाल,वी0एस0, पूर्वोधृत, पेज–145

89. जनपद गजेटियर झाँसी , पूर्वोधृत, पेज–344

90. ब्रोकमैन,डी0एल0 ड्रेक, पूर्वोधृत, पेज–246

91. जनपद गजेटियर बाँदा , पूर्वोधृत, पेज–288

92. जनपद गजेटियर पन्ना , पूर्वोधृत, पेज–368

93. जनपद गजेटियर बाँदा , पूर्वोधृत, पेज–299

94. दुबे , दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–31

95. राय, यू0एन0 , पूर्वोधृत, पेज–274

96. अग्रवाल,वी0एस0, पूर्वोधृत, पेज–143

97. राय, यू0एन0 , पूर्वोधृत, पेज–275

98. वही, पेज–277

99. वही, पेज–278

100. सिंह, राजेन्द्र, पूर्वोधृत, पेज–213

101. रॉय, बी0एन0, पूर्वोधृत, पेज–20

102. जनपद गजेटियर बाँदा , पूर्वोधृत, पेज–291

103. सिंह , विकास वैभव,' गढकुडार महल' बुन्देलखण्ड दर्पण , सम्तम बिम्व, झाँसी, 1998, पेज–76

104. जनपद गजेटियर दतिया, भोपाल, 1977, पेज–303

105. तिवारी, गोरेलाल,' बुन्देलखण्ड का सक्षिप्त इतिहास' काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस, पेज–144,145

106. स्लीमैन, डब्ल्यू0 एच0 'रैम्बल्स एण्ड रीकलेक्शस ऑफ एन इंडियन आफीसियल ' खण्ड–1, आक्स फोर्ड यूनीवसिटी प्रेस, लंदन,1975

107. तिवारी,गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–124,125

108. दुबे , दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–142

109. जनपद गजेटियर टीकमगढ,पूर्वोधृत,पेज–355

110. जनपद गजेटियर टीकमगढ,पूर्वोधृत,पेज–355,356

111. जनपद गजेटियर टीकमगढ,पूर्वोधृत,पेज–356

112. गुप्ता, बी0डी0,' लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ महाराजा छत्रसाल बुन्देला' रेडिएन्ट पब्लिशर्स, दिल्ली,1980,पेज–124

113. सिंह , पुरूषोत्तम, पूर्वोधृत,पेज–4

114. द्विवेदी, मुरारीलाल, पूर्वोधृत,पेज–58

115. सिंह, राजेन्द्र, 'बुन्देलखण्ड : ए ट्रेडीशनल लैण्ड ऑफ फोर्ट काम्प्लेक्स' द डेकेन ज्योग्राफर, अंक –2 पुणे, 1994, पेज–11

116. जनपद गजेटियर दतिया,पूर्वोधृत,पेज–307

117. शर्मा, लखपतराम,'रत्नों और खजानों का देश भारत' आलोक प्रेस, झाँसी,1976

118. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–345

119. रिछारिया, रामसेवक,'बुन्देलखण्ड के किले एवं गढियाँ, झाँसी 2001, पेज–29

120. राय, यू0एन0, पूर्वोधृत,पेज–278

121. मालविकाग्निमित्रम, सम्पादक –एस0 कृष्णराव, ओरिएन्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा, 1934, अध्याय–2 , 72–44

122. नाट्यशास्त्र, सम्पादक – रामकृष्ण कवि , ओरिन्टल इन्सटीट्यूट बडौदा, 1934, अध्याय–2, 72–44

123. राय, यू0एन0, पूर्वोधृत,पेज–338

124. सिंह राजेन्द्र, पूर्वोधृत, पेज–4,11

125. सिंह, विकास वैभव,'चित्यौरीकला के झाँसी में ध्वस्त होते स्तम्भ,' बुन्देलखण्ड दर्पण, अष्टम् बिम्ब, झाँसी 2000, रंग संयोजन, पेज–143

126. टिप्पणी– बीहर एक चौड़ा कुँआ होता हैं, जिसमें जल तल तक सीढ़ियाँ होती हैं ।

127. रिछारिया,रामसेवक, पूर्वोधृत, पेज–164

128. सिंह, पुरूषोत्तम,' हिस्टोरिकल टैंक्स ऑफ बुन्देलखण्डः यूनीक सोर्स ऑफ इकोलोजिकल बैलेन्स ,' इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के 65 वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोधपत्र, बरेली, 2004, पेज–5, 6

129. ब्रोकमैन,डी0एल0 ड्रेक, पूर्वोधृत, पेज–246

130. जनपद गजेटियर पन्ना ,पूर्वोधृत,पेज–369

131. सिंह राजेन्द्र, पूर्वोधृत, पेज–7, 8

132. दुबे, दीनानाथ, पूर्वोधृत, पेज–110

133. भार्गव, वी0एस0,'प्राचीन भारतीय इतिहास' कालेज बुक डिपो जयपुर, 1982, पेज–311

134. मित्रा, एस0के0,' अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो' कलकत्ता, 1958,पेज–17

135. कोरोविन , एफ0 ,' हिस्ट्री ऑफ एनसिएन्ट वर्ल्ड,' प्रोग्रेस पब्लिशर्स , मास्को,1981, पेज–137

136. पाण्डेय, ए0पी0,'चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास,' प्रयाग, 1968 पेज–214

137. जनपद गजेटियर हमीरपुर ,पूर्वोधृत ,पेज–274

138. जनपद गजेटियर पन्ना ,पूर्वोधृत ,पेज–269

139. देव,कृष्ण एवं नायल बी0एस0,'आर्क्योलोजिकल म्यूजियम खजुराहो', ए0 एस0 आई0 नई दिल्ली, 1973,पेज–86

140. देसाई, देवागना,' इरोटिक स्कल्पचर ऑफ इण्डिया : ए सोशयो कल्चरल स्टडी,' मुशीराम मनोहर लाल, नई दिल्ली 1985, पेज–73

141. श्रीवास्तव, आशीवादीलाल,' मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, आगरा,1964, पेज–3

142. वही, पेज–11, 17

143. वही,पेज–17

144. जनपद गजेटियर दतिया ,पूर्वोधृत ,पेज–304

145. त्रिपाठी, मोतीलाल, ' बुन्देलखण्ड दर्शन,' लक्ष्मी प्रकाशन, झाँसी, 1980, पेज–146

146. सिंह, पुरूषोत्तम,' रिलीजियस स्पॉट्स विद इन फोर्ट्स : ए स्टडी इन कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड,' पूर्वोधृत, पेज–8

अध्याय – 5
दुर्गों का बहुआयामी योगदान

प्रथमतः ऐसा प्रतीत होता है कि दुर्ग निर्माण का एकमात्र लक्ष्य आक्रमणकारियों से रक्षा का होता था, परन्तु सत्ता का सर्वोच्च केन्द्र होने के कारण दुर्गों का बहुआयामी प्रभाव दिखायी देता है। छोटा या बड़ा दुर्ग जिस अधिकृत क्षेत्र का शासन सूत्र संभालता था, वह सम्पूर्ण क्षेत्र के सामाजिक, आर्थिक, एवं प्रशासनिक संचालन की धुरी बन जाता था। इतिहास के पृष्ठ दुर्गों के सन्दर्भ में अधिकांशतः युद्धों का विवरण प्रदान करते हैं, किन्तु तत्कालीन समाज पर उनके सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रभावों को नहीं भुलाया जा सकता। दुर्ग के उत्थान पतन के साथ नगर का इतिहास भी जुड़ा होता था। लगभग सभी प्रशासनिक कार्य एवं कार्यालय दुर्ग के अन्दर से सम्पादित होते थे। शासित भूमि से एकत्रित होने वाले कर एवं युद्धों से प्राप्त धन के कोष इन्हीं दुर्गों में एकत्रित होते थे। मूलतः दुर्गों से इतिहास की रचना हुयी, स्थापत्य एवं वास्तुकला का विकास हुआ तथा नगर नियोजन को बढ़ावा मिला। दुर्गों में वह सब कुछ छिपा है जो हमारे अतीत को वर्तमान तथा भावी युग से जोड़ने के लिये आवश्यक है। दुर्ग रक्षकों ने स्वाभिमान एवं स्वतंत्रता के लिये मृत्यु का वरण करना श्रेयस्कर समझा परन्तु इन दुर्गो में इनके परकोटों पर, बुर्जों के पीछे, महलों के साये में इतिहास की अनेक घटनायें सोयी हुयी हैं। अधिकांश दुर्गों के राजप्रासादों में तत्कालीन कला की वह बानगी है जो अब कभी नहीं बन सकती। दुर्ग जो उन्नीसवीं शताब्दी तक सत्ता के अन्तिम एवं सर्वोच्च स्तम्भ थे, अब बदलते हुये युग में सांस्कृतिक विरासत की अस्मिता के प्रतीक बन गये हैं।[1] इन्हीं दुर्गों का रक्षात्मक कार्य के अतिरिक्त प्रशासनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नगर विकास एवं मार्गो के विकास में बहुआयामी योगदान रहा है। निम्न पृष्ठों में इस योगदान के मूल्याँकन का प्रयास किया गया है।

5.1 रक्षात्मक काय

विषहीनों यथा नागो मदहीनो यथा गजः
सर्वेषां वश्यतां यांति दुर्ग हीनस्था नृपः।[2]

यश, सम्पत्ति, शासन और राज्य प्राप्त करना जितना कठिन है, उससे अधिक कठिन उसे सुरक्षित रख पाना है। इन चारों की प्राप्ति के पश्चात अनायास और अकारण ही शत्रु पैदा हो जाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार इन उपलब्धियों को सुरक्षित रखने के लिये दुर्ग निर्माण की परंपरा शासकों एवं राजवंशों ने डाली। बुन्देलखण्ड के दुर्ग अपने इस प्रमुख उत्तरदायित्व का सफलतापूर्वक निर्वहन करते रहे हैं। बुन्देलखण्ड की मध्य भारतीय स्थिति ने यहाँ सदैव युद्धों को आमंत्रण दिया है। गंगा के मैदान से दक्षिण अथवा दिल्ली, पंजाब से दक्षिण–पूर्व की ओर यात्रा करती हुयी सेनायें बुन्देलखण्ड से होकर गुजरती थीं। परिणामतः उनका टकराव बुन्देलखण्ड के शासकों से होता था। प्राचीन काल से आधुनिक काल तक इस वीर भूमि के किलों ने इतने युद्धों का सामना किया है, उनका विस्तृत वर्णन इस संक्षिप्त अध्याय में संभव नहीं है। अतः यहाँ के कुछ प्रमुख दुर्गो के रक्षात्मक योगदान का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

कालपी– कालपी की भौगोलिक स्थिति ने इसे बुन्देलखण्ड का प्रवेश द्वार बना दिया था। अतः गंगा के मैदान से बुन्देलखण्ड में प्रवेश करने के लिये प्रत्येक आक्रामक को कालपी की अर्गला को तोड़ना पड़ता था।[3] यही कारण है कि बुन्देलखण्ड में कालपी ने जितने युद्धों का सामना किया है, उतना शायद ही किसी अन्य दुर्ग का सामना किया। महमूद गजनवी ने 1019–20 ई0 में यहाँ कालिंजर पर आक्रमण के क्रम में अधिकार किया।[4] ठीक इसी प्रकार कालिंजर अभियान के लिये सन 1202 में कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालपी को रौंदा।[5] 1248 ई0 में दिल्ली सल्तनत के वजीर गयासुद्दीन बलबन ने कालपी को विजित किया।6 तैमूर के आक्रमण का लाभ उठाते हुये एक स्वतंत्र शासक महमूद खाँ ने 1399 में तुगलकों से यह किला छीन लिया।[7]

बुन्देलखण्ड की प्राप्ति के लिये कालपी ही प्रमुख आधार था और कारण है कि 15वीं शताब्दी में जौनपुर, मालवा और दिल्ली सल्तनत तीनों की आँखों में कालपी खटकता रहा। इसकी एक भौगोलिक व्याख्या यह भी हो सकती है कि इन तीनों में से कोई एक यदि कालपी में सशक्त हो जाता, तो शेष दो से टक्कर लेना उसके लिये

आसान हो जाता। जौनपुर के इब्राहीमशाह शर्की ने 1412 ई0 में कालपी को अपने आधीन किया, परन्तु दौलत खाँ लोदी की सेना ने पुनः कालपी को दिल्ली सल्तनत के अधीन कर दिया।[8] इब्राहीमशाह ने 1428 में पुनः कालपी पर आक्रमण किया परन्तु सैयद सुल्तान मुबारकशाह से पराजित हुआ।[9] मालवा के शासक हुसंगशाह और सुल्तान मुबारकशाह कालपी पर अधिकार के लिये संघर्षरत हुये। इसमें 1434 में हुसंगशाह की विजय हुयी।[10] पुनः 1445 में मालवा के महमूद खिलजी ने कालपी को विजित किया।[11] हुसैनशाह शर्की और सुल्तान बहलोल लोदी 1488 में कालपी अधिकार को लेकर भिड़ गये जिसमें लोदी सुल्तान ने भिड़ंत अपने नाम की।[12] 1528 में बाबर ने कालपी पर आसानी से अधिकार जमाया जबकि 1539 में शेरशाह के पुत्र कुतुब खाँ ने कालपी आक्रमण के समय मुगल सेनापतियों यादगार नासिर मिर्जा तथा कासिम हुसैन उजबेग से हार मानी।[13] 1554 में अफगान कालपी को लेकर आपस में ही भिड़ गये, जिसमें आदिलशाह के अपराजित सेनापति हेमू ने इब्राहीमशाह को हराकर कालपी पर अधिकार जमाया।[14]

1556 में अकबर के सेनापति अब्दुल्ला खाँ उजबेग ने कालपी को बिना प्रतिरोध के प्राप्त किया।[15] इसके पश्चात कालपी बुन्देलों और मराठों की भाग्यरेखा बनती रही। 1682 के पश्चात वीर बुन्देला नेता छत्रसाल ने कालपी को मुगलों से छीना।[16] ~~1727~~ के 1729 के मध्य कालपी में बुन्देलों तथा बंगश के मध्य झड़पें हुयीं।[17] 1762 में मराठा बालाजी गोविन्द के हाथों से कालपी इलाहाबाद के मुगल सूबेदार शुजाउद्दौला के हाथों में चली गयी।[18] मई 1778 में कर्नल लेस्ली ने मराठों को हराकर कालपी पर अधिकार कर लिया।[19] 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का बुन्देलखण्ड का अन्तिम युद्ध भी कालपी में हुआ।

इस प्रकार कालपी सदैव समरांगण बना रहा और यमुना की सीधी कगार पर स्थित यह दुर्ग न जाने कितनी जय और पराजयों का साक्षी रहा है।

कालिंजर– बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक रंगशाला में कालिंजर दुर्ग सहस्त्राब्यिों तक ऐसा रंगमंच रहा है। जिसमें भारत के लगभग सभी अप्रितम योद्धाओं का प्रवेश देखने

को मिलता है। वस्तुतः इस अजेय दुर्ग में तलवार परीक्षण करने के बाद ही युद्ध नायकों को उत्तर भारत में सम्मान प्राप्त होता था। यही कारण है कि ऐसा कोई उल्लेखनीय योद्धा नहीं हुआ जिसने कालिंजर दुर्ग की चट्टानों से अपना माथा न टकराया हो। प्राप्त इतिहास से पता चलता है कि कलचुरियों ने इस दुर्ग पर अधिकार कर 'कालिंजरपुरवराधीश्वर' की उपाधि ग्रहण की।[20] चन्देल शासक यशोवर्मन ने कलचुरियों से दुर्ग छीनकर इस प्रसिद्ध दुर्ग पर अपना अधिकार किया।[21] कालिंजरपुरवराधीश्वर, कालिंजराधिपति तथा कालिंजरपुराधिपति जैसी उपाधियाँ इस दुर्ग के रक्षात्मक महत्व को स्पष्ट करती है।[22]

वि0सं0 1078 में गण्डदेव चन्देल को पराजित करने के उद्देश्य से कालिंजर पर कदम महमूद गजनवी ने रखा।[23] मुईजुद्दीन गोरी के गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक ने 1202 में दुर्ग पर ऐतिहासिक आक्रमण किया था तथा 11 महीने तक चला।[24] गर्रा अभिलेख से यह पुष्टि होती है कि त्रैलोक्यवर्मन ने मुस्लिम प्रतिनिधियों से यह किला छीन लिया था।[25] सुल्तान इल्तुतमिश के सेनापति नसरतउद्दीन ने दुर्ग पर आक्रमण किया परन्तु सफलता प्राप्त नहीं कर सका।[26] बादशाह हुमायूँ ने साम्राज्य विस्तार के क्रम में अक्टूबर 1531 में कालिंजर पर एक माह के घेरे के बाद सफलता प्राप्त की।[27] हुमायूँ को धोखा देने के लिये गुजरात के शासक बहादुरशाह ने आलम खाँ लोदी के द्वारा कालिंजर पर घेरे का दिखावा व प्रचार किया। ऐसा करने के पीछे शाही सेना को दिग्भ्रमित करने का तथा तातार खाँ के नेतृत्व में आगरा पर सफल अभियान का प्रयास छिपा था।[28] यह घटना सिद्ध करती है कि ऐतिहासिक कूटनीतियों में कालिंजर का स्थान सुरक्षित था। कालिंजर दुर्ग पर शेरशाह सूरी का आक्रमण एक महत्वपूर्ण घटना है। यहाँ 1 वर्ष की लम्बी घेराबन्दी के बाद 22 मई 1545 को सबात फटने से न केवल शेरशाह घायल हुआ, बल्कि बाद में उसकी मृत्यु हो गयी। अफगानों ने अपने सेनापति को खोकर दुर्ग को प्राप्त किया।[29] अकबर ने 1569 में कालिंजर दुर्ग में घेरा लगवाया, जिसमें उसके सेनापति मजनू खाँ ककशाल ने किले के शासक रामचन्द्र को आसानी से झुका दिया।[30]

बुन्देला शासक छत्रसाल का कालिंजर अभियान कम महत्वपूर्ण नहीं था। 18 दिन तोपों के युद्ध के बाद मुगल मनसबदार तथा दुर्गपति करम इलाही किले के बाहर आया। बुन्देलों को दुर्ग प्राप्त हुआ किन्तु उनके 10 बड़े सेनापति मारे गये जिनमें कृपाराय चन्देल, बाघराज परिहार तथा नन्दन छीपी शामिल थे।[31] मराठा सेनापति अली बहादुर प्रथम का कालिंजर अभियान दुर्ग की रक्षात्मक शक्ति को प्रमाणित करता है। दो वर्ष तक लगातार अलीबहादुर ने घेरा लगाये रखा।[32] कहा जाता है कि अलीबहादुर ने घेरा लम्बा चलने की सम्भावना से कालिंजर के नीचे तिरहुती गाँव में स्थायी निवास बनवा डाले तथा किलेदार रामकिशन चौबे को बार–बार समर्पण डालने के लिये कहा। किलेदार ने अपने प्रत्युत्तर में आम की गुठली भिजवायी और नवाब से कहला भेजा कि, "वह पहले गुठली बोये, गुठली से पेड़ उगेगा, उसमें आम लगेंगें, यदि नवाब इन पके आमों के साथ समर्पण का प्रस्ताव भेजे तब मैं आमों का चूसता हुआ समर्पण पर विचार कर सकता हूँ।"[33] यह घटना दुर्ग की अभेद्यता पर दुर्गपति के विश्वास को प्रमाणित करती है। 1802 में अलीबहादुर की मृत्यु हो गयी, पर सफलता नहीं मिली। छत्रसाल ने यह दुर्ग चौबे परिवार को सौंपा था, जो स्वतंत्रता तक दुर्ग में कायम रहा। 18 जनवरी 1812 को कायम जी चौबे किलेदार को कर्नल मॉर्टिनडेल द्वारा घेर लिया गया। इस युद्ध में अंग्रेजों ने 8 हल्के ड्रैगन, 4 स्वैड्रन हल्का तोपखाना, 5 कम्पनी पैदल तथा 6 बटालियन तोपखाना ब्रिगेड के साथ हमला किया तथा साथ में सीढ़ियों का प्रयोग कर सफलता प्राप्त की।[34] कालिंजर दुर्ग पर अभियान करने के लिये सफल सेनापतियों को भी कई बार विचार करना पड़ता था। ऊँची पहाड़ी का यह दुर्ग बुन्देलखण्ड के वीरों की आन का प्रतीक है।

अजयगढ़– पहाड़ी पर स्थित अजयगढ़ दुर्ग भी चन्देल काल से ही महत्वपूर्ण रहा है तथा अनेक युद्धों का साक्षी है। बुन्देला शासक मधुकरशाह के शासनकाल में अकबर की सेनाओं ने अजयगढ़ पर अधिकार किया था।[35] सन 1800 में अली बहादुर ने हिम्मत बहादुर की सहायता से नौने अर्जुन सिंह को परास्त कर अजयगढ़ दुर्ग प्राप्त किया।[36] 12 फरवीर 1809 को कर्नल मॉर्टिनडेल ने किले पर आक्रमण करते हुये इसके उत्तरी

द्वार पर भीषण गोलाबारी की, जिससे जल्दी ही दुर्गपति लक्ष्मण दौआ ने आत्म समर्पण कर दिया।[37] अजयगढ़ दुर्ग अत्यन्त महत्वपूर्ण दुर्ग रहा है किन्तु इसकी जंगली स्थिति और दुर्गमता ने इसे अधिक आक्रमणों से बचाये रखा।

मनियागढ़– मनियागढ़ दुर्ग केन नदी के तट पर ऊँची पहाड़ी में स्थित चन्देलकालीन दुर्ग है और इसे भी जंगली भू–भाग का दुर्ग कहा जा सकता है। पहाड़ी के नीचे स्थित राजगढ़ दुर्ग के शासकों के लिये मनियागढ़ दुर्ग अन्तिम शरणस्थली रहा है। इसने भी अनेक मुस्लिम एवं अन्य आक्रमणों का सामना किया है। छत्रसाल को सबक सिखाने के उद्देश्य से मुगल मनसबदार बहलोल खाँ ने 1680 में मनियागढ़ एवं राजगढ़ दुर्गो पर आक्रमण किया और 7 दिन की घेरेबन्दी के बाद जगत सिंह बुन्देला को पराजित कर किले पर अधिकार कर लिया।[38] 15 अगस्त 1778 को ब्रिटिश कर्नल लेस्ली ने राजगढ़ दुर्ग पर अधिकार कर लिया, किन्तु भारी वर्षा में यहीं फँस गया तथा ज्वर के कारण 27 सितम्बर को उसकी मृत्यु हो गयी।[39] तुलनात्मक रूप से मैदानी दुर्गों के विकास के बाद मनियागढ़ का प्रभाव कुछ कम हो गया था।

महोबा– यद्यपि चन्देलों की रणनीति यही होती थी कि शत्रु से मोर्चा कालिंजर में लिया जाय, किन्तु प्रशासनिक राजधानी होने के कारण महोबा को भी कई युद्धों का सामना करना पड़ा। ऐसे सन्दर्भ प्राप्त होते हैं कि चन्देल शासक राहिल ने महोबा पर अधिकार स्थापित किया था।[40] चन्देलों के इस सशक्त दुर्ग को 1182 में दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान से महत्वपूर्ण संकट का सामना करना पड़ा। यह युद्ध बुन्देलखण्ड के लिये इतना महत्वपूर्ण था कि न केवल जगनिक जैसे कवि के द्वारा महाकाव्य लिखा गया बल्कि आज भी गाँवों में परमर्दिदेव के सेनापतियों आल्हा और ऊदल के गीत गाये जाते हैं।[41] चन्देल वंश के यशस्वी शासक परमाल की पृथ्वीराज चौहान से पराजय चन्देल शासकों के लिये दुर्भाग्य बन कर आयी। कहा जाता है कि परमाल के पुत्र समरजीत को हराकर शिहाबुद्दीन गोरी ने महोबा दुर्ग पर अधिकार किया था तथा मण्डला के गोंडों ने भी 14 वर्ष तक इस दुर्ग में अपना ध्वज फहराया। बनारस के मनमथ गहड़वाल ने महोबा दुर्ग को जीता तथा गहड़वालों ने लम्बे समय तक यहाँ

शासन किया। उज्जैन के राजा भार ने भी महोबा को अधिकृत किया।[42] 1376–77 में फिरोजशाह तुगलक ने महोबा को जीता।[43] 1383 में गुजरात के गवर्नर जफरखान के पुत्र दरिया खान ने तथा 1488 में सिकन्दर लोदी ने यहॉ आक्रमण किये।[44] छत्रसाल ने मुगल सेनापति बहलोल खान को पराजित कर महोबा पर अधिकार कर लिया।[45] बुन्देलों से इस दुर्ग को 1728 में मुहम्मद बंगश ने छीना किन्तु मराठों ने शीघ्र ही इसे अपने अधिकार में ले लिया।[46] 1858 में ह्विटलॉक के माध्यम से ब्रिटिश शासन में महोबा चला गया।[47]

गढ़कुण्डार– गढ़कुण्डार चन्देलकालीन दुर्ग है, परन्तु चन्देलों की कार्यस्थली खजुराहों, महोबा, कालिंजर से दूर होने के कारण इसे अधिक महत्व नहीं मिला। पृथ्वीराज चौहान के आक्रमण के बाद खँगार शासकों को इस किले पर अधिकार प्राप्त किया। लगभग 130 वर्षो के पश्चात 1257 में बुन्देला सोहनपाल ने खूब सिंह खँगार को परास्त कर गढ़कुण्डार दुर्ग पर अधिकार जमा लिया[48] और जब तक बुन्देलों ने राजधानी ओरछा महत्व प्राप्त रहा।

ओरछा– ओरछा दुर्ग को सर्वाधिक संघर्ष मुगल शासकों से करना पड़ा। मधुकरशाह के विरूद्ध अकबर ने एक लम्बा अभियान चलाया, जिसमें लगभग पाँच महत्वपूर्ण आक्रमण हुये। इसमें प्रथम आक्रमण की कमान न्यामत कुली खाँ और अली कुली खाँ तथा द्वितीय की कमान जाम कुली खाँ, सैयद कुली खाँ के हाथों में थी। अकबर मधुकरशाह को किसी भी प्रकार से नीचा दिखाना चाहता था इसलिये सन् 1677 में मुहम्मद सादिक और ग्वालियर के आसकरन तोमर तथा पुनः 1688 में आसकरन तोमर एवं अब्दुल्ला खाँ के नेतृत्व में अभियान चलाये परन्तु अंततः सफलता 1691 में राजकुमार मुराद को मिली।[49]

मुगलों के विरूद्ध जुझार सिंह के खुले विद्रोह के कारण बादशाह शाहजहाँ का ओरछा अभियान अत्यधिक प्रभावशाली था। इस अभियान में न केवल ओरछा को पराजित किया गया बल्कि यहाँ के जनजीवन को अस्त–व्यस्त कर दिया। इस युद्ध में राजकुमार औरंगजेब के नेतृत्व में तीन सेनापतियों खानेदौरा, आसफ खाँ और सैयद

खानेजहाँ को भेजा गया था। अल्पवयस्क औरंगजेब के प्रथम अभियान को देखते हुये शाइस्ता खान को उसका संरक्षक नियुक्त किया गया था। 20,000 की सशस्त्र सेना ने ओरछा पर तीन ओर से आक्रमण किया।[50] अन्ततः जुझार सिंह की पराजय के बाद देवी सिंह बुन्देला को मुगलों ने ओरछा का नया शासक बनाया।

धमौनी— जुझार सिंह का पीछा करते हुये शाहजहाँ की सेना ने धमौनी दुर्ग को भी घेर लिया। धमौनी दुर्ग की स्थिति और बनावट अत्यन्त दुर्गम है किन्तु दुर्भाग्य से किले के तोपखाने में चिन्गारी गिरने से बारूद में आग लग गयी और किले की 80 गज लम्बी दीवार उड़ गयी। मुगलों ने जीत हासिल की।[51] 1637 में चम्पतराय ने धमौनी पर एक महत्वपूर्ण आक्रमण किया तथा अधिकार भी जमाया।[52] पिता के पद चिन्हों पर चलते हुये छत्रसाल बुन्देला ने भी मुगल सेनापति को हराकर दुर्ग पर अधिकार किया जिसके पश्चात लम्बे समय तक धमौनी बुन्देलों की गतिविधियों का केन्द्र बना रहा।[53]

सिंगोरगढ़— सिंगोरगढ़ का सबसे महत्वपूर्ण अभियान आसफ खाँ का आक्रमण माना जाता है। अकबर का यह सेनापति कड़ा का सूबेदार था। सिंगोरगढ़ अभियान में प्रतिभाशाली गोंड रानी दुर्गावती ने मुकाबला किया परन्तु अंत में संग्रामपुर युद्ध में मारी गयी।[54] सिंगोरगढ़ में इस अभियान के पहले और बाद में भी युद्धों के दृश्य देखे गये। अन्ततः अंग्रेजों ने इस दुर्ग पर सरलता से अधिकार कर लिया।[55]

गढ़ाकोटा— गढ़ाकोटा दुर्ग मुगल रणदूलह खाँ की पराजय का स्थान है। रणदूलह खाँ ने गढ़ाकोटा दुर्ग में छत्रसाल के सेनापति बलदिवान को घेर लिया परन्तु छत्रसाल ने सूचना मिलने पर दुर्ग को बाहर से घेर लिया। अन्दर और बाहर के आक्रमणो से घबड़ाकर रणदूलह खाँ मैदान छोड़कर भाग गया।[56] बलदिवान को हटाने के उद्देश्य से राहुल्ला खान ने दुर्ग पर महत्वपूर्ण घेरा लगाया तथा जीत हासिल कर दुर्ग का उत्तरदायित्व इखलास खान को सौंपा, परन्तु शीघ्र ही छत्रसाल ने इस नये दुर्गपति को मारकर दुर्ग अधिकृत कर लिया।[57] 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में विद्रोहियों के साथ यहाँ शरण ली थी। 11 फरवरी 1858 रॉबर्ट हैमिल्टन ने जोरदार भिड़ंत के बाद दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया। हैमिल्टन ने सरकार को भेजे प्रतिवेदन में दुर्ग की प्रशंसा

करते हुये लिखा, ''हमारे लिये अत्यन्त गौरव की बात है कि दुर्ग पर इतनी सुगमता से अधिकार हो गया। वस्तुतः इतना दुर्गम किला भारत में मैंने दूसरा नहीं देखा। इस किले के पतन से देश पर पड़ने वाला प्रभाव कल्पना से परे है।''[58]

राहतगढ़– राहतगढ़ दुर्ग अपनी क्षेत्रीय स्थिति के कारण महत्वपूर्ण रहा है। गढ़ के शासक मुहम्मद खान को 1742 में भोपाल की फोजों घेरा, किन्तु बाद में समझौता हो गया।[59] 1799 में पिण्डारी नेता अमीर अली दुर्ग को लूटने सफल रहा।[60] स्वतंत्रता संग्राम के समय 24 जनवरी 1858 को हयूरोज ने राहतगढ़ की घेराबन्दी की। चार दिन तक अंग्रेजों ने किले पर आक्रमण जारी रखा। बाद में विद्रोही अपने नेता फजल मुहम्मद खान के साथ दुर्ग के गुप्त मार्गों से निकल भागने में सफल रहे।[61]

दतिया– इल्तुतमिश के सेनापति नसरतउद्दीन ने 1233 में कालिंजर अभियान के क्रम में दतिया पर आक्रमण किया।[62] 1424 के पश्चात ग्वालियर के तोमरों ने सल्तनत के प्रतिनिधि को पराजित कर इस पर अधिकार कर लिया।[63] बुन्देला शासकों में वीरसिंह देव ने 1605 के पश्चात मुगल शासन से दतिया छीन लिया।[64] शाहजहाँ द्वारा चलाये गये जुझार सिंह के विरूद्ध अभियान में 1635 में मुगल सेना ने दतिया पर अधिकार कर लिया।65

सिहुँड़ा (बाँदा)– सिहुँड़ा दुर्ग केन नदी के तट पर स्थित लम्बे समय तक महत्वपूर्ण एक दुर्ग रहा है। 1394 में मेदिनीमल ने सिंहुँड़ा को जीता।[66] दकन के सूबेदार खानेजहाँ लोदी ने सिहुँड़ा दुर्ग पर मुगल सेनाओं से अन्तिम मुकाबला किया और यहीं उसकी मृत्यु हुयी।[67] छत्रसाल ने भी सिहुँड़ा दुर्ग पर आक्रमण किया तथा दलेल खान के प्रतिनिधि मुराद खान को मार गिराया, किन्तु दलेल खान ने चम्पतराय से मित्रता का हवाला देकर दुर्ग वापस प्राप्त कर लिया।[68]

बुन्देलखण्ड के सभी दुर्गो ने अपने रक्षात्मक उत्तरदायित्व का निर्वहन किया है और अनेकानेक युद्धों का सामना किया है, जिनका विस्तृत विवरण यहाँ उचित नहीं है। जैतपुर दुर्ग ने गढ़कुण्डार विजय के बाद सोहनपाल बुन्देला का आक्रमण देखा।[69] छत्रसाल के आग्रह पर बाजीराव प्रथम ने जैतपुर पर उस समय घेरा डाला जब बंगश

ने 1730 में इसे अधिकृत कर लिया था। 2 माह के घेरे के बाद पठान आत्मसमर्पण के लिये बाध्य हो गये। इस घटना के पश्चात बुन्देलखण्ड में मराठों का मैत्रीपूर्ण प्रवेश हुआ।[70] गुरसराय को हिम्मत बहादुर ने मराठों से छीन लिया था परन्तु बाद में राव अन्ना ने झाँसी के सूबेदार रघुनाथ हरि नेवालकर की मदद से हिम्मत बहादुर के सेनापतियों सिंगारगिरि तथा प्राण सिंह को खदेड़कर दुर्ग को प्राप्त किया।[71] झाँसी दुर्ग पर ह्यूरोज का आक्रमण बुन्देलखण्ड में स्वतंत्रता संग्राम को उत्साहित करने वाला रहा। इस प्रसिद्ध युद्ध में ह्यूरोज के नेतृत्व में मेजर गॉल, कीडेल, रॉबिन्सन, स्टुअर्ट, लॉथ, डिक, मिकली, बोनस, फॉक्स आदि अंग्रेज अधिकारियों ने मोर्चा संभाला था, जिसमें अन्तिम 4 की मृत्यु इसी युद्ध में हुयी।[72] 1817 में कालपी के शासक आसफ खान ने बराठा, रामनगर, भरतपुर, गरारी की गढ़ियों को अपने अधिकार में ले लिया।[73] एरच, बरूआसागर, बनगवाँ, मऊ, रानीपुर, कटेरा, टोड़ीफतेहपुर, दुरबई, बंकापहाड़ी आदि दुर्गो एवं गढ़ियों पर मराठों और बुन्देलों के संघर्ष को देखा गया। महौनी बुन्देला शासकों की प्रथम राजधानी थी। 1071 में तातार खाँ ने यहॉ आक्रमण किया था। पृथ्वीराज चौहान ने महोबा अभियान में सिरसागढ़ विजय के बाद इस पर अधिकार किया था।[74] बाद में बुन्देलों ने इस पर अधिकार कर राजधानी बनाया था।

मौदहा की गढ़ी ने 1685 में छत्रसाल 1725 में दिलेर खान, 1734 में गुमान एवं खुमान, 1765 में नौने अर्जुन सिंह के युद्धों का सामना किया।[75] देवगढ़ दुर्ग गुप्त शासन के बाद गुर्जर प्रतिहारों, गोंडों, चन्देलों और दिल्ली, कालपी व मालवा के शासकों की महत्वाकांक्षा का साक्षी है। सागर, दमोह, हिंडोरिया, नरसिंहगढ़, हटा, गढ़पहरा, जयसिंहनगर, कंजिया, मालथौन, खिमलासा, नरयावली, गौराझामर, शाहगढ़ रहली, बघौरा, जतारा आदि दुर्गो ने भी कई युद्धों का सामना किया है। दुर्ग सुरक्षा के निमित्त निर्मित किये जाते थे, और वे आक्रमणों को आमन्त्रित भी करते थे। इसलिये आक्रमण और सुरक्षा दोनों पक्ष किसी दुर्ग के व्यक्तित्व के परिचायक होते हैं।[76] यह कहा जा सकता है कि बुन्देलखण्ड के दुर्ग व्यक्तित्व के धनी हैं।

5.2 प्रशासनिक भूमिका

दुर्ग रक्षण के बाद दुर्गों की दूसरी महत्वपूर्ण भूमिका में उनके प्रशासनिक कार्यों के सम्पादन को रखा जाना उचित होगा। वस्तुतः तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था के सभी अंगों के प्रमुखों का आश्रय दुर्ग होता था। इस प्रकार तत्कालीन प्रशासनिक भूमिका में दुर्ग होता था। इस प्रकार तत्कालीन प्रशासनिक भूमिका में दुर्ग की तुलना आधुनिक सचिवालयों से की जा सकती है, जहाँ शासन के प्रत्येक भाग का सर्वोच्च कार्यालय स्थित होता है। भारतीय इतिहास में प्रशासनिक संरचना हेतु नियुक्त मंत्रियों एवं सचिवों के नाम, पद, संख्या, अधिकार आदि में परिवर्तन होता रहा है। मनु, कौटिल्य आदि ने इस विषय का प्रतिपादन किया है। शुक्रनीति में मन्त्रियों की निश्चित संख्या 8 कही गयी है।

बुन्देलखण्ड के चन्देल शासन ने प्राचीन मंत्रिमण्डल की परंपरा को आंशिक रूप से स्वीकार किया था तथा सुमन्त, आमात्य, मंत्रिन, प्रधान, सचिव, प्रतिनिधि आदि के पद न्यून परिवर्तित रूप में चन्देलों ने स्वीकार कर रखे थे।[77] ये सभी शासक के शासन प्रबन्धन में सहायक का कार्य करते थे। सचिव, धर्माधिकारिन, भाण्डागारपति, महाप्रतिहार, दुर्गाधिप आदि के सन्दर्भ प्राप्त हैं।[78] अजयगढ़ एवं कालिंजर दुर्ग के सन्दर्भ में तीन महत्वपूर्ण पदों दुर्गाधिप, विशिस, प्रतिहार के उल्लेख प्राप्त होते है।[79] शासन व्यवस्था से सम्बन्धित ये पद आगे चलकर मुगल प्रभाव से बदल गये। उनकी संख्या और अधिकार भी तदनुसार परिवर्तित हो गये। बुन्देला शासन के समय बड़े राज्यों में हुजूर दरबार, ड्योढ़ी, मखरूतखाना, बुतास, जेरखाना, तामीरात, जखीरात, मदर उल मुहामी, फीलखाना एवं रिसाला आदि विभाग कार्यरत थे और उनके अधिकारी किले में बैठकर शासन संचालित करते थे।[80] राज्य की आन्तरिक एवं वाह्य व्यवस्था के लिये इन्हें का उत्तरदायित्व होता था। बड़े राज्यों एवं किलों में इनकी संख्या अधिक, जबकि छोटे राज्यों एवं गढ़ियों में इनकी संख्या सीमित रहती थी।

बुन्देलखण्ड के दुर्गों में निर्माण के दृष्टिकोण से संचालन के लिये कोई अलग से निर्माण अथवा स्थान निश्चित होता था। इनमें न्याय व्यवस्था, दण्ड व्यवस्था, कर एवं

वेतन व्यवस्था के अतिरिक्त मुद्रा निर्माण (टकसाल) शस्त्रागार, लेखागार एवं पुस्तकालय आदि प्रमुख होते थे। ये निश्चित रूप से दुर्ग की कठोर सुरक्षा के अन्तर्गत ही स्थित होते थे। बुन्देलखण्ड के दुर्गो में इन स्थलों के संक्षिप्त विवरण निम्नवत हैं–

न्याय व्यवस्था– लगभग सभी शासन व्यवस्थाओं में नरेश न्याय विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता था।[81] उसकी सहायता के लिये धर्माधिकारी या न्यायाधीश के पद होते थे। विभिन्न शासनतंत्रों में ये सर्वोच्च न्यायालय इमारतखाना, हाजिर मजलिस, धर्मासन इत्यादि नामों से जाने गये। हिन्दू शासन में वैदिक एवं नैतिक विधान में कोई निश्चित अंतर नहीं माना गया था तथा शासक को वैदि विधानों को बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं था। सभी धर्मशास्त्रों से नियम प्रस्तुत किये गये थे तथा लौकिक विधान, धार्मिक नियम, नैतिक आचार विधान में कोई भेद नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति से आशा की जाती थी कि वे इनके अनुरूप उत्तम रीति से अपनी कियायें व्यवस्थित करें। हिन्दू युग चाहे वह मौर्य काल या चन्देलकाल हो या बुन्देला तथा मराठा काल हो, न्याय पद्धति का यही मौलिक रहा है।[82]

स्मृतियों का ज्ञान न्यायाधीशों के लिये आवश्यक था। यही कारण है कि पुरोहित कभी–कभी इस पद प्रतिष्ठित होते थे, क्योंकि वे धर्मशास्त्रों के पूर्ण जानकार भी होते थे। धंगदेव के शासन काल में ऐसा हुआ था।[83] न्यायालय की सबसे छोटी इकाई पंचायत होती थी तथा सर्वोच्च अपील राजा से की जाती थी। हिन्दू न्याय प्रणाली में अपीलों की महिमा बहुत नहीं थी।[84] जो व्यक्ति नीचे के न्यायालयों में हार जाता था, वह अपना वाद राजा के यहाँ प्रस्तुत करता था। राजा, उचित समझने पर वाद का अभिनव रूप से निर्णय करता था। यह स्वरूप पेशवाओं के काल में था।[85] जब भी विधान का संदिग्ध भाष्य होता था अथवा जटिल अभियोग निर्णय के लिये आता था, तब विवेक सम्पन्न ब्राम्हणों का एक मण्डल अन्तिम निर्णय देने का अधिकार प्राप्त कर बैठता था। चन्देल काल में राजभवन के पुराहित न्याय का निर्देश करते थे। यशोधर अपने समय का प्रसिद्ध न्यायाधिकारी था।[86]

बुन्देलखण्ड में कमोवेश न्याय की यही पद्धति कार्य करती रही है। पंचायत अथवा छोटे जमींदारों, गढ़ीदारों के निर्णय से असंतुष्ठ वादी प्रतिवादी दुर्ग में प्रधान न्यायाधीश के यहाँ अपना पक्ष प्रस्तुत करते थे। अल्बरूनी सूचित करता है कि, "वादी को न्यायालय में प्रार्थना पत्र और कागज पत्र प्रस्तुत करना पड़ता है। यदि लिखित प्रमाण नहीं है, तो साक्षी प्रस्तुत किये जाते है। साक्षी कम से कम 4 अपेक्षित होते हैं। साक्षी के परिप्रेक्ष्य (जिरह) की अनुमति नहीं है।"[87] चूंकि उस समय वकील नहीं थे, अतः गवाहों से जिरह नहीं होती थी। वादी प्रतिवादी से प्रश्न, प्रतिप्रश्न न्यायाधीश गण करते थे। साक्षी को न्यायालय में अपनी आख्या देने के पूर्व शपथ लेनी पड़ती थी। शपथ भी अनेक प्रकार की थी जिनमें दैवीय शपथ सबसे कठोर थी। परन्तु यह विधि उसे सत्य की ओर लाने में अधिक सहायक थी।[88]

दीवानी एवं फौजदारी के मुकदमें में हारने वाले व्यक्ति पर अर्थदण्ड लगाया जाता था, जबकि गंभीर अपराधों के लिये कारावास, अंगभंग एवं मृत्युदंड आदि के विधान थे। चूँकि न्याय की यह प्रक्रिया अंतिम रूप से किलों में स्थित न्यायालयों में सम्पादित होती थी इसलिये जनमानस दुर्गों के प्रभाव से आतंकित तथा त्वरित निर्णय प्राप्ति के प्रति आश्वस्त होता था। प्रायः ये निर्णय राजदरबार में या दीवाने आम नामक भवन में सार्वजनिक रूप से लिये जाते थे। कहीं-कहीं न्यायाधीश के लिये अलग भवन निर्मित होता था, जैसे- समथर दुर्ग में संगमरमर का छोटा न्यायिक भवन।

दण्ड व्यवस्था- किसी भी समाज में शान्ति स्थापित करने के लिये दण्ड का महत्वपूर्ण स्थान है। महाभारत के अनुसार बहुत से लोग दण्ड के भय से एक दूसरे के प्रति घातक नहीं बनते हैं। दण्ड रक्षक की भाँति होता है। ब्रम्हचारी, वानप्रस्थ, गृहस्थ एवं सन्यासी भी दण्ड के भय से अपने मार्ग पर स्थिर रहते है।[89] भारतीय साहित्य में लगभग सभी स्मृतिकारों ने तथा कौटिल्य आदि ने दण्ड विधान की व्यापक व्याख्या की है। उनका निश्चय है कि विधि के समक्ष कोई अदण्ड्य नहीं है। याज्ञवल्क्य का कथन है कि राजा के भाई, पुत्र, आचार्य, सम्माननीय व्यक्ति, श्वसुर अथवा मामा कोई भी यदि धर्म से विचलित हो जाये तो राजा के लिये अदण्ड्य नहीं होता।[90]

बुन्देलखण्ड के दुर्ग सर्वेक्षण से स्पष्ट होता है कि दण्ड प्राप्त व्यक्तियों के लिये कारागार का निर्माण दुर्ग के परकोटे के अन्दर ही किया जाता था। ये प्रायः अत्यन्त असुविधाजनक, अंधेरी, भूमिगत कोठरियाँ होती थी और छोटी गढ़ियों से लेकर बड़े दुर्गो में इनकी संरचना उपलब्ध थी। इनकी महत्ता का एक कारण सम्भवतः यह भी था कि दण्ड प्राप्त अपराधियों के अतिरिक्त इनमें शत्रुओं को भी निरूद्ध किया जाता था। सामान्यतया दुर्गो में फांसीघर परकोटे से लगे हुये निर्मित किये जाते थे जिनमें दो स्तम्भों के नीचे गहरा गढ्ढा होता था। कुछ दुर्गों में इनके आवासीय भवनों के अत्यन्त निकट निर्मित होने के प्रमाण मिलते हैं, जैसे– झाँसी[91], बरूआसागर, राहतगढ़[92] आदि। अंगभंग एवं वध स्थल प्रायः परकोटे से बाहर किन्तु इसके समीपस्थ होते थे।

सम्पत्ति एवं कर व्यवस्था– कौटिल्य का मत है कि राज्य की प्रभुता का आंकलन उसके केवल दो अंगों से किया जा सकता है– सेना एवं कोष। राजा के कोष में धन आगमन कर एवं लूट से होता था, परन्तु कुछ धन भेंटों से भी प्राप्त होता था। कोषागार का प्रमुख हिन्दू राज्यों में 'वित्ताधिक', चन्देलकाल में 'महाक्षपाटलिक'[93] तथा परवर्ती काल में 'कोषाध्यक्ष' के नाम से जाना जाता था। मुगल प्रभाव से इसे वजीरे खजाना कहा जाने लगा।[94] राजा को कर प्राप्ति के अनेक स्रोत मिले हुये थे। विभिन्न शासक इन स्रोतों को घटाते बढ़ाते रहते थे। परिणामतः कर एवं अर्थ विभाग के नीचे कई अन्य उपविभाग भी होते थे। भारतीय परम्परा में कर के लिये भाग, भोग, हिरण्य आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। प्रायः कर उत्पाद, व्यापार एवं कृषि पर लगाये जाते थे। उपज का छठा भाग नकद, अन्न, तेल, ईंधन आदि के रूप में राजकोष में संग्रहीत होता था। व्यापारियों से बिक्री कर एवं चुंगी कर तथा उत्पादकों एवं निर्माताओं से निर्माण कर इत्यादि से कोषागार भरा जाता था। कोष में न्यायालयों द्वारा लगाये गये अर्थदण्ड से भी प्राप्ति होती थी। चन्देल काल में कुटक, दसयन्ध, विशस्यप्रस्थ, अक्षपाटलिकप्रस्थ, प्रतिहारप्रस्थ, आकर्स, तुरूष्कदण्ड, वरवज्झे आदि करों के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, किन्तु इनका ठीक–ठीक परिचय प्राप्त करना कठिन है।[95]

कर एवं अर्थ व्यवस्था से सम्बन्धित दुर्ग में दो विशिष्ट स्थल होते थें, सिक्के ढालने वाली टकसाल तथा कोषागार।

(क) टकसाल : व्यापारिक विनियम के लिये भारत में सिक्कों का प्रचलन बहुत पहले प्रारम्भ हो गया था। बुन्देलखण्ड में प्राप्त प्राचीन सिक्कों का इतिहास एरण से प्राप्त पंचमार्क्ड मौर्य सिक्कों से प्रारम्भ होता है।[96] एरच से प्राप्त राजा मुखमुख के ब्राम्ही लिपि के सिक्को का काल एरण से प्राप्त सिक्कों (300 ई0पू0) के पश्चात का है।[97] इसी प्रकार सुमेरपुर के पास पचखुरा से मिले इंडो बैक्ट्रियन सिक्के 155 ई0पू0 के हैं। इसके अतिरिक्त इण्डो–सासानियन, कल्चुरि, नाग, गुप्त राजाओं के सिक्के भी प्राप्त हुये हैं।[98] चन्देलों ने 15 ग्रेन वजन के चाँदी के सिक्कों से लेकर 63 ग्रेन वजन के 'देवी' प्रकार के स्वर्ण सिक्के जारी किये।[99]

मध्यकाल एवं आधुनिक काल में बुन्देलखण्ड के प्रचलित सिक्के या तो इस्लामिक सिक्के थे या बुन्देलखण्ड के राजाओं द्वारा स्थानीय टकसालों से जारी सिक्के थे। बुन्देलखण्ड में देशी राजाओं के सिक्के तब तक चलते रहे, जब तक अंग्रेजों के 'कलदार' ने इन्हें विनिमय से बाहर नहीं कर दिया।[100]

बुन्देलखण्ड के प्रचलित सिक्कों में ओर राज्य का गजाशाही, दतिया का जाराशाही, पन्ना का नालदार, छतरपुर का गोपालशाही, छतरपुर–पन्ना का संयुक्त मान्य राजाशाही, चरखारी का त्रिशूली, जैतपुर का श्रीनगर, बिजावर का रतनशाही, आलीपुर का आलीपुरी, झाँसी का नारूशंकरी एवं नानाशाही, सागर का बालाशाही, जालौन का नानाशाही, तरौंहा का तरौंहाशाही एवं बाँदा के नवाब का गौहरशाही प्रमुख थे। ये सिक्के चाँदी के गोल मोटे और वजन में 12 आने से 14 आने भर होते थे तथा एक रूपये में चलते थे। ये सभी सिक्के प्रचलित परम्परा एक रूपये में चलते थे। ये सभी सिक्के प्रचलित परम्परा को बढ़ाते हुये देशी राजाओं की टकसालों में ढाले जाते थे।[101] प्रारम्भ में इन्हें अंग्रेजों का समर्थन प्राप्त रहा। सिक्कों को ढालने वाली सभी टकसालें कुछ सुदृढ़ कक्षों से युक्त खुली दालाने होती थीं जिनमें अति सुरक्षित ढंग से सिक्कों का निर्माण किया जाता था। सोने एवं चाँदी के महत्वपूर्ण सिक्कों के अतिरिक्त

इन टकसालों में ताँबे के सिक्के भारी मात्रा में बनते थे। बुन्देलखण्ड में विशेष रूप से दतिया का तेगाशाही, चरखारी का श्रीनगरी (त्रिशूल का अंकन), टीकमगढ़ का राजशाही, सागर का बालाशाही, झाँसी में सूबेदारशाही, टकसाल में ढलते थे। चन्देरी का पैसा दमरिया कहलाता था। ग्वालियर और बाँदा के पैसों में कोई अन्तर नहीं होता था। बुन्देलखण्ड के दुर्गों में स्थित इन टकसालों के अस्तित्व पर वर्ष 1826 भारी साबित हुआ जब श्रीनगर, जालौन, कालपी, झाँसी, तरौंहा, बाँदा आदि की टकसालें बंद हो गयीं।[102] सम्भवतः यह इस काल में अंग्रेजों के बढ़ते प्रभाव के कारण बुन्देलखण्ड के राजाओं से हुयी सहायक सन्धियों का दुष्परिणाम था। दतिया, ओरछा, पन्ना, बिजावर आदि की टकसालें स्वतंत्रता के समय तक कार्य करती रहीं। दुर्गों में स्थित टकसाल के महत्व को इस तथ्य से जाना जा सकता है कि झाँसी में काम करने वालों के निवास स्थल का नाम ही टकसाल अभी तक है। झाँसी की बलवन्तनगर टकसाल 7 प्रकार के परवर्ती मुगल सिक्के जारी करती थी।[103]

(ख) कोषागार– प्रत्येक आवासीय दुर्ग में कोषागार का अनिवार्य रूप से निर्माण किया जाता था। जैसा कि चतुर्थ अध्याय में चर्चा की जा चुकी है कि कोषागार राजमहलों का हिस्सा होता था। कोषागार कई भागों में बँटा होता था। मूलतः एक कोषागार राजा की निजी सम्पत्ति का होता था जिसमें उसके मूल्यवान रत्न, आभूषण एवं धन सुरक्षित होता था तथा दूसरा राज्य कोषागार होता था जिसमें राज्य से एकत्रित धन रखा जाता था। इसे जनकल्याण, सेना के व्यय, रक्षा, दान एवं आपदा प्रबन्धन में खर्च किया जाता था। राज्य कोषागार को एक प्रमुख एवं उसके सहायक संचालित करते थे। राजा का व्यक्तिगत कोषागार उसके स्वयं के अधीन रहता था एवं इसकी जानकारी व चाभियों किसी को प्राप्य नहीं थी।

दुर्गों में निर्मित विभिन्न प्रकार के भवनों में से कोषागारों के सम्बन्ध में मिथक और कहानियाँ जन उत्सुकता का विषय बनी हैं। यही कारण है कि वर्तमान में बुन्देलखण्ड का कोई ऐसा दुर्ग नहीं है, जहाँ दबे हुये खजाने के सम्बन्ध में वहाँ के लोगों में भ्रान्तियाँ एवं चर्चा न हो। वे दुर्ग जो अब खाली पड़े हैं और जहाँ किसी का

संरक्षण एवं नियंत्रण नहीं है, वे लगातार खजाना खोदने वाले दफीनाबाजों के द्वारा खोदे जाते रहे हैं। विभिन्न दुर्गों के खजानों के सम्बन्ध में बीजकों एवं ताम्रपत्रों की कहानियाँ भी जनचर्चा का विषय रही हैं। 'रत्नों और खजानों का देश भारत' नामक पुस्तक के लेखक लखपतराम शर्मा ने ऐसे गुप्त खजानों पर पुस्तक लिखी है, जिसमें कई पत्रकों और बीजकों का उल्लेख है।[104] यह उल्लेखनीय है कि इस पुस्तक का अधिकांश भाग बुन्देलखण्ड के दुर्गों के खजानों को समर्पित है। भूरागढ़, गढ़कुण्डार, रनगढ़, सिंहुड़ा, जैतपुर, कन्हरगढ़, महोबा आदि अनेक दुर्गों में खजाना तलाशने वालों ने आश्चर्यजनक ढंग से खुदाई की है।

(ग) शस्त्रागार– दुर्ग निर्माण के समय अस्त्र शस्त्रों के सुरक्षित भण्डारण के लिये निश्चित निर्माण किया जाता था। यह भी गोपनीय एवं प्रायः भूमिगत निर्माण होता था। वैसे तो सेना के पास अपने नियमित शस्त्र होते थे, किन्तु दुर्ग की रक्षा के लिये शस्त्रों का विशेष संग्रह शस्त्रागार में सुरक्षित होता था। प्राचीन काल में तोमर, चक्र, परशु, गदा, मूसल जैसे हथियार समयानुसार बदलते गये किन्तु धनुष बाण ऐसा महत्वपूर्ण शस्त्र था जो लम्बे समय तक भारतीय युद्धों का आधार रहा।[105] चन्देल प्रायः धनुष बाण से युद्ध करते थे।[106] इसका महत्व इतना अधिक था कि अस्त्र–शस्त्र संचालन की सम्पूर्ण विद्या को धनुर्विद्या कहा जाने लगा। इतिहास में अनेक धनुषों ने तो केवल नाम कमाया ही वरन वेणु, सर, सलाक, दण्डसार, तथा नाराच नाम से विविध प्रकार के बाणों को निर्माण भी किया गया। दुर्गों के शस्त्रागारों में शक्ति, तोमर, परशु, कुंत, शूल, गदा, मुष्टिक और विविध प्रकार की तलवारों का स्वरूप बदलता हुआ खाण्डा, शमशीर, सिरोही, गुर्ज, कुल्हाड़ियों नेजा, कटार आदि रूपों में आकर शोभित होने लगा।[107] शस्त्रागारों में आग्नेयास्त्रों एवं गोला बारूद के आगमन के बाद चमत्कारिक परिवर्तन हुआ तथा इनका संग्रहण अति सुरक्षित, भूमिगत तथा मुख्य दुर्गों को छोड़कर अब इन्हें चिन्हित करना कठिन कार्य है।

(घ) लेखागार एवं पुस्तकालय– महत्वपूर्ण दुर्गों में लेखागार एवं पुस्तकालय के लिये भी स्थान निर्धारित होता था। लेखागार में राज्य से सम्बन्धित महत्वपूर्ण भूराजस्व

आँकड़े, राजकीय एवं अन्तर्राज्यीय पत्र व्यवहार, फरमान एवं राजाज्ञायें संग्रहीत होती थीं। इनके नियमन के लिये विभिन्न शासन तंत्रों में अमात्य, सन्धिविग्रहिक, दीवाने इंशा, मीरबक्शी, दबीर आदि, राजकीय लेखन के प्रधान होते थे। बाद के शासन कालों में इन लेखा प्रधानों का महत्व बना रहा क्योंकि राजवंशों एवं उनकी उपलब्धियों से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनायें इनमें सुरक्षित रहती थी। इनका अधिकांश भाग नष्ट हो गया है तथा शेष मूल्यवान भाग संग्रहालयों एवं राजकीय राजकीय सम्पत्ति में चला गया। बुन्देलों एवं मराठों के बहुत से रिकॉर्ड अंग्रेज ले गये। सर्वेक्षण के समय कुछ राजपरिवारों के द्वारा इन मूल्यवान रिकॉर्डो को रद्दी में बेचने की सूचनायें भी शोधार्थी को मिलीं।[108]

साहित्य एवं कला में रूचि रखने वाले शासक दुर्गो में पुस्तकालयों की स्थापना करते थे। मान्य एवं रूचि के विषयों की पुस्तकों की अनुकृतियाँ करवाकर पुस्तकालयों में रखते थे।[109] समथर, दतिया, झाँसी, पन्ना इत्यादि दुर्गों में पुस्तकलयों के प्रमाण प्राप्त होते हैं। झाँसी पर विजय के पश्चात अंग्रेजों ने रानीमहल के सामने उद्यान में स्थित पुस्तकालय को आग लगा दी तथा यह आग तीन दिन तक जलती रही। कवियों को संरक्षण प्रदान करने वाले शासक पुस्तकों के संरक्षक भी रहे हैं। तथा उन्होंने छापेखाने के आविष्कार तथा भारत में उसके प्रयोग के पूर्व भी पुस्तकालयों में रूचि दिखायी।

5.3 सामाजिक एवं सांस्कृतिक योगदान

भारतीय इतिहास में दुर्गों ने जितने व्यापक रूप से सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव यहाँ के निवासियों पर छोड़ा है, निश्चय ही किसी एक निर्माण अथवा संस्था के लिये सम्भव नहीं था। भारतीय समाज में प्रारम्भिक काल से लेकर स्वतंत्रता काल तक दुर्गों के अप्रतिम प्रभाव की आभा सामाजिक विकास पर बनी रही है। धर्म, शिक्षा, कला, परंपरा, मनोरंजन आदि की अजस्र धारा, जो इन दुर्गों से प्रवाहित हुयी, इन दुर्गो के नष्ट हो जाने के शताब्दियों बाद तक समाज में इसमें अवगाहन करता रहेगा। सामाजिक क्षेत्र एवं संस्कृति का कोई ऐसा अंग नहीं है, जिसे इन मूक दुर्गों ने प्रश्रय न दिया हो। यद्यपि यह भी सत्य है कि कभी–कभी ऐसे अवसर आये हैं कि इन्हीं दुर्गों से

सामाजिक विखण्डन अथवा संस्कृति के तिरोहन की दुरभिसंधियों भी रची गयीं, परन्तु दुर्ग निर्माण के सहस्त्राब्दियों लम्बे इतिहास में ये अवसर कम ही मिलते हैं।

बुन्देलखण्ड के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर दो राजवंशों चन्देल एवं बुन्देलों ने महत्वपूर्ण छाप छोड़ी है। चन्देल राजवंश ने इस क्षेत्र को कला, शिक्षा और वैभव को जिस शिखर पर पहुँचाया, उसके स्मरण करके ही बुन्देलखण्ड के लोग स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करते हैं। बुन्देलों के प्रभाव का आंकलन इसी तथ्य से किया जा सकता है कि पूरी एक संस्कृति का नाम बुन्देली संस्कृति हो गया, जिसमें बुन्देली भाषा, साहित्य, पहनावा, आभूषण, खानपान, रीतिरिवाज सभी में अनोखापन है। समाज एवं संस्कृति के विविध आयामों को निर्धारित करने वाले राजवंशों को इन्हीं दुर्गों ने आश्रय दिया। यदि ये किले एक ओर युद्धों, षड्यंत्रों एवं दुरभिसंधियों के केन्द्र रहे हैं तो दूसरी ओर साहित्यकारों, कलाकारों के आश्रयस्थल भी रहे हैं। अतः दुर्गों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभावों का संक्षिप्त विश्लेषण निम्नवत प्रस्तुत है।

दुर्गों का सामाजिक योगदान– न केवल बुन्देलखण्ड के वरन सम्पूर्ण भारत के दुर्गों ने भारतीय समाज को जो सामाजिक समृद्धि प्रदान की है, उसके लिये भारतीय समाज को इनका ऋणी होना चाहिये। चन्देल काल के गिरि दुर्ग शक्ति, सत्ता, सुरक्षा के अधिष्ठान के साथ राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, कलात्मक गतिविधियों के भी केन्द्र थे।[110] यद्यपि मतान्तर भेद से कुछ विद्वानों की राय हो सकती है कि इनसे समाज को हानि भी पहुँची है तथापि इससे दुर्गो का योगदान कम करके नहीं आंका जा सकता। बुन्देलखण्ड के विभिन्न स्थानो पर स्थित दुर्ग उन प्रकाश स्तम्भों की तरह रहे हैं, जिनके आलोक में यहाँ के समाज ने लम्बी सांस्कृतिक यात्रा तय की है। जनकल्याण के कार्यो के सूत्र दुर्ग से निकलते थे। अनेक देवस्थलों के निर्माण के अतिरिक्त धर्मप्रचार, दान आदि धार्मिक कार्य के स्रोत भी इन दुर्गों की राजपरंपरायें रही है। यद्यपि सामाजिक स्वरूप के प्राचीन कालीन अधिक प्रमाण नहीं मिलते।[111] तथापि तत्कालीन साहित्य, दानपत्र और शिलालेखों से दुर्गो के सामाजिक योगदान को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है–

(क) तालाब निर्माण– बुन्देलखण्ड की भौगोलिक स्थिति एवं जलवायविक स्थिति ने यहॉ पानी की कमी रखी है। भारत में बुन्देलखण्ड की केन्द्रीय स्थिति ने यहाँ की जलवायु को इस प्रकार निर्धारित किया है कि वर्षा की कमी तथा जल अभाव से यहाँ के लोग सदैव प्रभावित रहे हैं। बुन्देलखण्ड के राजवंशों विशेषकर चन्देलों और बुन्देलों ने यहॉ की इस सामाजिक कठिनाई को समझा और विशाल तालाबों के निर्माण में धनी विशिष्ट रूचि दर्शायी।[112] परिणाम स्वरूप आज बुन्देलखण्ड के विशाल तालाब अलग से अध्ययन का विषय हो सकते हैं। तालाबों के आकार एवं संख्या की दृष्टि से इस क्षेत्र को कर्नाटक के बाद स्थान दिया जा सकता है। क्षेत्र में उपलब्ध ग्रेनाइट के चौकोर टुकड़ों से उपयुक्त जल संग्रहण क्षेत्र में बाँध बनाकर इन तालाबों को निर्मित किया गया है। चन्देलों और बुन्देलों द्वारा निर्मित इन विशाल तालाबों की संख्या आश्चर्यजनक है, जिनमें से कुछ के नाम तृतीय अध्याय में दिये जा चुके हैं। ये जलाशय एक ओर सिंचाई, पीने के पानी, पर्यावरण संरक्षण में अपना योगदान देते रहे तथा दूसरी ओर मेले, तीज त्योहारों एवं मनोरंजन स्थलों के रूप में बुन्देलखण्ड की संस्कृति के वाहक बने रहे।[113] चन्देल राजाओं द्वारा निर्मित खजुराहो के खजूर सागर व शिवसागर, महोबा के मदनसागर व कीरत सागर, कल्याण सागर, विजय सागर, राहिल ताल, मदनपुर का मदन सागर, दुधई का रामसागर, अजयगढ़ के अजयताल तथा परमाल ताल आदि कुछ उदाहरणों से ही चन्देल राजवंश की सामाजिक सेवाओं का आंकलन किया जा सकता है। रसिन में किवदन्ती के अनुसार 80 तालाब थे। जनरल कनिंघम ने अपनी रिपोर्ट में 19 तालाबों की अपूर्ण सूची दी थी।[114] वर्तमान में यहाँ का अधिक ताल उल्लेखनीय है। तालबेहट, बरूआसागर, मेहरौनी, जतारा, टीकमगढ़, पृथ्वीपुर, जैतपुर, बल्देवगढ़ तथा छतरपुर के अनेक तालाब बुन्देला शासकों की सामाजिक प्रतिबद्धता के परिचायक हैं। शताब्दियों बीत जाने के बाद भी आज इनमें से कोई भी तालाब ऐसा नहीं है जिसके तट पर स्थित मन्दिर अथवा किसी निश्चित त्योहार अथवा मेले का सन्दर्भ न जुड़ा हो। महोबा के तालाबों का कजलिया उत्सव इसका सबसे उत्तम उदाहरण हो सकता है। जहाँ मदन सागर और कीरत सागर के तट पर प्रतिवर्ष न केवल क्षेत्रीय बल्कि बाहरी लोग भी एकत्रित होकर तीन दिवसीय सांस्कृतिक उत्सव मनाते हैं। राजसत्तायें चली

गयीं, दुर्ग ध्वस्त हो गये, किन्तु आज भी ये विशाल तालाब पर्यावरण संरक्षण, मत्स्य पालन, सिंचाई आदि माध्यमों से निर्माताओं की यशो गाथा कह रहे हैं।[115]

(ख) देवस्थानों का निर्माण– देवस्थलों का निर्माण और धर्मप्रचार दो ऐसे कार्य हैं, जो समाज में अपने दीर्घ प्रभाव छोड़ते रहे हैं। बुन्देलखण्ड में न केवल दुर्गो में बल्कि दुर्गों के बाहर भी शासकों ने देवस्थलों का निर्माण कराया, जो आज तक अपनी आभा को समाज में बिखेर रहे हैं। बुन्देलखण्ड के ये विभिन्न देवस्थल गुप्त, चन्देल, बुन्देला तथा मराठा काल में विभिन्न शैलियों में निर्मित हुये हैं।

सम्भवतः शक्ति, सुरक्षा के लिये सर्वाधिक चिन्तित होती है। यदि ऐसा न होता तो अपने को शक्तिशाली समझने वाले सम्राट, राजा या सेनापति अपनी सुरक्षा के लिये अजेय दुर्गों का निर्माण न करते।[116] सुदृढ़ दुर्गों में इन शासकों द्वारा निर्मित ये देवस्थल किसी दैवीय शक्ति के समक्ष समर्पण के जीवन्त प्रमाण हैं। ये देवस्थल न केवल राजपरिवारों के श्रद्धा के केन्द्र रहे बल्कि सामान्य जन भी अपनी मंगल कामना की पूर्ति का साधन इन्हीं देव स्थलों को मानते रहे। 'किला कालिंजर का जाहिर है, मनिया देव महोबे क्यार' जैसी प्रचलित बुन्देली पंक्तियाँ इसको प्रमाणित करती हैं। किले में किस देवता को स्थान मिला, यह आमतौर पर उस राजवंश पर निर्भर करता था जिसका वह किला होता था। युद्ध या आपत्तिकाल में इनकी विशिष्ट अर्चना होती थी। सामान्य दिनों भी इन मूर्तियों को राजसी वेश भूषा तथा वैभवपूर्ण श्रृंगार उपलब्ध था।[117] सर्वेक्षण के समय विभिन्न किलों में स्थित इन देवस्थलों के विषय में ऐसी कहानियाँ स्थानीय जनों से सुनने को मिलती हैं, जिन पर विश्वास करना कठिन होता है।

बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक प्रचार वैष्णव धर्म का हुआ तथा क्षेत्र में राम तथा कृष्ण के मन्दिरों की बहुलता है। चन्देलों ने विष्णु के अतिरिक्त शिव मंदिरों का निर्माण कराया। बुन्देलखण्ड के राममंदिरों में सुप्रसिद्ध ओरछा के रामराजा मन्दिर के अतिरिक्त टोड़ी फतेहपुर एवं गुरसराय के दुर्गों में राम मन्दिर स्थित हैं। रामराजा मन्दिर का निर्माण ओरछा के शासक मधुकरशाह तथा महारानी गणेशकुँवरि ने करवाया था।[118] इसी प्रकार कालिंजर दुर्ग में सीता सेज रामभक्तों का आकर्षण है। बुन्देलखण्ड के कृष्ण मन्दिरों उल्लेखनीय है।[119] टोड़ी फतेहपुर दुर्ग में राधाकृष्ण विग्रह तथा बानपुर

बिहारी जी का मन्दिर स्थित है। बुन्देलखण्ड के विष्णु मंदिरों में देवगढ़ स्थित दशावतार मन्दिर महत्वपूर्ण है। खजुराहो स्थित चतुर्भुज मन्रिर अपनी शास्त्रीयता में बेजोड़ है तथा विशेषज्ञों आकर्षण का केन्द्र है। रामपुरा गढ़ी में लक्ष्मीनारायन मन्दिर, एरण में समुदगुप्त द्वारा निर्मित विष्णु मन्दिर[120] स्थित है। विष्णु के अवतारों में नृसिंह तथा वाराह बुन्देलखण्ड में दृष्टव्य हैं तालबेहट तथा गुरसराय दुर्गों में नृसिंह तथा खजुराहो में वाराह मन्दिर स्थित हैं। बुन्देलखण्ड के शाक्त मन्दिरों में चौसठ योगिनी मन्दिर खजुराहो, पीताम्बरा मन्रिर दतिया, गिद्धवाहिनी मन्दिर गढ़कुण्डार सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। महोबा तथा राजगढ़ दुर्ग के खण्डहरों में स्थित मनिया देवी मन्दिर पुरातात्विक महत्व के हैं।

बुन्देलखण्ड में अनेक स्थानों पर हनुमान मन्दिर मौजूद हैं। हनुमान, जो कि रक्षक देवता के रूप में हैं। प्रायः दुर्गों के मुख्य द्वार पर स्थापित हैं। इतिहासकारों का मत है कि यह दुर्ग रक्षा में एक कूटनीतिक तत्व है क्योंकि हिन्दू आक्रमणकारी स्थानीय जनता के प्रतिरोध के भय से द्वारा पर तोपखाने के प्रयोग से बचते थे। एरच दुर्ग में हनुमान मन्दिर, छतरपुर में 'अंगद की टौरिया' तथा 'फिरंगी पछाड़ महावीर मन्दिर'[121] पृथ्वीपुर में 'अतन के हनुमान जी' प्रसिद्ध है। बुन्देलखण्ड के शिवमन्दिरों में इतिहास प्रसिद्ध कालिंजर के नीलकंठेश्वर मंदिर के अतिरिक्त खजुराहों में कंदरिया महादेव मन्दिर शोधकर्ताओं के साथ–साथ जन सामान्य के आकर्षण का केन्द्र हैं।[122] छतरपुर में राव सागर तालाब पर संकटमोचन महादेव, मनियागढ़ में स्वर्गेश्वर महादेव,[123] राहतगढ़ में महादेव मन्दिर[124] तथा मड़फा में काले पत्थर की शिवताण्डव प्रतिमा महत्वपूर्ण है। झाँसी तथा गुरसराय में गणेश मन्दिर हैं। करगुवाँ तथा सोनागिरि के जैन मन्दिर बुन्देलखण्ड के शासकों की सहिष्णुता का प्रमाण हैं।

कालिंजर दुर्ग में नीलकण्ठेश्वर मन्दिर के अतिरिक्त बनखंडेश्वर, मांडूक्य भैरव, काल भैरव, रूद्र भैरव, पाताल गंगा आदि शिव से सम्बन्धित हैं।[125] बुन्देलखण्ड के मुस्लिम स्थलों में महोबा दुर्ग की मस्जिद मौदहा दुर्ग के खण्डहर में पीर का मजार, एरच में जामा मस्जिद, कालपी में चौरासी गुम्बज, खिमलासा में 12 स्तम्भों की दरगाह[126] मालथौन में ईदगाह[127], राहतगढ़ में हाजी रतन का स्मारक[128] तथा झाँसी में

गुलाम गौस खान की समाधि प्रमुख हैं। उपरोक्त के अतिरिक्त भूरागढ़ में नटबली, मोंठ में सिद्धबाबा, बानपुर में देव चबूतरा, देवगढ़ में सिद्ध की गुफा स्थानीय आस्थाओं के प्रतीक है।[129]

बुन्देलखण्ड के देव स्थलों के सन्दर्भ में यह तथ्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण है कि वे दुर्ग जो कभी राजनैतिक एवं कूटनीतिक गतिविधियों के केन्द्र होते थे, अपने राजनैतिक सूर्यास्त के पश्चात अपने तीर्थ स्वरूप के कारण ही जन आस्था का विषय बने रहे है। दुर्ग नष्ट होते गये तथा उनमें स्थित देव स्थल आज भी उतनी लोकप्रियता के साथ विद्यमान (झाँसी नगर प्राचीर के सभी द्वारों पर हनुमान जी की विशाल प्रतिमायें स्थापित है।) है। कालिंजर दुर्ग में आज भी कष्टों के निवारण हेतु शैव पर्वो भीड़ जुटती है।[130] जबकि दुर्ग के अधिकांश निर्माण खण्डहर हो चुके हैं। ओरछा नगर रामराजा मन्दिर के कारण ही अपने दुर्भाग्यपूर्ण समय में अपने अस्तित्व को बचा सका। सब कुछ नष्ट हो जाने बाद भी खजुराहो अपने मन्दिरों के कारण केवल भारत ही नहीं वरन विश्व का आकर्षण का केन्द्र बना रहा। यहाँ यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इन दुर्गो के राजवंशों ने सामाजिक क्षेत्र में जो भी योगदान दिया, उनमें देवस्थल ऐस निर्माण हैं, जिन्होंने जनजीवन के लिये दीर्घ कालिक आधार प्रदान किया है किया तथा धर्मप्रचार में तरंगवत प्रकार्य से अपनी सार्थकता को सिद्ध किया है।

धर्म प्रचार– बुन्देलखण्ड का इतिहास शौर्य, साहस, स्वातंत्र्यप्रियता और धर्म के प्रति अनुराग का इतिहास रहा है। सभी धर्मों के प्रचार–प्रसार के प्रमाण यहाँ मिलते हैं। शासकों ने बदलती हुयी परिस्थितियों मे स्वयं जिस धर्म या पंथ को स्वीकार किया, प्रजा प्रायः उसका अनुगमन करती थी। इस दृष्टिकोण से धर्म के प्रचार–प्रसार में इन दुर्ग केन्द्रों के यागदान को कमतर नहीं आंका जा सकता।

क्षेत्र में वैदिक धर्म तथा इसके कर्मकाण्डों का प्रसार रहा। अशोक मौर्य ने जब कौशाम्बी को मुख्यालय बनाया तब इस समीपस्थ क्षेत्र में इसका प्रभाव पड़ा। इसी काल की बाँदा जिले के पैलानी क्षेत्र में धनसेरखेरा से खण्डहरों में मिली बुद्ध की पीतल मूर्तियाँ बौद्ध धर्म के प्रचार का संकेत देती हैं[131] जैन धर्म का प्रचार प्रसार बुन्देलखण्ड के पश्चिमी भाग में स्पष्ट रूप से आज भी अनुभव किया जाता है। ललितपुर,

सोनागिरि (दतिया) टीकमगढ़, करगुवाँ (झाँसी) इत्यादि स्थानों पर अनेक जैन तीर्थ स्थल हैं, जहाँ विविध कालखण्डों की मूर्तियाँ मौजूद हैं बुन्देलखण्ड में चीनी यात्री ह्वेनसाँग के यात्रा विवरणों में यहाँ कई बौद्ध मठ होने की चर्चा है। गुप्तकाल में भागवत धर्म का विस्तार हुआ, जिसके संकेत देवगढ़ के दशावतार मन्दिर से प्राप्त होते हैं। हेलियोडोरस द्वारा निर्मित बेसनगर का गरूण स्तम्भ भी इस तथ्य को प्रमाणित करता है। गुप्तकाल से ही शैव धर्म बढ़ने लगा। चन्देलों ने शैव और वैष्णव दोनों सम्प्रदायों में गहीर रूचि दर्शायी, उनके मन्दिर निर्माण यह स्पष्ट होता है। बुन्देला राम, कृष्ण, नृसिंह आराधक थे, जिसका समाज पर समवेत प्रभाव पड़ा। बुन्देलखण्ड संरक्षक के रूप में स्वीकार किया तथा मराठों के आगमन के पश्चात विघ्नविनाशक गणेश समादरित हुये। शायद ही कोई ऐसा हिन्दू वर्ग हो जिसके द्वार पर हनुमान अथवा गणेश में से किसी एक का विग्रह मौजूद न हो। दुर्गों से निसरित इस्लाम का प्रभाव भी बुन्देलखण्ड में कम महत्वपूर्ण नहीं है। एरच, कदौरा बाँदा, मालथौन, सागर आदि को इस कम में सन्दर्भित किया जा सकता है।

सांस्कृतिक क्षेत्र में अवदान– बुन्देलखण्ड के विभिन्न राजवंशों ने यहाॅ सांस्कृतिक क्षेत्र में अपना प्रभाव स्थापित किया है किन्तु चन्देलों और बुन्देलों के द्वारा स्थापित संस्कृति यहाॅ के निवासियों के रक्त में मिल चुकी है। मराठा, गोंड तथा इस्लामिक संस्कृति ने भी अपना पर्याप्त प्रभाव छोड़ा है। विभिन्न सांस्कृतिक सूत्रों को दुर्गों में आश्रय प्राप्त होता रहा। जनमानस उनसे जुड़ा और शनैः शनैः ये सांस्कृतिक परम्परायें यहाँ के जीवन का अंग बन गयी। बुन्देलखण्ड के किलों के अधिपति विभिन्न शासक वंश जो सांस्कृतिक परम्पराओं के कारक बने, अंततः बुन्देली संस्कृति के रूप में आज इस समाज में मौजूद हैं। इनकी परंपरायें, रीतिरिवाज, वेशभूषा, भाषा, खानपान तथा मेले त्यौहार आदि ने एक ऐसी विशिष्टता प्राप्त कर ली थी, जिसको आधार मानकर क्षेत्र में पृथक बुन्देलखण्ड राज्य की मांग सर उठा रही है। दुर्गों का बुन्देलखण्ड की संस्कृति में योगदान एक विस्तृत अन्वेषण का विषय है। यहाँ दुर्गों के सांस्कृतिक योगदान के कुछ प्रमुख बिन्दुओं को संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास है।

(क) साहित्य एवं साहित्यकार– बुन्देलखण्ड में जन्में रचनाधर्मियों की सूची लम्बी है, जिनमें से कुछ थोड़े से साहित्यकारों को छोड़कर शेष सभी प्रायः राज्याश्रयी रहे हैं। इस क्षेत्र में चन्देलकाल से साहित्य साधकों के सन्दर्भ प्राप्त होने लगते हैं। कृष्ण मिश्र का प्रबोधचन्दोदय नाटक न केवल राज्याश्रय प्राप्त है वरन कीर्तिवर्मन चन्देल की सभा में अभिनीत भी है।[132] आल्हखंड के प्रणेता तथा चन्देल राजसभा के प्रसिद्ध कवि जगनिक के अतिरिक्त परमर्दिदेव के सन्धिविग्रहिक गदाधर चन्देलकाल के प्रसिद्ध कवि थे।[133] परमर्दिदेव के मन्त्री वत्सराज ने रूपशतकम् नाम ग्रन्थ की रचना की।[134] एम0 सिल्वन लेवी ने राजशेखर के नाटक के आधार पर उल्लेख किया है कि कालिंजर का एक शासक भीमट 'स्वप्नदशानन' नाटक का लेखक था, परन्तु इस नाम के चन्देल शासक का तादात्म्य स्थापित करना कठिन है।[135]

कालांतर में भक्तिकाल में तुलसीदास जैसे कवि बुन्देलखण्ड में जन्में। इसके बाद इन रचनाधर्मियों की लम्बी परंपरा चली। ओरछा के शासकों के राज्याश्रयी कवियों में व्यास स्वामी (V.S. 1615), महाकवि केशव (V.S. 1630), मोहनदास (V.S. 1648), प्रवीण राय (V.S. 1650), मेघराज प्रधान (V.S. 1717), सुदर्शन कायस्थ (V.S. 1729), हरिसेवक (V.S. 1768), गोपाल भट्ट (V.S. 1797), विक्रमाजीत (V.S. 1833), दामोदर (V.S. 1889), तथा परमानन्द कायस्थ (V.S. 1930), के नाम प्रमुख हैं।[136] चरखारी राज्य में लगभग 30 कवि एवं रचनाकार हुये, जिनमें अधिकांश ने राज्याश्रय प्राप्त किया। चरखारी के शासक विक्रमादित्य बुन्देला स्वयं अच्छे कवि थे। इनके अतिरिक्त तीर्थराज (V.S. 1830), प्रागदास (V.S. 1877), भोजराज (V.S. 1857), भानदास (V.S. 1872), बहादुर सिंह (V.S. 1872), मानशाह (V.S. 1878), हरिदास (V.S. 1880), गोपाल (V.S. 1881), प्रतापशाह (V.S. 1882), जवाहर सिंह (V.S. 1886), बिहारी (V.S. 1897), अवधेश सेवक (V.S. 1897), दुर्गाप्रसाद (V.S. 1938), आदि कवियों का प्रमुख योगदान है।[137] इतने ही लगभग पन्ना राज्य के राज्याश्रित कवि हैं, जिनमें प्राणनाथ 1707 को यहाँ का जनजीवन अभी भी आदर सहित स्मरण करता है। ये बुन्देलखण्ड के अप्रतिम योद्धा छत्रसाल बुन्देला के मार्गदर्शक एवं प्रसिद्ध सन्त हुये हैं।[138] छत्रसाल स्वयं अच्छे कवि थे। पन्ना के

राज्याश्रयी कवियों में गुलाल सिंह (V.S. 1757), लालकवि (V.S. 1764), छत्रप्रकाश के रचयिता, रतन (V.S. 1765), हंसराज वक्शी (V.S. 1753), हिम्मत सिंह (V.S. 1764), पंचम सिंह (V.S. 1872), विजयाभिनंदन (V.S. 1797), शिवनाथ (V.S. 1798), फतेहसिंह (V.S. 1800), जसवन्त सिंह ;V.S. 1821), करनभट्ट (V.S. 1824), करनकवि (V.S. 1885), पजनेश (V.S. 1900), आदि प्रमुख हैं। लगभग 15 कवियों ने दतिया राज्य में अपनी रचनाधर्मिता को आगे बढ़ाया, इनमें कृष्णदास (V.S. 1730), अनन्य (V.S. 1733), पृथी सिंह (V.S. 1760), खन्नन कायस्थ (V.S. 1782), हरिकेश (V.S. 1788), शत्रुजीत सिंह (V.S. 1820), शिवप्रसाद कायस्थ (V.S. 1830), जानकीदास (V.S. 1869), खेतसिंह (V.S. 1878), गणेश (V.S. 1882), सीताराम (V.S. 1887), लक्ष्मण सिंह (V.S. 1920), पद्माकर के वंश के गदाधर भट्ट (V.S. 1942), प्रमुख है। छतरपुर राज्य भी कवि और लेखकों को सदैव समादृत करता रहा है। यहाँ लगभग 20 कवियों ने अपनी रचना प्रकिया को आगे बढ़ाया है। अकबर खाँ (V.S. 1880), पुरूषोत्तम (V.S. 1615), प्रेमदास (V.S. 1857), परमानन्द (V.S. 1930), प्रभूदयाल (V.S. 1940), पंचम (V.S. 1940), आदि रचनाधर्मी अजयगढ़ राज्य के आश्रित रहे हैं।[139] स्कन्दगिरि गनीवहादुर का आश्रित कवि रहा है।

बाँदा जिले में स्थित वाल्मीकि आश्रम को यदि मान्यता प्रदान कर दी जाय तो आदि कवि से लेकर राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त तक बुन्देलखण्ड में जो साहित्य धारायें प्रवाहित हुयी हैं, उनमें से अधिकांश का उद्गम इन्हीं दुर्गों से हुआ है, जिनका निर्माण मूलरूप से खून की होली, खेलने के लिये हुआ था। इन साहित्यकारों की रचनाओं में बुन्देलखण्ड का आन्तरिक जनजीवन तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि जिस प्रकार से आलोकित हुयी है, उससे 'साहित्य समाज का दर्पण है' कहावत सिद्ध हो जाती है। बुन्देलखण्ड के दुर्गों और यहाँ के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के अन्तर्सम्बन्धों को समझने के लिये 'बुन्देलखण्ड के वाल्टर स्कॉट' डा0 वृन्दावनलाल वर्मा की रचनायें ही पर्याप्त हैं गढ़कुण्डार, विराटा की पद्मिनी, टूटे काँटे, कचनार, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, भुवन विक्रम इत्यादि रचनायें यहाँ के सांस्कृतिक जीवन पर बुन्देलखण्ड के दुर्गों के प्रभाव को स्वतः स्पष्ट कर देती है।

(ख) कला एवं कलाकार– किसी भी क्षेत्र के कलाकारों की वृद्धि में सुधीजनो द्वारा उनका मान सम्मान तथा गुणीजनों द्वारा प्रदत्त आश्रय बहुत बड़ा संबल होता है। न केवल बुन्देलखण्ड वरन सम्पूर्ण भारत का इतिहास इस बात का साक्षी है। कि कलाकारों को जब राज्याश्रय प्राप्त हो जाता था, तब उनकी कला में सतत निखार बढ़ता रहता था। बुन्देलखण्ड में भी राजवंशों ने कलाकारों को सदैव उत्साहित किया है बल्कि मान सम्मान एवं धन प्रदान करके उनका उत्साहवर्धन भी किया है। बुन्देलखण्ड के दुर्गों में लगभग सभी तत्कालीन कलाओं को प्रश्रय मिला, परिणामतः इन कलाकारों ने दिनानुदिन समृद्धि प्राप्त की। स्थापत्य कला में चाहे दुर्गों, राजभवनों का निर्माण हो, या धार्मिक स्थापत्य एवं जलाशयों, बाँधों का निर्माण हो, बुन्देलखण्ड कलाकारों ने उत्कृष्टता में अपने झण्डे गाड़े। मूर्तिकला में यहॉ के कलाकारो की उत्कृष्टता को सिद्ध करने के लिये अकेले खजुराहों के मन्दिर ही पर्याप्त हैं। नृत्यकला, चित्रकला, शस्त्रनिर्माण कला, आभूषण एवं वस्त्र निर्माण कला आदि में भी इन कलाकारों का कोई प्रत्युत्तर नहीं है।

कला मनुष्य की सापेक्ष शक्ति है।[140] भारतीय कला भारतीय दर्शन की वाहक एवं प्रतीकात्मक है। इनमें भारतीय कला की मान्यताओं, आदर्शों एवं रीतियों की जानकारी है, पृष्ठभूमि का परिचय है। खजुराहों की कला में कल्पना की गहनता तथा भावनाओं एवं विचारों की सूक्ष्मता एक साथ इस प्रकार व्यक्त हुयी है कि इसकी संश्लिष्ट छाप दर्शक को भाव विभोर कर एक नवीन सृष्टि की ओर खींच लेती है।[141] बुन्देलखण्ड के शिल्पियों के बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कोमल भावनाओं के विकास में यहाँ के राजवंशों ने वृहद योगदान दिया है। अपनी रचनाओं को शाश्वत जीवन देकर ये कलाकार विलुप्त हो गये क्योंकि उनकी भावना स्वप्रदर्शन की कभी नहीं रही। इतने भव्य मन्दिरों, मूर्तियों, चित्रपटों के रचनाकारों के नाम हमें आज पता नहीं हैं। चन्देली शिल्पकार जिन्होंने खजुराहो तथा कालिंजर के मन्दिरों एवं मूर्तियों को गढ़ा, आज अज्ञात हैं। इनमें अच्युत, आसल और इमदराक युग प्रतिनिधि थे। छिच्छा भी कितने ही मन्दिरों का कलाकार था। उसका विरूद्ध था– 'विज्ञान–विश्व–कर्तृ–धर्मधर–सूत्रधार'। प्रमथनाथ मन्दिर उसी की रचना है। ये सभी शिल्पी गुणग्राही चन्देल शासकों के आश्रित थे।[142]

कालिंजर दुर्ग में स्थापित महानचनिया पद्मावती की मूर्ति चन्देलकाल की नृत्यकला की प्रतिनिधि महानर्तकी की मूर्ति है, जिसे राजनर्तकी का पद प्राप्त था। इस काल में नृत्यकला की उत्कृष्टता, वाद्ययंत्रों का प्रयोग और दोनों के सफल संयोजन की अभिव्यक्ति को जानने के लिये खजुराहों की सैंकड़ों नृत्यमूतियाँ प्रमाण हैं। शास्त्रीय नृत्य की यह परम्परा अनेक आरोहों अवरोहों के बाद वर्ममान बुन्देलखण्ड के लोकनृत्य एवं लोक संगीत के रूप में अवशेष रही है। बुन्देला काल में निर्मित ओरछा एवं दतिया के राजमहल, पन्ना के मन्दिर एवं छतरपुर की भव्य छतरियों के शिल्पी आज अज्ञात हैं। बुन्देलखण्ड के विशिष्ट एवं दुर्गम किलों का निर्माण करने वाले शिल्पियों की विस्तृत पीढ़ी को स्मरण न करना कृतघ्नता होगी। इन शिल्पियों और कलाकारों की मूक रचनाओं नपे बुन्देलखण्ड के जनजीवन को अन्तर्तम से प्रभावित किया है। झाँसी के राजकीय संग्रहालय के प्रथम निदेशक डा0 एस0डी0 त्रिवेदी ने एक बार कहा था न जाने कितनी मूर्तियों को मैंने यहाँ खेतों की मेंड़ों में पड़े देखा है। निश्चय ही उनका कथन सत्य हैं अन्यथा कालिंजर दुर्ग से तस्कर ट्रकों में भरकर मूर्तियाँ न ले गये होते।

(ग) मेले एवं उत्सव– जनरंजन के लिये राजाओं के द्वारा अनेक मेलों एवं उत्सवों का आयोजन किया जाता रहा है। जहाँ क्षेत्रीय जन न केवल मनोरंजन प्राप्त करते थे वरन अपने भारी कर्मठ जीवन के लिये नवचेतना प्राप्त करते थे। तीज त्योहारों में दुर्गों में आयोजित होने वाले उत्सवों की एक लम्बी सूची है, जिसमें ने केवल प्रजाजन बल्कि राजवंश भी उन्हीं के बीच आकर बराबरी से अपनी हिस्सेदारी निभाते थे। दशहरा, होली जैसे त्योहारों का आयोजन लगभग सभी किलों में होता था। इन त्योहारों में सामान्य जनता शासकों से अपनी निकटता को अनुभव करती थी। हिन्दू शासकों द्वारा दुर्ग परिसर में रामलीला, रासलीला और अन्यान्य नाटक–नौटंकी आदि का आयोजन किया जाता था तथा मुस्लिम शासक ईद, शबेरात जैसे पर्वो को मनाते थे।

बुन्देलखण्ड की वर्तमान 'बुन्देलखण्ड संस्कृति के वर्तमान स्वरूप के निर्माण में दुर्गो एवं राजवंशों के योगदान को विस्मरित करना अनुचित होगा। यद्यपि किसी भी विशिष्ट संस्कृति के उत्थान में सांस्कृतिक कारकों के अतिरिक्त भौगोलिक प्रभाव भी कम नहीं होते हैं। और यह कथन बुन्देलखण्ड के लिये भी सत्य सिद्ध होता है, तथापि

जहाँ तक सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की यात्रा का प्रश्न है, बुन्देलखण्ड में ये दुर्गों की छत्रछाया तले ही पूरी हुयी है। वर्तमान बुन्देलखण्ड के विशिष्ट रीति रिवाज, खानपान के दुर्लभ व्यंजन, विशिष्ट वेशभूषा इतिहास की लम्बी यात्रा करके यहाँ तक पहुँचे हैं। उदाहरण के लिये बुन्देलखण्डी जूते यहाँ की विशिष्ट पहचान है। इनमें आगे गोलमुड़े हुये झब्बे होते हैं। कहा जाता है कि चेदिराज शिशुपाल ने कृष्ण को अपमानित करने के लिये उनके मोर मुकुट की नकल में स्वयं के उपयोग लिये ये झब्बेदार जूते बनवाये थे।[143] राज परिवारों की घटना से उद्‌भूत आज प्रचलित यह परंपरा दुर्गों से सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों को प्रकट करने वाला एक उदाहरण है।

(घ) शिक्षा एवं शिक्षण– बुन्देलखण्ड में चन्देल काल में शिक्षा के सम्बन्ध में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उस समय शिक्षा की व्यवस्था राज्य की ओर से थी या नहीं परन्तु यह निर्देश अवश्य है कि विद्वानों एवं शिक्षकों की राज्य का संरक्षण प्राप्त था तथा अपनी विद्वता के कारण ही ये उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त होते थे। प्रारम्भिक शिक्षा जनसाधारण की भाषा में ग्रामों में अध्यापकों के द्वारा दी जाती थी। इन अध्यापकों का मुख्य कार्य विद्यार्थियों को लिखने पढ़ने का ज्ञान तथा गणित का व्यावहारिक ज्ञान कराना था। उच्च शिक्षा का कार्यक्रम जटिल था। गुरूकुल पद्धति पर आधारित उच्च शिक्षा के मुख्य अंग वेद तथा वेदांग थे।[144] देववर्मन के नन्यौरा ताम्रपत्र लेख में ब्राम्हण अभिमन्यु का उल्लेख है, जो वेदांग का पूर्ण ज्ञाता था।[145] शिलालेखों में देद्‌दु वैयाकरणी का उल्लेख मिलता है, जिसके पुत्र माधव ने यशोवर्मन के खजुराहो शिलालेख की रचना की थी।[146] उस समय विज्ञान की अनेक शाखाओं के अध्ययन का सम्यक् प्रचार था। कवीन्द्र देवधर रचित वधरी शिलालेख में यह वर्णन है कि लक्ष्मीधर समस्त विज्ञान रूपी जलाशय में निवास करनेवाले राजहंस के समान था।[147] निस्संदेह 'समस्त विज्ञान' के उल्लेख से कोई बात स्पष्ट नहीं होती फिर भी तत्कालीन स्थापत्य कला के विकास एवं अभ्युदय से स्पष्ट है कि शिक्षा में भी विशेष प्रगति हुयी थी। अनेक शिलालेखों में वैद्यों का उल्लेख है। आयुर्वेद की शिक्षा के अतिरिक्त पशुचिकित्सा का समुचित विकास था, जैसा कि अश्ववैद्य के निर्देश से स्पष्ट है।

चन्देलकालीन मन्दिर शिक्षण एवं संस्कृति के केन्द्र थे।[148] अग्रहार ग्राम में निवास करने वाले विद्वान शिक्षा क उन्नति के प्रति प्रयत्नशील थे।[149] परन्तु मध्यकाल में इन स्थानीय शिक्षण संस्थाओं का ह्रास हुआ क्योंकि मन्दिर शिक्षण संस्थाओं के रूप में कार्य करते थे। जो मुस्लिम आक्रमणकारियों का निशाना बने। मध्यकाल में शिक्षा का परम्परगत स्वरूप छोटा होकर रह गया। राजनीतिक अस्थिरता ने इस पर लगातार कुठाराघात किये। बुन्देलखण्ड में शिक्षा को राज्य का प्रोत्साहन सीमित होकर रह गया।

मराठा एवं ब्रिटिश काल में बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का प्रवेश हुआ। बुन्देलखण्ड में अंग्रेजी स्कूलों का जनक कैप्टन पैटन था, जिसने हमीरपुर में 1828 में प्रथम ब्रिटिश प्रहार किया। 1857 की क्रान्ति के पश्चात दुर्गों का महत्व तेजी से गिरा तथा इसी अनुपात में दुर्गों का शिक्षण संस्थाओं पर नियन्त्रण भी तेजी से कम हुआ।[150] शिक्षा का सांस्कृतिक स्वरूप सामाजिक आवश्यकता में परिवर्तित होने लगा तथा अंततः नवीन ब्रिटिश शिक्षा पद्धति ने बुन्देलखण्ड में पैर पसार लिये।[151]

5.4 बस्तियों पर प्रभाव

दुर्गों ने आवासीय बस्तियों के जन्म एवं विकास पर अपना अत्यधिक प्रभाव छोड़ा है। बुन्देलखण्ड में ऐसे दुर्ग तो उपलब्ध हैं, जिनके समीप कोई बस्ती विकसित नहीं हो सकी परन्तु प्राचीनकाल में शयद ही कोई बड़ी बस्ती रही हो, जिसमें दुर्ग न रहा हो। इन स्थानों पर अधिकांशतः दुर्ग का निर्माण पहले होता था तथा बस्ती बाद में बसती थी।[152] चूंकि सभी दुर्ग नगरों में राजाओं तथा राज्य प्रमुखो का निवास होता था, इसलिये वहाँ कृषेतर कार्य करने वाले नाना प्रकार के लोग अपना निवास बनाने के लिये प्रयत्यनशील होते थे। इनमे बुनकर, स्वर्णकार, आभूषण निर्माता, लोहे का काम करने वाले, लाक्षाकार, बढ़ई, बर्तन बनाने वाले, शिल्पकार तथा मूर्तिकार व अन्य कलाकार, पशु विशेषज्ञ, अश्वचर्या विशेषज्ञ आदि विशेष रूप से होते थे। उपरोक्त के अतिरिक्त इन दुर्ग नगरों में सेना का भी एक बड़ा जमाव होता था। इन सबकी आवश्यकता की पूर्ति के लिये विविध प्रकार के व्यवसायी एवं दूकानदार स्वतः ही अपना निवास बना लेते थे। इस प्रकार कोई भी दुर्ग नगरीय बस्ती के विकास के लिये

गुरूत्वाकर्षण केन्द्र की तरह कार्य करता था तथा बस्ती का विकास तीव्रता से होता था।

दुर्ग निर्माण के लिये स्थल का चुनाव एक समुचित एवं वृहद सर्वेक्षण के पश्चात किया जाता था, उसी समय भावी बस्ती के लिये भी भूमि का चयन किया जाता था।[153] यह बस्ती किले के चारों ओर अथवा एक सिरे पर दुर्ग के साथ, जैसा धरातलीय संरचना अनुमति देती थी, बसायी जाती थी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नगरीय बसाव एवं दुर्ग निर्माण के लिये स्थल चयन में बड़ा विरोधाभास होता था। दुर्ग निर्माण के लिये कठिन एवं अगम्य स्थल का चयन किया जाता था, जबकि बस्ती के लिये समतल तथा बिना कठिनाई के पहुँचने योग्य स्थान उचित होता था। सम्भवतः यही कारण है कि बुन्देलखण्ड के बहुत से दुर्गो को बस्तियों का सानिध्य प्राप्त नहीं हो सका। दुर्गम पहाड़ियों पर अथवा घने जंगलों में निर्मित दुर्गों ने मानव बसाव को अधिक प्रोत्साहित नहीं किया। किसी भी स्थान पर दुर्ग निर्माण के बाद जो बस्ती बसती थी, दुर्ग न केवल उसके विकास में योगदान देते थे, बल्कि बस्ती के अन्य पक्षों में भी इनका प्रभाव दिखाई पड़ता था। बुन्देलखण्ड के कुछ ऐसे नगरों में जहाँ दुर्ग का अस्तित्व स्वतंत्रता प्राप्ति अथवा उसके कुछ पहले तक रहा है, इन प्रभावों के आँकलन का प्रयास किया गया है, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नवत है–

(क) पथ संरचना पर प्रभाव– दुर्ग द्वार से निकलने वाला मुख्य मार्ग दुर्ग पथ कहलाता था और नगर विकास के लिये यह रीढ़ की हड्डी का काम करता था। नगर के अन्य मार्ग इस दुर्ग पथ अथवा राजपथ की ओर केन्द्रित होते थे।[154] इस प्रमुख मार्ग से अलग होने वाले दूसरे मार्ग और पुनः उनकी सहायक गलियॉ नगर की पथ संरचना का निर्माण करती थी। जो अन्ततः उस अधिवासीय बस्ती को आकार प्रदान करता था। पथों के संरक्षण एवं रखरखाव का उत्तरदायित्व शासक का होता था, अतः स्वाभाविक रूप से दुर्ग पथ को सर्वाधिक महत्व मिलता था। झाँसी, समथर, दतिया, ओरछा, टीकमगढ़ आदि दुर्गों के राजपथों का उल्लेख यहाँ समीचीन होगा जिन्होंने दुर्ग के वैभव काल में वरीयता प्राप्त किया था। मुख्य मार्ग के पास उपमार्ग एवं गलियाँ संकरी एवं टेढ़ी मेढ़ी होती थी।। सम्भवतः ऐसा सुरक्षा के कारण था, जिससे अधिक शत्रु एक

साथ प्रवेश न कर सके तथा उनसे आसानी से निपटा जा सके। लगभग सभी दुर्ग नगरों की पुरानी बस्तियों में यह परिदृश्य अभी भी वर्तमान है। इनमें मेहरौनी का पुराना बाजार, समथर का खानबहादुरान, मोंठ का कटरा ओलालपुराख तालबेहट के मस्जिद रोड और झाँसी के गणेश मढ़िया, गोलाकुँआ, दरीगरान, लूला बाबा के उदाहरण दिये जा सकते है। वस्तुतः दुर्ग और स्थल चुनाव ने ही इन नगरों के पथ विन्यास को सर्वाधिक प्रभावित किया है। परन्तु अन्य कारकों के प्रभावी हो जाने पर अब इनका प्रभाव समाप्त हो रहा है।

(ख) नगर के आकार एवं संरचना पर प्रभाव– दुर्गों ने नगर निर्माण में केन्द्रक के रूप में कार्य किया और मानव बसाव के लिये अपकेन्द्रीय बल के रूप में प्रेरणा देते रहे। शाही परिवार दुर्ग में निवास करते थे, इसलिये दुर्ग के निकट का स्थान संभ्रान्त नागरिकों के लिये सुरक्षित रहता था। राज्य के उच्च पदाधिकारी एवं धनी लोक किले के अत्यन्त निकट निवास करते थे और उनके भवन भी तुलनात्मक रूप से उत्कृष्ट होते थे।[156]

नगर का आकार धरातलीय संरचना एवं दुर्ग की स्थिति पर निर्भर करता था। ये दोनों कारक कभी–कभी नगर को एक निश्चित आकार देने में सफल होते थे तथा कभी असफल होते थे। दुर्ग पथ भविष्य के निर्माणों के लिये मार्ग प्रशस्त करता था और प्रथमतः बसाव के आयताकार आकृतिक में उभरता था, जो बाद में वर्ग, समलम्ब और त्रिभुज आदि आकृतियों परिवर्तित हो जाता था। दुर्ग प्रभाव समाप्त होने के पहले एरच आयताकार, मोंठ वर्गाकार, उरई समलम्ब और महोबा त्रिभुजाकार आकृति में थे। त्रिभुजाकार आकृति का नगर बसाव प्राचीन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की दृष्टि से शुभ नहीं माना जाता था।[157] जिन दुर्ग नगरों में नगर प्राचीरों का निर्माण किया गया था उनमें नगर की आकृति प्राचीर द्वारा घेरे गये भूमिखण्ड के अनुसार होती थी। कुछ स्थलों पर पथ विन्यास स्पष्टतः नगर प्राचीर के द्वारों और नगर प्राचीर के आकार के अनुसार ही विकसित होता था।[158] इस प्रकार दुर्ग की स्थिति राजपथ, नगर प्राचीर एवं जलाशय आदि अन्य कारकों के द्वारा नगर का आकार एवं संरचना स्थापित होती थी।

(ग) नगरीय भूमि उपयोग पर प्रभाव– नगरीय भूमि का विभिन्न उद्देश्यों से किया ण्गया उपयोग नगरीय भूमि उपयोग कहलाता है। अनेक कारक एवं शक्तियाँ भूमि अलग–अलग उपयोग को बाध्य करती हैं और तदनुसार नगर का विकास हाता है दुर्ग नगरों में भूमि वितरण एवं उपयोग के सन्दर्भ में दुर्ग सबसे शक्तिशाली कारक सिद्ध हुआ है। नगर से निकलने वाला प्रमुख मार्ग एवं उसके आसपास का क्षेत्र पहले बसता था। इसके पश्चात क्रमशः यह वृद्धि विभिन्न दिशाओं में सुविधानुसर होती जाती थी। भूमि वितरण में राज परिवार का हस्तक्षेप भी कम नहीं होता था। दुर्ग नगरों के प्रमुख भूमि उपयोग एवं उनमें दुर्ग प्रभाव को निम्नवत देखा जा सकता है।

व्यावसायिक भूमि उपयोग : सभी दुर्ग नगरों में व्यवसायिक क्षेत्र के निर्धारण एवं विकास में दुर्ग का महत्वपूर्ण हस्तक्षेप रहा है। प्राचीन काल में व्यवसाय वैश्यों के हाथ था और शासन उन्हें पूर्ण संरक्षण प्रदान करता था। प्रमुख दुर्ग पथ प्रायः सभी दुर्ग नगरों में मुख्य बाजार के रूप में विकसित हुये। झाँसी, दतिया, ओरछा, टीकमगढ़, पन्ना, सागर, गुरसराय, कोंच, मोंठ, तालबेहट और समथर आदि नगर इस तथ्य को सिद्ध करते हैं इन सभी नगरों में अन्य शक्तियों के विकसित हो जाने के कारण इसका प्रारूप बदल गया है। विशेष रूप से छोटे नगरों में बड़े राजमार्गो ने अत्यधिक प्रभाव डाला। ऐतिहासिक काल में दुर्गपथ पर विकसित बाजार में खाद्यान्न, वस्त्र, हस्तशिल्प तथा दैनिक उपयोग एवं सामान्य उपयोग की वस्तुयें दूकानों पर उपलब्ध होती थी। दुर्ग के निकट निधारित बड़े चौक में अश्व एवं युद्ध सामग्री का लेनदेन होता था। समथर, मोंठ, झाँसी एवं गुरसराय इस तरह के चौक के अच्छे उदाहरण हैं। यह विशेष बात है कि इस प्रमुख बाजार के अतिरिक्त कुछ विशेष वस्तुओं की दूकानें जो विशिष्ट समुदायों द्वारा संचालित होती थीं, विभिन्न मुहल्लों में स्थित होती थीं, जैसे– स्वर्ण, लोहा, तेल, पान, लकड़ी आदि क्रमशः सुनार, लुहार, तेली, पनवाड़ी और बढ़ई समुदायों द्वारा संचालित होती थीं। ये समुदाय जिन मुहल्लों में निवास करते थे, वहीं इनका व्यवसाय भी होता था। वर्तमान में इस व्यवस्था की झलक दुर्ग नगरों में देखी जा सकती है। उदाहरणार्थ– झाँसी में सुनराही तिलयानी; कोंच में कोरियाना; बाँदा में तेली मुहाल तथा तमोलियाना। यह भी दृष्टव्य है कि सुनारों और रत्न व्यापारियों की दुकानें प्रायः दुर्ग

पथ से लगी हुयी किसी विशिष्ट गली में होती थीं। ऐसा सम्भवतः सुरक्षा की दृष्टि से होता था। झाँसी, महोबा, समथर की स्वर्णाभूषणें की दुकानें इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं। इस प्रकार से विभिन्न दूकानों का यह वितरण दुर्ग से प्रभावित होता था।[159]

आवासीय भूमि उपयोग : आवासीय भूमि उपयोग में दुर्गों का प्रभाव सर्वाधिक दिखायी पड़ता है। दुर्ग निर्माण के शिल्प की छाया पुरानी आवासीय हवेलियों में दृष्टिगत होती है। मेहराबदार दरवाजे, मारक छिद्र, बड़े छज्जे, भूमिगत तल, बड़ा आँगन, झालीदार झरोखे, और भित्ति चित्रों में प्रायः दुर्ग महलों की नकल दिखायी पड़ती है। आवासीय बस्तियों में बने धनी लोगों के भवनों के लिये राजकीय आवास आदर्श निर्माण की तहर प्रेरणा देते थे। बाँदा में खानकाह, पुराना अस्पताल, टोड़ी फतेहपुर में लालजी की हवेली, झाँसी में डरूभौंडेला इसके उदाहरण हैं। ड्योढ़ी का निर्माण सामान्य भवनों में भी किया जाता था तथा मेहराबदार दरवाजे में नौबतखाना एवं अन्दर तकिया का निर्माण दुर्गभवनों से ही लिया गया है।

आवासीय बस्तियाँ न केवल जाति एवं समुदाय के आधार पर मुहल्लों में बँटती थी, बल्कि उनके स्थान भी सुनिश्चित होते थे। दुर्ग नगरों में चूँकि समाज के संरक्षक–शासक स्वयं निवास करते थे, अतः यह नियम कड़ाई से लागू होता था। नगर का वाह्य भाग निम्न जाति एवं समुदाय के लोगों के लिये निर्धारित होता था तथा आन्तरिक भाग क्षत्रिय, ब्राम्हण, वैश्य रहते थे। इन्हें सुरक्षित एवं सुविधापूर्ण स्थल चुनने का अधिकार होता था। राज्य में पदस्थ अधिकारी और इनसे सम्बन्धित लोग दुर्ग के अतिनिकट निवास करते थे। जाति आधारित मुहल्लों के नाम स्वतंत्रता के 30 वर्षो बाद अनेक नये नामों में बदले गये हैं, फिर भी लगभग सभी दुर्ग नगरों में अभी भी जातिगत मुहल्ले लोगों के संज्ञान में हैं। उच्च स्तरीय लोग जो दुर्ग के निकट रहते थे, वह विशिष्ट क्षेत्र माना जाता था। और अभी भी जैसे गुरसराय में गढ़मुहाल, बरूआसागर में दुर्गपुरा और महोबा में कोटपुरा कहकर पुकारा जाता है, यद्यपि अब इनकी स्थिति दयनीय है।

अन्य भूमि उपयोग : दुर्ग नगर अनिवार्य रूप से प्रशासनिक मुख्यालय होते थे, अतः प्रशासनिक कार्यों के लिये यहाँ पर्याप्त भूमि निर्धारित ाकी जाती थी। दुर्ग प्रशासन का

हृदय होते थे, अतः लगभग सभी प्रशासनिक कार्यालय या तो किले अन्दर या अत्यन्त निकट स्थित होते थे। तत्कालीन प्रशासनिक कार्य यहीं संचालित होते थे। अश्वपरीक्षा, युद्धाभ्यास, परेड आदि के लिये स्थान इसी श्रेणी में निर्धारित होता था।[160] इस प्रकार शासकीय कार्यालयों के एक स्थान पर पुंजीभूत होने का लक्षण पहले से था, जिसे अंग्रेजों ने भी अपने शासन में जारी रखा।

प्रशासकों की रूचि बाग–बगीचे लगवाने और मनोरंजर स्थल विकसित करने में होती थी। यद्यपि अधिकांश स्थलों पर ये अपना प्रभाव खो चुके हैं, फिर भी दुर्ग नगरों के निवासी दन्तकथाओं में बरूआसागर के उद्योतबाग, बाँदा के आयशा बाग, झाँसी के महलबाग, दतिया की ठण्डी सड़क और समथर, रामपुरा के राजाओं द्वारा विकसित बागों का स्मरण करते हैं। राजपरिवारों की रूचि सांस्कृतिक कार्यक्रमों और मेलों आदि में होने के कारण इसके लिये भी स्थान निर्धारित किया जाता था। नाटक शालायें, रामलीला मैदान, घुड़दौड़, पशु युद्ध आदि के लिये निर्धारित स्थान सभी दुर्ग नगरो में अब आवासीय स्थलों के रूप में परिवर्तित हो चुके हैं।

उपर्युक्त विवरण से पूर्णतः स्पष्ट है कि नगर के जन्म एवं विकास, आकार एवं आकृति निर्धारण में दुर्गों का महत्वपूर्ण योगदान है। उनका उत्थान और पतन दुर्गो के भाग्य के साथ जुड़ा हुआ था। महोबा जिसमें कभी 52 मुहल्ले थे तथा वैभव[161] के समय इसका विस्तार परिश्चम में 2 मील दूर राहिला गाँव तक था[162], 11वीं और 12वीं शताब्दी में उजड़ गये तथा प्रमुख नगर कीरतसागर अैर मदनसागर के मध्य विकसित हुआ। इसी प्रकार ओरछा नगर जिसका विस्तार कई किमी0 तक था, राजधानी परिवर्तन के बाद एक उपेक्षित गाँव के रूप में परिवर्तित हो गया। दुर्गों के प्रभाव के समाप्त हो जाने के पश्चात इन दुर्ग नगरों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिनमें प्रमुख इस प्रकार से हैं– (1) चूंकि दुर्गो का निर्माण सुरक्षा के दृष्टिकोण से प्रायः पहाड़ियों, जलाशयों, नदी तट जैसे प्राकृतिक स्थलों पर किया गया था, अतः यहाँ बसे हुये दुर्ग नगरों को अब विस्तार क लिये भूमि के अभाव का सामना करना पड़ा। कठिन बसाव स्थल होने के कारण विकास में बाधा आती है। (2) पुराने दुर्गों एवं महलों आदि के खण्डहर प्रथम दृष्ट्या एक उजाड़ दृश्य प्रस्तुत करते हैं, जिससे लोगी

आवासीय रूचि प्रभावित होती है। (3) स्वतंत्रता के पश्चात जहॉं भी रियासतें थीं, वहाँ से नागरिकों का बड़ी संख्या में उत्प्रवासन हुआ और अचानक नगर हीन स्थिति को प्राप्त हो गये। उदाहरणार्थ– चरखारी से केवल नाई और धोबी जाति के 1600 लोगों ने नगर छोड़ दिया था।[163] (4) सभी छोटे एवं बड़े दुर्ग नगरों में दुर्ग प्रशासनिक केन्द्र होता था। स्वतंत्रता के पश्चात प्रशासनिक कार्यालय अन्य कस्बों एवं शहरों में स्थापित हुये। अतः इस प्रकार दुर्ग नगरों के निवासियों को न केलव सदमा लगा बल्कि उनके रोजगार भी छीने गये। उल्लेखनीय है कि बस्ती के अधिकांश नागरिक सेवक, सैनिक अथवा किसी अन्य रूप में किले में नौकरी प्राप्त करते थे। (5) प्राचीन समय में नगरीय बसाव के लिये उपयुक्त माने जाने वाले सघन मुहल्ले एवं सँकरी, टेढ़ी गलियाँ आधुनिक अधिवासीय दृष्टिकोण के विपरीत है। अतः वे मुहल्ले जो कभी संभ्रान्त एवं प्रतिष्ठित लोगों के निवास होते थे, अब मलिन बस्तियों की तरह दिखते हैं। (6) दुर्गों और ऐतिहासिक स्थलों से लगी हुयी भूमि या तो बेकार पड़ी हुयी है अथवा उसका दुरूपयोग किया जा रहा है। इस प्रकार इस महत्वपूर्ण भूमि का दुरपयोग भी नगर विकास में बाधक है।

उपरोक्त बिन्दुओं को बुन्देलखण्ड के उन सभी दुर्ग नगरों में अनुभव किया जा सकता है, जहॉं स्वतंत्रता तक रियासतें रहीं, दुर्ग प्रभावी रहा तथा स्वतंत्रता के पश्चात नगर विकास के लिये अन्य कोई महत्वपूर्ण कारक नहीं मिले, वे दुर्ग नगर उत्तरजीवित को बनाये रखने में कठिनाई का अनुभव करते रहे। समथर, गुरसराय, टोड़ी फतेहपुर, रामपुरा, जगम्मनपुर, बंकापहाड़ी, आदि वे दुर्ग नगर हैं जो अत्यधिक प्रभावित हुये। बेरी, गरौली, जिगनी, सरीला आदि पहले से ही बहुत छोटे कस्बे थे।[164]

5.5 प्राचीन मार्गो के विकास में योगदान

किसी क्षेत्र से होकर हाने वाले मार्ग केवल आवागमन के साधन ही नहीं होंते वरन उस क्षेत्र के विकास में रक्त–संचार करने वाली धमनियों की तरह महत्व रखते हैं। ये केवल बस्तियों को जोड़ते ही नहीं, बल्कि उनके विकास के सोपान भी तय करते

हैं। यही कारण है कि भारत में प्राचीन काल से ही मार्गों के विकास को स्वीकार किया गया है। जैसा कि अथर्ववेद में कहा गया है– "यहाँ बहुत से मार्ग हैं जो मानव, मालवाहक वाहनों और रथों के लिये हैं। ये मालवहन एवं यात्रा के लिये हैं। भले और बुरे दोनों प्रकार के मनुष्यों का इनमें अधिकार है, इन मार्गों में चोर एवं दस्युओं का भय रहता है। पृथ्वी पर सुरक्षित मार्ग प्रसन्नता के सूचक हैं।"

ये ते पन्यानों वहवो जनायना रचस्य व वर्तमानसश्चयातवे

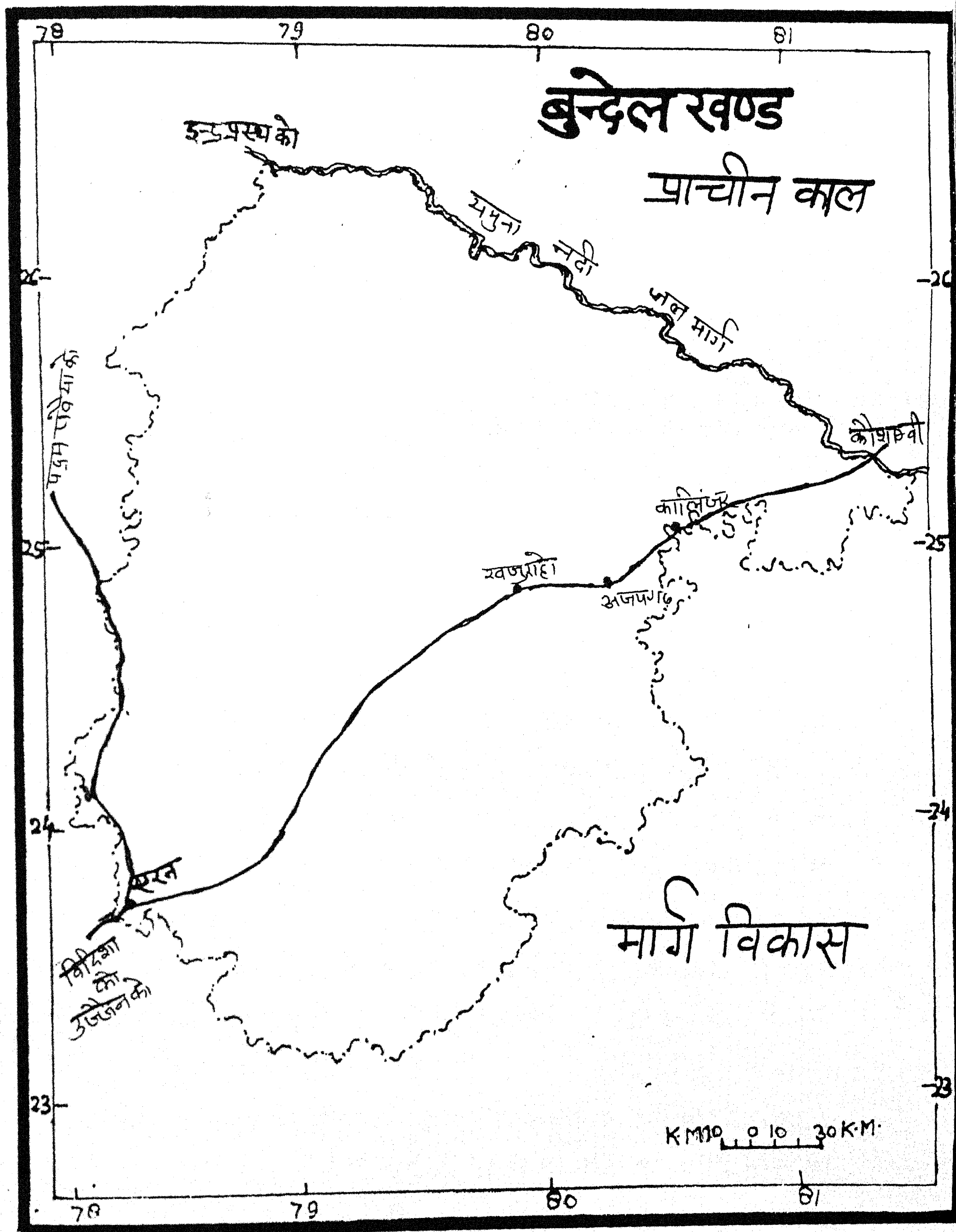
ये संचरत्युभये भ्रदपायास्तं जपे मानवित्र यतस्करम् यच्द्दिब तेननो मृडः।।[165]

प्राचीन भारत में विभिन्न प्रकार के मार्गों का उल्लेख मिलता है, जैसे पाणिनि ने जपथ, अश्वपथ, करपिथ, राजपथ और देवपथ का उल्लेख किया है।[166] जो स्पष्टतः विकसित एवं बड़े मार्गों के क्रम में हैं। इसी प्रकार विकसित एवं बड़े मार्गों के क्रम में हैं। इसी प्रकार कौटिल्य ने अर्थशास्त्र मे रथपथ, राष्ट्रपथ, द्रोणपथ, वैयूरि आदि पथों की चर्चा की है।[167] प्राचीन भारत में राजधानियों एवं जनपदों को जोड़ने वाले इन मार्गों में यात्रा करने वाले वणिक, साधु, तीर्थयात्री, व्यवसायी, विद्यार्थी, कलाकार, सेनायें प्रमुख थे।[168] प्राचीन साहित्य से पता चलता है कि भारत के ये मार्ग बहुत लोकप्रिय थे तथा प्रत्येक ऋतु में भारवाहक गाड़ियों से भरे रहते थे। मेगस्थनीज के अनुसार भारतीयों की पथ निर्माण में ख्याति थी तथा मार्ग निर्माण के पश्चात वे प्रस्तर स्तम्भ चिन्हों के दूरियों एवं उपमार्गों के संकेत भी देते थे।[169] भारतीय शासक अपने राज्यक्षेत्र के मार्गों को लोकप्रिय और स्तरीय बनाये रखने के लिये प्रयासरत रहते थे। नालन्दा से प्राप्त यशोवर्मन के शिलालेख से मार्ग एवं यातायात प्रबन्धन के लिये नियुक्त कर रखा था। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय से ही भारत हमेशा मनोहर पुलों से सुसज्जित, बड़ी सड़कों तथा राजपथें के लिये विख्यात रहा है। उनके दोनों ओर जगह यात्रियों के लिये विश्राम स्थल बने थे। इन निर्माणों ने अलबरूनी तथा प्रारम्भिक मुस्लिम यात्रियों को आश्चर्यचकित कर दिया।[170]

बुन्देलखण्ड में मार्गों का विकास एक कठिन प्रक्रिया से होकर निकला है क्योंकि यहॉ की धरातलीय संरचना अत्यन्त दुर्गम, पहाड़ियों एवं नदियों से युक्त है। यद्यपि प्राचीन काल में नदियाँ मार्ग निर्धारित करने में सहायक होती थीं, इसी कारण प्राचीन

मार्गों के कुछ नदी तट तथा नौका के साथ बेतवा, धसान, केन का प्रभाव मार्ग विकास में दिखाई पड़ता है। दुर्गम धरातलीय संरचना, वन एवं जंगली पशुओं से युक्त होने के कारण बुन्देलखण्ड का बहुत बड़ा भाग असुरक्षित रहा है।[171] दूसरी ओर बुन्देलखण्ड की केन्द्रीय स्थिति ने मार्ग विकास को प्रोत्साहन प्रदान किया। उत्तर भारत से दक्षिण के नगरों एवं जनपदों तथा इसी प्रकार पूर्व से पश्चित जाने वाले मार्ग इस क्षेत्र से होकर निकले। प्राचीन काल में उत्तर भारत से दक्षिण की ओर जाने वाले 03 प्रमुख मार्ग थे, जिनमें से दो बुन्देलखण्ड से होकर निकलते थे; एक पूर्वी तथा दूसरा पश्चिमी भाग से। बुन्देलखण्ड की केन्द्रीय स्थित इन मार्गों के लिये उत्तरदायी बनी। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दुर्ग निर्माण और मार्ग विकास एक दूसरे के पूरक हैं। जब कहीं दुर्ग निर्मित होते हैं, बस्तियाँ बसती हैं, तब वहाँ से होकर मार्ग निकलते हैं। और यदि कहीं से मार्ग विकसित होता है, तब मार्ग में बस्तियाँ बसती हैं तथा दुर्ग निर्मित होते हैं।[172] यह एक रूचिकर अन्वेषण हैं कि किसी क्षेत्र में किस प्रकार दुर्ग बस्तियाँ एवं मार्ग एक दूसरे के विकास में सहयोग करते हैं। अग्रिम पंक्तियों में बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण एवं मार्ग विकास के अन्तर्सम्बन्धों को पारम्परिक कालखण्डों में विभाजित कर विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

महाकाव्य काल में बुन्देलखण्ड में बड़ी बस्तियाँ लगभग अदृश्य थीं। केवल चित्रकूट जैसे आश्रमों अथवा शुक्तिमती, शाहगति जैसे नगरों की ही चर्चा मिलती हैं। अतः इस काल में यहाँ मार्गों की पहचान एक कठिन कार्य है। चित्रकूट की पवित्रता अवश्य ही तीर्थयात्रियों को आकर्षित करती रही होगी। बाल्मीकि रामायण में राम को मनाने के लिये भरत की चित्रकूल यात्रा के प्रसंग में मार्ग, मार्ग निर्माण तथा निर्माण करने वालों की विस्तृत चर्चा है।[173] यह मार्ग प्रयाग से चित्रकूट को जोड़ता था। महाभारत काल में चेदि जनपद उत्तर भारत से बेतवा नदी के मार्ग से जुड़ता था। महाभारत में उस यात्री दल की चर्चा है जो यहॉ से होकर निकला था और जिसमें दमयन्ती भी थी।[174] इस प्रसंग से प्रतीत होता है कि उस काल में भी इस क्षेत्र में कारवाँ मार्ग था।



बुन्देल खण्ड
प्राचीन काल
इन्द्रप्रस्थ को
यमुना नदी
जल मार्ग
कौशाम्बी
कालिंजर
खजुराहो
एरन
विदिशा को
उज्जैन को
मार्ग विकास
K.M.10 0 10 30 K.M.

प्राचीन काल (650 ई0 तक) के मार्ग– प्राचीन काल में भारत अनेक महाजनपदों में विभाजित था तथा इनकी राजधानियाँ विकसित हो चुकी थीं। परिणामतः इनको आपस में जोड़ने वाले मार्गों का विकास भी हुआ। प्राचीन काल की राजधानियाँ एवं अन्य प्रमुख नगर जो अध्ययन क्षेत्र से समीपवर्ती भू–भागों में फैले हुये थे, इन्द्रप्रस्थ, मथुरा, कौशाम्बी, प्रयोग, काशी, पाटलिपुत्र, कपिलवस्तु, विदिशा, साँची, उज्जयिनी आदि थे। ये बड़े नगर आपस में मार्गों से जुड़े थे, जिनमें कुछ वर्तमान बुन्देलखण्ड में होकर निकलते थे। इनमें से प्रमुखतः तीन मार्गों का उल्लेख किया जा सकता है –

(क) कपिलवस्तु–कोशाम्बी–उज्जयिनी मार्ग– पूर्वी भारत के यात्री इस मार्ग से मध्य भारत पहुँचते थे। ये मार्ग बुन्देलखण्ड के मध्य एवं मध्य दक्षिण भाग से होकर गुजरता था। यद्यपि बुन्देलखण्ड में यह मार्ग वनों और दुर्गम पहाड़ियों से होकर निकलता था। तथापि यात्रीगण इससे यात्रा करते थे। पाणिनि ने इसे कान्तार पथ की संज्ञा दी है।[175] बौद्ध साहित्य में ऐसे सन्दर्भ हैं कि बौद्ध भिक्षु अलहक से प्रारम्भ होकर कौशाम्बी वाया पैठन, महिष्मती, उज्जैन, गोनद, विदिशा और वंशहृदया पहुँचे।[176] बुन्देलखण्ड में इस मार्ग में विकसित होने वाले स्थल एरण, खजुराहो, अजयगढ़ और कालिंजर हैं। विभिन्न शासन सत्ताओं ने यहाँ दुर्ग निर्माण कर विकास किया। इस मार्ग में काशी, कौशाम्बी से उज्जयिनी का सम्बन्ध था, किन्तु इसका वाणिज्यिक प्रयोग अधिक नहीं होता था।

(ख) पद्मावती–उज्जयिनी मार्ग– यह मार्ग उत्तर से दक्षिण को जोड़ता था, वस्तुतः ये बेतवा नदी के साथ–साथ चलता था, जो विदिशा से ऐरण होकर वर्तमान चन्देरी के पास से पद्म पवैया (पद्मावती) के लिये निकल जाता था। पद्मावती नाग राजाओं का केन्द्र था, यहाँ पुराणों के अनुसार नौ नागवंशियों ने शासन किया। यह मार्ग आगे की ओर चलकर उत्तर की ओर विस्तारित होक इन्द्रप्रस्थ तक विकसित हुआ। इस मार्ग का महत्व इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि प्राचीन यात्रीगण यहाँ मणिभद्र यक्ष की अपनी सुरक्षित यात्रा के लिये पूरा करते थे। वर्तमान पद्मपवैया से मणिभद्र यक्ष की मूर्ति, जिसमें उसके बहुत से गण भी हैं, प्राप्त हुयी है।[177]

इन दो प्रमुख मार्गों के अतिरिक्त एक मार्ग इन्द्रप्रस्थ से पाटलिपुत्र तक यमुना नदी में तथा पुनः गंगा नदी में नौका मार्ग था जो बुन्देलखण्ड की उत्तरी सीमा को

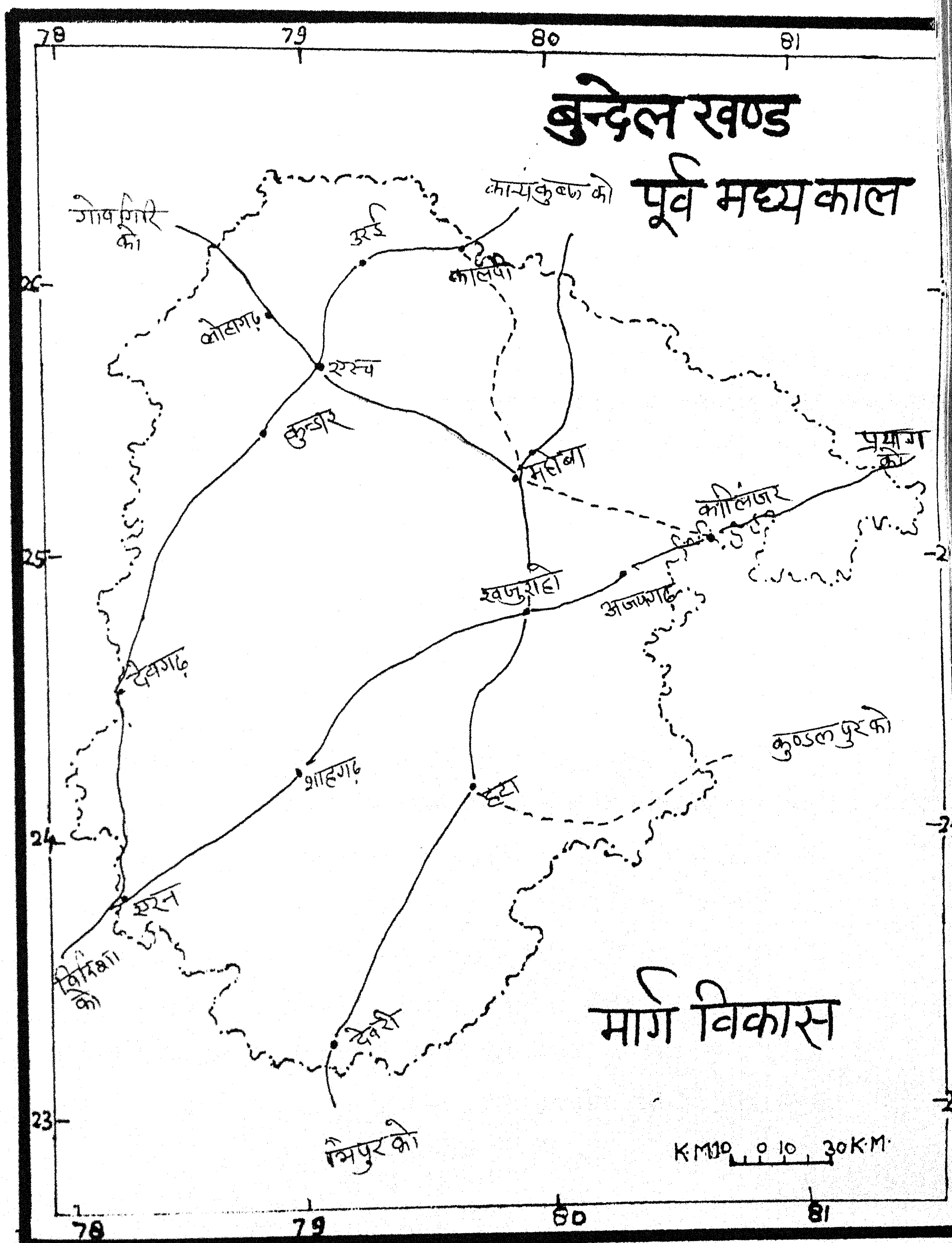
स्पर्श करता हुआ निकलता था। पश्चिम की ओर चलने के लिये काशी से नावें प्रयाग की ओर आती थीं फिर कोशाम्बी होते हुये आगे की यात्रा करती थीं।[178] यह मार्ग व्यापारियों के मध्य अधिक लोकप्रिय था। यमुना के दक्षिण तट से इसके समानान्तर स्थल मार्ग भी बना, किन्तु वह अधिक लोकप्रिय नहीं हो सका, क्योंकि नदी तट के बीहड़ और नाले इसमें अवरोध उत्पन्न करते थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस काल में कालिंजर, अजयगढ़, खजुराहों और एरण जैसे बहुत थोड़े से नगर ही बुन्देलखण्ड में विकसित हो सके थे।

(ग) पूर्व मध्यकाल में मार्ग विकास– पूर्व मध्यकाल में चेदि जनपद जेजाकभुक्ति के नाम से विख्यात हो चुका था। चन्देल शासकों ने इसका पर्याप्त विकास भी किया था। वस्तुतः कुछ समय तक इन्होंने सम्पूर्ण केन्द्रीय भारत में शासन किया। इन्होंने कई नगद बसाये तथा चन्देल संस्कृति को विकसित किया जिसके प्रमाण खजुराहो के कलात्मक मन्दिर हैं। कालिंजर, महोबा, खजुराहो, अजयगढ, जैसे प्रसिद्ध दुर्ग नगरों के अतिरिक्त लोहागढ़, उरई, कालपी, शाहगढ़ जैसे स्थान भी चन्देलों के द्वारा अस्तित्व में आये। समीपवर्ती क्षेत्रों में भी कुछ नये नगर जन्में जबकि पुराने और भी विकसित हुये। इस काल के प्रमुख मार्ग और इन पर विकसित प्रमुख दुर्ग नगरों का सारणी– 1 में देखा जा सकता हैं–

सारणी – 1

पूर्व मध्य काल में विकसित प्रमुख मार्ग[179]

कमांक	मार्ग	मार्ग में विकसित दुर्ग नगर
1.	कान्यकुब्ज–उज्जयिनी मार्ग	कालपी, एरच, देवगढ़, ऐरण, गढ़कुण्डार
2.	गोपगिरि–खजुराहो मार्ग	लोहागढ़, एरच, महोबा,
3.	प्रयाग–उज्जयिनी मार्ग	कालिंजर, अजयगढ़, खजुराहो, शाहगढ़ एरण
4.	कान्यकुब्ज–त्रिपुर मार्ग	महोबा, खजुराहो, हटा, देवरी,



बुन्देलखण्ड
पूर्व मध्य काल
मार्ग विकास
गोपगिरि को
कान्यकुब्ज को
उरई
कालपी
लोहागढ़
एरच्छ
कुण्डार
महोबा
प्रयाग को
कालिंजर
खजुराहो
अजयगढ़
देवगढ़
शाहगढ़
कुण्डलपुर को
एरन
विदिशा को
देवरी
त्रिपुर को
KM 10 0 10 30 KM
78
79
80
81
26
25
24
23

उपमार्ग	
1.	महोबा–कालिंजर
2.	कालपी–महोबा
3.	हटा–कुण्डलपुर

इस काल में प्रयाग उज्जयिनी मार्ग कुछ अधिक लोकप्रिय हुआ तथा कालिंजर, अजयगढ़ और खजुराहो को अत्यधिक महत्व प्राप्त हुआ। शाहगढ़ का नवीन दुर्ग बना परन्तु एरण की महत्ता कुछ कम हुयी। कान्यकुब्ज–उज्जयिनी का नया मार्ग विकसित हुआ यद्यपि यह थोड़ी सी दूरी के लिये प्राचीन पद्मावती मार्ग का अनुसरण करता था। यमुना का पार कर यह मार्ग कालपी से एरण होता हुआ विदिशा की तरफ जाता था। इस मार्ग में कालपी, उरई, एरच, गढ़कुण्डार तथा देवगढ़ के दुर्ग नगर विकसित हुये। इस मार्ग से कई आक्रमणकारियों ने बुन्देलखण्ड में प्रवेश किया। इस काल में एक और बड़ा मार्ग कान्यकुब्ज–त्रिपुर मार्ग विकसित हुआ। गोपगिरि तथा खजुराहो के मध्य एक मार्ग अस्तित्व में आया जो एरच से होकर गुजरता था और इसमें लोहागढ़ विकसित हुआ। उपरोक्त के अतिरिक्त महोबा–कालिंजर, कालपी–महोबा और हटा–कुण्डलपुर जैसे छोटे उपमार्ग भी विकसित हुये।

इन मार्गों के विकास से एक ओर बुन्देलखण्ड में आवागमन बढ़ा तथा व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों में दृढ़ता आयी। दूसरी ओर सेनाओं का आवागमन भी बढ़ा। रोहिला शासन के (915–918 ई0) समय इन्द्र तृतीय के नेतृत्व में राष्ट्रकूटों ने जब कन्नौज पर आक्रमण किया, तब वे इस क्षेत्र से एरण–कालपी मार्ग से होकर निकले।[180] इस मार्ग पर कालपी न केवल प्रसिद्ध नाव घाट बना वरन बुन्देलखण्ड के प्रवेश द्वार की तरह ख्याति प्राप्त की। कान्यकुब्ज उज्जयिनी मार्ग में विन्ध्यन श्रेणियों को पार करने के लिये सँकरे दर्रे के पास मदनपुर की नियंत्रक स्थिति इसी काल में बनी। यह मार्ग उत्तर–दक्षिण यात्रा करने वाली युद्धक सेनाओं में लोकप्रिय रहा है। गंगा–यमुना

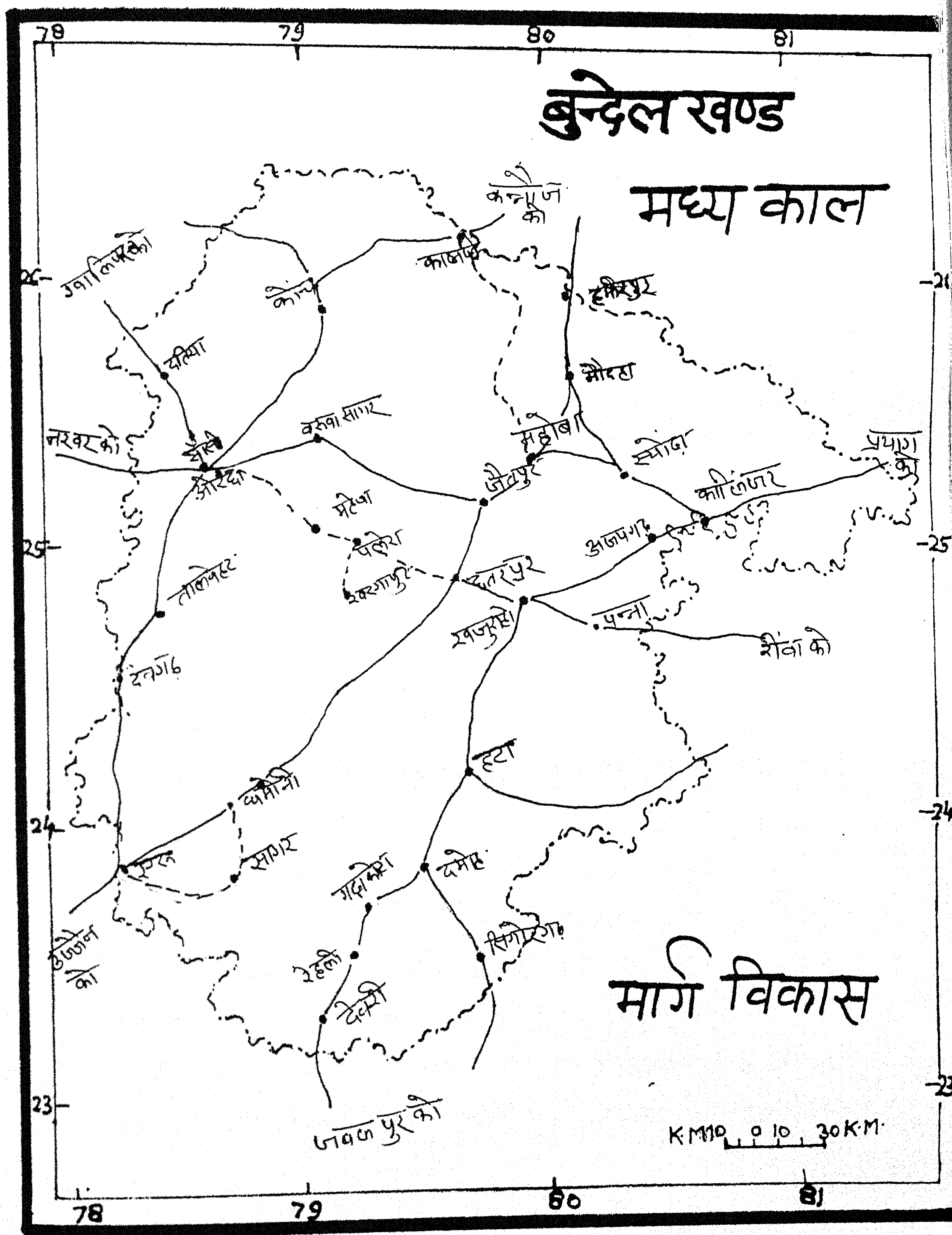
दोआब के दक्षिण की ओर यात्रा करने वाले व्यापारियों ने भी इस मार्ग का पर्याप्त प्रयोग किया।[181]

(घ) मध्यकाल में मार्ग विकास– बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मध्यकाल में दो स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ते हैं। इसके प्रथम पक्ष में यह लगातार मुस्लिम आक्रमणों से व्यथित रहा जबकि बाद के समय में यहाँ बुन्देलों ने अपनी सत्ता का अच्छा विकास किया। मध्य काल में कुछ प्राचीन नगर अपनी आभा खो बैठे, जबकि अनेक नये जन्में और विकसित हुये। मार्गों के विकास में कुछ बड़े नगरों जैसे ओरछा आदि प्रचुर प्रभाव पड़ा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नवीन नगरों के जन्म के कारण पुराने मार्गों ने अनेक स्थलों पर थोड़ा बहुत अपनी दिशा को बदला। सारणी–2 इस काल के मार्गों को स्पष्ट करती है।

सारणी – 2

मध्यकाल के मार्ग एवं विकसित दुर्ग नगर

क्रमांक	मार्ग	दुर्ग नगर
1.	कन्नौज–उज्जैन	कालपी, कोंच, मोंठ, ओरछा, तालबेहट, देवगढ़ तथा एरण
2.	ग्वालियर–महोबा	दतिया, ओरछा, बरूआसागर, जैतपुर, महोबा
3.	कालिंजर–कन्नौज	स्योंढ़ा, मौदहा, हमीरपुर
4.	प्रयाग–उज्जैन	कालिंजर, अजयगढ़, खजुराहो, छतरपुर, धमौनी, एरण
5.	कन्नौज–नरसिंहपुर	हमीरपुर, मौदहा, महोबा, जैतपुर, छतरपुर, खजुराहो, हटा, दमोह, गढ़ाकोटा, रहली, देवरी
	उप मार्ग	
1.	कालपी–महोबा	
2.	ओरछा–खजुराहो	
3.	बरूआसागर–कालपी	

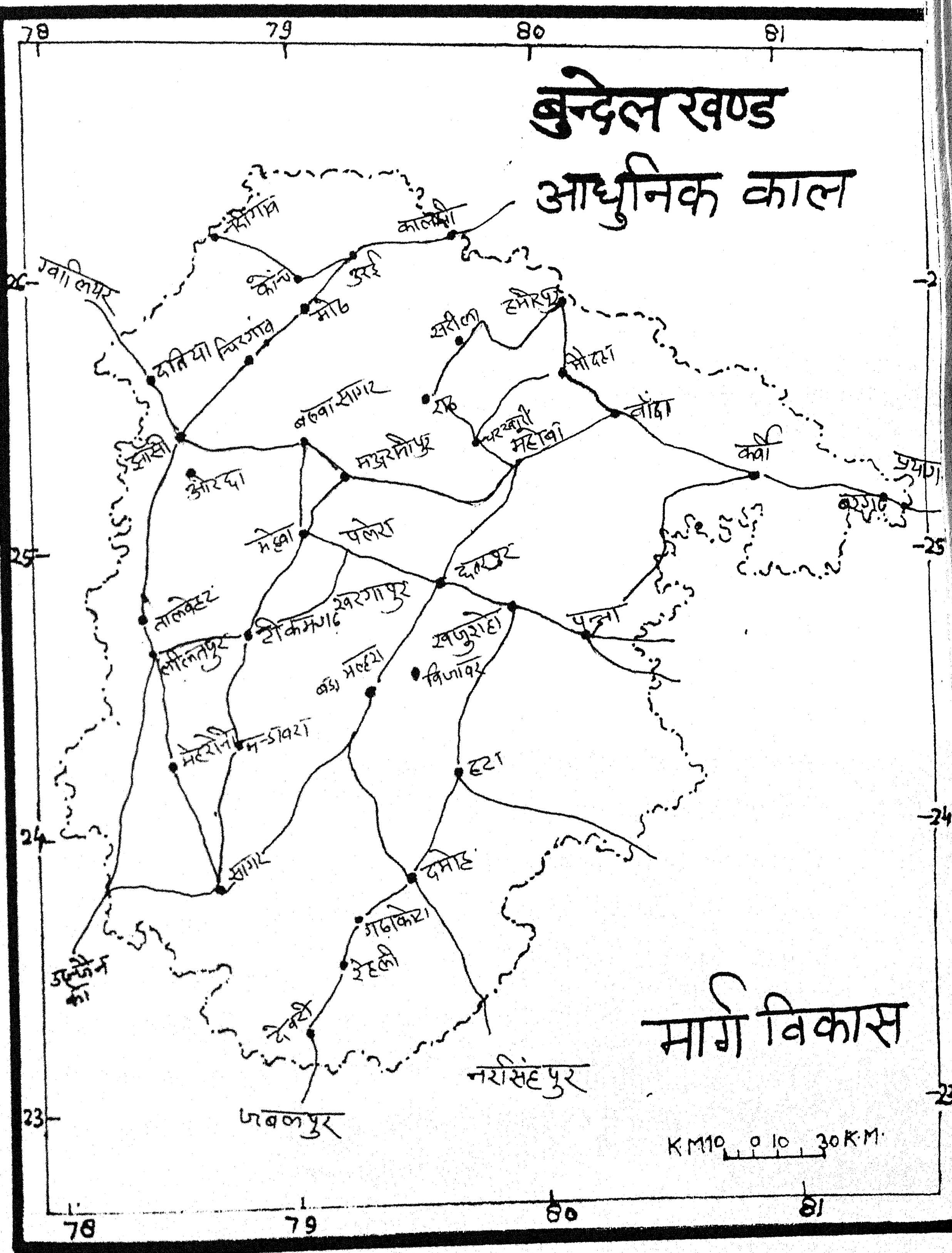


बुन्देलखण्ड
मध्य काल
मार्ग विकास
कन्नौज को
कालपी
ग्वालियर को
कोंच
दतिया
झाँसी
नरवर को
ओरछा
बरुआ सागर
हमीरपुर
मौदहा
महोबा
जैतपुर
कालिंजर
प्रयाग को
अजयगढ़
पलेरा
छतरपुर
खजुराहो
पन्ना
रींवा को
तालबेहट
देवगढ़
हटा
धामोनी
सागर
एरन
उज्जैन को
गढ़ाकोटा
दमोह
रहली
देवरी
जबलपुर को
K.M10 0 10 30 K.M.
78
79
80
81
26
25
24
23

इस काल के अध्ययन से यह तथ्य अच्छी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार से विकसित मार्ग नवीन नगरों को जन्म देते हैं जबकि नगर मार्गो की दिशा को परिवर्तित करते हैं। गुप्तकाल के देवगढ़ और एरण, चन्देलकाल के मड़फा और रसिन जैसे नगर कमजोर होने लगे जबकि कालपी, ओरछा जैसे नगरों का महत्व अत्यधिक बढ़ गया। 16वीं शताब्दी में कालपी नगर दिल्ली और बंगाल के मध्य विश्राम स्थल बना। मुगल एवं अफगान शासकों के समय यह 'लगातार युद्धों का रंगमंच' बन गया।[183] यह यमुना में सबसे महत्वपूर्ण संचार बिन्दु था।[184] 1528 में बाबर अपने चन्देरी अभियान के समय यहीं से होकर निकला।[185]

कन्नौज उज्जैन मार्ग ने थोड़ा अपनी दिशा बदली और कोंच, मोंठ, ओरछा, तालबेहट इस मार्ग में नये नगर विकसित हुये, जबकि एरच अलग पड़ गया। इसी प्रकार ग्वालियर महोबा मार्ग में कुछ परिवर्तन हुआ और इस मार्ग में दतिया, ओरछा, बरूआसागर, जैतपुर जैसे नवीन नगर प्रकाश में आये। पूर्व कन्नौज–त्रिपुर मार्ग परिवर्तन हुआ और यह हमीरपुर, मौदहा, दमोह, गढ़ाकोटा, रहली आदि नगरों का जन्मदाता बना। प्रयाग–उज्जैन मार्ग अपनी जटिलताओं तथा वन एवं पर्वतीय स्थिति के कारण अधिक विकसित नहीं हो सका। फिर भी इसमें छतरपुर, धमौनी वृद्धि को प्राप्त हुये। उल्लेखनीय है कि इस काल में प्रकाश में आये उपमार्गो ने आगे चलकर अच्छा विकास प्राप्त किया।

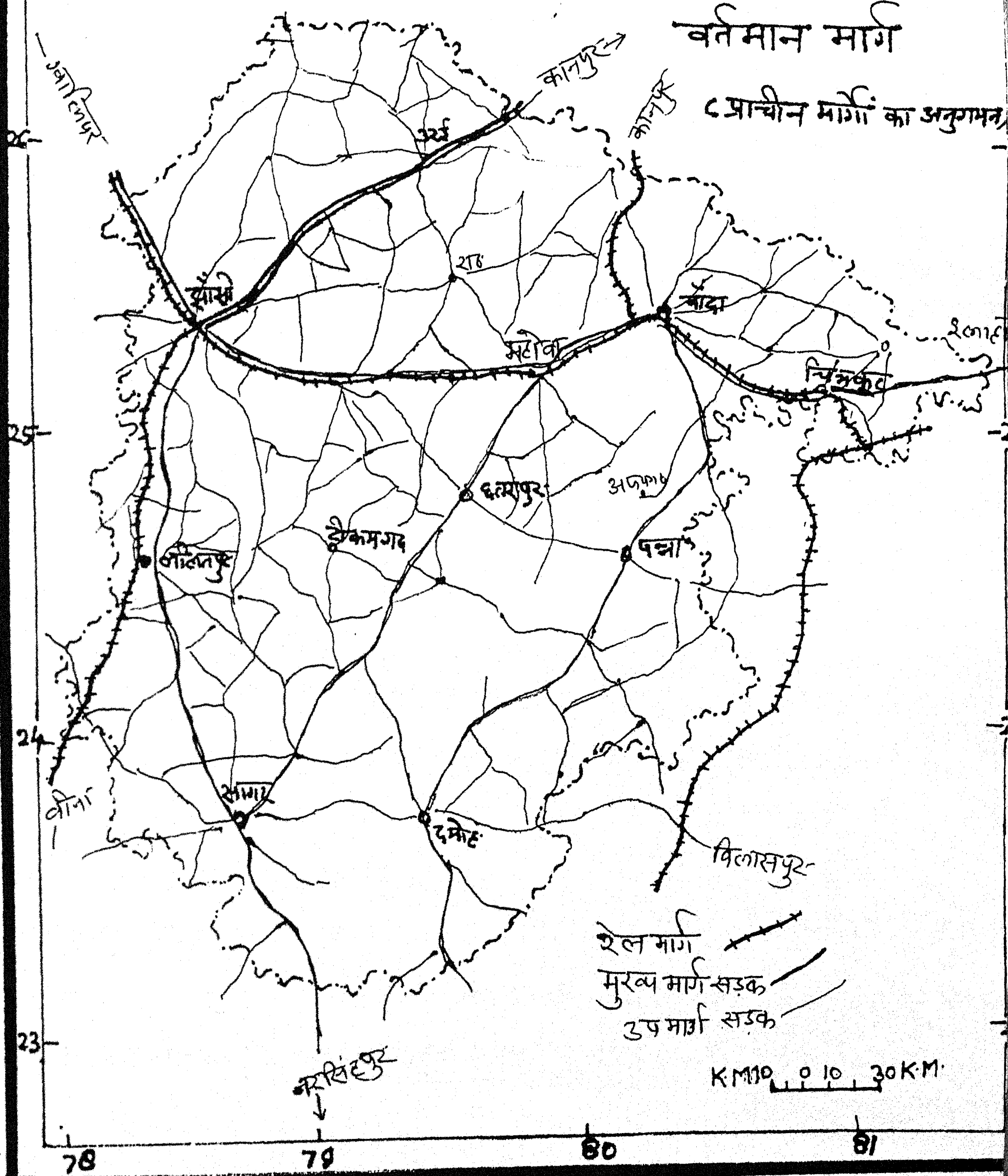
(ड.) आधुनिक काल में मार्गो का विकास– आधुनिक काल को बुन्देलखण्ड के इतिहास में मराठा एवं ब्रिटिश काल के रूप में जाना जाता है तथा दुर्ग नगरों के उत्थान पतन के लिये इसे याद किया जाता है। बुन्देला सत्ता के विभाजित होने के कारण इस काल में बहुत से दुर्ग एवं गढ़ियों का निर्माण हुआ, जिसमें कुछ अच्छी बस्तियों के रूप में विकसित हुये। मराठों ने भी कई दुर्गों का निर्माण कर अपना अस्तित्व प्रदर्शित किया। चरखारी, सरीला, जगम्मनपुर, श्रीनगर, महेवा, पलेरा, बिजावर, बड़ामलेहरा, महरौनी, मड़ावरा जैसे दुर्ग अस्तित्व में आये, किन्तु नवीन मार्गों के विकास में इनका कोई बड़ा योगदान नहीं रहा।[186] यद्यपि सभी बड़े और छोटे दुर्ग नगर



बुन्देल खण्ड
आधुनिक काल
मार्ग विकास
ग्वालियर
झाँसी
ओरछा
उरई
कालपी
हमीरपुर
महोबा
बाँदा
कर्वी
पन्ना
खजुराहो
बिजावर
हटा
दमोह
सागर
ललितपुर
टीकमगढ़
नरसिंहपुर
जबलपुर
KM10 0 10 30 KM
78
79
80
81

उपमार्गों से अच्छी तरह से जुड़े हुये थे। चरखारी, समथर, रामपुरा, दतिया, ओरछा, पन्ना, बिजावर जैसे छोटे स्टेट ब्रिटिश काल में भी अस्तित्व में थे, पर अपनी चमक खो बैठे थे। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के झंझावात ने यहाँ के अधिकांश दुर्गों को इतिहास का विषय बना दिया। इस समय दुर्गों को नष्ट करने के साथ ही नागरिकों को इस तरह प्रताड़ित किया गया कि नगर उजड़ गये। परिणामतः अनेक उपमार्ग बुरी तरह प्रभावित हुये। यह उल्लेखनीय विन्दु है कि 1857 के पश्चात जब ब्रिटिश शासन ने सुदृढ़ता प्राप्त कर ली, तब मार्ग विकास के आधारभूत कारणों में बड़ा परिवर्तन हुआ। पहले दुर्ग निर्माण, राजधानी का विकसित होना और तीर्थस्थल आदि मार्ग विकास में बड़ा योगदान देते थे, जबकि बाद में ब्रिटिश मुख्यालय, सेना की छावनियाँ और ब्रिटिश व्यापारिक केन्द्र मार्ग विकास के प्रमुख कारक बनने लगे।

बुन्देलखण्ड के वर्तमान यातायात तंत्र को देखने से स्पष्ट होता है कि प्राचीन प्रयाग–उज्जयिनी मार्ग को छोड़कर प्रायः बड़े मार्गों का आधुनिक रेलवे ट्रैक अनुगमन करते हैं, यथा–कानपुर मुम्बई रेलवे कन्नौज उज्जैन मार्ग, आगरा–इलाहाबाद रेलवे ग्वालियर महोबा मार्ग और कानपुर बाँदा रेलवे कन्नौज कालिंजर मार्ग का अनुगमन करती है। विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों के कारण प्रयाग उज्जैन मार्ग थोड़ा दक्षिण की ओर हटकर इलाहाबाद, मानिकपुर, कटनी रेलवे के रूप में विकसित हो सका। सभी बड़े प्राचीन मार्ग मराठा एवं ब्रिटिश काल तक प्रचलित रहने के कारण ही आज भी बुन्देलखण्ड में इन सभी रेलमार्गों के साथ राजमार्ग समानान्तर रूप से चलते हैं। वर्तमान में पुराने अनेक उपमार्गों के अदृश्य होने का कारण तत्कालीन नगरों का प्रभाव खोना भी है। ओरछा, कालिंजर, देवगढ़, एरण, धमौनी, एरच जैसे अपने समय के विशाल नगरां के अस्तित्व खोने के कारणों में उनका प्रमुख मार्गों से अलग हो जाना भी है।[187] अतः कहा जा सकता है कि जिस प्रकार से नगर और मार्ग किसी समय में एक दूसरे के विकास के सहायक थे, उसी प्रकार बाद में एक दूसरे के पराभव के कारण भी बने। बुन्देलखण्ड में प्राचीन मार्गों की पहचान पुरानी एवं ध्वस्त सरायों धर्मशालाओं, कुओं, सीढ़ीदार कुओं एवं बैठकों के आधार पर की जा सकती है। ये चिन्ह प्राचीन मार्ग जल की रूपरेखा प्रस्तुत करते है।


बुन्देल खण्ड
वर्तमान मार्ग
(प्राचीन मार्गों का अनुगमन)
कानपुर
ग्वालियर
उरई
झाँसी
महोबा
बाँदा
चित्रकूट
इलाहाबाद
छतरपुर
टीकमगढ़
पन्ना
ललितपुर
सागर
दमोह
बीना
बिलासपुर
नरसिंहपुर
रेल मार्ग
मुख्य मार्ग सड़क
उप मार्ग सड़क
K.M.10 0 10 30 K.M.
78
79
80
81
26
25
24
23

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. दुबे, दीनानाथ ,'भारत के दुर्ग', नई दिल्ली, 1999, पेज–214
2. शिवतत्व रत्नाकर, क0 यू0 5/त06/46
3. सिंह, राजेन्द्र,'बुन्देलखण्डः ए ट्रेडीशनल लैण्ड ऑफ फोर्ट काम्प्लेक्स,' द डेकेन ज्योग्राफर, अंक–2, पुणे–1994 , पेज–3
4. मजूमदार,आर0 सी0 तथा पुष्कलकर, ए0 डी0,' द स्ट्रगल फॉर एम्पायर ', बम्बई,1959, पेज--58
5. ब्रोकमैन, डी0 एल0 ड्रेक,' ए गजेरियर--जालौन' इलाहाबाद ,1960, पेज–117
6. पाण्डेय, ए0बी0,' अर्ली मडिवेल इण्डिया,' इलाहाबाद, 1960, पेज–114
7. वही, पेज--361
8. लाल, के0 एस0 ,' ट्विलाइट ऑफ सुल्तानेट, बम्बई,1963 पेज–60
9. पाण्डेय, ए0बी0,' पूर्वोधृत, पेज–371,372
10. लाल, के0एस0, पेज--63
11. वही, पेज–63,64
12. पाण्डेय, ए0बी0,' पूर्वोधृत, पेज–93,100
13. रिजवी, एस0 ए0 ए0,' मुगलकालीन भारतः हुमाँयू,' खण्ड–1, अलीगढ, 1961, पेज–59
14. मजूमदार,आर0 सी0,' द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल–द मुगल एम्पायर,' बम्बई,1974, पेज–95
15. इलियट, एच0 एम0 तथा डासन,जे0,' हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स, खण्ड–5, लंदन, 1974, पेज–272

16. जनपद गजेटियर जालौन ,लखनऊ,1989 ,पेज–31

17. हेग, सर वुल्जले,' कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' खण्ड–4 दिल्ली,1956, पेज–353

18. श्रीवास्तव,आशीर्वादीलाल, ' शुजाउद्दौला', खण्ड–2, आगरा,1961, पेज–125,126

19. सरदेसाई, मराठों का नवीन इतिहास,' खण्ड–6(1772–1848) शिवलाल अग्रवाला एण्ड कम्पनी, आगरा, 1964, पेज–78

20. तिवारी,गोरेलाल,'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास,' वाराणसी,1933, पेज–32

21. मजूमदार, आर0सी0,पूर्वोधृत, पेज–201

22. तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–32,46

23. वही, पेज–56

24. वहीं, पेज–59

25. मित्रा, एस0 के0,' अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो, कलकत्ता 1958, पेज–218

26. जनपद गजेटियर टीकमगढ ,भोपाल ,1995 ,पेज–43

27. सिंह प्रताप,' मध्यकालीन भारत (1526–1658)', जयपुर, 1998,पेज–157

28. वही, पेज–168

29. वही, पेज–281,282

30. वही, पेज–419, 420

31. तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–192,193

32. वही, पेज–278

33. गुप्ता, बी0डी0,' मस्तानी बाजीराव और उनके वंशज बाँदा के नबाव ,' विद्या मन्दिर प्रकाशन , ग्वालियर ,1983, पेज–631

34. ब्रोकमेन, डी0 एल0 ड्रेक,' डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ यूनाइटेड प्रोविन्सेज आगरा एण्ड अवध बाँदा', इलाहाबाद,1909, पेज–184,185

35. अबुल फज्ल, अकबरनामा, अनुवादक– एच0 बेवरिज, खण्ड –3, कलकत्ता, 1910, पेज–294, 295

36. ईस्टर्न स्टेट्स गजेटियर खण्ड –5ए, लखनऊ,1907, पेज–248

37. पॉग्सन, डब्ल्यू0 आर0,' ए हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज,' कलकत्ता, 1828, पेज–136

38. गुप्ता, वी0डी0,' महाराजा छत्रसाल बुन्देला,' दिल्ली ,1958 पेज–53,54

39. जनपद गजेटियर छतरपुर,भोपाल, 1982, पेज–48 टिप्पणी राजगढ पर ब्रिटिश अभियान के विवरण ' फारेन डिपार्टमेन्ट सीक्रेट प्रोसीडिग्स, 19 एवं 22 अक्टूबर 1778, नेशजल आर्काइव्स में सुरक्षित है।

40. मित्रा , एस0के0 पूर्वोधृत, पेज–33

41. तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–58

42. ब्रोकमैन,डी0एल0ड्रेक ,' हमीरपुर– ए गजेटियर,' इलाहावाद 1909, पेज–136

43. याहया सरहिन्दी कृत तारीख ए मुबारकशाही , अनुवादक के0के0 बसु बेफोड्रस, 1932, पेज–140

44. एटकिंसन, ई0टी0, ' स्ऑटिसटिकल एवं डिसक्रिप्टिव एकाउन्ट ऑफ नार्थ – वेस्टर्न प्रोविन्सेज (बुन्देलखण्ड) इलाहाबाद 1874, खण्ड–1, पेज–528

45. हेग, सर वुल्जले, पूर्वोधृत, पेज–314

46. सरदेसाई, जी0 एस0, 'न्यू हिस्ट्री ऑफ मराठाज,' खण्ड–2 बम्बई,1948, पेज–105,106

47. रिजवी, एस0 ए0 ए0 (संपा0),' फ्रीडम स्ट्रगल इन यू0पी0' खण्ड–4, लखनऊ,1959, पेज–836

48. लुआर्ड, सी0ई0,' ईस्टर्न स्टेट्स गजेटियर (बुन्देलखण्ड) खण्ड –6ए , लखनऊ,1959, पेज–836

49. तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–127

50. सिंह प्रताप, पूर्वोधृत, पेज–506

51. तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–108

52. वही , पेज–149

53. वही , पेज–184

54. जनपद दमोह ,भोपाल ,1970 ,पेज–210

55. वही, पेज–26

56. तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–190

57. जनपद सागर ,भोपाल ,1970 ,पेज–514

58. वही,पेज–515

59. वही, पेज–524

60. वही

61. वही

62. बोस, एन0 एस0 ,' द हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज ,' कलकत्ता 1956, पेज–107,108

63. रिजवी,एस0ए0ए0, 'उत्तर तैमूर कालीन भारत,' अलीगढ़ 1959, पेज–27

64. गुप्ता, बी,डी0,' महाराजा छत्रसाल बुन्देला,'पूर्वोधृत पेज–20

65. वही, पेज–23

66. तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–123

67. वही, पेज–145

68. वही, पेज–203

69. वही, पेज–122

70. वही, पेज–218

71. वही, पेज–258

72. गोरेलाल, तिवारी, पूर्वोधृत, पेज–362,364 तथा विष्णुभट्ट कृत 'आँखो देखा गदर', दिल्ली, पेज– 187

73. जनपद गजेटियर जालौन , पूर्वोधृत,पेज–41

74. तिवारी गोरेलाल, पूर्वोधृत, पेज–58,59

75. जनपद गजेटियर हमीरपुर, पूर्वोधृत,पेज–46

76. ट्वाय सिडनी,' द स्ट्रांगहोल्ड्स आफ इण्डिया,' लंदन ,1957 ,पेज–4

77. पण्डेय, ए0पी0,' चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास' प्रयाग, 1968, पेज–134

78. वहीं, पेज–140,141

79. रॉय, वी0 एन0,' कालंजर : ए हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल, बाँदा,1992,पेज–21

80. ईस्टर्न स्टेट्स गजेटियर– ओरछा, लखनऊ,1907, पेज–67

81. पाण्डेय, ए0पी0 , पूर्वोधृत, पेज–134

82. मिश्र, केशरी,' चन्देल एवं उनका राजत्व काल,' पेज–161

83. वही, पेज–162

84. शुक्ला, साधना, 'प्राचीन भारत में अपराध एवं दण्ड,' प्रज्ञा प्रकाशन, कानपुर ,1987, पेज–75

85. जनपद गजेटियर झाँसी, लखनऊ,पेज–35

86. पाण्डेय, ए0पी0 , पूर्वोधृत, पेज–138

87. अलबरूनी कृत किताब उल हिन्द, हिन्दी अनुवाद– कयामुद्दीन अहमद, दिल्ली, 1998, अध्याय–65, पेज–158

88. सिंह, डा0 राजेश,' महाभारत कालीन न्याय पद्वति,' अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी, 1998, न्यायिक पद्वति एवं साक्ष्य विधियाँ, पेज–203

89. वही, पेज–46

90. याज्ञवल्क्य स्मृति, (मिताक्षरा सहित हिन्दी अनुवाद नारायण शास्त्री), चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1:258

91. जनपद गजेटियर झाँसी, पूर्वोधृत, पेज–344

92. जनपद गजेटियर सागर, पूर्वोधृत, पेज–524

93. पाण्डेय, ए0पी0 , पूर्वोधृत, पेज–139

94. त्रिपाठी, काशी प्रसाद ,' बुन्देलखण्ड का वृहत इतिहास –राजतंत्र से जनतंत्र,' टीकमगढ,1991, पेज–315

95. मिश्र, केशरी, पूर्वोधृत, पेज–159

96. ठकुरैल, पुष्पा, 'बुन्देलखण्ड नोन थ्रो द क्वायंस', बुन्देलखण्ड दर्पण , सप्तम विम्ब, 1998, पेज–194

97. गुप्त मोहनलाल,' एरच के ईसापूर्व के सिक्के' बुन्देलखण्ड दर्पण सप्तम बिम्ब, झाँसी,1999, पेज–51

98. सिंह, दीवान प्रतिपाल,'बुन्देलखण्ड का इतिहास,' वाराणसी 1929,पेज–108

99. ठकुरैल, पुष्पा, पूर्वोधृत, पेज–196

100. त्रिपाठी, काशीप्रसाद, पूर्वोधृत, पेज–309

101. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वोधृत, पेज–107,109

102. त्रिपाठी , काशीप्रसाद, पूर्वोधृत, पेज–309,310

103. गुप्त मोहनलाल,' झाँसी की बलबन्तनगर टकसाल ' बुन्देलखण्ड दर्पण सप्तम बिम्व, झाँसी,199800, पेज–51

104. शर्मा, लखपतराम,'रत्नों और खजानों का देश भारत,' झाँसी, 1976, पेज–138,148

105. मालीवाल, बी0एन0,' सैन्य विज्ञान,' हापुड, 1979, पेज–65

106. मिश्र केशरी, पूर्वोधृत, पेज–166

107. डे, यू0 एन0,' द मुगल गवर्नमेन्ट,' मुंशीराम मनोहर लाल, नई दिल्ली, 1970, पेज–155

108. टिप्पणी– ये सूचनायें मुख्य रूप से गुरसराय से प्राप्त हुयी।

109. हवीव, इरफान,' पर्शियन बुक राइटिंग एण्ड बुक यूज इन द प्री प्रिटिंग एज,' इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के 66 वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोध पत्र, शान्ति निकेतन,2006, पेज–1

110. सुल्लेरे , सुशील कुमार,' राजनैतिक शक्ति का केन्द्र बिन्दु कालिंजर,' बी0 एन0 रॉय कृत, 'कालंजर : ए हिस्टोरिकल एवं कल्चरल प्रोफाइल' से उद्धृत, पेज–9 (हिन्दी खण्ड)

111. मिश्र,केशरी, पूर्वोधृत, पेज–182

112. सिंह , पुरूषोत्तम, 'हिस्टोरिकल टैंक्स ऑफ बुन्देलखण्ड : यूनीक सोर्स ऑफ इकोलोजिकल वैलेंस,' इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के 65 वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोधपत्र, बरेली ,2004,पेज–1

113. वही, पेज–2

114. पाण्डेय, ए0पी0,पूर्वाधृत, पेज–213

115. सिंह, पुरूषोत्तम , पूर्वाधृत, पेज–9

116. सिंह, पुरूषोत्तम, 'रिलीजियस स्पॉट्स विद इन फोर्ट्स : ए स्टडी इन कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड', इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के 66 वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोधपत्र, शान्ति निकेतन,2006, पेज–1

117. वही पेज–3

118. जनपद गजेटियर टीकमगढ़ , पूर्वोधृत, पेज–354

119. जनपद गजेटियर सागर, पूर्वोधृत, पेज–527

120. वही, पेज–512

121. जनपद गजेटियर छतरपुर , पूर्वोधृत, पेज–305

122. दहेजा, विद्या,' रॉयल पैट्रन्स एण्ड ग्रेट टेम्पिल आर्ट,' मार्ग पब्लिकेशन, वम्बई,1988, पेज–135

123. जनपद गजेटियर छतरपुर , पूर्वोधृत, पेज–307,321

124. जनपद गजेटियर सागर , पूर्वोधृत, पेज–526

125. ब्रोकमैन, डी0 एल0 डेक,' डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ यूनाइटेट प्रोविन्सेज आगरा एण्ड अवध –बाँदा, पूर्वोधृत, पेज–242

126. जनपद गजेटियर सागर , पूर्वोधृत, पेज–520

127. वहीं, पेज–522

128. वहीं, पेज–525

129. सिंह पुरूषोत्तम , पूर्वोधृत, पेज–8

130. "कालंजरति इति कालंजरः" कालिंजर पर आज भी चरितार्थ है।

131. पाठक, एस0 पी0 ,' सर्वधर्म समभाव एवं राष्ट्रीय एकता की परम्परायें,' बुन्देलखण्ड दर्पण, षष्ठ बिम्ब, झाँसी, 1998, पेज–58, 59

132. पाण्डेय, ए0पी0,पूर्वाधृत, पेज–8

133. मिश्र,केशरी, पूर्वोधृत, पेज–215

134. पाण्डेय, ए0पी0,पूर्वाधृत, पेज–8

135. कीथ, प्रो0 ए0 बेरीडेल,' सस्कृत साहित्य का इतिहास,' हिन्दी अनुवाद– मंगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1960, पेज–207

136. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वाधृत, पेज–256,310

137. वहीं, पेज–258,309

138. गुप्ता, बी0डी0,' लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ महाराजा छत्रसाल बुन्देला,' दिल्ली,1980, पेज–97,99

139. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वाधृत, पेज–256,310

140. मिश्र,केशरी, पूर्वोधृत, पेज–253

141. वही, पेज–257

142. वही, पेज–259

143. सिंह, दीवान प्रतिपाल, पूर्वाधृत, पेज–230

144. पाण्डेय, ए0पी0,पूर्वाधृत, पेज–186

145. त्रिपाठी, आभा,'चन्देलकालीन भूमिदान पत्रों का महत्व इतिहास, अंक –1, भाग–1, नई दिल्ली,2003, पेज–99

146. एपिग्राफिया इण्डिका, भाग–1, पेज–122,135

147. पाण्डेय, ए0पी0,पूर्वाधृत, पेज–187

148. शर्मा, रामशरण,' भारत में सामंतवाद ,' दिल्ली ,1998, पेज–8

149. कनिंघम , ए0 , आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, भाग–21, पेज–51

150. सिंह ,पुरूषोत्तम,' स्वतत्रता पूर्व बुन्देलखण्ड के राज्याश्रय एवं मावन संसाधन– एक ऐतिहासिक पर्यवेक्षण,' राष्ट्रीय सेमीनार में प्रस्तुत शोध पत्र, टीकमगढ़, 2004, पेज–3

151. वही , पेज–4

152. सिंह , राजेन्द्र,' द ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ द टाउन्स इन बुन्देलखण्ड,' पैटर्न्स ऑफ अरवन चेन्ज इन इण्डिया पर राष्ट्रीय सेमीनार, बी0 एच0 यू0 ,1989 , पेज–1

153. वही , पेज–1,2

154. वही, पेज–3

155. वही, पेज–3,4

156. सिंह राजेन्द्र,' इम्पैक्ट ऑफ फोर्टीफिकेशन आन इंडीजिनियस अरबन हैबिटेट इन बुन्देलखण्ड (यू0पी0),' सेटेलमेन्ट सिस्टम इन इण्डिया, खण्ड–2 सम्पा0 एस0 डी0 मौर्या, इलाहाबाद 1991, पेज–211

157. शास्त्री , ईश्वरचन्द्र (सम्पा0),' उक्तिकल्पतरू' कलकत्ता,1917 , पेज–23

158. सिंह, ओ0पी0, नगरीय भूगोल' तारा प्रकाशन, 1979, पेज–239

159. सिंह , राजेन्द्र ,पूर्वाधृत, पेज–211,212

160. सिंह , राजेन्द्र, 'बुन्देलखण्डः ए ट्रेडीशनल लैण्ड ऑफ फोर्ट काम्प्लेक्स, द डेकेन ज्योग्राफर, वोल्यूम–32, अंक–2, पुणे,1994, पेज–7

161. डे, नन्दलाल,' द ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ एन एनसियेन्ट मेडिवेल

इण्डिया'

162. तिवारी , बद्रीप्रसाद (सम्पा0),' आदित्य ग्रंथ माला,' खण्ड–1 चरखारी, सं0 1994, पेज–27

163. सिंह, राजेन्द्र,' इम्पैक्ट ऑफ फोर्टीफिकेशन ऑन इंडीजिनियस अरबन हैबिटेट इन बुन्देलखण्ड (यू0पी0)', पूर्वोधृत, पेज–211

164. त्रिपाठी, काशीप्रसाद, पूर्वोधृत, पेज–399,400

165. अथर्व वेद,12–1–47

166. पाणिनि अष्टाध्यायी, सम्पा0 सतीश चन्द्र बसु, बनारस,1897, 5–300

167. अर्थशास्त्र, सम्पा0 यौली, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, 1923, पेज–53, टिप्पणी,' नवभागे,,, वा कारयेत।

168. मोतीचन्द्र,'सार्थवाह' विहार राष्ट्रभाषा परिषद , पटना,1953, पेज–6

169. मैकिण्डल, जे0 डब्ल्यू,' एनसिएन्ट इण्डिया डेसकाइब्ड बाई मेगस्थनीज ,'

170. मिश्र,केशरी, पूर्वोधृत, पेज–229

171. जातक कथा, कावेल (सम्पा0) , कैम्ब्रिज,1905, पेज–48

172. सिंह , राजेन्द्र, 'इवोल्यूशन ऑफ रूट्स इन बुन्देलखण्ड –ए स्टडी इन हिस्टोरिकल ज्योग्राफी', द डेकेन ज्योग्राफर, वाल्यूम–27, पुणे,1989, पेज–2

173. रामायण, भाग–1 , गीताप्रेस गोरखपुर, 1983,2–91, श्लोक –1,11

174. महाभारत, पं0 रामनायण दास शास्त्री, गीताप्रेस, गोरखपुर, वन पर्व, श्लोक 1–9

175. अग्रवाल, वी0 एस0 ,' इण्डिया एज नोन टू पाणिनि,' लखनऊ, 1953, पेज–242

176. मोतीचन्द्र,' सार्थवाह', पूर्वोधृत, पेज–17

177. लाहा, विमल चरन ,' हिस्टोरिकल ज्योग्राफी ऑफ एनसिएन्ट इण्डिया',1972, पेज–542, 543,554

178. जनपद गजेटियर झाँसी , पूर्वोधृत, पेज–27

179. सिंह , राजेन्द्र ,पूर्वोधृत, पेज–5

180. जनपद गजेटियर झाँसी , पूर्वोधृत, पेज–27

181. वही, पेज–35

182. सिंह , राजेन्द्र ,पूर्वोधृत, पेज–7

183. जनपद गजेटियर जालौन , पूर्वोधृत, पेज–7

184. वही, पेज–137

185. ब्रोकमैन, डी0एल0ड्रेक,' ए गजेटियर–जालौन, पूर्वोधृत, पेज–118

186. सिंह , राजेन्द्र ,पूर्वोधृत, पेज–8,9

187. वही, पेज–10

अध्याय – 6
वर्तमान स्थिति एवं उपयोग

समय एक समान नहीं रहता और इतिहास सदैव करवट बदलता है। यश, वैभव, कीर्ति, राजनीति, षड्यन्त्र, आक्रमण उत्सव आदि के मानदण्ड बुन्देलखण्ड के दुर्ग समय के प्रभाव से अपने को नहीं बचा सके। ब्रिटिश शक्ति का बुन्देलखण्ड में प्रवेश यहाँ के वैभवशाली राजनीतिक क्षितिज के अन्त का प्रारम्भ था। भारत में अंग्रेजों की राजनीति एवं कूटनीति का अध्ययन अनेक इतिहासकारों द्वारा किया गया है, परन्तु सम्भवतः कम लोगों का ध्यान इस ओर गया है कि यहाँ के दुर्गों का विनाश अंग्रेजी सत्ता नीति का एक महत्वपूर्ण भाग था विट्रिश सत्ता ने उन्नींसवी सदी के उत्तरार्द्ध से उन मजबूत किलों को नष्ट करने की ठानी, जिनमें सुरक्षित रह कर थोड़े से स्वतंत्रता प्रेमी देशी शासक दीर्घ अवधि तक उनसे मुकावला कर सकते थे।

बुन्देलखण्ड में अंग्रेजों का प्रवेश दुर्गो का दुर्भाग्य बन कर आया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बुन्देलखण्ड में मराठे शक्तिशाली थे और क्षेत्रीय बुन्देला एवं अन्य शासक उन्हें पसन्द नहीं कर रहे थे। कम्पनी सरकार भी स्थानीय राजाओं का सहयोग चाहती थी, क्योंकि उनके सहयोग के बिना मराठा प्रभाव नष्ट नहीं हो सकता था और मराठा सत्ता के विनष्ट हुये बिना अंग्रेजी सत्ता की स्थापना दुष्कर थी। 1803 से 1823 के मध्य यथा स्थिति एवं सुरक्षा का वचन देकर कम्पनी ने देशी कम्पनी ने देशी शासकों के साथ इकरार किये तथा उन्हें सनदें दी। इस प्रकार कम्पनी को मराठा प्रभाव समाप्त करने के अवसर प्राप्त हुये है।[1] 1813 के पश्चात सागर– नर्मदा टेरीटरीज प्रान्त का निर्माण करने के लिये सागर, धमौनी, गढ़ाकोटा आदि क्षेत्र मराठों से छीन लिये गये।[2] इसके पश्चात जालौन और कोंच के बड़े मराठा क्षेत्रों में भी यही स्थिति हुयी। विलियम वेंटिक की 1835 में 20 वर्षीय भू प्रबन्धन नीति एवं कुछ अन्य छिटपुट अपमानजनक घटनाओं के परिणाम स्वरूप दक्षिणी बुन्देलखण्ड के कुछ बुन्देला, लोधी एवं गोंड जाति के जमींदार एवं मालगुजार कम्पनी से असंतुष्ट हो गये। धीरे–धीरे

ये सभी ब्रिटिश सत्ता के विरोध में आ गये। नाराट का मधुकर शाह बुन्देला, चन्द्रापुर का जवाहर सिंह बुन्देला, गुड़ा का गणेश जू बुन्देला, हीरापुर का हृदयशाह लोधी एवं मदनपुर का दैलन शाह गौड़ खुलकर बागी हो गये तथा अंग्रेजों को इनके दमन के बहाने क्षेत्र में अपना आतंक स्थापित करने का अवसर प्राप्त हो गया।[3] जैतपुर का शासक पारीक्षत बुन्देला भी चरखारी के दावे के प्रश्न पर असहमत होने के कारण अंग्रेजों के विरूद्ध हो गया था। अंग्रेजों की हड़प नीति एवं अपमानजनक व्यवहार से क्षेत्रीय शासक लगातार असंतुष्ट होते जा रहे थे तथा क्षेत्रीय जनजीवन भी इन नवीन विदेशियों को आसानी से स्वीकार कर नहीं पा रहा था। 1841 में मोरों को मारने की छोटी सी घटना ने चिरगाँव के राव बखत सिंह को विद्रोही बना दिया और परिणाम स्वरूप चिरगाँव की गढ़ी तोपों से उड़ा दी गयी[4]। 1842 से 1844 के मध्य इन क्षेत्रीय विद्रोहियों के दमन के नाम पर कम्पनी ने बुन्देलखण्ड में अपनी पकड़ मजबूत कर ली थी जिससे यहाँ के अनेक शासक घुटन महसूस करने लगे थे। यह आग 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में विस्फोट बन कर फूट पडी।[5]

1857 के स्वतंत्रता संघर्ष का दुर्गो पर प्रभाव– बुन्देलखण्ड में 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के अन्तर्गत लड़े गये युद्ध इस क्षेत्र के इतिहास का वह अमूल्य पृष्ठ है, जिसके युगान्तरकारी प्रभाव ने यहाँ की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों को हिला कर रख दिया । पुण्यश्लोकी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई राजा मर्दन सिंह, राजा वखत बली, बाँदा का नबाब अलीबहादुर द्वितीय एवं अनेक जागीरदारों एवं जमींदारों ने सामान्य जन के साथ मिल कर क्रान्ति की अलख जगायी। बिठूर के मराठों ने भी इसमें कम योगदान नही दिया। यद्यपि कुछ क्षेत्रीय शासकों ने अंगेजो को सहयोग देकर अथवा मौन रहकर इन क्षणों में अपयश भी लिया किन्तु इन पृष्ठों में इस स्वंतत्रता संग्राम के विशेष विवरण की न तो आवश्यकता है और न ही यह समीचीन होगा। अतः इस स्वतंत्रता संघर्ष में बुन्देलखण्ड के दुर्गो के विनाश की कथा संक्षिप्त में प्रस्तुत है–

मराठों के अतिरिक्त जो अन्य क्षेत्रीय शासक अंग्रेजो से असंतुष्ट थे उनमें शंकरशाह रघुनाथ गौड़ (दक्षिणी बुन्देलखण्ड), सरजू प्रसाद (विजय राघवगढ), दैलनशाह गौड़ (मदनपुर–नरसिंहपुर), किशोर सिंह लोधी (हटा), फाजिल मुहम्मद (राहतगढ़), बखत बली (शाहगढ एवं गढ़ाकोटा), मर्दन सिंह (बानपुर), लक्ष्मीबाई (झाँसी , केशवराव (गुरसराय) राजा परीक्षत की विधवा रानी (जैतपुर) माधवराव नारायण राव तरौंहा, कर्वी), नवाब अलीबहादुर द्वितीय (बाँदा) , रणमत सिंह (मनकहारी) आदि प्रमुख थे। संघर्ष के प्रारम्भ में थोड़े अन्तराल से ये सभी सम्मिलित हो गये। झाँसी, नौगाँव , सागर, दमोह, हमीरपुर, जबलपुर की अंग्रेज छावनियों में विद्रोही दल टूट पड़े इस विद्रोह का लाभ उठाकर कुछ शासकों ने आसपास के क्षेत्रों पर अधिकार करना प्रारम्भ कर दिया। कम्पनी ने बुन्देलखण्ड में विद्रोह के दमन के लिये सर ह्यूरोज को सेन्ट्रल इंडिया फोर्स का कमाण्डर नियुक्त किया तथा उसकी सहायता के लिये हैमिल्टन एवं ह्विटलॉक को नियुक्त कर दिया।[6]

ह्यूरोज अपने दोनों सहयोगियों के साथ 24 जनवरी 1859 को सर्वप्रथम राहतगढ़ पहुँचा। विद्रोहियों को परास्त करनी हुयी ब्रिटिश सेना नौनागढ, बरौदिया चन्द्रपुर जीतते हुयी सागर पहुँची । सागर में अधिकार के पश्चात अमझरा घाटी में पाली नामक स्थान पर अंगेजों तथा विद्रोहियों में संघर्ष हुआ । संघर्ष के क्रम में बखत बली तथा मर्दन सिंह ने शाहगढ़, धमौनी, सौरई मालथौन, नारहट, अमझराघाट, मदनपुर और ठनगनाघाट पर अपने मोर्चे लगाये, परिणामतः इन दुर्गो को ध्वस्त होना ही थी।[7] गढ़ाकोटा, बरौदिया की गढी मालथौन एवं मंड़ावरा दुर्ग में भी विद्रोहियों ने ह्यूरोज का मुकाबला किया जिसमें विजय प्राप्त करने के बाद अंगेजों ने इन सभी किलों को तोड़ दिया।[8] ह्यूरोज ने सेना के एक भाग का जिसमें लारेन्स, कारपेन्टर और मैकडफ जैसे सशक्त सेनापति थे, ह्विटलॉक के नेतृत्व में उ0प्र0 बुन्देलखण्ड के दमन के लिये भेजा। इस सेना ने हिंडोरिया के किशोर सिंह लोधी तथा जैतपुर की रानी को परास्त कर पन्ना–छतरपुर होते हुये बाँदा की ओर कूच किया तथा कर्वी तरौहा एवं बाँदा का सफलता पूर्वक दमन किया।[9] आलीपुर, राठ पनवाड़ी और हमीरपुर में भी इसी सैनिक टुकड़ी ने स्वतंत्रता संग्राम का दमन किया।[10] इस बड़े क्षेत्र को अधीन करने के बाद

हयूरोज ने झाँसी पर ध्यान केन्द्रित किया अब तक कुछ क्षेत्रीय शासक हयूरोज की सहायता में आ गये थे और वह बानपुर को ध्वस्त करता हुआ झाँसी पहुँच गया मार्ग में बिलौरी जमालपुर तथा तालबेहट के किले मर्दन सिंह को परास्त करने के क्रम में तोड़ दिये गये। इसी समय कैलगुवां की गढ़ी भी ध्वस्त कर दी गयी।[11] रानी लक्ष्मीबाई के झाँसी छोड़कर कालपी भागने के क्रम में अंग्रेजी सेना ने पीछा करते हुये लोहागढ़, कोंच, माधोगढ़, गोपालपुरा आदि गढ़ियों को ध्वस्त किया । सिरसागढ़ का प्रसिद्ध चन्देल दुर्ग भी अंग्रेजों की भेज चढ़ गया।[12]

अंग्रेजों के इस अभियान ने बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण की परम्परा का अन्तिम काला पृष्ठ जोड़ा, जिसमें 30 किले और गढ़िया अपना अस्तित्व खो बैठे । इन नष्ट होने वाले किलों में जैतपुर, तालबेहट, बानपुर, मेहरौनी, ईसानगर, नरसिंहगढ, मालथौन, नरयावली, राहतगढ़ और दमोह जैसे महत्वपूर्ण किले शामिल थे। दुर्गो के इस सामूहिक विनाश के पश्चात बुन्देलखण्ड में किसी किले या गढ़ी का निर्माण नही हुआ। यह तथ्य प्रमाणित करता है कि अंग्रेज बुन्देलखण्ड में दुर्गो के प्रभाव से भयभीत थे यह लिखने में शोधार्थी को कोई संकोच नही है कि इस समय जिन किलों और गढ़ियों का अस्तित्व प्रभावित नहीं हुआ, वे सभी इस संग्राम के समय कम्पनी सरकार के सहयोगी थे और निश्चय पूर्वक इस संग्राम के बाद उनकी राजगद्दियों और सनदें पुरस्कार स्वरूप 1947 तक कायम रही। इन सहयोगियों में ओरछा, दतिया, समथर, चरखारी, अजयगढ के अलावा पन्ना , छतरपुर, बिजावर, खनियाधाना, सरीला, लुगासी, बेरी, बावनी, बीहट, आलीपुर, गौरिहार, चौबियाना, गरौली सम्मिलित थे।[13]

6.1 पुरातत्व की दृष्टि से महत्व

इतिहासकारों का मत है कि गंगा घाटी में आर्यो के विस्तार के समय यमुना के दक्षिणी भाग में चम्बल, बेतवा तथा केन से आवेष्टित क्षेत्र में जिसमें वर्तमान बुन्देलखण्ड विद्यमान है[14] आदिम या अनार्य जातियों का निवास था।[15] इनमें प्रमुख जातियाँ कोल, भील एवं गोंड थी।[16] आदिम निवास के परिणामस्वरूप चट्टानों एवं गुफाओं में बने हुये प्राचीन शैल चित्रों का स्मरण किया जा सकता है।[17] हस्त कुठार सभ्यता के अवशेष

बुन्देलखण्ड से प्राप्त होते है।[18] सोनार, बीरमा तथा कोपरा नदियों के तट पर दमोह जिले में प्राप्त पुरा पाषाण काल के औजार भी इस तथ्य को प्रमाणित करते है।[19] धीरे धीरे यह भू भाग बसता गया और इसे महिमा मंडित करने में मौर्य, गुप्त , कलचुरि, गुर्जर–प्रतिहार, गोंड, चन्देल तथा बुन्देला राजवंशों ने अपना योगदान दिया। बुन्देलखण्ड में नाग एवं वाकाटक संस्कृतियों के चिन्ह भी उपलब्ध होते है। इन राजवंशों के शासन काल के स्थापत्य, मूर्तियों, चित्र, शिलालेख, दानपत्र, सिक्के सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में विखरे हुये थे। इनमें से अधिकांश इतिहासकारों एवं पुरात्त्वविदों तथा प्राचीन संस्कृत के अध्येताओं के हाथों से होते हुये देश और विदेश के प्रमुख संग्रहालयों की शोभा बन चुके है[20] अथवा अब अज्ञात हो चुके है। अनेक महत्वपूर्ण पुरातात्विक सामग्री विशेपकर मूर्तियाँ तस्करों की शिकार हो चुकी है। बुन्देलखण्ड का यह पुरातात्विक भण्डार राजकीय संरक्षण के अभाव एवं प्रबुद्ध जनों की उपेक्षा का शिकार रहा है। यद्यपि सर एलेक्जेंडर कनिंघम, प्रो0 कीलहॉर्न, टीफैन्थेलर, आर0 के0 दीक्षित जे0 पी0 पंत, आर0 पी0 जोशी, एस0 शिवराममूर्ति, जे0के0 रॉय, उदय नारायण राय जैसे पुरातत्वविदों ने बुन्देलखण्ड की इस पुरातात्विक सम्पदा का न केवल निरीक्षण किया बल्कि इसकी प्रशंसा करते हुये उपयोगी विश्लेषण प्रस्तुत किये।[21]

बुन्देलखण्ड की यह पुरातात्विक सामग्री अधिकांशतः दुर्गो के अन्तर स्थित थी। कालान्तर में या तो यह दुर्गो के बाहर ले जायी गयी अथवा दुर्ग के ध्वस्त हो जाने पर अपने आप विखर गयी। अनके प्राचीन दुर्ग स्वयमेव पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। जबकि कुछ पुरातात्विक स्थल दुर्ग सीमा से बाहर भी प्राप्त होते है।

बुन्देलखण्ड की पुरातात्विक सामग्री का कुछ भाग भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने संरक्षित घोषित कर रखा है तथा अभी भी बहुत सी सामग्री संरक्षित घोषित करने के योग्य है। पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के द्वारा ग्रहीत एवं संरक्षित घोषित सामग्री को बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण परम्परा के दृष्टिकोण से तीन भागों में बाँटना उपयुक्त होगा–पुरातात्विक दुर्ग, दुर्गस्थल के अन्दर पुरातात्विक सामग्री, दुर्ग सीमा के बाहर पुरातात्विक सम्पदा।

पुरातात्विक दुर्ग – बुन्देलखण्ड के दुर्ग तथा दुर्गस्थलों में फैली हुयी पुरातात्विक सामग्री का संकलन किसी नियोजित आधार पर अभी तक नहीं किया गया है। लगभग 25 दुर्ग स्थल भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग में सूचीबद्ध हैं और अध्ययन क्षेत्र में और कई ऐसे स्थल है, जिन्हें क्षेत्रीय जानकारों के दृष्टिकोण से पुरातत्व विभाग के द्वारा सूचीबद्ध किया जाना चाहिये। बटियागढ़, सिंगोरगढ़, राजनगर, जटाशंकर, अजयगढ़, पन्ना, महोबा, कालिंजर, मड़फा, रसिन, धमौनी, गढाकोटा, खिमलासा, राहतगढ़, शाहगढ़, देवरी, गौराझामर, दतिया, कन्हरगढ़, गढ़कुंडार, ओरछा, कालपी, झाँसी, देवगढ़ तालवेहट, मदनपुर, खजुराहो, राजगढ़ आदि वे प्रमुख स्थल है, जिन्हें पूर्ण या आंशिक रूप से भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने अपने संरक्षण में लिया है। वे स्थल जहाँ दुर्ग अभी अस्तित्व में है एवं सम्पूर्ण दुर्ग को ए0एस0आई0 ने अपने संरक्षण मे लिया है, में से कुछ का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है--

कालिंजर दुर्ग – कालिंजर दुर्ग का प्रत्येक स्थल पुरातात्विक दुष्टि से महत्वपूर्ण है। किले तक पहुँचने के सभी सातो द्वार पुरातत्व के संरक्षण में है। दुर्ग के अन्दर वर्तमान में मौजूद लगभग सभी स्थान, जिनमें जलाशय, मन्दिर, मूर्तियों अथवा महलों के खण्डहर है, ये सभी पुरातात्विक सम्पदा की श्रेणी में है। अकाल्पनिक विनाश एवं चोरी के बाद जो कुछ भी दुर्ग के अन्दर इस समय है, उससे अनुमान किया जा सकता है कि यदि सभी वस्तुयें इस दुर्ग में होती तो यह स्वयं में पुरातात्विक सम्पत्ति का एक विशाल भण्डार होता जो अकेले ही क्षेत्र की संस्कृति एवं इतिहास का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन सकता था। विभिन्न वस्तुओं, शिलालेखों आदि के अब अनुपलब्ध हो जाने के कारण इस पुरातात्विक सम्पदा के अध्ययन में शोधार्थी क्रम भंगता का अनुभव करते है। आज भी इस दुर्ग के जलाशय पातालगंगा, पाण्डुकुंड, बुढ़ियाताल, मृगधारा, कोटितीर्थ, शिवसरगंगा एवं नीलकण्ठेश्वर मंदिर के साथ सीतासेज, बनखंडेश्वर, वृद्धकक्षेत्र,माडूक्य भैरव, स्वर्गारोहिणी, काल भैरव, रूद्र भैरव, श्रवण कुमार प्राकृतिक आकर्षण के अतिरिक्त पुरातात्विक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कालिंजर दुर्ग की विभिन्न चट्टानों पर उत्कीर्ण मूर्तियाँ राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय महत्व की है। नीकंठेश्वर मन्दिर परिसर अपने

मण्डप के स्तम्भों एवं परिसर में दीवारों पर उत्कीर्ण शिव प्रतिमाओं का अनोखा संग्रह है। एक चट्टान पर उत्कीर्ण रावणानुग्रह प्रतिमा में आलिंगनबद्ध उमामहेश का रूपांकन, लगभग 11 वी शताब्दी की अत्यन्त उत्कृष्ट कृति है।[22] इसी के समीप 11वीं सदी की लक्ष्मी विष्णु की मूर्ति भी मूर्तिकला का अनोखा उदाहरण है। इसमें मानवाकार गरूण पर आरूढ़ तथा उन्नत किरीट से शोभित चतुर्भुजी विष्णु एक भुजा में शंख तथा एक में पद्म धारण किये हुये लक्ष्मी से आलिंगनबद्ध है। इसी काल की एक और रचना में उत्कीर्ण जटाभार सहित सौम्य एकमूल लिंग शिव तथा एक दूसरे स्थान पर पादपीठ पर वाहन मूषक सहित गणेश की खण्डित प्रतिमायें इस दुर्ग की पुरातात्विक संपदा के अनमोल रत्न है।[23] कालिंजर दुर्ग से प्राप्त बहुत सी प्रतिमाओं एवं स्तम्भों को अमान सिंह महल संग्रहालय में रखा गया है।[24] जबकि बहुत सी मूर्तिया एवं लेख देश के विभिन्न संग्रहालयों में पहुच चुके है कालिंजर दुर्ग से प्राप्त एक खंडित सहस्त्रलिंग इस समय राजकीय संग्रहालय झाँसी में सुरक्षित है जिसमें प्रमुख लिंग पर 13 पंक्तियों में उत्कीर्ण किये गये लघु लिंग इसकी विशिष्ट पहचान है। इसी संग्रहालय में कालिंजर से प्राप्त 12 वी शताब्दी की नृसिंह प्रतिमा सुरक्षित है। इसमें रथिका में निर्मित नृसिंह अपने तीक्ष्ण नाखूनों से हिरण्यकश्यपु का उदर विदीर्ण करते हुये स्थापित किये गये है। दुर्ग के अन्दर दीवार पर उत्कीर्ण भैरव तथा भैरवी की उत्कृष्ट प्रतिमायें तांत्रिक प्रभाव की द्योतक है।[25]

चन्देलों के द्वारा प्रदत्त भूमि दान पत्र जो विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त हुये है, की उपलब्ध संख्या 26 मानी जाती है। परमर्दिदेव के 8 , तैलोक्य वर्मन 6, मदन वर्मन के 3 के अतिरिक्त वीरवर्मन, कीर्तिवर्मन, देववर्मन, धंगदेव, विद्याधर तथा हम्मीरवर्मन द्वारा प्रदत्त ये भूमि दान पत्र चन्देलों की अनोखी पुरातात्विक सम्पदा है। इनसे विस्तृत लेख तत्कालीन राजकीय एवं समाज व्यवस्था पर प्रकाश डालते है। इन सभी के संदर्भ एपिग्राफिया इण्डिका के विभिन्न खण्डों में उपलब्ध है।[26]

कालिंजर दुर्ग से चन्देलकाल के 9 प्रस्तर अभिलेख प्राप्त हुये है। जिनमें एक शासकीय तथा 8 अशासकीय अभिलेख है। शासकीय अभिलेख परमर्दिदेव का 1258 वी.

एस. का है। परमर्दिदेव का यह कालिंजर अभिलेख नीलकंठ मन्दिर परिसर में काले चिकने पत्थर पर उत्कीर्ण है। उत्कीर्णकर्ता का नाम पद्म अंकित है।[27] कालिंजर में प्राप्त सर्वाधिक 5 अभिलेख मदन वर्मन के हैं। इनमें से अधिकांश नीलकंठ मन्दिर परिसर में स्थित है, उत्कीर्ण काल क्रमशः विक्रम संवत 1186, 1187, 1188, 1192, 1194 के है। इनमें शासक के यशोगान, देवआराधना के अतिरिक्त अन्य सूचनायें भी प्राप्त होती है।[28] दो अभिलेख अमान सिंह महल संग्रहालय में रखे हें और एक कोटितीर्थ तालाब के पश्चिम में खण्डहरों के अन्दर मौजूद है। इन शिलालेखों के अध्यक्षताओं के मध्य अनेक पुरातत्वविदों में कर्नल मैसी, ए० कनिंघम, कीलहर्न प्रभृत विदेशी विद्वान शामिल है।[29]

कालिंजर दुर्ग अपनी वर्तमान ध्वस्त स्थिति में भी पुरातात्विक सम्पदा के दृष्टिकोण से स्वयं में एक संग्रहालय हे। दुर्ग की प्राचीरें भारत के प्राचीन काल के जीवित दुर्गों का उत्कृष्ट उदाहरण है। अभी भी समय है कि इस महत्वपूर्ण दुर्ग और इसमें स्थित पुरातात्विक संपदा को बचाया जाये।

अजयगढ़ दुर्ग – आबनूस तथा सागौन के वृक्षों के घने जंगल से आज भी घिरी एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित अजयगढ का जयदुर्ग चन्देल शासकों का शक्ति केन्द्र था।[30] अजयगढ़ में अनेक अभिलेख, मूर्तियाँ, मन्दिर तथा राजप्रसादों के खण्डहर मौजूद है जिनसे दुर्ग की पुरात्विक महत्ता सिद्ध होती है। दुर्ग में गंगा एवं यमुना नामक दो छोटे जल भंडारों के अतिरिक्त अजयपाल का तालाब तथा परमाल ताल मुख्य तालाब है।[31] चन्देली महल नामक दो मंदिरों का संकुल पुरातात्विक संरक्षण में है। दुर्ग में मूर्ति शास्त्र की मूख्य विशेषता तरहौनी गेट पर अष्टशक्ति है। जिसमें सात देवियाँ बैठी हुयी तथा एक खड़ी स्थिति में है। अष्टशक्ति के अतिरिक्त सशक्ति नामक मूर्ति उल्लेखनीय है। मूर्ति में देवी गोद में बच्चे का लिये है तथा कौओ एवं सूअरों से घिरी हुयी है।[32]

अजयगढ का प्राम्भिक अभिले ख वि० सं० 1208 का मदन वर्मन का है। दुर्ग के अधिकतर अभिलेख मुस्लिमों की कालिंजर एवं महोबा विजय के बाद के समय काल के है।[33] वीरवर्मन, भोजवर्मन तथा हमीरवर्मन का अभिलेख दुर्ग में सुरक्षित है।

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा दुर्ग में जंगलों की कटाई के बाद इन्हें एक स्थान पर संग्रहीत किया गया है। दुर्ग में यत्र तंत्र बिखरे हुये जैन मन्दिर एवं मूर्तियों प्राप्त होते हैं दुर्ग में रखी हुयी 'अरिदल गंजन' नामक तोप भी ऐतिहासिक महत्वप की है।[33](अ)

सिंगोरगढ़ दुर्ग – पूर्व मध्य काल में निर्मित सिंगोरगढ दुर्ग पुरातात्विक सामग्री में धनी है। इस पहाड़ी दुर्ग के शीर्ष पर 8 पंक्तियों का चौकोर प्रस्तर अभिलेख है। इस अभिलेख में दुर्ग का नाम गजसिंह दुर्ग तथा निर्माता का नाम गजसिंह परिहार उल्लिखित है। कनिंघम ने इस अभिलेख की तिथि वी.एस. 1364 या वी.एस0 1307 निर्धारित की है। इस अभिलेख से आधा मील दूरी एक लघु अभिलेख एक एकाश्मक पत्थर पर है।[34] सिंगोरगढ़ दुर्ग के आन्तरिक भाग में अत्यधिक ऊँचाई पर एक बड़ा बुर्ज तथा सहयोगी पहाडियों पर दो बुर्ज अभी भी मौजूद है जो पुरातात्विक महत्व के है।[35] दमोह जिले के दुर्गो में सिंगोरगढ़ दुर्ग जिसे परिहार शासकों ने बनवाया तथा गोंडों ने जिसे अन्य निर्माणों से मजबूत किया, सर्वाधिक पुरातात्विक महत्व का है।[36]

गढ़कुंडार दुर्ग– टीकमगढ़ जिले में गढ़कुंडार दुर्ग चन्देल, खंगार तथा बुन्देला सत्ताओं का प्रतीक रहा है। गढ़कुंडार के पहाड़ी दुर्ग के आन्तरिक भाग में वीरसिंह देव बुन्देला द्वारा निर्मित भवन अभी भी सुरक्षित अवस्था में है।[37] गढ़कुडार दुर्ग की उत्कृष्ट वास्तुकला तथा ऐतिहासिक महत्व उसे बुन्देलखण्ड के प्रमुख दुर्गो में स्थान देते हे। मुख्य द्वार के ऊपरी वरान्डे में एक प्रस्तर लेख लगा है तथा गिद्धवाहिनी देवी के मन्दिर में जो दुर्ग के बाहर ऐतिहासिक तालाब के तटपर है, एक अभिलेख मौजूद है। अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का साक्षी यह दुर्ग पुरोतात्विक महत्व का है।[38]

धमौनी दुर्ग – पुराने खण्डहरों से युक्त धमौनी दुर्ग निस्संदेह पुरातात्विक दृष्टि से एक महत्वपूर्ण स्थल है। दुर्ग में पंद्रहवीं सदी में निर्मित रानी महल के नाम से विख्यात एक महल तथा कचहरी है। अधिकारियों के निवास स्थान व गोला बारूद रखने के निमित्त स्थल दुर्ग में निर्मित है। धमौनी दुर्ग का मध्यकालीन इतिहास में महत्व उच्च कोटि का है तदनुसार दुर्ग की पुरातात्विक महत्ता भी उच्च श्रेणी की है।[39]

राहतगढ़ दुर्ग – राहतगढ़ दुर्ग में पुरातत्व सम्बन्धी महत्वपूर्ण अवशेष नष्ट प्राय अवस्था में है। दुर्ग के पाँचो द्वार पुरातात्विक महत्व के है। दुर्ग में ऊँचाई पर निर्मित बादल महल तथा वह ऊँची मीनार जोगन बुर्ज भी पुरातात्विक महत्व के है। दुर्ग के अन्दर एक सीढ़ीदार तालाब तथा एक कमानीदार मस्जिद है। हिन्दुओं तथा मुस्लिमों से समादरित हाजी रतन का स्मारक है। 1838 में निर्मित महादेव मन्दिर दुर्ग के स्मारकों में सर्वाधिक सुरक्षित है।[40]

खिमलासा दुर्ग – खिमलासा दुर्ग के दरवाजे ही केवल दर्शनीय भाग के रूप में शेष है। किले के एक ओर पाँच पीरों की दरगाह है जो कि 28 फुट वर्गाकार चबूतरे पर निर्मित तथा मुंडेर से युक्त है। जे0एफ0 ब्लेकिस्टन ने इन दरगाहों पर सूक्ष्म जाली के काम के विवरण दिये है। [41] किले के दोनों मन्दिर व कचहरी अधिक प्राचीन नहीं है परन्तु नगीना महल प्राचीन है एवं जर्जरावस्था में है। बारह स्तम्भों तथा केन्द्रीय गुम्बद से युक्त यह इमारत पुरातात्विक महत्व की है। दरगाह में कुल पाँच शिलालेख है, जिनमें तीन अरबी भाषा में मकबरे पर है तथा दो फारसी भाषा में स्तम्भों पर है। ये पुरातात्विक शिलालेख कुरान के उद्धरणों तथा निर्माताओं के नामों से युक्त है।

शाहगढ़ दुर्ग – शाहगढ़ दुर्ग तथा इसके निर्माण पुरातात्विक है। स्लीमैन के उद्धरणों से भी इसकी पुष्टि होती है। अर्जुनसिंह द्वारा बनवाये गये दो मन्दिर अपने भित्ति चित्रों के कारण महत्वपूर्ण हैं। दुर्ग में राजपरिवारों से सम्बन्धित चार समाधियाँ हैं। दुर्ग में राजा का निवास जो कि एक चौकोर भवन है, सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।[42]

झाँसी दुर्ग – झाँसी दुर्ग मुख्य रूप से बारादरी, शंकरगढ तथा पंचमहल निर्माणों का संयुक्त रूप है। किले की पूर्वी भाग में मराठों द्वारा निर्मित गणेश मंदिर परम्परागत शैली में किले के मुख्य द्वारा के निकट है। दुर्ग का शिव मन्दिर बुन्देलों का निर्माण है और इस किले के सर्वाधिक प्राचीन स्थलों में से एक है।[43] इसमें मौजूद प्राचीन भित्ति चित्र अब नष्ट हो गये है। किले में गंगाधर राव की प्रसिद्ध तोप कड़कबिजली स्थित है। दुर्ग के अन्य पुरातात्विक निर्माणों में फाँसी घर तथा गुलाम गौस खान, खुदाबक्श व

मोतीबाई की समाधियॉ है।[44] लगभग 20 वर्ष पहले झाँसी दुर्ग पुरातत्व विभाग के हाथों में आया है।

अन्य दुर्ग-- ओरछा दुर्ग का बहुत बडा भाग पुरातत्व विभाग के संरक्षण में है। शीशमहल में स्थित हेरिटेज होटल म0प्र0 टूरिज्म का एक प्रसास है। जहांगीर महल और पुराने महल का वास्तुशिल्प महत्वपूर्ण है। साथ ही पुराने महल के भित्तिचित्र भी उल्लेखनीय है। इसी प्रकार दतिया का नृसिंह महल या वीरसिंह महल अपने ज्यामितीय शिल्प, दृढ़ता एवं बुन्देला कला का धरोहर होने के कारण पुरातात्विक सम्पत्ति हो चुका है। कालपी दुर्ग में यमुना नदी की ढाल पर एक दृढ़ दीवार एवं एक पुराने भवन के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं है। जबकि तालबेहट दुर्ग में सिंह पौर, बावडी और नृसिंह मंदिर पुरातात्विक सम्पत्ति है।[45] ये सभी किले पुरातात्विक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं, इसलिये भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने इन्हें सूचीबद्ध कर रखा है वस्तुतः इन्हें वास्तविक संरक्षण प्राप्त नही है।

दुर्ग स्थलीय पुरातत्व – अध्ययन क्षेत्र के अनेक दुर्ग पूर्णतः नष्ट हो चुके है। किन्तु इनमें से कुछ प्राचीन दुर्ग स्थलों पर महत्वपूर्ण पुरातात्विक सम्पदा मौजूद हैं। इसे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने सूचीबद्ध किया है। एरण का वह सम्पूर्ण भाग जिसमें कभी दुर्ग रहा होगा, आज पुरातात्विक दृष्टि से अत्यधिक महत्व का है। यहाँ कुछ मन्दिरों के नितान्त निचले भाग दिखाई देते है। एक 10 फुट ऊँची प्रचण्ड वाराह की प्रतिमा उल्लेखनीय है। इस प्रतिमा के गले में मानव आकृतियों की माला है। इसके दाहिने दाँत पर नारी रूप पृथ्वी कंधों में चतुर्मुखी पार्श्व का देवालय स्थित है तथा वक्ष पर धान्यविष्णु का 8 पंक्तियों का लेख उत्कीर्ण है। एरण के अवशेषों में यह प्रतिमा भारत में सम्भवतः ब्राम्हमण धर्म से सम्बन्धित प्राचीनतम प्रतिमा है।[46] तलवार और गदा लिये हुये, यज्ञोपवीत धारण किये हुये पूर्वाभिमुख मूर्ति को विष्णु मूर्ति कहा जाता है। गुप्तकालीन भ्राताओं मातृविष्णु, धान्य विष्णु के द्वारा लगवाया गया स्तम्भ महत्वपूर्ण पुरातात्विक सम्पत्ति है।20 फुट ऊँचाई का एवं 2 फुट 10.25 इंच के वर्ग का यह स्तम्भ अपने शिल्प एवं ज्यामितीय संरचना के साथ उत्कीर्ण अपने शिल्प एवं ज्यामितीय

संरचना के साथ उत्कीर्ण लेखों के लिये जाना जाता है।[47] एरण के दुर्ग स्थल से खुदाई में प्राप्त अत्यन्त महत्वपूर्ण मृण्मूर्तियों, भांड, औजार, ताम्र सिक्के, मनके आदि ने पुरातत्व के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की है। मनियागढ़ दुर्ग जिसे कनिंघम जैसे विद्वान कालिंजर और अजयगढ़ से प्राचीन मानते है, के किले की लम्बी दीवार तथा मनियादेव मन्दिर पुरातात्विक सम्पदा है। स्वर्गेश्वर महादेव तथा इसका कुण्ड पुरातात्विक सम्पदा के साथ ही अपनी प्राकृतिक स्थिति के कारण उल्लेखनीय है। इस दुर्ग स्थल में पहाड़ी की ऊँचाई पर तलवार लिये हुये महिला की मूर्ति स्थित है।[48] मड़फा और रसिन चन्देल कालीन दुर्ग जहाँ स्थित थे उस स्थान पर कुछ निर्माण पुरातत्व को देखरेख में है। मड़फा में दुर्ग के अवशिष्ट दीवारों एवं खण्डहर के अतिरिक्त खमरिया शिव मन्दिर पुरातात्विक सम्पदा है।तीन जैन मन्दिरों के खंडहर भी यहाँ विभाग की सूची में है । रसिन में अनेक सतीस्तम्भ तथा ईटों से निर्मित चन्दा माहेश्वरी मन्दिर के खण्डहरों के भाग पुरातात्विक सरंक्षण में है। महोबा दुर्ग साइट पर मनिया देवी का मन्दिर और प्रस्तर स्तम्भों की एक बारादरी, जिसे चन्देल कालीन माना जाता है, के अतिरिक्त एक अभिलेख युक्त छोटी मस्जिद , एक दीपक स्तम्भ तथा मदन सागर ताल पुरातात्विक संरक्षण में है। महोबा में अन्यत्र भी पुरातात्विक स्थल है। देवगढ़ दुर्ग पुरातात्विक सम्पदा का भंडार था, किन्तु उसका बहुत सा भाग स्थानान्तरित हो चुका है। क्षीरशायी विष्णु की प्रसिद्ध मूर्ति के अतिरिक्त अनेक जैन मूर्तियों एवं जैन स्थल यहां पहाड़ी में बिखरे हुये है। जिनमें से कुछ का संग्रह नीचे जैन समाज द्वारा संचालित भवन में है। देवगढ़ दुर्ग स्थल में गुप्तकालीन गजोधर मन्दिर तथा जैन मानस स्तम्भ पुरातत्व विभाग की सूची मे हैं। [49] बटियागढ़ दुर्ग के खण्डहरों में एक कुँये के अतिरिक्त एक अभिलेख, जो जलालुददीन के गवर्नर द्वारा लगवाया गया था मौजूद है।[50] इसी प्रकार मदनपुर दुर्ग स्थल में आल्हा ऊदल की बैठक के नाम से एक संरचना पुरातत्व विभाग में सूचीबद्ध है। यहीं पाटन के मंगल सिंह द्वारा निर्मित महल भी है।[51]

अपनी दृढ़ता और अगम्यता को गवाँकर जब ये दुर्ग ही शेष नहीं रहे तब उनके अन्दर स्थित अमूल्य धरोहर को कैसे सुरक्षित रखा जा सकता था? आश्यचर्यजनक रूप से ग्रामीणों एवं चरवाहों के द्वारा इनमें से बहुमूल्य संपदा अपनी अन्तिम परिणति का

प्राप्त हुयी । विदेशी पुरातात्विक अध्येताओं एवं कुछ भारतीय विज्ञों की दृष्टि में आ जाने वाले कुछ स्थलों को पुरातात्विक सम्पदा घोषित कर देने मात्र से इनका संरक्षण सम्भव नहीं था। किलों के नष्ट होने बाद तेजी से बहुत सी पुरातात्विक वस्तुयें समाप्त हो गयी।

दुर्ग सीमा के बाहर पुरातात्विक स्थल – दुर्गो के निर्माता एवं शासक वर्ग अपनी राजधानी में दुर्ग सीमा के बाहर कुछ महत्वपूर्ण निर्माण करवाते रहे है। ये आज पुरातात्विक महत्व के है। इन निर्माण स्थलो को देखने से प्रतीत होता है कि स्थल चयन के समय धार्मिक एवं प्राकृति कारक महत्वपूर्ण योग दान देते है। निश्चय ही इस श्रेणी में आने वाली पुरातात्विक संरचनाये धार्मिक स्थल, मूर्ति एवं शिलालेखो के रूप में देखने को मिलती है। दमोह जिले में सोनार घाटी[52] देवरी में खंडोबा का मन्दिर [53,] मालथौन का सती स्मारक[54], धमौनी में बालजती शाह की मजार[55] किला परिसर से दूर स्थित है तथा पुरातात्विक स्थल है। ओरछा में कंचनाघाट, राजाओं की छतरियाँ, राय प्रवीन महल, केशव भवन के अतिरिक्त लक्ष्मी मंदिर महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल है।[56] लक्ष्मी मन्दिर जो एक छोटी पहाड़ी पर स्थित है। अपनी निर्माण शैली एवं भित्ति चित्रों के कारण पुरातत्व की सम्पदा है। [57] टीकमगढ जिले में बल्देवगढ़ का ग्वाल सागर और जतारा का मदन सागर तालाब पुरातात्विक महत्व के है। जतारा की लोहालंगड़ की बावड़ी तथा आब्दापीर मजार पुरातत्व द्वारा सुरक्षित है।[58] कालपी में अनेक मकबरे हैं जिनमें मदारशाह, गफूर जनजानी, छोल बीबी, बहादुर शाहिद के मकबरे प्रमुख है तथा ये दुर्ग परिसर के बाहर के प्रमुख पुरातात्विक स्थल है । इनके मध्य सबसे महत्वपूर्ण शाह बादशाह लोदी का मकबरा, जिसे चौरासी गुम्बज के नाम से जाना जाता है, महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल है। यह एक बड़ी इमारत है, जिसका बड़ा हाल अपनी ज्यामितीय रचना के कारण आकर्षक है। इसका प्रमुख गुम्बद महत्वपूर्ण है।[59] जालौन जिले में ही उरई का माहिल तालाब एक प्राचीन स्थल है। यहाँ ईटों से निर्मित एक मकबरा पुरातात्विक संरक्षण में है।[60] बाँदा की जामा मस्जिद , नवाब की बारादरी, नवाब टैंक महत्वपूर्ण स्थल हैं। सिहुँड़ा दुर्ग के विस्तृत क्षेत्र में फैले हुये खण्डहरों पर अभी

पुरातत्व विभाग की दृष्टि नहीं गयी है। रसिन की गुफा तथा कर्वी की पीली कोठी एवं कोठी तालाव महत्वपूर्ण सम्पदा है। चरखारी में बने कुछ प्राचीन मंदिर, कुलपहाड़ का सेनापति महल तथा मौदहा की मोती शाहिद फकीर की दरगाह पुरातात्विक स्थल है। महोबा में दुर्ग स्थल के बाहर अनेक स्थल पुरातत्व की सूची में है जिनमें करका मठ, सिंहनद अवलोकितेश्वर, पद्मपाणि अवलोकितेश्वर, कीरत सागर एवं विजयसागर तालाब वड़े निर्माण है।[61] गोखर पहाड़ी के गजान्तक शिव, राहिल्य का सूर्य मन्दिर तथा चन्द्रिका मन्दिर भी महत्वपूर्ण है । दतिया में प्रतापगढ़ महल, कन्हरगढ का नन्दनन्दन मन्दिर तथा सोनागिरि के कुछ जैन स्थल पुरातात्विक महत्व के है।[62] दतिया जिले के गुजर्रा नामक स्थान पर अशोक का शिलालेख अत्यधिक महत्वपूर्ण है। सिद्धों की टौरिया नामक स्थान पर ऊँचाई में यह शिलालेख 269–232 बी.सी. के कालखण्ड का है। और इसे पुरातात्विक सम्पदा घोषित किया जा चुका है।[63] खजुराहों के मन्दिर पुरातात्विक सम्पदा के सन्दर्भ में स्वयं एक कोषागार है।[64] चौसठ योगिनी मन्दिर, गणेश मदिर, कन्दरिया महादेव मन्दिर, जगदम्बा मन्दिर , सूर्य मन्दिर, विश्वनाथ मन्दिर, लक्ष्मण मन्दिर, वाराह मन्दिर, वामन मंदिर, घण्टाई मन्दिर एवं मातंगेश्वर मन्दिर मे से कई का प्रत्येक पत्थर पुरातात्विक सम्पदा के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है[65] इनका विस्तृत विवरण यहाँ समीचीन नहीं है। 1953–54 में भारतीय पुरात्त्व सर्वेक्षण विभाग ने इन सभी स्थलों को पूर्ण रूप से अधिकृत कर लिया था।[66] छतरपुर जिले में छतरपुर की छतरियां एवं मऊ में धुवेला ताल पर एक मुस्लिम समाधि तथा गोलावीर पहाड़ी पर कुत्ता की सुरई नामक स्थान महत्व के है।[67] खोंप में अपठनीय फारसी अभिलेख प्राप्त हुआ है। पन्ना जिले में पन्ना का महल, जुगल किशोर मन्दिर, प्राणनाथ मन्दिर तथा सिमिरियागढ़ में मोलोनद्रा में मध्यमालीन मंदिर पुरातात्विक महत्व के है। पन्ना में नचना कुठार के कुठारगढ़ का गुप्ताकालीन स्तम्भ, मातृक एवं चतुर्मुख लिंग मन्दिर महत्वपूर्ण हैं और पुरातात्विक सम्पदा घोषित है।[68]

बुन्देलखण्ड की सम्पूर्ण पुरातात्विक सम्पदा का अधिकांश भाग दुर्ग निर्माण परम्परा से सम्बन्धित है, परन्तु जिस प्रकार इस पिछड़े क्षेत्र को विकास के अन्य सन्दर्भो

में महत्व नहीं दिया गया उसी प्रकार ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टिकोण से भी इसकी अत्यधिक उपेक्षा हुयी है। यदि आज भी यहां किसी संग्रहालय का निर्माण कर इस क्षेत्र से ले जायी गयी एवं विभिन्न संग्रहालयों में मौजूद यहाँ की पुरातात्विक सम्पदा को एक स्थान पर संग्रहीत किया जा सके, तो निश्चय ही उसकी गणना भारत के उल्लेखनीय पुरातात्विक सम्पदा वाले संग्रहालयों में होगी। खजुराहो अकेले ही इस तथ्य को प्रमाणित करने में समर्थ है।

6.2 संरक्षण हेतु उठाये गये कदम

"हम विरासत की प्रशंसा करना जानते है। विरासत प्रशंसा का विषय नहीं है। इसे सूक्ष्मता से मनन एवं अध्ययन के योग्य स्वाध्याय का साधन समझा जाय। इसको कैसे सुरक्षित रखा जाय, चिरस्थायी किया जाये तथा विकसित किया जाय। अभी तक समसामयिक मानवता प्राकृतिक या मानवकृत सौन्दर्य के प्रति आम तौर पर अनभिज्ञ है, जो हमारे सामने बिखरी पड़ी है और जिसका हम अनावरण करना चाहते है।[69]

ये शब्द है भारत की भूतपूर्व प्रधानामंत्री इंदिरा गाँधी के । बुन्देलखण्ड क्षेत्र दुर्गों की स्थिति का अवलोकन करने के पश्चात श्रीमती गाँधी के इन शब्दों का महत्व स्पष्ट हो जाता है। समय के प्रभाव से सर्वाधित मूल्यवान वस्तुयें किस प्रकार मूल्यहीन हो जाती है ये दुर्ग उसके साक्षात प्रमाण है। अस्मिता की पहचान, ऐतिहासिक जड़ों को जानने की ललक प्रायः सभी में होती है। सामाजिक संक्रमण के दौर में एक बार इतिहास की ओर झाँकने व सांस्कृतिक धरोहर से व्यक्ति व समाज को आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। निस्संदेह हम सभी को अपनी विरासत पर गर्व होता है। परन्तु यह कसक भी होती है कि वर्तमान अपने स्वर्णिम अतीत को सहज नही पा रहा है। देश की सांस्कृतिक विरासत को बनने में एक लम्बा समय लगता है परन्तु इसकी टूटन शीघ्रता से प्रारम्भ होती है, क्योंकि हम उसके संरक्षण, परिरक्षण से विमुख एवं उदासीन है। टूटना और नष्ट होना तो प्रायः सभी की नियति है परन्तु अनाम शिल्पियों की साधना से निर्मित दुर्ग जैसी धरोहर का नष्ट होना देश की अपूरणीय क्षति है। एक विचित्र विरोधामास यह है कि किलों के पर कोटे जो दुश्मन की तोपों और गोलों के

अनवरत प्रहार से नहीं टूटे, वे समय की मार तथा खुद अपने लोगों के प्रहारों से ध्वस्त हो गये।[70]

केन्द्र सरकार के भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के नियन्त्रण में लगभग 175 दुर्ग या उनके महल अथवा कोई भाग संरक्षित स्मारक के रूप में सूचीबद्ध है। इसी प्रकार राज्य सरकारों के नियन्त्रण में 800 के लगभग किले संरक्षित स्मारक के रूप में सूचीबद्ध है।[71] बुन्देलखण्ड में बिखरे हुये दुर्गो को 4 श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

1. दुर्ग या दुर्ग का कोई भाग जो भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के नियन्त्रण में है।
2. दुर्ग या उनके महल जो विभिन्न राज्य सरकारों के पुरातत्व, स्वायत्त शासन, पर्यटन विभाग तथा सार्वजनिक निर्माण विभाग के नियन्त्रण में है ।
3. निजी स्वामित्व में आने वाले किले।

भारत में सन 1861 में एलेक्जेडर कनिंघम ने पुरातात्विक स्मारकों का क्रमबद्ध सर्वेक्षण प्रारम्भ किया । उसके 20 वर्षो के बाद एच0एच0 कोल की नियुक्ति इन स्मारकों को नष्ट होने से बचाने एवं संरक्षित करने के लिये हुयी। कनिंघम के द्वारा बुन्देलखण्ड का सर्वेक्षण सन 1872 में किया गया।[72] पुरातात्विक कार्य में बीच में कई बाधायें आयी किन्तु 1902 में जॉन मार्शल की नियुक्ति तथा 1904 में एनसियेन्ट मानूमेन्ट प्रिजरवेशन एक्ट के लार्ड कर्जन के द्वारा पास हो जाने के बाद इस क्षेत्र महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। इस एक्ट का उद्देश्य प्राचीन स्मारकों का संरक्षण तथा विशिष्ट मामलों में अधिग्रहण एवं रक्षण था। पुरातात्विक, ऐतिहासिक और कलात्मक रूचियों के स्थलों और वस्तुओं का इसमें सम्मिलित किया गया है।[73]

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के संगठन में सर्वोच्च अधिकारी डायरेक्टर जनरल होता है, जिसके अधीन विभाग को तीन हिस्सों में बाँटा गया है। पहल विभाग संरक्षण (कंजरवेशन) का काम करता है। इसमें भारत को 9 जोन बाँट रखा है। यह स्थलों की पहचान कर उनका महत्व निर्धारित करता है तथा उन्हें संरक्षित घोषित करता है। दूसरा विभाग परिरक्षण (प्रिजरवेशन) का कार्य करता है जिसमें केमिस्ट एवं पुरातत्व के तकनीकी जानकार शामिल होते है। तीसरा विभाग पुरातात्विक अभियंताओं का है जो

दोनो अनुभागों में कड़ी का काम करते है तथा स्मारक के मूल स्वरूप को बनाये रखने लिये तकनीकी निर्णय लेते है।[74] बुन्देलखण्ड क्षेत्र पुरातत्व के उत्तरी जोन में स्थित है, जिसमें उ0प्र0 एवं म0प्र0 के भाग शामिल है। जहाँ तक अध्ययन क्षेत्र के दुर्गो के संरक्षण एवं रखरखाव की बात है, स्थिति देश के अन्य भागों के समान है। पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा अनेक स्थलों को संरक्षण हेतु सूचीबद्ध किया गया है किन्तु उनके वास्तविक संरक्षण कार्य न के बराबर है शासकीय स्तर पर स्मारकों को संरक्षित घोषित कर देने, नीला पट्ट लगा देने तथा चौकीदार रख देने से ही शासन विरासत की रक्षा के दायित्व की इतिश्री मान लेता है। शोधार्थी ने सर्वेक्षण के समय पाया कि स्मारकों के आस पास रहने वाले कुछ ही लोग यह बता पाये कि नीले बोर्ड का अर्थ है कि यह सरकार की सम्पत्ति है। पूरे सर्वेक्षण काल में न्यून संख्या में व्यक्ति स्मारकों कला–धरोहर तथा पुरातत्व से सम्बन्धित अधिनियमों एवं प्रावधानों की जानकारी रखने वाले मिले।

स्वामित्व की दृष्टि से संरक्षण – बुन्देलखण्ड के दुर्गो एवं दुर्ग स्थलों की चर्चा पिछले पृष्ठों मे की जा चुकी है जो ए0एस0आई0 द्वारा सूचीबद्ध है। स्वामित्व के नियन्त्रण के दृष्टिकोण से अध्ययन क्षेत्र के दुर्गो को निम्न वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

पुरातत्व विभाग का संरक्षण – बुन्देलखण्ड क्षेत्र में केन्द्रीय पुरातत्व एवं राज्य से संरक्षण प्राप्त लगभग 22 दुर्ग या उनके कुछ भाग है। इन किलों में पुरातत्व विभाग ने अपने पट्ट लगाकर उन्हें संरक्षित घोषित कर दिया है। राजकीय प्रबन्धन के अनुकूल ये सभी किले मात्र नीला पट्ट लगाये हुये हैं। वास्तविक रूप से इनके संरक्षण एवं मूल स्वरूप बनाये रखने के लिये किये गये प्रयत्न उँगलियों में गिने जा सकते है। कालिंजर, झाँसी, ओरछा , दतिया वे स्थान है, जहाँ विभाग ने निर्माण के मूल स्वरूप को बनाये रखने के लिये धन आवंटित किया है एवं कुछ कार्य भी हुआ है। कालिंजर दुर्ग को इस सम्बन्ध में प्रथम स्थान दिया जा सकता है।[75] इस किले के महत्व स्वरूप बनाये रखने के लिये प्रयास प्रारम्भ किये गये । सबसे पहले दुर्ग प्राचीर के उन भागों का लिया

गया जो या तो टूट गये थे अथवा जिनके पत्थर मूल स्थान से हट रहे थे। पुरातत्व विभाग वर्तमान में प्राचीर के संवर्धन का कार्य पूरा कर चुका है तथा अपने प्रयास में सफल रहा है। दुर्ग प्राचीर के पश्चात अग्रिम परियोजनाओं में परिसर में स्थित मुख्य महलों को लिया गया जिनमें व्यंकट बिहारी पैलेस, शिवगोविन्द का महल, हिन्दूपत की धर्मशाला , चौबे महल, अमान सिंह महल तथा नीलकंठेश्वर परिसर प्रमुख है। महलों में सबसे अच्छी स्थिति में अमान सिंह महल है। क्योंकि इसके संवर्धन के बाद इसे विभाग ने संग्रहालय के रूप में बदल दिया है, इसलिये रख रखाव स्वाभाविक रूप से अच्छे ढंग से हो रहा है। व्यंकट बिहारी पैलेस को पूर्व स्वरूप प्रदान करने में पुरातत्वविदों को अच्छी सफलता प्राप्त हुयी है क्योंकि इसका स्वरूप बहुत अधिक बदल चुका था। नीलकण्ठेश्वर का मण्डप, स्तम्भ एवं अन्य भागों को अपने मूल रूप में लाने के प्रयास पर्याप्त सफल है। अनेक स्थलों में विभाग के द्वारा किये गये संवर्धन के प्रयास अभी अधूरे हैं। और उन्हें पूर्ण किये जाने की आवश्यकता है। कालिंजर दुर्ग में वर्तमान में चल रहे उत्खनन कार्य ए0एस0आई0 के द्वारा किया जाने वाला सराहनीय कार्य है। नीकंठेश्वर मन्दिर के दायीं ओर दीवार पर उत्कीर्ण सद्यः प्राप्त भैरव प्रतिमा एक अच्छी सफलता है जो यहां हो रहे उत्खनन के भविष्य के लिये अच्छा है। इस स्थल पर अभी भी क्रमिक उत्खनन जारी है। विभाग के द्वारा दुर्ग परिसर में निर्मित सड़कों से जिज्ञासुओं एवं पर्यटकों को पर्याप्त सुविधा मिली है।

पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा संरक्षण एवं संवर्धन का कार्य जिन दुर्गों में चल रहा है। उनमें झाँसी दुर्ग भी महत्वपूर्ण है। इस दुर्ग में प्रथम चरण में इसके अन्दर पंचमहल के दाहिनी ओर ध्वस्त अंश को ठीक किया गया है। यह एक तकनीकी कार्य था ओर विभाग को इसे मूल रूप में लाने में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुयी है। दूसरे चरण में प्राचीर की सफाई एवं उसमें लगी हुयी काई को साफ कराने का कार्य चल रहा है जिसमें वर्तमान प्रवेश द्वार के दाये और बाये भाग के प्राचीर का बड़ा भाग स्वच्छ किया जा चुका है। इस कार्य में प्राचीर पर उगी हुयी वनस्पतियों, दरारों और पत्थरों के कमजोर जोड़ों को भी ठीक किया जा रहा है। किले के अन्दर गणेश मन्दिर में भी कुछ

काम हुआ है। शंकरगढ एवं पंचमहल क्षेत्र में दो छोटे पार्क मूलतः जहाँ छोटे उपवन थे, तैयार किये गये है। इसके अतिरिक्त पंचमहल का जो स्वरूप सेना निवास के समय परिवर्तित कर दिया गया था, उसे भी मूल रूप में लाने की कोशिश की गयी है।

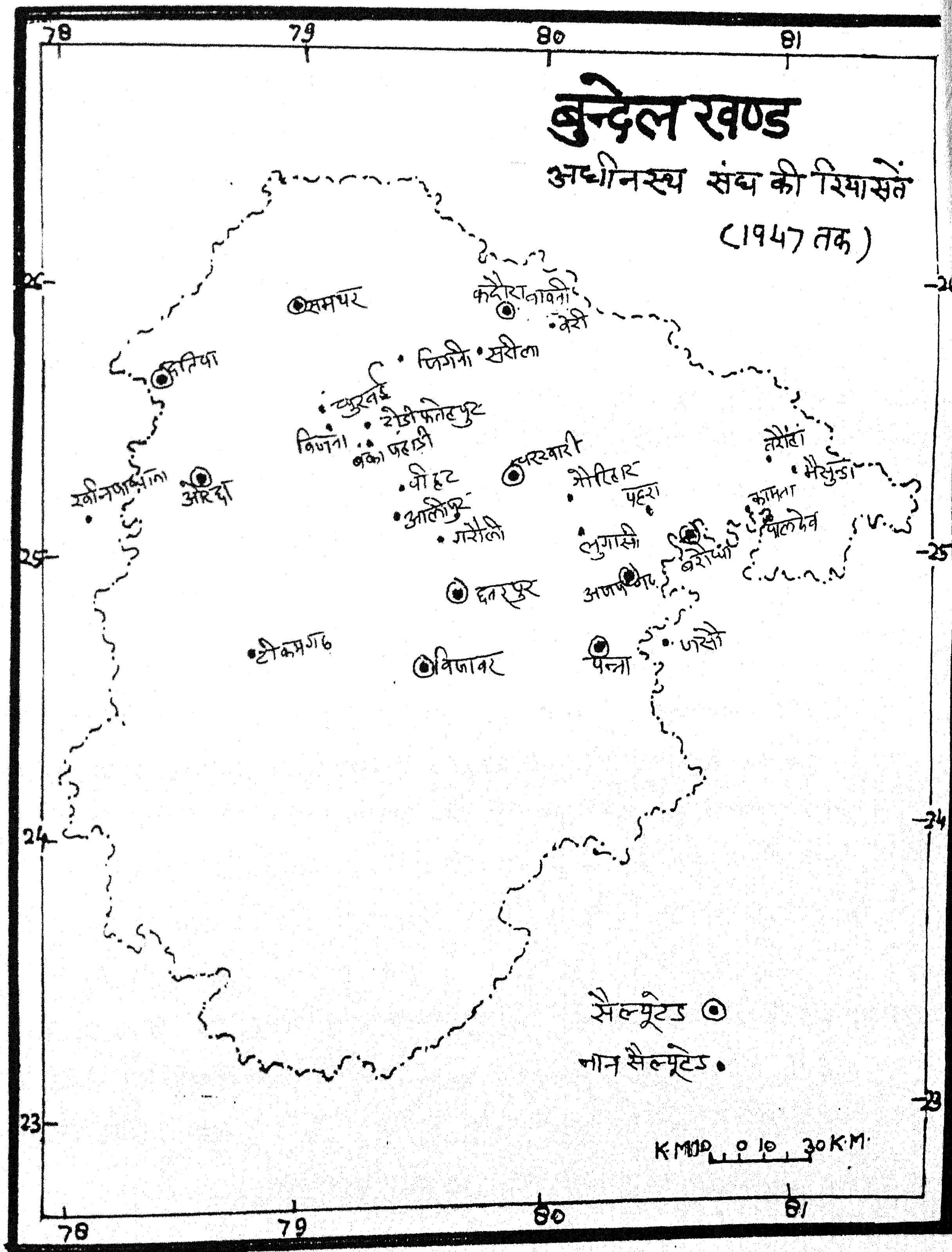
म0प्र0 के दुर्गो में दतिया के नृसिंह देव महल की स्थिति बहुत खराब हो गयी थी। विशेष रूप से 1947 के बाद पाकिस्तान से आये शरणार्थियों ने महल पर कब्जा कर लिया था और इसका अत्यधिक दुरूपयोग किया।[76] पुरातत्व विभाग के संरक्षण में आने के बाद इसमें पर्याप्त कार्य किया गया है। उखड़े हुये प्लास्टरों विशेष रूप से भूमिगत हिस्से के बड़े भाग में पुनः प्लास्टर किया गया । ऊपर की मंजिलों में पत्थर की टूटी हुयी जालियों को यथास्थिति में लाने का कार्य किया गया। इस समय भी इस महल में संवर्धन का कार्य चल रहा है। इसी प्रकार ओरछा में पुराने राजमहल के कुछ हिस्सों में सफाई का और कुछ हिस्सों में टूटे हुये भागों को ठीक करने का कार्य चल रहा है। ओरछा में विशेष रूप से पुरातत्व विभाग ने लक्ष्मी मंदिर में अपना ध्यान केन्द्रित किया है। यहाँ टूटे हुये भागों को ठीक करने का कार्य चल रहा है। यह मन्दिर अपने भित्ति चित्रों के लिये प्रसिद्ध है। इनमें बहुत से चित्र आभा खो चुके है, जिनको मूल रूप में लाना विभाग के सामने चुनौती है।

इन दुर्गो के अतिरिक्त धमौनी, राहतगढ़ तालबेहट, देवगढ़ ऐसे दुर्ग है। जहाँ विभाग ने संवर्धन का कार्य थोड़ा बहुत किया है अथवा भविष्य में करने का निश्चय है। शाहगढ़, मड़फा, रसिन, बटियागढ़, मदनपुर, एरण, मनियागढ़ आदि ऐसे दुर्ग या दुर्गावशेष है जहाँ पुरातत्व विभाग ने अधिग्रहण कर लिया है किन्तु संरक्षण का कोई कार्य नही हुआ है। परिणामतः इन दुर्गो की स्थिति दिन प्रतिदिन रखाब होती चली जा रही है।

निजी स्वामित्व का संरक्षण – निजी स्वामित्व के संरक्षण से तात्पर्य है कि वे दुर्ग अथवा महल जहाँ राजवंश के लोग अभी भी निवास करते हैं तथा दुर्ग संरक्षण का दायित्व उन्हीं पर है। ऐसे दुर्ग का रख रखाव उचित रूप से होता रहे यह एक दुष्कर कार्य है। कारण स्पष्ट है कि वर्तमान में निवास करने वाले लोगों की आर्थिक क्षमता

ऐसी नहीं है कि इतने वड़े भवनों का रखरखाव उचित रूप से होता रहे, यह एक दुष्कर कार्य है। ऐसी स्थिति भारत के अन्य निजी स्वामित्व के दुर्गो में भी देखी जाती है। यही कारण है कि जयपुर, उदयपुर जैसे बडे राजवंशों के लोगो ने अपने महलों को वाणिज्यिक उपयोग में परिवर्तित कर हेरिटेज होटलो के रूप में प्रयोग आरम्भ कर दिया है। अध्ययन क्षेत्र के दुर्गो में निजी स्वामित्व के 4 दुर्ग है – टीकमगढ, दतिया, बिजावर एवं समथर। इनके अतिरिक्त कुछ गढ़ियों जैसे सरीला, कटेरा, बेरी, आलीपुरा और विजना में भी लोग निवास करते है।

टीकमगढ़ दुर्ग के राजमहल विस्तृत एवं विशाल है तथा राज परिवार के लोगों द्वारा उसके रखरखाव का पूर्ण प्रयास किया जाता है तथापि बाहर से देखने पर यह प्रतीत कि रखरखाव निम्न श्रेणी का है। दतिया का वह महल जिसमें वर्तमान में राजपरिवार निवास करता है, वहुत खराब स्थिति में है। मुख्य द्वार के आस पास मलिन बस्ती जैसा दृश्य है और अन्दर भी प्रथम दृष्टया निर्माण कमजोर एवं गन्दा दिखायी पड़ता है। महल के अनेक कक्ष कबाड़ से भरे हुये है और कभी खोला नही जाता है। निजी स्वामित्व वाले दुर्गो में समथर की स्थिति तुलनात्मक रूप से ठीक है। दुर्ग के अन्दर स्थित महल एवं मन्दिर आदि के रखरखाव पर ध्यान दिया जाता है परन्तु वर्तमान निवासी राजा रंजीत सिंह, जूदेव सदस्य विधान परिषद के प्रायः बाहर रहने के कारण यह रखरखाव प्रभावशाली ढंग से नही हो पाता। दुर्ग की प्राचीर अनेक स्थलों से कमजोर हो चुकी है तथा खाई में अत्यधिक वनस्पतियाँ उगी हुयी है जो इसे नष्ट कर रही है। बिजावर महल की स्थिति भी इसी प्रकार की है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जिन दुर्गों और राज महलों ने सम्बन्धित राजपरिवारों को अप्रतिम वंश, सम्मान और सम्पत्ति प्रदान की है, ये राजपरिवार आज अपने बजट का एक साधारण भाग भी दुर्ग के रखरखाब पर खर्च नहीं करना चाहते किन्तु यह भी विचारणीय है कि ये दुर्ग अथवा महल यदि निजी स्वामित्व से हट गये होते तो निश्चय ही विगत 59 वर्षो में उसी प्रकार परिवर्तित हो चुके होते जैसे कि अन्य परिव्यक्त दुर्ग हो चुके है।


बुन्देल खण्ड
अधीनस्थ संघ की रियासतें
(1947 तक)
78
79
80
81
26
25
24
23
समथर
कदौरा
बावनी
बेरी
जिगनी
सरीला
दतिया
चुरखई
टोडीफतेहपुर
बिजना
जहाँगी
ओरछा
बिहट
सरस्वारी
गौरिहार
पहरा
आलीपुर
गरौली
लुगासी
तरौंहा
मैसुण्डा
कामता
पालदेव
बरौंधा
अजयगढ़
छतरपुर
टीकमगढ़
बिजावर
पन्ना
जसो
सैल्यूटेड
नान सैल्यूटेड
KM 10 0 10 30 K.M.

सरीला गढ़ी के शासक नरेन्द्र सिंह (पूर्व आई0एफ0एस0 अधिकारी, नेस्ले इंडिया के एशिया चेयरमैन) प्रायः विदेशों में रहते है परन्तु गढ़ी के रखरखाव के प्रति सर्वाधिक जागरूक है। इस गढ़ी के रखरखाव में प्रति वर्ष पर्याप्त व्यय किया जाता है साथ ही यह प्रयास है कि यह बाहर से ऐतिहासिक विरासत ही प्रतीत हो। कटेरा की पुरानी गढ़ी में लोग निवास कर रहे हैं परन्तु निवासी बुन्देला परिवार इसके संरक्षण के प्रति जागरूक नहीं है। बेरी गढ़ी में परिवार के मुखिया सुरेन्द्र सिंह अपने छोटे आवास को ठीक में संभाल नही पा रहे है। आलीपुरा में निवासी योगेन्द्र प्रताप सिंह परिहार गढ़ी पर मामूली व्यय कर रहे है। सारांश यह है बुन्देलखण्ड के राजवंश राज सत्ता जाने के वाद न तो आर्थिक रूप से इतने सम्पन्न है और न ही इतने जागरूक कि इन ऐतिहासिक धरोहरों को अपने मूल स्वरूप को बनाये रख सकें। सर्वेक्षण के समय एक परित्युक्त दुर्ग के तत्कालीन वृद्ध कर्मचारी से जब यह पूँछा गया कि राज परिवार तो अभी भी सम्पन्न है वे किले का रख रखाव क्यों नहीं करते? तब उसका उत्तर था "वर्तमान राजा अपनी आधी सम्पत्ति बेचकर भी इस किले की मरम्मत और पुताई तक नही करा सकते ।"

परित्यक्त दुर्ग – अध्ययन क्षेत्र में परित्यक्त दुर्गो की एक लम्बी सूची है। इन दुर्गो का संरक्षण किसी के हाथ में नहीं है परिणाम स्वरूप में तेजी के साथ नष्ट हो रहे है। इनमें से अनेक अब पूर्णतया खण्डहरों में परिवर्तित हो चुके है। फिर भी ऐसे दुर्गो एवं गढियों की संख्या कम नही है, जिन्हें अभी भी बचाया जा सकता है। चरखारी, राजनगर, तेजगढ, सिमिरियागढ़, इन्दरगढ़ जैसे दुर्ग अभी भी बचाये जा सकते है। जैतपुर, जयसिंहनगर, कन्हरगढ़ के खण्डहर होने से बचे भागों को यदि सुरक्षित कर लिया जाये तो यह न केवल इस किले के इतिहास को जीवित रखेंगे बल्कि थोड़े प्रयासों से इनके अच्छे उपयोग भी हो सकते है। सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि छोटी गढ़ियों की स्थिति बड़े किलों कि तुलना में अभी बहुत अच्छी है। उदाहरण स्वरूप दिगारा, दिगौड़ा, पृथ्वीपुर, जतारा, पहाड़गाँव, दलीपुर, अम्मरगढ़ आदि की गढ़ियाँ थोड़े प्रयत्नों

से ही सुरक्षित की जा सकती है अतः यदि शासन इन्हें कतिपय विभागों को देकर थोड़ा बजट आवंटित कर सके तो इनका पर्याप्त संरक्षण हो सकता है।

दुर्ग क्षरण के प्रमुख कारण – बुन्देलखण्ड में दुर्गो की शोचनीय अवस्था के लिये कई कारण उत्तरदायी है जिनमें सबसे महत्वपूर्ण कारण सन 1857 का स्वतंत्रता संग्राम एवं अंग्रेजों की दुर्गों के प्रति नीति रही है। इस सम्बन्ध में पिछले पृष्ठों में विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। अन्य कारणों में सबसे महत्वपूर्ण आसपास के ग्रामीण लोगों में अज्ञानता और उनके द्वारा किलों के प्रति किया गया व्यवहार है। यह उल्लेखनीय है कि परिव्यक्त किलों को यहां के ग्रामीणों ने लूटा है । इन किलों की निर्माण सामग्री को तोड़कर ईटों और यहाँ तक कि उसे बेचा भी है। सर्वेक्षण काल में यह ज्ञात हुआ कि एक मराठा गढ़ी के स्वामी ने ही 50 प्रतिशत धन के लाभ में प्राचीर के पत्थरों को तोड़कर ले जाने की अनुमति प्रदान की। जिस निर्माण में उसके पूर्वजों की कलात्मक अभिरूचि और परिश्रम लगा था तथा जिसमें अप्रत्यक्ष रूप से जनता का पैसा लगाया गया था, उस निर्माण को निर्दयता पूर्वक उसके बंशजों द्वारा तुडवाया जाये यह देखकर आश्चर्य और ग्लानि होती है। "नरवर चढ़े न बेड़नी एरच पके न ईट" की कहावत में 'एरच पके न ईंट' में छिपे तथ्य के अन्वेषण से पता चला कि सैकडों वर्षो तक एरच के लोग प्राचीन ऐतिहासिक समारकों एवं स्थलों से खुदाई कर जो ईंट प्राप्त करते थे उन्हीं से अपने भवन निर्मित करवाते थे। क्षेत्र के अवशेषो में इतनी ईंटे प्राप्त थी कि उन्हें ईट पकवाने की कभी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुयी। यह कहावत प्रमाणित करती है कि क्षेत्र के लोगों का ऐतिहासिक स्थलों के प्रति दृष्टिकोण स्वार्थ से युक्त है।

अनेक दुर्गो में चोरों के द्वारा खजानों की खोज में खुदाई की गयी, जिसके कारण स्थल कमजोर हुये और आसानी से ध्वस्त हुये। यदि उपयोग किया जा सकता है तो अतिक्रमण जन्मसिद्ध अधिकार है और यदि नहीं तो खण्डहरों को पाखाने की तरह प्रयोग किया जा सकता है। यह स्थिति लगभग प्रत्येक परिव्यक्त दुर्ग में देखी जा सकती है। उपयोगिता एवं स्थिति के अनुसार डकैतों, चोरों, जुआरियों और नशेबाज़ों के ये प्रिय स्थल बन जाते है, जिसके कारण सज्जन लोग इन ऐतिहासिक धरोहरों से दूर

होते जाते है । कालिंजर दुर्ग में कल्लू यादव डकैत के द्वारा किया गया सामूहिक नर संहार एक उदाहरण है तो दूसरा मड़फा दुर्ग में सर्वेक्षण के लिये जाने से क्षेत्रीय लोगों द्वारा मना किया जाना एक उदाहरण है क्योंकि यह दुर्ग अम्बिका पटेल 'ठोकिया' गिरोह के डकैतों का शरण स्थल बना हुआ है।

बुन्देलखण्ड की विशिष्ट जलवायु भी किसी सीमा तक दुर्गो के क्षरण का एक कारण हैं। बुन्देलखण्ड के प्रायः सभी दुर्गो में पत्थरों का प्रचुर प्रयोग किया गया है। तीव्र गर्मी के पश्चात वर्षा से ये पत्थर प्रभावित होते है। तापमान पाकर बढ़ने और वर्षा से अचानक ठण्डा होकर सिकुड़ने की सतत प्रक्रिया से धीरे धीरे कमजोर होकर अपना स्थान छोडने लगते है। जिससे निर्माण कमजोर हो जाता है। इसी प्रकार ईटों से बने हुये भवन के निचले हिस्सों में क्षारीयता के प्रभाव के कारण निर्माण कमजोर होता है तथा यह लम्बी अवधि में ध्वस्त हो जाता है। वनस्पतियों का इन भवनो के क्षरण में उत्तरदायित्व कम नहीं है। दीवारों के ऊपरी भागों, जोड़ो अथवा दरारो में चिड़ियों द्वारा डाले गये बीजों से पौधे उगते है और विस्तार प्राप्त करती हुयी उनकी जड़ें धीरे धीरे दीवार को अन्दर से कमजोर करती हैं। बुन्देलखण्ड के दुर्गो में पीपल और बरगद के पौधों का इस प्रकार से दीवारों में उगना एक सतत प्रक्रिया है जो सभी स्थलों में देखी जा सकती है।[77]

पुरातत्व संरक्षण के निर्धारित मानदण्ड – पुरातत्व विभाग ऐतिहासिक स्मारकों के संरक्षण के मानको का निर्धारण करता है, जिसे कई भागों में विभाजित कर लागू किया जाता है। नियमित वार्षिक कार्यो में इमारतों में उगी हुयी वनस्पतियों को साफ करना, दरारों को भरना, नष्ट हुये हिस्सों को पुनर्जीवित करना और साफ सफाई रखना आदि शामिल है। जबकि बड़ी परियोजनाओं में बिगड़े अथवा समाप्त हो रहे भागों को उनके मूलरूप में वापस लाना, उचित और आकर्षक रख रखाव बनाये रखना, सम्बन्धित का वास्तविक इतिहास प्रमाणित रूप से एकत्र करना तथा लघु पुस्तिकायें, रिपोर्ट्स और मार्गदर्शिकायें तैयार करना जिससे अध्येताओं, पर्यटकों और कलात्मक अभिरूचि वालों को सम्बन्धित पुरातात्विक सम्पदा का ज्ञान हो सके।[78] विभाग रेनोवेशन करते समय

प्रयोग की जाने वाली सामग्री की उच्च मानदण्डों का ध्यान रखना है तथा यह प्रयास करता है कि तत्कालीन सामग्री का ही प्रयोग किया जाये।[79] इस कार्य में प्रयुक्त हाने वाली राजगीरों भी विशिष्ट और तकनीकी होती है। दरारों, छिद्रो और खाली पड़े हुये टूटे स्थलों की सावधानी से सफाई की जाती है। तथा इसके पश्चात विशिष्ट मसाले एवं तरल चूने से जोड़ो को भरा जाता है।[80] कोने और दीवारों के ऊपरी हिस्से में विशिष्ट तकनीकी पद्धति से खास मसाले का पयोग किया जाता है ताकि ये हिस्से जल्दी प्रभावित न हो।[81]

बुन्देलखण्ड के दुर्गो में चल रहे इस प्रकार के रिपेयर कार्यो में इन मानकों के अनुसार कार्य होने की अपेक्षा है किन्तु अन्य सरकारी विभागों के कार्य की तरह यह भी शुचितापूर्ण नहीं है। विशेष रूप से किसी परियोजना के प्रारम्भ में विलम्ब, कार्य को बीच में रोक देना, बजट की कमी विभाग के लिये सहज स्थितियाँ है। झाँसी दुर्ग में चल रहे सफाई एवं रख रखाव के क्रिया कलापों में व्यवधान के कारण सफाई का कार्य इतना विलम्बित है कि पिछले हिस्से की सफाई नयी सफाई की तुलना में अलग दिखती है।

संरक्षण हेतु सुझाव – न केवल बुन्देलखण्ड बल्कि सम्पूर्ण देश में किलों की जो स्थिति है, उससे स्पष्ट है कि किलो के संरक्षण के लिये एक राष्ट्रीय नीति बने। किलों एवं अन्य स्मारकों के संरक्षण में बुनियादी अन्तर है इसलिये भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के अधीन स्मारकों से अलग सेल की व्यवस्था दुर्गो के परिरक्षण के लिये होनी चाहिये। दुर्गो की उपयोगिता के दृष्टिकोण से इनका वर्गीकरण किया जाये तथा प्रमुख दुर्गो को पुरातत्व के नियन्त्रण में देने के बाद राज्य सरकार के अधीन किलों को सार्वजनिक निर्माण विभाग, नगर या ग्राम्य प्रशासन अथवा पर्यटन विभाग के उत्तरदायित्व में सौंपकर पुरातत्व, वन एवं पर्यावरण विभागों के द्वारा निगरानी में रखा जाये। स्मारकों की सुरक्षा के लिये प्रमुख रूप से प्राचीन स्मारक एवं पुरातत्व स्थल अवशेष अधिनियम 1958, प्राचीन स्मारक और पुरातत्व अधिनियम 1959, पुरावस्तु व कला धरोहर अधिनियम 1972 के अतिरिक्त राज्यों के अपने कानून लागू है किन्तु प्रत्यक्षतः ये पूर्ण

रूप से अप्रभावी हैं। जिन अधिनियमों में कोयले अथवा चॉक से दीवारो में लिखने की मनाही है वहाँ लोग तुड़ाई और खुदाई तक करते है। अतः सुझाव है कि यातायात, वन और रेलवे आदि की तरह राज्य विशिष्ट पुलिस दल का गठन कर और अधिनियमों को कड़ाई से लागू करवाये। बुन्देलखण्ड के दुर्गो के संरक्षण एवं परिरक्षण के लिये निम्न सुझावों पर भी विचार किया जा सकता है।

1. दुर्गो की स्थिति एवं उपयोग के दृष्टिकोण से उन्हें न केवल सूचीबद्ध किया जाये, बल्कि उन्हें वर्गीकृत किया जाये
2. दुर्गो के परिरक्षण एवं उन्हें उपयोगी बनाने के लिये इतिहासकारों, पुराविदों, स्थापित्य–शिल्प विशेषज्ञों का कार्य दल गठित किया जाये।
3. चूँकि बुन्देलखण्ड के दुर्ग दो प्रदेशों में विभाजित है अतः एक कार्यकारी दल दोनो प्रदेशों की सरकारें प्रयुक्त रूप से गठित करें तथा दोनो सरकारें धन का प्रवन्ध करें।
4. इस क्षेत्र में जन चेतना एवं जागरूकता की सर्वाधिक आवश्यकता है। जिनमें विश्वविद्यालय व महाविद्यालय के छात्र, प्रध्यापक एवं स्वयं सेवी संगठन महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकते है। प्रचार एवं प्रसार के लिये रेडियो एवं दूरदर्शन पर कार्यक्रम देना एवं समाचार पत्रों, गोष्ठियों, मेलों आदि के कार्यक्रम देना एवं समाचार पत्रों गोष्ठियों, मेलों आदि के कार्यक्रम से जागरूकता बढायी जा सकती है।
5. झाँसी, कालिंजर, महोबा और खजुराहो महोत्सव को औपचारिक रूप से न मनाकर इनमें जन सहभागिता बढायी जाये तथा महोत्सव स्थलों की संख्या भी बढायी जाये।
6. दुर्गो के दुरूपयोग तथा अतिक्रमण से कठोरता पूर्वक निपटा जाये।
7. विभिन्न विभागों, बड़े सरकारी संगठनों, देश के धनी लोगो विशेषकर औद्योगिक घरानों एवं समाज सेवी संगठनों को किसी एक दुर्ग को गोद लेने एवं उसके विकास के लिये आगे आने को प्रेरित किया जाये।

8. क्षेत्रीय इतिहासकारों, पुरातत्वविदों एवं सरकार के द्वारा देश एवं विश्व के बड़े संगठनों जैसे इन्टेक, वर्ल्ड हेरिटेज, इंटरनेशनल काउन्सिल ऑफ मॉनूमेन्टस, यूनेस्को आदि का ध्यान बुन्देलखण्ड के दुर्गो की ओर दिलाया जाये।
9. दुर्गो का संरक्षण एवं परिरक्षण एक तकनीकी एवं व्यय साध्य कार्य है। अतः यदि किसी दुर्ग का परिरक्षण संभव न हो तो उसके साथ मर्यादानुकूल व्यवहार करना चाहिये।
10. आज के भौतिकवादी युग में जब तक किसी चीज का उपयोग न हो, उसका महत्व नही होता । अतः प्रयत्न यह किया जाये कि दुर्ग अथवा दुर्गावशेष का वर्तमान में समुचित उपयोग किया जा सके।

6.3 किलो का वर्तमान उपयोग

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में किलों की जितनी उपेक्षा और अनादर हुआ है, इतना शायद ही देश के किसी अन्य भाग में हुआ है। महाराष्ट्र में किलों के प्रति जनमानस में उत्कृष्ट चेतना है। छत्रपति शिवाजी द्वारा निर्मित दुर्गे के प्रति जनमानस में अगाध श्रद्धा एवं आत्मीयता है।[82] किन्तु बुन्देलखण्ड में इसके ठीक विपरीत स्थिति है। 1857 के क्रान्तिकारी संघर्ष ने अनेक किलों को खण्डहर में बदल दिया और जो शेष बचे वे धीरे धीरे अनुपयुक्त होते गये। समय के प्रभाव की यह कितनी विचित्र विडम्बना है कि किसी समय जिन किलों में प्रत्येक नागरिक की सम्बद्धता होती थी। तथा महत्वपूर्ण आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक कार्य जहाँ से सम्पादित होते थे, उन दुर्गो का वास्तविक रूप से कोई उपयोग नही हो रहा है। आजादी के बाद धीरे धीरे बहुत से राज परिवारों ने रखरखाव की असमर्थता के कारण इन किलों और गढ़ियों को छोड़ दिया । किसी संस्थान अथवा सरकार ने इनका अधिग्रहण नहीं किया, अतः ये उपयोग हीन होते चले गये।

देश की आजादी के बाद इन किलों अथवा महलों का आंशिक रूप से सरकारी उपयोग किया गया किन्तु वह भी इनका ठीक ढंग से संरक्षण नही कर पाये। परिणामतः धीरे–धीरे ये किले सरकारी उपयोग से बाहर होने लगे। जिन किलों या

गढियों का आजादी के बाद उपयोग हुआ उनमें दतिया के राजगढ़ पैलेस में जिलाधिकारी कार्यालय के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्यालय भी चलते रहे। चरखारी दुर्ग के नीचे स्थित मुख्य महल में उपजिलाधिकारी कार्यालय, चकबन्दी कार्यालय आदि स्थित है। इण्टर कन्या विद्यालय स्टेट के भवन में स्थित है जबकि राजकीय महाविद्यालय का प्रारम्भ वहाँ के तालकोठी पैलेस में हुआ था। टीकमगढ़ के राजकीय पी.जी. कालेज की साइंस फेकल्टी वहाँ के तालकोठी पैलेस में वर्तमान में चल रही है। बरूआसागर दुर्ग के अन्दर मौजूद महल में लम्बे समय तक बीटीसी ट्रेनिंग स्कूल के अतिरिक्त एक प्राइमरी स्कूल भी चलता रहा है। सागर के दुर्ग परिसर में पुलिस प्रशिक्षण महाविद्यालय चलता रहा है जबकि कन्हरगढ में प्राइमरी स्कूल बाँदा में खानकाह स्कूल तथा राजकीय जिला अस्पताल चल रहा है। तरौंहा की गढ़ी में 1885 तक तहसील कार्यालय रहा है, जबकि मऊरानीपुर की गढ़ी ध्वस्त हो जाने के बाद भी नवीन तहसील भवन उसी साइट पर कार्यरत है। इसी प्रकार मौदहा गढ़ी में जब तक वह ध्वस्त नही हुयी पुलिस थाना कार्य करता रहा है। ओरछा के महल परिसरों में न्यायालय के अतिरिक्त राजस्व सम्बन्धी कार्यालय स्थित है। वर्तमान में कर्वी तथा मडावरा दुर्ग परिसरों में पुलिस थाने कार्यरत है। अजयगढ़ दुर्ग के नीचे महल में न्यायालय चल रहा है, जवकि राजनगर के भवनों में मिडिल स्कूल सब ट्रेजरी सब तहसील के अलावा हरिजन छात्रावास कार्य कर रहा है। कालिंजर दुर्ग में अमान सिंह महल का प्रयोग संग्रहालय की तरह किया जा रहा है। झाँसी दुर्ग पहले सेना के उपयोग में था, जिसमें झाँसी बवीना कैन्ट का गोला बारूद सुरक्षित रहता था अब सेना द्वारा खाली कर दिया गया है वर्तमान में झाँसी दुर्ग में और उसका कार्यालय चरखारी किले में वर्तमान में सेना में अस्थायी रूप से अपना आवास बना रखा है । ओरछा दुर्ग के शीश महल में एक हेरिटेज होटल , शीशमहल होटल के नाम कार्यरत है जिसका संचालन म0प्र0 पर्यटन विभाग कर रहा है। भूरागढ़ दुर्ग के ध्वस्त पश्चिमी भाग में कुछ लोगो ने अवैध मकान बना रखे है जबकि केन्द्रीय बाढ़ पूर्वानुमान विभाग इसके एक ध्वस्त बुर्ज का फलड गॉज की तरह उपयोग कर रहा है व्यक्तिगत उपयोग के दुर्गो की चर्चा पीछे की जा चुकी है।

विचारीणी प्रश्न यह है कि क्या इन दुर्गो का कुछ इस प्रकार से उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है जिससे एक ओर बिना किसी नुकसान के एवं परिवर्तन के इनका रखरखाव बना रहे और दूसरी ओर समाज एवं जन कल्याण के उपयोग में भी लाया जा सके । इस तरह के उपयोग से किलों अथवा गढ़ियों के संरक्षण एवं संवर्धन में भी सहायता मिल सकती है बुन्देलखण्ड के इन दुर्गो एवं गढ़ियों के उपयोग के लिये आवश्यक है कि पहले इनका गहन सर्वेक्षण किया जाये, जिससे इनकी स्थिति, वर्तमान दशा, उपयोग योग्य बनने में व्यय होने वाली धनराशि का अनुमान, उपयुक्त उपयोग का पूर्वानुमान आदि बिन्दुओं को सम्मिलित किया जाये। इस महत्वपूर्ण बिन्दु पर ध्यान दिया जाना चाहिये कि शासकीय, अर्ध–शासकीय, सामुदायिक अथवा कम्पनी आदि के उपयोग के लिये जो भवन निर्मित किये जाते है, यदि भूमि मूल्य, निर्माण व्यय को जोड़कर इन स्थलों पर खर्च किया जाये तो भवन की उपलब्धि भी होगी साथ ही ऐतिहासिक स्थलों का संरक्षण भी आसानी से हो जायेगा। अतः बुन्देलखण्ड क्षेत्र में शासन को अपने उपयोग के लिये किसी भवन का निर्माण कराने से पहले यह अवश्य विचार करना चाहिये कि क्या निर्माण लागत का धन खर्च किसी गढ़ी या दुर्ग का उपयोग किया जा सकता है। इन किलों और गढ़ियों के सम्भावित उपयोग निम्न हो सकते है।

1. छोटी गढ़ियों को पंचायत भवन या सामुदायिक भवन के रूप में समीपवर्ती गाँवों को दिया जाये, जिस पर वे न केवल निर्माण का बजट खर्च करें बल्कि रख रखाव का उत्तर दायित्व भी ले।
2. बड़े दुर्गो में थल सेना के स्थायी एवं अस्थायी निवास बनाये जाये।
3. थानों के रूप में इनका उपयोग किया जाये। निर्माण व रखरखाव का पैसा लगाया । इससे न केवल दुर्गो का दुरूपयोग बन्द हो जायेगा बल्कि अराजक तत्वों के अड्डों के रूपमें इनका उपयोग भी समाप्त हो जायेगा।

4. प्रदेश के सशस्त्र बल जैसे पी0ए0सी0 आदि के स्थायी कैम्पों के रूप में इन्हें बदला जाये। इन किलों में मौजूद बड़े मैदान जवानों के परेड एवं खेलकूद के रूप में उपयोगी सिद्ध होगे।
5. जंगली दुर्गो के आस पास छोटे अभयारण्य विकसित किये जाये और दुर्ग को वन विभाग के कार्यालय, आवास आदि के उपयोग में दिया जाये।
6. यदि भवन अच्छी स्थिति में हो तो वहां विद्यालय, ट्रेनिंग स्कूल या कोई कार्यालय खोला जाये।
7. वर्तमान में दूरसंचार विभाग की अनेकों कम्पनियों अपने टावर एवं कार्यालय के लिये उपयुक्त स्थान खोजती है। दुर्ग स्थल ऊँचाई पर स्थित होने के कारण उनके लिये बहुत उपयोगी है। अतः संरक्षण के उत्तरदायित्व के साथ उनके उपयोग में दिये जा सकते है।
8. सरकारी स्तर पर अनुदान देकर इन्टेक की सेवायें प्राप्त की जायें और रखरखाव के साथ ही उपयोग के सम्बन्ध मे सुझाव दिये जायें।
9. प्रायः सभी दुर्गो में महत्वपूर्ण देव स्थल मंदिर, मस्जिद, समाधि, मजार आदि मौजूद है। इन्हें महत्व देते हुये स्थान को विकसित किया जाये। जन अभिरूचि के बढने और जन जागरूकता के साथ देवस्थान के रूप में इनका उपयोग एवं संरक्षण हो सकता है।
10. इन प्राचीन स्थलों में उत्खनन की अच्छी संभावनायें है जिनसे प्राप्त वस्तुओं को वही भवन में म्यूजियम के रूप में विकसित किया जा सके।
11. बुन्देलखण्ड के अधिकांश दुर्गो की स्थिति प्राकृतिक स्थलों जैसे नदी, पर्वत, तालाब वन आदि के निकट है। प्राकृतिक सौन्दर्य की गोद में स्थित कई दुर्गो को पर्यटन स्थल के रूप विकसित किया जा सकता है।

6.4 पर्यटन स्थल के रूप में विकास की संभावनायें

पर्यटन आज के वैश्विक परिदृश्य में एक उद्योग की तरह छा चुका है।[83] यू0एन0ओ0 की शाखा वर्ल्ड टूरिज्म ऑर्गनाइजेशन ने अन्तर्राष्ट्रीय एवं घरेलू पर्यटनों को

बढावा देने के लिये तथा विकसित देशों के अतिरिक्त विकासशील देशों की राष्ट्रीय आय को बढाने के लिये पर्यटन के आधार भूत नियमों का विकास किया है।[84] भारत में आई0टी0डी0सी0 पर्यटन की उत्तरदायी संस्था है, जो पर्यटन स्थलों की खोज तथा पर्यटन स्थल के रूप में विकसित करने के लिये आधार भूत ढाँचा तैयार करने एवं पर्यटको को आकर्षित करने के लिये प्रचार–प्रसार का उत्तदायित्व निर्वहन करता है।[85] भारत में पर्यटकों को सुषमा वाले स्थल, धार्मिक स्थल, पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक स्थल, विशिष्ट संस्कृति एवं कला–उत्सव क्षेत्र है।[86] बुन्देलखण्ड के दुर्ग इस सन्दर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि कमोवेश सभी प्रमुख दुर्गो में ये चारों तत्व देखने को मिलते है। उ0प्र0 से उत्तरांचल राजय अलग हो जाने के बाद राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पर्यटकों को आकर्षित करने वाले स्थलों की संख्या सीमित हो रही है। अतः प्रदेश शासन की नीति अपने प्रदेश में स्थित सम्पूर्ण सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड को पर्यटन क्षेत्र के रूप में विकरित करने की वन रही रही है । तात्पर्य यह है कि थोडे प्रयासों के साथ ही बुन्देलखण्ड भारत में पर्यटन मानचित्र में लाभकारी पर्यटन क्षेत्र के रूप में विकसित हो सकता है और निश्चय ही इस उपलब्धि में यहाँ स्थित दुर्गो का महत्वपूर्ण योगदान रहेगा।

बुन्देलखण्ड के पर्यटन स्थलों में वर्तमान में खजुराहो का प्रथम स्थान है जो राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाये हुये है।[87] इतिहास और शिल्प के कारण जिस प्रकार खजुराहो ने अपना स्थान बनाया, उसी प्रकार बुन्देलखण्ड के अनेक दुर्ग अपना स्थान बना सकते है। पर्यटन विभाग के द्वारा बुन्देलखण्ड क्षेत्र में संभावित पर्यटन स्थलों को चिन्हित करते हुये जो पर्यटन मानत्रित तैयार किया गया है उसमें कुल 42 स्थान चिहिन्त है जिनमें से वर्तमान में 35 स्थलों में दुर्ग है अथवा दुर्ग रहा हैं।[88] यह मानचित्र बुन्देलखण्ड के पर्यटन विकास में दुर्गो के योगदान के सम्भावित महत्व को स्वयं प्रगट करता है । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अभी तक केवल 7 स्थानों को ही पर्यटन स्थल के रूप में विकसित करने का प्रयास हुआ है[89] जहाँ पर्यटन

विभाग एवं कार्यालयों की ओर से विभाग गृह की सुविधा प्रदान की गयी है। इनके नाम खजुराहो, ओरछा, कर्वी, चित्रकूट, महोबा, झाँसी देवगढ़ एवं दतिया हैं।

वर्तमान पर्यटन स्थिति एवं दुर्गो का योगदान – बुन्देलखण्ड के वर्तमान पर्यटन मानचित्र में जिन 7 स्थलों ने अपना स्थान निर्धारित किया है, अनमें से प्रत्येक में या तो दुर्ग स्थित है अथवा कभी वहाँ दुर्ग रहा है। वर्तमान में पर्यटन विकास में दुर्ग के अतिरिक्त अन्य कारण भी प्रभावी हो रहे है। जैसे कर्वी – चित्रकूट में दुर्ग का प्रभाव शून्य हो चुका है तथा तीर्थ एवं प्राकृति सौन्दर्य पर्यटकों का प्रमुख आकर्षण है। खजुराहों में भी अव दुर्ग नहीं है। किन्तु चन्देलों द्वारा निर्मित मन्दिरों एवं मूर्ति शिल्प ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली है। देवगढ़ जैन धर्माविलम्बयों के लिये आकर्षक का केन्द्र है जबकि महोबा, ओरछा, झाँसी, दतिया ऐतिहासिक कारणो से ही पर्यटकों को आकर्षित करते रहे हैं।

बुन्देलखण्ड के पर्यटन स्थलों में पहुँचने के लिये झाँसी प्रवेश द्वारा की तरह है[90] जहाँ सड़क एवं रेल मार्ग से पहुंचने वाले पर्यटक लखनऊ–कानपुर अथवा दिल्ली –आगरा से यात्रा करते हुये पहले झाँसी पहुँचते है। झाँसी में विश्राम लेने के बाद उनकी दृष्टि मूलरूप से ओरछा एवं खजुराहो की यात्रा की होती है। कुछ पर्यटक देवगढ़ – चन्देरी अथवा महोबा या चित्रकूट की ओर यात्रा करते है। कालिंजर पहुँचने वाले वाह्य पर्यटकों की संख्या बहुत कम होती है।

विदेशी पर्यटक प्रायः दिल्ली एवं आगरा से होते हुये सडक एवं रेलमार्ग से खजुराहो जाना चाहते है अथवा हवाई यात्रा से सीधे खजुराहो पहॅुचते हैं। जो पर्यटक सड़क अथवा रेल मार्ग से यात्रा करते है वे निश्चित ही खजुराहो के अतिरिक्त कुछ अन्य स्थलों मे भी पहुँचना चाहते है इस दृष्टिकोण से झाँसी पहॅुचने वाले पर्यटकों की संख्या से बुन्देलखण्उ के पर्यटन प्रवाह का लगभग ठीक अनुमान लगाया जा सकता हैं पर्यटन विभाग से प्राप्त नवीन आंकड़ों के अनुसार सन 2003 में बुन्देलखण्ड में कुल 4. 55 लाख पर्यटक आये जिनमें हवाई यात्रा के पर्यटक शामिल नहीं है। इनमें 4.50 लाख घरेलू तथा 0.05 लाख विदेशी पर्यटक थे। बुन्देलखण्ड में पर्यटन विकास के विगत 6

वर्षो का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि 1998, 1999 तथा 2000 तक पर्यटकों की संख्या में सतत वृद्धि हुयी है किन्तु अचानक 2001 में प्र्यटकों की संख्या में बड़ी कमी आयी। सन 2000 के विदेशी पर्यटकों की 10000 की संख्या अगले वर्ष मात्र 400 रहगयी जबकि घरेजू प्र्यटक 4.92 लाख से घटकर 3.60 लाख रह गयी है। विगत दो वर्षो में पर्यटकों की संख्या में क्रमशः वृद्धि हुई है जिसके आगे बढ़ते रहने की सम्भावना है।[91] यद्यपि पर्यटन विभाग यात्रियों को आकर्षित करने के लिये सतत प्रयत्नशील है फिर भी विभाग को अच्छी सफलता नहीं मिल रही है उत्तर प्रदेश के पर्यटन विभाग ने उत्तरप्रदेश बुन्देलखण्ड में पर्यटन विकास के लिये 50 करोड़ की माँग सरकार से की है जिससे दुर्ग एवं दुर्ग एवं पर्यटन स्थलों का उचित विकास किया जा सके। विभाग के विस्तृत विवरण को देखने से पता चलता है कि यह धनराशि केवल झाँसी शहर और उसके आस पास के स्थलों का विकसित करने के लिये माँगी गयी है। उससे अनुमान होता है कि दूरदराज के महत्वपूर्ण स्थलों को विकसित करने की योजनायें अभी नहीं बनी हैं। इसी प्रकार म0प्र0 राज्य पर्यटन विभाग के द्वारा प्रयास किये गये जो तुलनात्मक रूप से उ0प्र0 प्रदेश कुछ अधिक है।[92] आश्चर्य का विषय है कि खजुराहो को वर्ल्ड हेरिटेज का स्तर प्राप्त होने के बाद किसी अन्य स्थल इस स्तर पर लाने के गम्भीर प्रयास नहीं किये गये बुन्देलखण्ड में कुछ स्थल ऐसे है जिन्हें प्रयास करके विश्व के मानचित्र पर लाया जा सकता है।

पर्यटन सम्भावनायें एवं दुर्ग – जैसे कि चर्चा की जा चुकी है कि पर्यटन सम्भावनाओं की आधार शिला ऐतिहासिक शिल्प, प्राकृतिक एवं सांस्कृति आकर्षण तथा धार्मिक आकर्पण होते हैं। ये बुन्देलखण्ड में पर्याप्त रूप से उपलब्ध है। ऐतिहासिक शिल्प में प्रमुख रूप से किले, महल मन्दिर और मूर्तियाँ आती है। यहाँ दुर्गों को केन्द्र में रखकर पर्यटन सम्भावनाओं का विश्लेषण समीचीन होगा।

दुर्ग एवं प्राकृतिक आकर्षण – किलों के आधार पर पर्यटन व्यवसाय को सर्वाधिक विकसित करने वाले राजस्थान की तुलना में बुन्देलखण्ड के दुर्गो का प्राकृतिक आकर्षण कम नहीं है। वन और पहाड़ियों से भरपूर बुन्देलखण्ड के किले विशाल तालाब

एवं नदी का आकर्षण साथ में रखते हैं। अजयगढ़, सिंगोरगढ़, देवगढ़, वटियागढ़ और मनियागढ़ जंगलों और पहाड़ियों से युक्त सुन्दर परिदृश्य वाले स्थल है परन्तु इनके साथ समस्या यह है कि इनमें पर्यटन सुविधाओं का अत्यन्त अभाव है। यातायात, आवासीय एवं सुरक्षात्मक सुविधायें विकसित कर इन किलों को प्रकृति प्रेमी पर्यटकों को आकर्षित करने में सक्षम बनाया जा सकता है।

गढ़कुण्डार, महोबा, चरखारी, टीकमगढ़, बरूआसागर , जतारा, मोहनगढ़, बल्देवगढ़ और जैतपुर जैसे दुर्ग विशाल तालाबों एवं झीलों के किनारे स्थित है। इन जलाशयों की रमणीक दृश्यावली पर्यटकों को स्वाभाविक रूप से आकर्षित कर सकती है किन्तु यहाँ भी आधार भूत सुविधाओं का अभाव है। यदि इन विशाल तालाओं में जल क्रीड़ाओं जैसे नौकायन, बोट रेस, तैराकी आदि से सम्बन्धित सुविधायें उपलब्ध कराकर प्रतियोगितायें आयोजित की जाये, तो शीघ्र ही ये स्थल चर्चित हो सकते है। महोबा जिला प्रशासन द्वारा राहिल सागर में किया इस प्रकार प्रयोग उत्साह वर्धक सिद्ध हुआ है। विशाल तालाव, जंगल तथा पहाड़ियाँ एवं इनके मध्य के स्थित किलों और महलों का आकर्षण घरेलू पर्यटकों को छुट्टियाँ बिताने के लिये स्वाभाविक रूप से आमंत्रित कर सकता है।

दुर्ग एवं धार्मिक आकर्षण – भारतीयों के लिये धार्मिक आकर्षण भी कम नही है। चित्रकूट में आयोजित होने वाला धार्मिक अमावस मेला सिद्ध करता है कि धार्मिक पर्यटन स्थल भी लाखों लोगो को आकर्षित कर सकते है। धार्मिक स्थलों पर प्रायः आयोजन होते रहते है , यदि इन्हें ऐतिहासिक विरासत से जोड़ दिया जाय तो इनका महत्व बढ सकता है। बुन्देलखण्ड में अनेक जैन तीर्थ है। जिनमें सोनागिरि, देवगढ ललितपुर महत्वपूर्ण हैं कुछ प्राचीन मेले जो बहुत पहले से इन स्थलों पर धार्मिक रूप से आयोजित होते रहे है और धीरे धीरे कमजोर होते जा रहे है इनके संवर्धन की आवश्यकता उदाहरण के लिये कालपी का संदल मेला, कोंच और महोबा का भुजरिया मेला, जलबिहार एवं बावरी यात्रा, स्योंढ़ा (दतिया) का सांकना मेला, समथर का

रामनवमी उत्सव, वीरसिंहपुर का गैबीनाथ एवं महादेव मेला, बिजावर का सियाकुण्ड मेला, पन्ना की रथ यात्रा एवं चरखारी का गोवर्धन एवं बटुक भैरव में बुढ़वा मंगल।[93]

कालिंजर, ओरछा, देवगढ, खजुराहो ये बुन्देलखण्ड के चारों प्रमुख पर्यटन स्थल एक बडा धार्मिक आधार भी रखते है। कालिंजर प्राचीन काल से ही प्रस्द्धि शैव धार्मिक स्थल रहा है। ओरछा के 70 प्रतिशत पर्यटकों का आकर्षण राजमराजा मन्दिर है। गुप्तकाल से प्रसिद्ध वैष्णव स्थान देवगढ वर्तमान में जैन धर्मावलम्बियों के लिये प्रमुख आकर्षण है। खजुराहों के मन्दिर भी मूल रूप से धार्मिक आकर्षण के केन्द्र रहे हे। किन्तु अव उनका शिल्प पक्ष महत्वपूर्ण हो गया है।

दुर्ग एवं सांस्कृतिक आकर्षण – भारत की अनेक आंचलिक संस्कृतियों के सदृश बुन्देलखण्ड की संस्कृति अपनी अलग पहचान रखती है, किन्तु अभी तक वास्तविक रूप से यह लोगों का ध्यान खीचने में असफल रही है। इसका कारण यह है कि प्रायोजित रूप से पर्यटकों के समक्ष इसका प्रस्तुतीकरण नही किया जा सका। जिस प्रकार आर0सी0 डी0सी0 ने राजस्थानी लोक संस्कृति का नियोजित प्रदर्शन घरेलू एवं विदेशी पर्यटकों के समक्ष किया है, उसी प्रकार के प्रयास बुन्देलखण्ड में भी वांछित है। पर्यटन के व्यापारिक सूत्रों में यह महत्वपूर्ण होता है कि पर्यटक को रात्रि विश्राम की सुविधायें देकर उसे रोका जाये और फिर क्षेत्रीय भोजन, लोकगीत, लोक नृत्य आदि के प्रस्तुतीकरण से उसे यह अनुभव कराया जाये कि उसका रात्रि विश्राम ज्ञानवर्धक एवं मनोरंजक रहा तथा वह क्षेत्रीय संस्कृति का परिचय प्राप्त कर सका।[94] बुन्देलखण्ड के प्रमुख पर्यटन केन्द्रो को विकसित कर कई दिवसीय सांस्कृतिक समारोहो को आयोजन किये जा सकते है, जिससे पर्यटक बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक पहचान से प्रभावित हो सके। वर्तमान में खजुराहो, झाँसी और कालपी में दुर्ग एवं मन्दिर परिसरों में सांस्कृतिक महोत्सव आयोजित कर इस दिशा में कदम बढ़ाये गये हैं।

अन्य क्षेत्रीय संस्कृतियों की तरह बुन्देलखण्ड के लोक गीत, लोक नृत्य एवं क्षेत्रीय भोजन का प्रस्तुतीकरण इन आयोजनों में आवश्यक रूप से किया जाना चाहिये। बुन्देलखण्ड के लोकगीतों में शास्त्रीयता के साथ आंचलिक कला का सुन्दर सम्मिश्रण

है। प्रमुख रूप से अचरी गायन, राछरे (सावन), ढिमरिया गीत महत्वपूर्ण है। फाग और ख्याल गायन भी यहाँ के प्रसिद्ध गीतों में है। ख्याल लावनी में लावनी का अर्थ लावण्यपूर्ण है। इसमें कलग व तुरा नामक दो सम्प्रदायों के बीच जवाबी गायन होता है। बसन्त ऋतु मे गायी जाने वाली फागों को लोक ईसुरी ने बुन्देलखण्ड में ऊँचाईयों तक पहुँचाया है। इस गायन में चौकड़िया और छनद्याऊ पद्धतियों से गायन होता है। सावन में गाया जाने वाला आल्हा बुन्देलखण्ड के इतिहास और वीरता के गीत है, जिसकी सबसे प्रमुख शैली बुन्देली है। फाग, खयाल और आल्हा गायन पर्यटकों के लिये प्रमुख आकर्षण हो सकते है। इनके अतिरिक्त गोट, कछियाऊ, कहरी, रामानन्दी और तमूरा भजन भी बुन्देलखण्ड की लोकगीत पद्धतियाँ है जिनका प्रस्तुतीकरण किया जा सकता है। लोकगीतों की तरह लोक नृत्यों में दिवारी, राई, घट, जवारा, पटा बनैती, चॉचर, झिझिंया, ढिमरवाई, रावला, कहरवा एवं कोलिहा नृत्य प्रमुख नृत्य है। जिनमें दिवारी, राई ढिमरयायी, रावला अत्यन्त आकर्षक नृत्य है। इनका प्रस्तुतीकरण कही भी लोगों को लुभा सकता है। फोलिया नृत्य पाठा क्षेत्र में कोल जनजाति का नृत्य हैं।[95] इन लोक गीतों में प्रयुक्त, होने वाले प्रमुख बुन्देली वाद्य रमतूला, नगड़िया , नकारा, हुडंक, चंग, झांक, मृदंग, मंजीरा, चिमटा, कसेरू तथा चटकोवा है। इन वाद्यों की समवेत वादन की ताल वाद्य कचैरी में बुन्देली लोक संगीत का अद्भुत स्वरूप देखने को मिलता है।[96]

पर्यटकों को आकर्षित करने के लिये बुन्देली व्यंजन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यहाँ के पर्यटन स्थलों में यदि बुन्देली व्यंजन उपलब्ध कराये जाये, तो विदेशी पर्यटक उनका आनन्द ले सकते हे। बुन्देलखण्ड में परोसे जाने वाले व्यंजनो की लम्बी सूची है। प्रमुख रूप से कढ़ी भात, बरा कोच, कचरिया , मुरार, हिंगोरिया, मुसैला, गनगौरा, कुरेरी, ठलूला, खीचला, कुचैरा, पेराक, मिरचन, मुरका, सुरका, सन्नाटो आदि ऐसे व्यंजन है जो पर्यटकों को अन्यत्र सुलभ नही हो सकते है पर्यटको को बुन्देंलखण्ड की संस्कृतिक पारम्परिक लोक चित्रांकन का सहयोग लिया जा सकता है। कभी बुन्देलखण्ड की कंदराओ में जन्म लेने वाली यह कला सामान्य जनों के घरों से

होती हुयी राज महलों तक भित्ति चित्र के रूप में पहुँची। अब इसके बहुत कम कलाकार बचे है। जिनको प्रोत्साहित कर न केवल पर्यटकों का मनोरंजन कया जा सकता है, वरन इन कलाकरों को प्रोत्साहित किया जा सकता है।[97] बुन्देली शैली की प्रमुख विधायें नवरता, स्वास्तिक, सुराती, लक्ष्मी, गोदन है जिनमें पारंपरिक देवी देवता, पशुपक्षी एवं अवरारों के चित्रांकन के अतिरिक्त दूल्हा देव, घटोरिया देव, वन देव तथा लक्ष्मी देवी आदि के विशिष्ट चित्रांकि किये जाते है।[98] यहाँ स्थित दुर्ग बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक यात्रा के साक्षी है और इसके विकास में भी इन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया है अतः पर्यटन विकास में इन दोनो का योग प्रभावी सिद्ध हो सकती है।

पर्यटन नियोजन – यदि बुन्देलखण्ड में पर्यटन उद्योग को विकसित करना है, तो उद्योग के आधारभूत ढांचे का विकास करना होगा। इसके लिये एक दीर्घकालिक कार्य क्रम बना कर विशेष नियोजन करने की आवश्यकता होगी। बुन्देलखण्ड के दुर्ग स्थलो को पर्यटन के स्वरूप एवं स्तर के अनुरूप विभाजित किया जाना चाहिये तथा अलग अलग उन स्थलों के विकास के लिये योजनायें बनाकर लागू करना आवश्यक है । पर्यटन उद्योग में पहल सरकारें करती है और प्राथमिक सुविधाओं के लिये सर्वप्रथम धन सरकार को लगाना पड़ता है। क्षेत्रीय लोगो की समबद्धता और आर्थिक योगदान उसके बाद आता है। लाभ क्षेत्र को अधिक और सरकार को कम होता है यही कारण है कि इस उद्योग के विकसित होने में कठिनाई आती है व समय भी लगता है।

खजुराहो, झाँसी, ओरछा और महोबा जैसे स्थल जहाँ पर्यटकों का आना जाना प्रारम्भ हो चुका है उनके समीपवर्ती दुर्ग स्थलों को यदि विकसित किया जाये तो क्षेत्र में पर्यटकों की समयावधि बढ़ेगी । तात्पर्य है कि छोटे स्थलों को बडे केन्द्रो से उसी प्रकार सम्बन्ध किया जाये जैसे एक बडे केन्द्रो से उसी प्रकार सम्बन्ध किया जाये जैसे एक बडे उद्योग के सहारे कई फैक्ट्रियों को खड़ा किया जाता है उदाहरण के लिये ओरछा पहुँचने वाले पर्यटकों को बरूआसागर , जातारा बल्देवगढ और टीकमगढ पहुँचने के लिये परिस्थितियों बनायी जा सकती है। खजुराहो पहुँचने वाले पर्यटको को अजयगढ, पन्ना, राजगढ आदि स्थलों का भ्रमण कराया जा सकता है। ऐतिहासिक,

धार्मिक अथवा प्राकृतिक महत्व के दृष्टिकोण से पर्यटन पैकेज तैयार किये जा सकते है जैसे – धार्मिक दृष्टि से ओरछा, चित्रकूट, देवगढ, सोनागिरी, जैसे स्थलों का पैकेज तैयार किया जा सकता है। केवल झाँसी से ही दतिया, समथर, टोड़ीफतेहपुर , गढकुण्डार, बरूआसागर के किले दिखाये जा सकते हैं।

पर्यटन का आवश्यक आधार भूत ढाँचा विकसित करने में सडके तथा परिवहन का सरण एवं सुविधाजन साधन, निवास हेतु साफ सुथरे होटल, गेस्ट हाउस, उचित जल एवं विद्युत वयवस्था, संचार की आधुनिक सुविधायें (दूरभाष, फैक्स, इंटरनेट) उचित मूल्य पर स्मृति चिन्हों एवं स्थानीय सह उत्पादों के खरीद स्थल, विविधता पूर्ण भोजन की उपलब्धता तथा सुरक्षा आदि का विशेष योगदान होता है।[99] पर्यटन के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण स्थान भी इन सुविधाओं के बिना विकसित नहीं हो सकते । यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि पर्यटन का विकास आम आदमी की मानसिकता एवं आर्थिक गतिविधियों पर निर्भर करता है।[100] यदि प्रोफेशनल ढंग से उचित सेल्समैन शिप की जाये, तो पर्यटन विकास तीव्रता से हो सकता हैं बुन्देलखण्ड के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्थल में दुर्ग अभी भी पर्यटन की मूलभूल सुविधाओं से वंचित है। पर्यटन विकास पथ के प्रकाश स्तम्भ में दुर्ग इस पिछड़े क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते है । आवश्यकता एक सार्थक पहल की है।

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1. त्रिपाठी, काशीप्रसाद,' बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास –राजतंत्र से जनतंत्र'' टीकमगढ़ ,1991,पेज–268
2. वही, पेज–268,269
3. वही, पेज–270
4. जनपद गजेटियर झाँसी , लखनऊ,1965,, पेज–55
5. तिवारी , गोरेलाल,' बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, वाराणसी, 1933, पेज–361
6. त्रिपाठी, काशीप्रसाद, पूर्वाधृत, पेज–344
7. जनपद गजेटियर सागर , भोपाल, 1970, पेज–510, 510, 521, 522
8. त्रिपाठी, काशीप्रसाद पूर्वाधृत, पेज–349
9. ब्रोकमैन, डी0 एल0 ड्रेक,' डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ यूनाईटेड प्रोविन्सेज आगरा एण्ड अवध –बाँदा , इलाहाबाद, 1909, पेज–181,182
10. जनपद गजेटियर हमीरपुर , लखनऊ,1980,, पेज–267,268
11. त्रिपाठी, काशीप्रसाद, पूर्वाधृत, पेज–363
12. जनपद गजेटियर जालौन, लखनऊ,1980,, पेज–47,48
13. त्रिपाठी, काशीप्रसाद ,पूर्वाधृत, पेज–342
14. शर्मा, आर0के0,' मध्य प्रदेश के पुरातत्व का सन्दर्भ ग्रन्थ' इलाहाबाद,1976, पेज–9
15. ब्रोकमैन, डी0 एल0 ड्रेक, पूर्वाधृत, पेज–159
16. जनपद गजेटियर बाँदा , लखनऊ, 1988, पेज–29

17. बाजपेयी, के0 डी0,' युगों–युगों में उत्तर प्रदेश ,' इलाहाबाद ,1955, पेज–42

18. मेनन, पी0 के0 वी0 , जरनल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री , खण्ड –14 अंक–1 अप्रैल 1967, त्रिवेन्द्रम, सीरियल नं0 –133, पेज–100

19. जोशी, आर0 वी0 ,' स्टोन एज इण्डस्ट्रीज ऑफ द दमोह एरिया म0प्र0,' एनसियेन्ट इण्डिया, नवम्बर 17, 1961 पुनमुद्रित 1986 , ए0एस0आई0, नई दिल्ली, पेज–4

20. शिवराममूर्ति एस0 एवं राय , जे0के0 ,' म्यूजियम्स,' स्पेशल जुबली नं0 , एनसिएन्ट इण्डिया 1953, ए0एस0आइ0 , नई दिल्ली ,1985, पेज–235

21. रॉय , वी0 एन0 ,' कालंजरः ए हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल' , बाँदा,1992, पेज–3

22. वही, पेज–23

23. वही, पेज–23,24

24. जनपद गजेटियर बाँदा ,पूर्वोधृत , पेज–296

25. रॉय , वी0 एन0 , पूर्वोधृत , पेज–23 (हिन्दी खण्ड)

26. त्रिपाठी, आभा, 'चन्देलकालीन भूमिदान पत्रों का महत्व ' इतिहास, अंक –1 , भाग–1, दिल्ली–2003, पेज–93

27. कनिंघम , ए0 ,' आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स , खण्ड –21 , पेज–38

28. वही, पेज–34,35

29. पाण्डेय, रमाशंकर,' कालिंजर के चन्देलकालीन अभिलेख' , 'कालंजर : एक हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल' , पूर्वोधृत , पेज–25,26

30. जनपद गजेटियर पन्ना ,भोपाल ,1194, पेज–368

31. वही, पेज–368, 369

32. वही, पेज–369

33. कनिंघम , ए0, पूर्वोधृत , पेज–48

33 (क) तोप पर अंकित है – ढाहे गढ़ ढाहन ढहन, अरिदल पर पुरवाम
माधव नृप की तोप यह , अरिदल गंजन नाम ।।

34. जनपद गजेटियर दमोह ,भोपाल ,1198, पेज–209

35. वही, पेज–210

36. वही , पेज–25

37. सिंह , विकास वैभव ,' गढकुण्डार महल ' बुन्देलखण्ड दर्पण सप्तम बिम्ब, 1999, पेज– 75

38. जनपद गजेटियर दमोह ,भोपाल ,1199, पेज–75

39. जनपद गजेटियर सागर ,भोपाल , पूर्वोधृत , पेज–511

40. वही , पेज–525

41. वही , पेज–519

42. वही , पेज–529,530

43. त्रिपाठी , मोतीलाल,' बुन्देलखण्ड दर्शन', झाँसी, 1980, पेज–156

44. वही , पेज–179

45. सिंह ,राजेन्द्र , 'बुन्देलखण्ड : ए ट्रेडीशनल लैण्ड ऑफ फोर्ट काम्प्लेक्स', द डेकेन ज्योग्राफर, पुणे,1994, पेज–7

46. जनपद गजेटियर सागर ,पूर्वोधृत , पेज–512

47. वही , पेज–512,513

48. जनपद गजेटियर छतरपुर ,भोपाल , 1982, पेज–321

49. जनपद गजेटियर झाँसी ,पूर्वोधृत , पेज–340

50. जनपद गजेटियर दमोह ,पूर्वोधृत , पेज–186

51. जनपद गजेटियर झाँसी ,पूर्वोधृत , पेज–353

52. जोशी, आर0 वी0 , पूर्वोधृत , पेज–1,2

53. जनपद गजेटियर सागर ,पूर्वोधृत , पेज–508

54. वही , पेज–522

55. वही , पेज–511

56. जनपद गजेटियर टीकमगढ़, पूर्वोधृत , पेज–354,355

57. सिंह ,राजेन्द्र, पूर्वोधृत , पेज–8

58. जनपद गजेटियर टीकमगढ़, पूर्वोधृत , पेज–350

59. जनपद गजेटियर जालौन ,पूर्वोधृत , पेज–293,294

60. वही , पेज–300,301

61. जनपद गजेटियर हमीरपुर ,पूर्वोधृत , पेज–273,274

62. जनपद गजेटियर दतिया ,भोपाल , 1977, पेज–303,305

63. थापर, रोमिला,' अशोक और मौर्य साम्राज्य का पतन ,' ग्रन्थम प्रकाशन,1999, पेज–232, टिप्पणी– गुजर्रा लघु शिलालेख में अशोक नाम आता हैं ' देवनांप्रिय अशोक राजस......'

64. गाँगुली , ओ0 सी0 ,' द आर्ट ऑफ चन्देलाज,' कलकत्ता ,1957 , पेज–13

65. हन्टिंगटन एवं सूसन एल0 ,' द आर्ट ऑफ एनसिएन्ट इण्डिया,' न्यूयार्क, 1985 , पेज–117

66. शिवराममूर्ति,सी0 एवं राय , जे0 के0 ,' म्यूजियम्स ,' एनसिएन्ट इंडिया , नवम्बर 1953, पुनमुद्रित 1985, पेज– 245

67. जनपद गजेटियर छतरपुर ,पूर्वोधृत , पेज–318

68. वही, पेज--316,317

69. 11 जनवरी 1984 को एशियाटिक सोसाइटी के द्विवार्षिक समारोह में दिया भाषण , दीनानाथ दुबे कृत 'भारत के दुर्ग' पेज– 215 से उद्धृत ।

70. दुबे, दीनानाथ ,' भारत के दुर्ग , दिल्ली,1999, पेज–214

71. वेवसाइट www.asi.nic.in के अनुसार

72. घोष, ए0 ,' फिफ्टी ईयर्स ऑफ द आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया,' एनसिएन्ट इण्डिया, 1953, पेज– 13

73. रामचन्द्रन , टी0 एन0 ,' प्रिजरवेशन आफ मॉनूमेन्ट्स ,' एनसिएन्ट इण्डिया , पूर्वोधृत , पेज– 172

74. वही, पेज– 173

75. टिप्पणी– व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित

76. जनपद गजेटियर दतिया ,पूर्वोधृत , पेज–54

77. रामचन्द्रन , टी0 एन0, पूर्वोधृत , पेज–174

78. सिंह, पुरुषोत्तम, 'रिलीजियस स्पॉटस विद इन फोर्टस : ए स्टडी इन कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड,' इंडियन हिस्ट्री कॉग्रेस के 66वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोध पत्र, शान्ति निकेतन, 2006, पेज–9

79. रामचन्द्रन , टी0 एन0, पूर्वोधृत , पेज–175

80. वही , पेज–176,178

81. वही , पेज–178

82. दुबे, दीनानाथ ,' पूर्वोधृत , पेज–127

83. धर्मराजन एवं सेठ,' टूरिज्म इन इण्डिया, ' दिल्ली ,1992 , पेज–7

84. इगनू , फाउन्डेशन कोर्स इन टूरिज्म , बुकलेट टी0एस0 3 (1) पेज–54

85. धर्मराजन एवं सेठ,' पूर्वोधृत , पेज–73

86. मैक्सवेल , इयान ,' पार्सपोर्ट ,' शिकागो , 1992 , पेज–23

87. चक्रवर्ती , के0के0,' द आर्ट ऑफ खजुराहो , नई दिल्ली,1985 पेज–87

88. बुन्देलखण्ड यू पी टूरिज्म की बुकलेट, लखनऊ, 1996 , पेज–10,11

89. वही, पेज–2,8,12,14,17,18,20

90. प्रोजेक्ट रिपोर्ट आन टूरिज्म डेवेलपमेन्ट ऑफ झाँसी, पर्यटन कारपोरेशन लिमिटेड लखनऊ ,2004,पेज–5

91. वही, पेज–6

92. 'द वेरी हार्ट ऑफ इण्डिया', म0प्र0 स्टेट टूरिज्म डेवलपमेन्ट कापोरेशन लिमिटेड भोपाल , 2004,पेज–5

93. सिंह, दीवान प्रतिपाल, बुन्देलखण्ड का इतिहास' वाराणसी 1929, पेज–138–140

94. इगनू, बुकलेट – टी0 एस0 3(1) , पूर्वोधृत , पेज–67

95. बुन्देलखण्ड दर्पण , द्वादश बिम्ब , झाँसी ,2004, पेज–34,38

96. वही , पेज–28

97. बुन्देलखण्ड दर्पण , अष्टम बिम्ब , झाँसी ,1998, पेज–124,127

98. वहीं, पेज–127

99. सक्सेना, कान्तिचन्द्र,' बुन्देलखण्ड का पर्यटन प्रवेश द्वार – झाँसी,' बुन्देलखण्ड दर्पण , द्वादश बिम्ब , पूर्वोधृत , पेज–91

100. धर्मराजन एवं सेठ,' पूर्वोधृत , पेज–82

सारांश एवं निष्कर्ष

किसी क्षेत्र के दुर्ग ऐतिहासिक ज्ञान के वे स्रोत हैं, जो जन सामान्य को इस ज्ञान के प्रति आकर्षित करते हैं। इतिहास विषय से सम्पर्क न रखने वालों को भी एतिहासिक ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रेरित करते हैं। विभिन्न राजवंश , राज परिवार तथा उनका विराट वैभव कालातीत होकर इतिहास के ग्रन्थों में बन्दी होकर रह गया है। किन्तु उनके दुर्ग चाहे अनचाहे उनकी स्मृतियों , तात्कालिक घटनाओं , ऐश्वर्य शाली व्यक्तियों एवं उनके कार्यकलापों का बरबस स्मरण कराते हैं। दुर्ग जिसे प्रचलन में गढ़ किला, कोट, गढ़ी आदि कहते हैं, एक जटिल शब्द हैं जिसमें सुरक्षा का गहन भाव निहित हैं। जहाँ कठिनाई से पहुँचा जा सके, उसे दुर्ग कहा जाना चाहिये । शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार जो जनरक्षा करता हैं , शत्रु का परिग्रह करता है, सामन्तों तथा आटविकों का विरोध करता हैं, वह दुर्ग है। शत्रुओं से रक्षा तथा स्वयं को छिपाकर सुरक्षित युद्ध करने के लिये दुर्ग निर्मित किय जाते रहे हैं। अध्ययन क्षेत्र बुन्देलखण्ड प्राचीन काल में चेदि , जेजाकभुक्ति , दशार्ण, विन्ध्येलखण्ड आदि नामों से भी पुकारा जाता रहा है। बुन्देलखण्ड के सीमांकन के सन्दर्भ में विद्वानों में बड़े मतभेद है। अध्ययन में उ0 प्र0 और म0प्र0 में फैले 13 जिलों को सम्मिलित किया गया है। जिसका कुल क्षेत्रफल 71618 वर्ग किमी है। बुन्देलखण्ड एक विशिष्ट भौगोलिक स्वरूप का क्षेत्र है, जिसकी धरातलीय संरचना , जलवायु, जलस्रोत्र , मिट्टियाँ एवं वन आदि इसे एक विशिष्ट भौगोलिक व्यक्तित्वप्रदान करते हैं। विन्ध्य श्रंखलाओं की गोद में स्थित इस क्षेत्र में 4 प्रकार की भौगोलिक संरचना देखने को मिलती है। प्राचीन आर्कियन सिस्टम जो लगभग 2300 मिलियन वर्ष पुराना है, बड़े क्षेत्र में विस्तृत है। दूसरी संरचना परतदार चट्टानों की ट्रान्जीशनल स्टिम है। विन्ध्यन क्रम की चट्टानें अर्ध चन्द्राकार रूप में फैली हुई तीसरे क्रम की चट्टानें हैं तथा चौथी महत्वपूर्ण संरचना नदी निक्षेपों से निर्मित उत्तरी भाग की उपजाऊ मैदानी पट्टी है। धरातलीय दृष्टि कोण से बुन्देलखण्ड का ढालांश उत्तर एवं उत्तर पूर्व की ओर है। जिसे दक्षिणी उच्च भाग, मध्यवर्ती संकमित भू भाग

एवं उत्तरी निक्षेपित भू भाग के नामों से भूगोलवेत्ता तीन भागों में विभाजित करते है। सागर जल से 300–350 मी0 की औसत ऊँचाई वाला दक्षिणी पठारी भाग दक्षिणी उच्च भाग कहलाता है। इनमें कई पहाड़ी श्रेणियाँ एवं बिखरी हुयी पहाड़ियाँ स्थित हैं। कई दर्रों से यह अपने उत्तरी और दक्षिणी भाग को जोड़ता हैं तथा वनों से भरा हुआ विखण्डित भू भाग है। दूसरा मध्यवर्ती संक्रमित भू भाग वह मध्यवर्ती पेटी है जहाँ दक्षिण का पठार धीरे धीरे समाप्त होता है और पहाड़ियों की उपस्थिति यत्र तत्र ही देखने को मिलती हैं। कठोर चट्टानी भाग नदियों के निक्षेपों के नीचे छिपता जाता है। नदियों ने इस क्षेत्र को पर्याप्त कटा फटा बनाया है। दक्षिण के उच्च भाग को 250 मी0 की समोच्च रेखा से एवं उत्तर के मैदानी भाग को 150 मी0 की समोच्च रेखा से अलग किया जा सकता है। उत्तरी भाग का निक्षेपित मैदान यहाँ की प्रमुख नदियों के यमुना में संगम बनाने के कारण निक्षेपों से तैयार हुआ है। यह पहूज, बेतवा , धसान , बागैं आदि नदियों के मध्य छोटे छोटे उप विभागों में बँटा है। बुन्देलखण्ड की जल प्रवाह प्रणाली सिन्ध , पहूज, बेतवा, केन , बागैं, मन्दाकिनी आदि नदियों के द्वारा बनी है। ये सभी नदियाँ दक्षिण के पठारी और पहाड़ी भाग से उद्‌गम प्राप्त करती है। यहाँ अनेक नाले एवं छोटी नदियाँ इनकी सहायक है। बुन्देलखण्ड में जन जीवन में भौतिक एवं सांस्कृतिक के रूप से दीर्घ कालिक प्रभाव छोड़े हैं। क्षेत्र की महाद्वीपीय स्थिति ने इसे कठोर जलवायु प्रदान की है। यहाँ अधिक गर्मी , मध्यम ठंड और कम वर्षा होती है। पूर्व और पछुआ दोनों ही पवन थोड़ी वर्षा प्रदान करते हैं। यहाँ की मिट्टियों में भी बड़ी भिन्नता है। उत्तर की उपजाऊ मैदानी मिट्टयों के अलावा यहाँ राकर, पडुवा , काबर ओर कालीमार मिट्टियाँ देखने को मिलती हैं। यह क्षेत्र वन सम्पदा में भी धनी है। विशेष रूप से दक्षिणी भाग में मानसूनी एवं अर्धशुष्क वन जिनमें झाड़ी, घासें बहुतायत है, देखने को मिलते हैं।

बुन्देलखण्ड की एक सुदीर्घ एवं महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। प्रागैतिहासिक काल में कुछ गुफा भित्ति चित्र और प्रस्तर अस्त्र यह प्रमाणित करते हैं कि यहाँ वन्य जातियों का निवास था। ऋषियों के तपस्थल होने के प्रमाण प्राप्त हैं। रामायण एवं

महाभारत काल में इस क्षेत्र के कुछ प्रसंग उपलब्ध हैं। महाजनपदों में इसे चेदि नाम से जाना जाता था। इसका प्रसिद्व शासक शिशुपाल हुआ था। इस क्षेत्र को अपने अधिपत्य में रखा । हर्षवर्धन का सीमा विस्तार यहाँ तक था। ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में इस क्षेत्र की चर्चा की है। राजपूत शासकों में कछवाह, सेंगर तथा परिहारों ने यहाँ आंशिक रूप से अधिकार किया किन्तु महत्वपूर्ण सत्ता कलचुरियों की रही जिन्होने दक्षिणी बुन्देलखण्ड में दीर्घकालिक सत्ता स्थापित की। बुन्देलखण्ड का वास्तविक पहचान चन्देल शासकों से हुयी जिन्होंने लगातार 300 वर्षो के अधिक समय तक यहाँ अपनी दुर्धर्ष सत्ता बनाये रखी। राहिल, यशोवर्मन , धंग, गंड , विद्या धर, कीर्तिवर्मन, मदनवर्मन तथा परमर्दिदेव इस वंश के प्रमुख शासक हुये। कालिंजर, अजयगढ़ , मड़फा आदि दुर्ग, कीरतसागर, मदन सागर, राहिल सागर जैसे विशाल तालाब एवं खजुराहो के मंदिर एवं मूर्तियाँ आज भी उनकी यशोगाथा गा रहे हैं । चन्देल सत्ता के क्षीण होने पर सल्तनत एवं मुगल शासन ने लगातार हस्तक्षेप बनाये रखा। इस क्षेत्र में तेरहवीं शताव्दी में बुन्देलों का अभ्युदय हुआ, जो गढ़कुंडार के खँगार शासकों को पराजित कर अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति अंकित करते हैं। कुछ पीढ़ियों के बाद गढ़कुंडार छोड़कर ओरछा में राजधानी बुन्देलों ने बनायी। बुन्देलों में सोहन पाल, भारतीचन्द्र, मधुकरशाह, वीरसिंह, जुझा र सिंह, चम्पत राय एवं छत्रसाल इस वंश के प्रमुख शासक हुए। इस महत्वपूर्ण वंश ने बुन्देलखण्ड को नया नाम, नयी संस्कृति एवं नयी पहचान दी। बुन्देला शासक काल में क्षेत्र में मराठों का प्रवेश हुआ, जिनमें महारानी लक्ष्मीबाई ने अद्‌भुत ख्याति प्राप्त की। 1857 की क्रान्ति के पश्चात अंग्रेजी सत्ता का विस्तार बुन्देलखण्ड में हुआ।

उपरोक्त सभी महत्वपूर्ण राजवंशों ने बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण की विशिष्ट परंपरा स्थापित की। प्राचीन काल में जिन बड़े नगरों की चर्चा महाभारत काल में होती हैं उनमें शुक्तिमती, शाहगति आदि हैं। गुप्त काल में देवगढ़ और एरण के सन्दर्भ भी उपलब्ध हैं , जिनका स्थापत्य वहाँ स्थित दुर्गो की कल्पना देता है। प्राचीन काल के अन्तिम पक्ष में कालिंजर और खजुराहो के दुर्ग निर्मित हो चुके थे। इन प्राचीनकालीन

दुर्गो के निर्माताओं के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है। उत्कृष्ट दुर्ग निर्माण पूर्व मध्यकाल से देखने को मिलता हैं जिसमें चन्देलों के प्रमुख आष्टगढ़ों के अतिरिक्त अन्य शासकों द्वारा निर्मित अनेक दुर्ग हैं। कालिंजर, अजयगढ़ , मनियागढ़ सिरसागढ़, कन्हरगढ़ जैसे दुर्ग चन्देल सत्ता प्रतीक थे तो दक्षिणी भाग में गोंड और प्रतिहारों द्वारा निर्मित शाहगढ़ , शाहनगर , जोधपुर , पचेरा, हटा, आलीपुर , मऊ सहानियाँ प्रमुख दुर्ग थे। दुर्ग निर्माण के दृष्टिकोण से पूर्व मध्यकाल में 22 किले निर्मित हुये जिनमें 13 उल्लेखनीय थे। दुर्ग निर्माण के दृष्टिकोण से बुन्देलखण्ड का मध्यकाल महत्वपूर्ण माना जा सकता है, क्योकि इस काल में संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक दुर्गो का निर्माण हुआ । मुगल एवं मुस्लिम शासकों ने इस काल में लगभग 10 किले निर्मित किये जिनमें मालथौन, खिमलासा, सागर, दमोह, कोंच, नरसिंहगढ़ जैसे उल्लेखनीय निर्माण शामिल हैं बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण के संन्दर्भ में मध्य काल को यदि बुन्देला काल कहा जाय , तो अनुचित नहीं होगा। बुन्देलों ने लगभग 32 स्थानों पर किलों एवं गढ़ियों का निर्माण इस काल में करके क्षेत्र को प्रबल सुरक्षा प्रदान की। ओरछा, झाँसी, तालबेहट , बरूआसागर, महेवा , दतिया, जैतपुर , बड़ौनी जैसे दुर्गों के अतिरिक्त अष्टगढ़ी एवं अन्य गढ़ियाँ बुन्देलों की यशोगाथा को गा रही हैं। मध्यकाल में अन्य शासकों परिहार, परमार, गोड़, दाँगी, खँगार, अहीर आदि ने पर्याप्त किलों एवं गढ़ियों का निर्माण किया जिनमें सिंगोरगढ़, धमौनी , गढ़ाकोटा, सिंहुड़ा, राहतगढ़ , रहली जैसे दुर्ग सम्मिलित हैं। आधुनिक काल दुर्ग निर्माण के क्षेत्र में बुन्देलों का दबदबा बना रहा जिन्होंने टीकमगढ़ , बल्देवगढ , भूरागढ़, चरखारी, लिधौरा, पृथ्वीपुर जैसे 14 स्थलों पर दुर्ग खड़े किये। इसी काल में मराठों ने लगभग 6 गढ़ियों का निर्माण किया जबकि अन्य शासकों ने लगभग 23 स्थलों पर किले अथवा गढ़ी निर्मित कराये। अन्य शासकों के आधुनिक काल के किलों में समथर, मौदहा , रानेह, जयसिंह नगर , राजगढ़ , राजनगर , महरौनी और केलगुवाँ मुख्य हैं। बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण की परम्परा 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के साथ समाप्त हो गयी।

दुर्ग निर्माण करने के लिये स्थल का चुनाव अनेक बातों को ध्यान में रखते हुये किया जाता था। भारतीय परम्परा में दुर्ग निर्माण के लिये जिन स्थलों का चुनाव किया जाता रहा, इसी आधार पर दुर्गों का विभाजन किया जाता रहा। शिल्प शास्त्र के ग्रन्थों , पुराणों एवं नीति ग्रंथों में मुख्य रूप से गिरि दुर्ग, जल दुर्ग , वन दुर्ग , मही दुर्ग आदि भेद प्राप्त होते हैं । यह विभाजन स्थल (साइट) के आधार पर किया गया हैं इस विभाजन में गिरि दुर्ग को सभी ग्रंथकारों ने अत्यधिक महत्वपूर्ण माना है, क्योंकि इनको प्राकृतिक सुरक्षा भी प्राप्त थी । बुन्देलखण्ड में पर्वतीय भू भाग उपलब्ध हैं इसलिये यहाँ के अधिकतर महत्वपूर्ण दुर्ग पहाड़ियों पर बने हुये है। कालिंजर, मड़फा, चरखारी, सिंगोरगढ़, मालथौन, अजयगढ़, मनियागढ़, देवगढ़, धमौनी और गढ़कुंडार जैसे महत्वपूर्ण दुर्ग पहाडियों पर बने हैं। ऊँची पहाड़ियों के लगभग समतल शीर्ष किला बनवाने के उपयुक्त स्थल माने गये । अध्ययन क्षेत्र में लगभग 28 दुर्ग निर्माण ऐसे हैं जो किसी न किसी पहाड़ी पर निर्मित हैं। पहाड़ी के बाद नदी तट दुर्ग निर्माण के लिये सबसे उपयुक्त स्थल माने गये। जहाँ पहाड़ी और नदी तट दोनों प्राप्त थे, ऐसे दुर्ग स्थल और भी महत्वपूर्ण हो गये । इनमें मनियागढ़ (केन) , धमौनी (धसान), देवगढ़ (बेतवा), टोंडी फतेहपुर (सुखनई) आदि दुर्ग पर्वतीय एवं नदी तट के उपयुक्त स्थल के कारण अधिक दुर्गम सिद्ध हुये । बुन्देलखण्ड के नदी तट के दुर्गों में कालपी (यमुना) , राहतगढ़(बीना) आदि प्रमुख हैं। विश्लेषण से पता चलता हैं कि लगभग 45 दुर्ग नदी तट पर निर्मित हुये जिनमें 11 बेतवा तट पर, 5 धसान जट पर , 4 केन तट पर तथा 25 छोटी सहायक नदियों पर निर्मित हुये। हमीरपुर जिगनी, नोहटा , एरण, गढ़ाकोटा, रहली दुर्ग नदियों के संगम स्थल पर बनाये गये। बुन्देलखण्ड में 11 किले और गढ़ियाँ ऐसी हैं जो बड़े तालाबों के तट पर निर्मित हुयी। इनमें महोबा, बरूआसागर , टीकमगढ़ , जतारा, मोहनगढ़, बल्देवगढ़ , मेहरौनी, बड़ौनी खुर्द विशेष उल्लेखनीय हैं। नदियों के बीहड़ क्षेत्र भी अति सुरक्षा के दृष्टिकोण से दुर्ग निर्माण के लिये चुने गये जिनमें नदीगांव , सिरसागढ़ , रामपुरा, जिगनी , कालपी तथा हमीरपुर का उल्लेख किया जा सकता हैं। ऐसे दुर्ग जहाँ पहाड़ियों के समतुल्य वनों ने भी महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक स्थल प्रदान किया हैं , उनमें अजयगढ़, देवगढ़ , धमौनी, सिंगोरगढ़, मड़फा, बटियागढ़ आदि उल्लेखनीय हैं।

बुन्देलखण्ड के मैदानी हिस्से विशेष रूप से उत्तरी मैदानी भाग में दुर्ग निर्माण की परंपरा उल्लखेनीय रही है। यहाँ लगभग 28 क़िलों एवं गढ़ियों का निर्माण किया गया। मैदानी दुर्गों के निर्माण के लिये समतल मैदान या ऊँचा टीला अथवा पठार का चुनाव किया जाता था। समथर, उरई , कोंच , मौदहा , बानपुर और दतिया इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

बुन्देलखण्ड में दुर्ग की स्थिति अथवा क्षेत्रीय आधार पर उनका वितरण कम उल्लेखनीय नही हैं। ऐतिहासिक एवं भौगोलिक कारकों को ध्यान में रखते हुये इसके क्षेत्रीय वितरण में भौगोलिक प्रभाव अधिक दिखायी पड़ता है। दक्षिणी बुन्देलखण्ड के सागर, सोनार एवं दमोह पठार तथा मध्य बुन्देलखण्ड के नीस पठार , पश्चिमी श्रेणियों एवं पठारी पूर्वी श्रेणियों में दुर्ग समूह स्थित हैं उत्तरी मैदानी क्षेत्र में यमुना की बीहड़ क्षेत्र , मध्य मैदानी क्षेत्र तथा उच्च पेनी प्लेन का विभाजन देखा जा सकता हैं। छोटे बड़े शासकों ने अपने शासित क्षेत्र की सुरक्षा के लिये जिन गढ़ियों का निर्माण किया उनके विश्लेषण से कुछ रक्षा परिक्षेत्र उभर कर सामने आये। सैन्य विज्ञान के दृष्टिकोण से इनमें नदी एवं पर्वतीय रक्षात्मक परिक्षेत्र महत्वपूर्ण हैं। नदियों द्वारा विभाजित रक्षा परिक्षेत्रों में काली सिंध और बेतवा के मध्य का उत्तरी भाग , बेतवा तथा धसान के मध्य का दक्षिणी भाग, धसान एवं केन के मध्य का मध्य एवं उत्तरी भाग तथा केन का पूर्वी रक्षात्मक परिक्षेत्र उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार पर्वतीय रक्षा परिक्षेत्र के निर्धारण में यहाँ की पहाड़ी श्रंखलाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अध्ययन में ऐतिहासिक कालक्रमानुसार यह विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है कि किन भौगोलिक क्षेत्रों में दुर्ग निर्माण को गति मिली। प्राचीन काल में मध्य एवं दक्षिण पठारी भाग दुर्ग निर्माण को आकर्षित करते रहे, जबकि पूर्व मध्यकाल में भी इन्हीं को प्रमुखता प्राप्त रही। मध्यकाल में मैदानी भागों में सर्वाधिक दुर्गो का निर्माण हुआ जबकि आधुनिक काल में मैदान एवं पठार दोनों को लगभग समान महत्व प्रदान किया गया। सभी काल खण्डों में मिलाकर मैदान एवं मध्य संक्रमणीय पेटी में लगभग 50 से 55, जबकि दक्षिणी पठार एवं पहाड़ियों में लगभग 30 गढ़ी एवं दुर्ग निर्मित हुये।

दुर्ग एक विशिष्ट निर्माण है जिसका अपना वास्तुशिल्प होता है और निर्माण में विपुल सामग्री का प्रयोग होता है। प्रायः दुर्ग निर्माण के लिये क्षेत्र में प्राप्त सामग्री का प्रयोग किया जाता था, क्योंकि अधिक मात्रा में भारी सामग्री का परिवहन नही हो सकता । सामग्री के दृष्टिकोण से प्राचीन साहित्य में पांशु प्राकार , इष्टिका प्राकार , प्रस्तर प्राकार आदि भेद प्राप्त होते हैं। बुन्देलखण्ड में कच्ची मिट्टी एवं पक्की ईटों से निर्मित दुर्गों के सन्दर्भ नगण्य हैं। ईटों का प्रयोग भी सीमित रूप से किया गया है। शायद इसलिये कि बुन्देलखण्ड की अधिकांश मिट्टियाँ ईट निर्माण के लिये उपयुक्त नही हैं। दुर्ग निर्माण के लिये ईटों का प्रयोग प्रायः उत्तरी मैदानी दुर्गों में किया गया है, क्योंकि यहाँ की मिट्टी ईट निर्माण के लिये कुछ उपयुक्त हैं। सुरक्षा के दृष्टिकोण से दुर्ग की प्राचीर एवं वाह्य भागों में ईटों का प्रयोग पत्थरों के साथ किया गया है और अधिकांश दुर्ग पत्थरों के बने हैं। विन्ध्यन चट्टानें बहुमूल्य हैं और इनका सैंड स्टोन उत्तम कोटि का भवन निर्माण पत्थर हैं। शताब्दियों तक बुन्देलखण्ड में निर्मित सभी ऐतिहासिक स्थलों में इस पत्थर का प्रयोग किया गया है। बालुका पत्थर के अलावा ग्रेनाइट , शेल ओर चूने की चट्टाने भी यहाँ उपलब्ध हैं अतः इनके प्रयोग भी देखने को मिलते हैं। चूने की चट्टानों से तैयार मोर्टार इन पत्थरों की जुड़ाई में महत्वपूर्ण रहा है। अजयगढ़ , मड़फा के दुर्गो में काला बालुका पत्थर , देवगढ़ में लाल बलुवा पत्थर , गढ़कुंडार में काले ग्रेनाइट पत्थर का प्रयोग है। क्षेत्र में उपलब्ध कंकड़ों को जलाकर भी चूने का निर्माण किया जाता रहा हैं यद्यपि बुन्देलखण्ड में वन भी बहुतायत हैं, किन्तु दुर्ग निर्माण में लकड़ी का अधिक उपयोग नहीं दिखाई पड़ता । फाटक , द्वार, जालीदार खिड़कियों और छतों में शहतीरों की तरह लकड़ी का प्रयोग किया जाता रहा हैं लोहे का प्रयोग न्यून मात्रा में किया गया हैं बाहर से आयातित सामग्री का भी नाममात्र प्रयोग हुआ है।

दुर्ग निर्माण शिल्प में किलों का आकार एवं आकृति महत्वपूर्ण आयाम होते हैं। प्राचीन ग्रंथों में दुर्ग आकृति शुभ और अशुभ फलदायी मानी गयी है। उपलब्ध साइट किसी दुर्ग की आकृति को निर्धारित करती थी। अध्ययन क्षेत्र के अधिकांश दुर्गों को

कोई विशिष्ट आकृति प्राप्त नहीं है फिर भी वृत्ताकार, आयताकार एवं समलम्ब, वर्गाकार, त्रिभुजाकार, बहुभुजाकार, अण्डाकार या दीर्घवृत्ताकार आदि आकृतियों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। अजयगढ़, धमौनी के दुर्ग त्रिभुजाकार आकृति के हैं, जबकि कालिंजर, मनियागढ़, तालबेहट आदि दुर्ग दीर्घवृत्ताकार है। झाँसी, बानपुर, स्योंढ़ा , भूरागढ़ आदि को बहुभुज आकृति कहा जा सकता है। आकार के दृष्टिकोण से ही दुर्गों को महत्व प्राप्त होता रहा है। विशाल भू क्षेत्र को घेरने वाले दृढ़ दुर्गों में कालिंजर का नाम महत्वपूर्ण है जिसमें लगभग 6 किमी0 के परकोटे के अन्दर 2850 हेक्टेअर भूमि है । अजयगढ़ दुर्ग का परकोटा 4.8 किमी0 लम्बा है। राहतगढ़ दुर्ग का क्षेत्रफल 66 एकड़ है। गढ़ियों में भी 3 से 7 हजार वर्ग फुट से कम जमीन नहीं है । प्राचीन साहित्य में दुर्ग सन्निवेश के अन्तर्गत बहुत से निर्माण आते हैं जैसे परिखा, वप्र, प्राकार, अट्टालक , राज प्रासाद , गोपुर , कोष , पथ, वीथ, धर्मस्थल , वापी भूमिगत कक्ष , गुप्त कक्ष , तोरण द्वार, सैनिक आवास आदि । इन निर्माणों में कुछ का रक्षात्मक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्व होता हैं किले के चारों ओर परिखा निर्माण कर तथा जलचरों का निवास बनाकर दुर्ग को रक्षा प्रदान की जाती थी। दुर्ग प्राकार या परकोटा दुर्ग को दुर्गमता प्रदान करता था। अतः: कोई भी किला बिना प्राकार के नही हो सकता था। बुन्देलखण्ड में अलग–अलग ऊँचाई एवं मोटाई वाले पत्थरों से निर्मित ये परकोटे दुर्गों को वैभव प्रदान करते रहे हैं। कुछ किलों में एक से अधिक प्राकार भी मौजूद हैं जबकि कालिंजर, अजयगढ़ मनियागढ़ जैसे दुर्गो के परकोटों में लगे पत्थरों को जोडने के लिये किसी पदार्थ का प्रयोग नहीं किया गया है। इन परकोटों में जोड़ों को सुदृढता प्रदान करने के लिये एवं किले की भव्यता हेतु अट्टालकों या बुर्ज का निर्माण किया जाता था। बुन्देलखण्ड के सभी किलों में इन बुर्जो की संरचना देखने को मिलती है, जिनकी संख्या न्यूनतम 4 से लेकर 35 तक है। परकोटों में बने बुर्ज कंगूरे तथा मारें युद्ध काल में सैनिकों के छिपकर प्रहार करने में प्रयुक्त होते थे। किलों के द्वार या गोपुर दूसरे प्रमुख निर्माण हैं। द्वारों की संख्या विभिन्न किलों में भिन्न भिन्न हैं। मेहराबदार, त्रिपोली शैली , जाली या झरोखों से युक्त ये द्वार किलों को भव्यता भी प्रदान करते हैं। किले में निर्मित राजप्रासाद या महल सबसे मूल्यवान एवं सबसे महत्वपूर्ण निर्माण माना जाता है। राजा

का आवास होने के कारण इसे अलंकृत एवं सुसज्जित करने की परम्परा बुन्देलखण्ड में रही है। बुन्देलखण्ड के किलों में अनेक महल वर्तमान में सुरक्षित हैं। इन किलों में भूमिगत अथवा गुप्त निर्माण का महत्व भी कम नहीं है। किन्तु वर्तमान में इनके अधिकांश भाग या तो वन्द हैं या समाप्त हैं। परकोटे के साथ सैनिक आवास हेतु बनी छोटी कोठरियाँ प्रायः सभी किलों में देखी जा सकती हैं| बुन्देलखण्ड के राजभवनों में भित्तिचित्र निर्मित करने के अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं जिनके विषय एवं शैली में पर्याप्त भिन्नता देखने को मिलती है। किलों की अजेयता में जल स्रोतों का सर्वाधिक महत्व होता है। किले की सीमाओं के अन्दर कुँये , बीहर, बावड़ी तथा छोटे जलाशयों का निर्माण कर जल आपूर्ति सुनिश्चित की जाती रही है। कालिंजर दुर्ग में कुछ प्राकृतिक जलस्रोत उपलब्ध हैं। बुन्देलखण्ड के इन दुर्गों में समकालीन स्थापत्य का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है जिसमें दिल्ली सल्तनत का शिल्प, मुगल स्थापत्य राजस्थानी एवं मराठा वास्तुशिल्प प्रमुख रूप से देखने को मिलते है।

प्रथम दृष्ट्या दुर्गों का कार्य आक्रमणकारियों से रक्षा का होता है परन्तु इनके प्रशासनिक , सामाजिक एवं सांस्कृतिक योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहे। नगर विकास, मार्ग विकास एवं धर्म के क्षेत्र में योगदान के कारण इन्हें बहुआयामी योगदान वाले निर्माण कहा जा सकता हैं किलों का प्रमुख कार्य रक्षा से सम्बन्धित होता है। यही कारण है कि किलों का इतिहास युद्वों का इतिहास होता है। बुन्देलखण्ड के गेट वे के नाम से प्रसिद्ध कालपी दुर्ग तथा चन्देलकालीन कांलिजर दुर्ग का नाम सर्वप्रथम आता है। अजयगढ़, मनियागढ़, महोबा , गढ़कुण्डार , ओरछा , धमौनी, सिंगोरगढ, गढ़ाकोटा, राहतगढ़, दतिया आदि किलों ने कई बार भीषण युद्धों का सामना कर अपनी रक्षात्मक भूमिका का निर्वहन किया है। राजा अथवा शासक का निवास होने के कारण किलों की प्रशासनिक भूमिका भी महत्वपूर्ण रही हैं प्रशासन संचालन हेतु न्यायिक व्यवस्था अन्तर्गत दरबार हाल, दण्ड व्यवस्था के अन्तर्गत कारागार , सम्पति एवं कर व्यवस्था के अन्तर्गत कोषागार, टकसाल एवं शस्त्रागार के अतिरिक्त लेखागार एवं पुस्तकालय जैसे निर्माण दुर्गो में स्थित होते थे। बंन्देलखण्ड के दुर्गों में इन निर्माणों का अस्तित्व
मिलता है जिन्होंने तत्कालीन व्यवस्था में

महत्वपूर्ण प्रभाव छोड़ा । किलों के सामाजिक योगदान में जनकल्याण के अन्तर्गत तालाबों के निर्माण को उल्लेखनीय माना जा सकता है। देव स्थानों एवं धर्मप्रचार में भी इनकी महती भूमिका रही है। बुन्देलखण्ड के किलों के अन्दर स्थित देवस्थलों का आज भी यहाँ के समाज पर पर्याप्त प्रभाव है। दुर्गों ने सांस्कृतिक क्षेत्र में जो योगदान दिया हैं उसमें साहित्य कला, मेले एवं उत्सव, शिक्षा एवं शिक्षक महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। चन्देलकालीन मन्दिरों एवं मूर्तियों ने शिल्प एवं मूर्तिकला के क्षेत्र में तथा बुन्देला राज्याश्रित केशव से लेकर बनारसी दास चतुर्वेदी और यशपाल जैन तक सहस्त्रों कलाकारों एवं साहित्यकारों ने बुन्देलखण्ड में कला साहित्य में जो योगदान दिया हैं उसके आश्रय प्रदान करने वाले यहाँ के दुर्ग थे। दुर्गो ने बस्तियों पर कम प्रभाव नहीं डाला। अधिवास के जन्म, आकार , आकृति तथा पथ संरचना पर उनके प्रभाव को सभी दुर्ग नगरों में देखा जा सकता है। दुर्ग अधिवासीय बस्तियों में केन्द्रक का कार्य करते रहे। जबकि दुर्ग द्वार से निकलने के वाला राजपथ अधिवासीय विकास के लिये आधार का कार्य करता रहा। प्रमुख बाजार इसी मार्ग पर विकसित होते रहे। झाँसी , समथर, चरखारी एवं मोंठ की प्राचीन बस्तियाँ आज भी इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्राचीन मार्गो के विकास में भी किलों नें योगदान दिया है। जहाँ किले बनते थे वहाँ मार्ग विकसित होते थे और जहाँ मार्ग विकसित होते थे वहाँ किले निर्मित होते थे । दुर्ग और मार्ग विकास का यह अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। अध्ययन में अलग अलग ऐतिहासिक कालखण्डों में मार्गो के विकास का अन्वेषण करने पर दुर्गों का योगदान स्पष्ट हो जाता है। सुखद आश्चर्य यह है कि प्राचीन काल से क्रमशः विकसित होते हुये इन मार्गो ने वर्तमान मार्ग तंत्र को आधार प्रदान किया और वर्तमान प्रमुख रेल एवं स्थल मार्ग इन्ही विकसित मार्गो का अनुगमन करते हैं।

दुर्ग अब इतिहास का विषय हैं । बुन्देलखण्ड में दुर्गो की वर्तमान स्थिति पर चिन्तन आवश्यक हे। सम्पूर्ण क्षेत्र की वर्तमान गतिविधियों के केन्द्र अब उपयोग विहीन हो रहे हैं। बुन्देलखण्ड के दुर्गों के अस्तित्व को मिटाने में अंग्रेजों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। विशेष रूप से 1857 का स्वतंत्रता संघर्ष इन किलों पर काली छाया बन कर

आया और लगभग 30 किले और गढ़िया अपना अस्तित्व खो बैठे जिनमें तालबेहट, बानपुर , मेहरौनी, नरसिंहगढ़, मालथौन, नद्द्यावली, राहतगढ़ और दमोह जैसे महत्वपूर्ण किले शामिल थे। दुर्गों के इस सामूहिक विनाश के पश्चात बुन्देलखण्ड के किसी किले अथवा गढ़ी का निमार्ण नहीं हुआ । वर्तमान समय में इन किलों का पुरातात्विक महत्व है। कनिंघम से लेकर अनेक विदेशी एवं भारतीय पुरातत्वविदों ने यहाँ की पुरातात्विक सम्पदा की प्रशंसा की हैं। वर्तमान में लगभग 25 दुर्ग एवं दुर्ग स्थल ए0एस0आई0 में सूचीबद्ध हैं। कालिंजर, मड़फा, ओरछा, दतिया, अजयगढ़ , झाँसी, गढ़कुण्डार आदि किले वर्तमान में अच्छी स्थिति में हैं और पूर्णरूप से पुरातत्व विभाग के संरक्षण में हैं। कालिंजर, अजयगढ दुर्ग की पुरातात्विक सम्पदायें देशी एवं विदेशी संग्रहलयों की शोभा बढ़ा रहे हैं। किलों के नष्ट हो जाने के बाद एरण, खजुराहो, महोबा, देवगढ़ का पुरातात्विक महत्व आज भी कम नहीं हुआ है। कुछ दुर्ग नगरों में दुर्ग सीमा के बाहर भी महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थल एवं वस्तुयें मौजूद हैं। बुन्देलखण्ड के इतिहास के इन वैभवशाली प्रतीकों के संरक्षण की आज महती आवश्यकता है जिसमें हम असफल हो रहे हैं। जिन दुर्गों को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने अपने नियन्त्रण में ले रखा है उनकी भी स्थिति ठीक नहीं है। राज्य सरकारों या विभागों के अधीन या नियन्त्रण में जो किले हैं उनकी स्थिति भी दयनीय हो रही है। निजी स्वामित्व के अन्तर्गत चार बड़े दुर्ग तथा छोटी गढ़ियाँ हैं जहाँ उनके स्वामी निवास करते हें परन्तु ये लोग भी दुर्ग का ठीक रख रखाव करने में रूचि प्रदर्शित नही करते । परित्यक्त दुर्ग नष्ट होने के कगार पर हैं और समीपवर्ती लोग पूर्ण रूप से इनका दुरूपयोग करते हैं। वस्तुतः जब किसी भवन का उपयोग नही किया जाता तब उसकी रक्षा करना कठिन हो जाता है। स्वतंत्रता के बाद बहुत से किलों का पूर्ण या आंशिक रूप से कुछ न कुछ उपयोग किया जाता था परन्तु इधर विचित्र सरकारी नीतियों के कारण सरकार और संगठन नये भवनों का निर्माण कर रहे हैं और इन किलों को खाली करते जा रहे हैं। यदि इस निर्माण बजट को इन महलों अथवा भवनों के रख रखाव में खर्च किया जाय तो शासन के लिये भवन भी उपलब्ध हो सकते हैं और इन दुर्गो को बचाया भी जा सकता हैं। इन भवनों को सेना, सशस्त्र बल, थानों आदि को दकर इनका दुरूपयोग रोका जा सकता है

अथवा सरकारी कार्यालयों , विद्यालयों , सहकारी संस्थाओं , स्वयंसेवी संस्थाओं को देकर इनकी रक्षा की जा सकती है। बड़े उद्योगपतियों को इन्हें गोद लेने के लिये प्रेरित किया जा सकता है। इनका सबसे अच्छा उपयोग इन्हें पर्यटन स्थलों के रूप में विकसित करना हो सकता हैं बुन्देलखण्ड के अधिकांश किले एक ओर ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक सम्पदा से युक्त हैं और दूसरी ओर मनोरम प्राकृतिक वातावरण में स्थित हैं अतः इन्हें आसानी से पर्यटन स्थलों के रूप में विकसित किया जा सकता है। हरी पहाड़ियां, विशाल तालाबों , नदी तटों पर स्थित ये दुर्ग स्वाभाविक रूप से पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र विन्दु वन सकते हैं। आवश्यकता केवल आधारभूत ढाँचा विकसित कर पर्यटन सुविधायें उपलब्ध कराने की है। म0प्र0 एवं उ0प्र0 पर्यटन विभागों को आपस में सहयोग कर इसके लिये एक मास्टर प्लान तैयार कर लागू किया जाय तो सफलता मिलने की पूर्ण संभावना है। अकेले खजुराहो इस तथ्य को प्रमाणित करता है।

प्रस्तुत अध्ययन में बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण की परंपरा का सर्वांगींण शोध एवं विश्लेषण युक्त प्रस्तुतीकरण किया गया। परम्परागत ऐतिहासिक कालखण्डों में किन शासकों ने दुर्ग निर्माण कराये एवं स्थल चयन में प्राकृतिक कारकों ने किस प्रकार अपने प्रभाव डाले, इसका शोध किया गया है। अध्ययन क्षेत्र में भौगोलिक एवं ऐतिहासिक कालकमानुसार दुर्गो के वितरण का परीक्षण भी किया गया है। दुर्ग निर्माण के विशिष्ट वास्तुशिल्प से इसमें प्रयुक्त निर्माण सामग्री को जानने का प्रयास किया गया है तथा सहस्त्रों वर्षों तक इन दुर्गों के बहुआयामी योगदान का मूल्याँकन भी किया गया है। इनकी वर्तमान स्थिति का चित्र प्रस्तुत कर इनके उपयोग की संभावनाओं को भी तलाशा गया है। निष्कर्षतः बुन्देलखण्ड के दुर्ग यहाँ की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिस्थितियों की देन हैं। न केवल शासकीय एवं राजनैतिक वरन सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी इन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दुर्ग पुरातात्विक सम्पदा के कोषागार तथा बुन्देलखण्ड के इतिहास के जीवंत दस्तावेज हैं। विलुप्त होती जा रही इस मूल्यवान सम्पदा को बचाने में राजकीय, सांगठनिक एवं व्यक्तिगत योगदानों की

महती आवश्यकता है। यदि किसी प्रकार बुन्देलखण्ड अपने पूर्वजों के आभा चिन्हों को बचा सका तो आने वाली पीढ़ियाँ इनसे स्वाभिमान, स्वधर्म पालन एवं स्वतंत्रता का पाठ पढ़ती रहेंगी।

परिशिष्ट

प्रमुख दुर्ग स्थलों की भौगोलिक स्थिति

कमांक	दुर्ग स्थल	अक्षांशीय स्थिति	देशान्तरीय स्थिति
1.	अमरगढ़	25^{0} 41’ N	78^{0} 54’ E
2.	अजयगढ़	24^{0} 54’ N	80^{0} 16’ E
3.	एरन	24^{0} 5’ N	78^{0} 10’ E
4.	बलदेवगढ़	24^{0} 41’ N	79^{0} 7’ E
5.	बानपुर	24^{0} 43’ N	78^{0} 45’ E
6.	बरूआसागर	25^{0} 22’ N	78^{0} 44’ E
7.	भूरागढ़	25^{0} 27’ N	80^{0} 23’ E
8.	बटियागढ़	23^{0} 43’ N	79^{0} 8’ E
9.	चरखारी	25^{0} 24’ N	79^{0} 45’ E
10.	चिरगाँव	25^{0} 34’ N	78^{0} 49’ E
11.	छतरपुर	24^{0} 55’ N	79^{0} 36’ E
12.	दतिया	25^{0} 4’ N	78^{0} 30’ E
13.	दमोह	23^{0} 10’ N	79^{0} 3’ E
14.	देवगढ़	24^{0} 15’ N	78^{0} 15’ E
15.	धमौनी	24^{0} 10’ N	78^{0} 45’ E
16.	एरच	25^{0} 47’ N	79^{0} 7’ E
17.	गढ़कुण्डार	25^{0} 30’ N	78^{0} 57’ E
18.	गढ़पहरा	23^{0} 50’ N	78^{0} 40’ E
19.	गढ़कोटा	23^{0} 45’ N	79^{0} 3’ E
20.	गुरसराय	25^{0} 37’ N	79^{0} 12’ E
21.	गौरिहार	25^{0} 16’ N	80^{0} 12’ E

22.	गौराझामर	23° 30' N	79° 00' E
23.	हमीरपुर	25° 58' N	80° 9' E
24.	इन्दरगढ़	25° 55' N	78° 36' E
25.	जगम्मनपुर	26° 25' N	79° 15' E
26.	जैतपुर	25° 15' N	79° 35' E
27.	झाँसी	25° 27' N	78° 35' E
28.	कदौरा	25° 59' N	79° 50' E
29.	कालपी	26° 8' N	79° 45' E
30.	कालिंजर	24° 58' N	80° 26' E
31.	केलगुवाँ	24° 51' N	78° 46' E
32.	कोंच	25° 59' N	79° 10' E
33.	खजुराहो	24° 51' N	79° 56' E
34.	खिमलासा	24° 10' N	78° 20' E
35.	खोंप	24° 59' N	79° 38' E
36.	लोहागढ़	25° 55' N	78° 59' E
37.	मऊ	26° 3' N	79° 00' E
38.	मऊ–सहानियाँ	25° 1' N	79° 29' E
39.	मड़फा	25° 7' N	80° 45' E
40.	महेवा	24° 24' N	80° 12' E
41.	मौदहा	25° 46' N	80° 7' E
42.	महोबा	25° 18' N	79° 35' E
43.	मंडावरा	24° 33' N	78° 48' E
44.	मेहरौनी	24° 35' N	78° 44' E
45.	माधोगढ़	26° 17' N	79° 11' E
46.	मोंठ	25° 43' N	78° 57' E
47.	मालथौन	25° 15' N	78° 30' E

48.	नदीगाँव	26^0 7' N	79^0 11' E
49.	नरयावली	23^0 50' N	78^0 35' E
50.	नरसिंहगढ़	24^0 1' N	79^0 47' E
51.	उरई	25^0 59' N	78^0 28' E
52.	ओरछा	25^0 20' N	78^0 42' E
53.	पन्ना	24^0 43' N	80^0 11' E
54.	पृथ्वीपुर	25^0 13' N	78^0 46' E
55.	पवई	25^0 16' N	80^0 10' E
56.	रसिन	25^0 11' N	80^0 44' E
57.	रहली	23^0 35' N	79^0 00' E
58.	राजनगर	25^0 4' N	79^0 56' E
59.	राहतगढ़	23^0 35' N	78^0 20' E
60.	रामपुरा	26^0 22' N	79^0 13' E
61.	समथर	25^0 51' N	78^0 55' E
62.	सागर	23^0 50' N	78^0 45' E
63.	सिहुँडा	25^0 27' N	80^0 24' E
64.	सिंगोरगढ़	24^0 26' N	79^0 52' E
65.	शाहगढ़	23^0 15' N	79^0 5' E
66.	सुगरा (कुँवरपुरा)	25^0 20' N	79^0 36' E
67.	तालबेहट	25^0 3' N	78^0 26' E
68.	टीकमगढ़	24^0 45' N	78^0 58' E
69.	विनायका	24^0 5' N	78^0 50' E

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) मूलभूत संस्कृत ग्रन्थ

1. अग्नि पुराण, सरस्वती प्रेस कलकत्ता, 1888
2. अर्थशास्त्र, सम्पादक–यौली, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस, 1923
3. अमरकोष, सम्पादक– पण्डित शिवदत्त, निर्णय सागर मुद्रणालय, बम्बई, 1929
4. अष्टाध्यायी, सम्पादक– सतीश चन्द्र वसु, बनारस, 1897
5. भागवत पुराण, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1906
6. ब्रम्ह पुराण, क्षेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई, 1929
7. देवी पुराण, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1906
8. ब्रम्हवैवर्त पुराण, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1906
9. गरूण पुराण, क्षेमराज श्रीकृष्ण दास, बम्बई, 1906
10. हरवंश पुराण, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1906
11. मत्स्य पुराण, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1896
12. मनुस्मृति, सम्पादक– गोपाल शास्त्री नेने, बनारस, 1935
13. मयमतम्, सम्पादक– टी0 गणपति शास्त्री, गवर्नमेन्ट प्रेस, त्रिवेन्द्रम, 1919
14. मानसार, सम्पादक– पी0के0 आचार्य, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस
15. मालविकाग्निमित्रम, सम्पादक– एस0 कृष्णराव, मद्रास, 1930
16. महाभारत, हिन्दी अनुवाद– पं0 रामनारायण दास शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर (6 खण्ड)
17. राजतंरगिणी, भाग– 1, स्टीन द्वारा सम्पादित एवं अनूदित, बम्बई संस्करण, 1892
18. रामायण (वाल्मीकि), भाग– 1, हिन्दी अनुवाद–रामनाराण दत्त शास्त्री, गीता प्रेस, गोरखपुर, 1983
19. विष्णु धर्मोत्तर पुराण, खण्ड– 2, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, 1912

20. वामन पुराण, हृषीकेश शास्त्री, गिरीश विद्यारत्न प्रेस, कलकत्ता
21. वायु पुराण, सम्पादक– राजेन्द्र लाल मित्रा, कलकत्ता, 1880
22. पद्म पुराण, सम्पादक– विष्णु नारायण, पूना, 1893
23. समरांगण सूत्रधार, सम्पादक– टी0गणपति शास्त्री, गवर्नमेन्ट प्रेस, त्रिवेन्द्रम, 1912
24. शुकनीति, सम्पादक– मिहिरचन्द्र पण्डित, बम्बई, 1926
25. शुकनीतिसार, अनु0– विनय कुमार सरकार, सम्पादक–बी0डी0बसु, द पाणिनि आफिस, प्रयाग, 1914
26. याज्ञवल्क्य स्मृति (मिताक्षरा सहित), हिन्दी अनुवाद– नारायण शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

(ख) पुरातात्विक स्रोत

1. ए0एस0आई0– एपिग्राफिया इण्डिका : ए कलेक्शन ऑफ इन्सक्रिप्शन सप्लीमेन्ट एट कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इंडिकेरम सम्पादक– जैस बर्गेस, सहायक सम्पादक– के0 हुल्ट्ज एवं ए0 फ्यूहरर, खण्ड– 1, कलकत्ता, 1892
2. ए0एस0आई0– आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, खण्ड– 2, सम्पादक– ए0 कनिंघम, पुनर्मुद्रित 2000, नई दिल्ली
3. ए0एस0आई0– आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, खण्ड– 9, ए टूअर इन सेन्ट्रल प्रोविन्सेज, सम्पादक– ए0 कनिंघम, पुनर्मुद्रित 2000, नई दिल्ली
4. ए0एस0आई0– आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, खण्ड– 17, सम्पादक– एक कनिंघम, कलकत्ता, 1885
5. ए0एस0आई0– आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, खण्ड– 21,
ए टूअर इन बुन्देलखण्ड एण्ड रीवा इन 1883–84 (भाग– 1)
ए टूअर इन बुन्देलखण्ड एण्ड मालवा–ग्वालियर इन 1884–85 (भाग– 2), सम्पादक– ए0 कनिंघम, प्रथम संस्करण 1885, पुनर्मुद्रित 2000, नई दिल्ली
6. ए0एस0आई0– आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट्स, 1912–13, एक्सकैवेशंस ऑफ टेक्सिला, कलकत्ता, 1913

7. इंडियन आर्क्योलोजी : ए रिव्यू 1958–59, ए0एस0आई0, नई दिल्ली, 1959

8. इंडियन आर्क्योलोजी : ए रिव्ययू 1960–61, ए0एस0आई0, नई दिल्ली, 1961

9. 'एनसिएन्ट इंडिया', नवम्बर 17, 1961, ए0एस0आई0, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित 1986

10. 'एनसिएन्ट इंडिया', बुलेटिन ऑफ द आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, नवम्बर 9, 1953, स्पेशल जुबली नम्बर, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रित 1985

11. 'इतिहास', भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद की शोध पत्रिका, अंक– 1, भाग– 1, सम्पादक– प्रभात कुमार शुल्क, नई दिल्ली, 2003

12. छाबड़ा, बी0सी0; सरकार, डी0सी; देसाई, जेड0ए0, 'एपिग्राफिकल रिसर्च, एनसिएन्ट इंडिया, नई दिल्ली, 1953

13. घोष, ए0, 'फिफ्टी ईयर्स ऑफ द आर्क्योलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया', एनसिएन्ट इंडिया, नई दिल्ली, 1953

14. जोशी, आर0वी0, 'स्टोन ऐज इण्डस्ट्रीज ऑफ द दमोह एरिया म0प्र0', एनसिएन्ट इंडिया, नई दिल्ली, 1961

15. मेनन, पी0के0वी0, 'जरनल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री', वाल्यूम–14, अंक–1, अप्रैल, 1967, त्रिवेन्द्रम्

16. रामचन्द्रन, टी0एन0, 'प्रीजरवेशन ऑफ मानूमेन्ट्स', एनसिएन्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1953

17. शर्मा, वाई0डी0, 'एक्सप्लोरेशन ऑफ हिस्टोरिकल साइट्स', एनसिएन्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1953

18. शिवराममूर्ति, एस0 एवं रॉय, जे0के0, 'म्यूजियम्स', एनसिएन्ट इण्डिया, नई दिल्ली, 1953

19. त्रिपाठी, आभा, 'चन्देलकालीन भूमिदानपत्रों का महत्व', इतिहास, अंक–1, भाग–1, नई दिल्ली, 2003

(ग) शोधपत्र एवं अप्रकाशित शोध प्रबन्ध

1. अली, मसूद, 'ड्राईलैण्ड एग्रीकल्चर इन बुन्देलखण्ड', 'टेक्नीकल बुलेटिन, आई0जी0एफ0आर0आई0, झाँसी, 1982
2. भाटिया, आर0के0, 'पेशवा बाजीराव और मस्तानी', बुन्देलखण्ड दर्पण, षष्ठ बिम्ब, झाँसी 1998
3. दुबे, वी0एस0, 'इगनीयस एण्टीक्वीटीज एण्ड पीरियड्स ऑफ ओरिजिनिसिस इन गोंडवानालैण्ड' भूगोल एवं भूगर्भ खण्ड में अध्यक्षीय उद्‌बोधन, आई0एस0सी0ए0, बम्बई, 1960
4. गुप्त, मोहनलाल, 'एरच का ईसापूर्व के सिक्के', बुन्देलखण्ड दर्पण, सप्तम बिम्ब, झाँसी, 1999
5. गुप्त, मोहन लाल, 'झाँसी बलवन्तनगर टकसाल', बुन्देलखण्ड दर्पण, सप्तम बिम्ब, झाँसी, 1998
6. हबीब, इरफान, 'पर्शियन बुक रायटिंग एण्ड बुक यूज इन द प्री प्रिटिंग एज', इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के 66वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोधपत्र, शान्ति निकेतन, 2006
7. पाठक, एस0पी0, 'सर्वधर्व समभाव एवं राष्ट्रीय एकता की परंपरायें', बुन्देलखण्ड दर्पण, षष्ठ बिम्ब, झाँसी, 1998
8. पाण्डेय, रमाशंकर, 'कालिंजर के चन्देलकालीन अभिलेख', बी0एन0रॉय कृत 'कालंजर : ए हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल' से उद्‌धृत, बाँदा, 1992
9. सिंह, राजेन्द्र, 'कनवर्जन ऑफ तीर्था इनटू ए सेन्टर ऑफ पॉलिटिकल एलीट : ए जियोकल्चरल स्टडी ऑफ कालिंजर', तीर्थाज एण्ड रिलीजियस रिचुअल्स' पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार में प्रस्तुत शोधपत्र, मथुरा, 1992
10. सिंह, राजेन्द्र, 'फोर्ट्स : द कॉरीडोर ऑफ अरबन एनवायरनमेन्ट इन बुन्देलखण्ड (यू0पी0)', 'एशियन अरबन एनवायरनमेन्ट : इश्यूज एण्ड चैलेन्जेज' पर अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार में प्रस्तुत शोधपत्र, बी0एच0यू0, वाराणसी, 1990

11. सिंह, राजेन्द्र, 'ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ टाउन्स इन बुन्देलखण्ड (यू0पी0)', 'पैटर्न्स ऑफ अरबन चेन्ज इन इंडिया' पर राष्ट्रीय सेमीनार में प्रस्तुत शोध पत्र, बी0एच0यू0, वाराणसी, 1989

12. सिंह, राजेन्द्र, 'डायमेन्शन्स ऑफ स्ट्रक्चरल ग्रोथ इन क्लास वन एण्ड क्लास टू टाउन्स ऑफ बुन्देलखण्ड (यू0पी0)', 'इवोल्यूशन ऑफ रीजनल पॉलिसीज एण्ड डेवेलपमेन्ट' पर राष्ट्रीय सेमीनार में प्रस्तुत शोधपत्र, अतर्रा, 1994

13. सिंह, राजेन्द्र, 'बुन्देलखण्ड (उ0प्र0) में तेंदू पत्ता : उत्पादन, संरक्षण एवं समस्यायें', 'संसाधन, संरक्षण एवं प्रबन्धन' पर राष्ट्रीय सेमीनार में प्रस्तुत शोधपत्र, टीकमगढ़, 1995

14. सिंह, राजेन्द्र, 'इवोल्यूशन ऑफ रूट्स इन बुन्देलखण्ड (यू0पी0) : ए स्टडी इन हिस्टोरिकल ज्योग्राफी', द डेकेन ज्योग्राफर, अंक–27, रिसर्च जर्नल ऑफ डेकेन ज्योग्राफिकल सोसायटी, पुणे, 1989

15. सिंह, राजेन्द्र, 'वाटर रिसोर्स एण्ड इट्स मैनेजमेन्ट– ए केस स्टडी ऑफ रीवर बेतवा', रिसर्च जर्नल ऑफ लैण्डस्केप सिस्टम्स एण्ड इकोलोजिकल स्टडीज, कलकत्ता, वॉल्यूम–13, अंक–1, 1990

16. सिंह, राजेन्द्र, 'इम्पैक्ट ऑफ फोर्टीफिकेशन आन इंडीजीनियम अरबन हैबिटेट इन बुन्देलखण्ड (यू0पी0), बुक– 'सेटेलमेन्ट सिस्टम इन इण्डिया', खण्ड–2, संपा0–एस0डी0मौर्या, चुघ पब्लिकेशन, इलाहबाद, 1991

17. सिंह, राजेन्द्र, 'बुन्देलखण्ड : ए ट्रेडीशनल लैण्ड ऑफ फोर्ट काम्पलेक्स–ए हिस्टो ज्योग्राफिक एनालिसिस', द डेकेन ज्योग्राफर, वॉल्यूम–32, अंक–2, पुणे, 1994

18. सिंह, राजेन्द्र, 'बुन्देलखण्ड में दुर्ग निर्माण', दैनिक जागरण स्वर्ण जयन्ती स्मारिका, झाँसी, 1992; पुनर्मुद्रित, बुन्देलखण्ड दर्पण, द्वादश बिम्ब, झाँसी, 2004

19. सिंह, राजेश, 'महाभारतकालीन न्याय पद्धति' अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, 1998

20. सिंह, विकास वैभव, 'चित्यौरी कला के झाँसी में ध्वस्त होते स्तम्भ', बुन्देलखण्ड दर्पण, अष्टम बिम्ब, झाँसी, 2000

21. सिंह, विकास वैभव, 'गढ़कुण्डार महल', बुन्देलखण्ड दर्पण, षष्ठ बिम्ब, झाँसी, 1998

22. सिंह, पुरूषोत्तम, 'हिस्टोरिकल टैंक्स ऑफ बुन्देलखण्ड : यूनीक सोर्स ऑफ इकोलोजिकल बैलेन्स', इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के 65वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोधपत्र, बरेली, 2004

23. सिंह, पुरूषोत्तम, 'रिलीजियस स्पाट्स विद इन फोर्ट्स : ए स्टडी इन कल्चरल हिस्ट्री ऑफ बुन्देलखण्ड', इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस के 66वें अधिवेशन में प्रस्तुत शोधपत्र, शान्ति निकेतन, 2006

24. सिंह, पुरूषोत्तम, 'स्वतंत्रता पूर्व बुन्देलखण्ड के राज्याश्रय एवं मानव संसाधन–एक ऐतिहासिक पर्यवेक्षण', मानव संसाधन विकास पर आयोजित नेशनल सेमीनार में प्रस्तुत शोधपत्र, टीकमगढ़, 2004

25. सक्सेना, जे0पी0, 'जियोलोजिकल कन्ट्रोल आन द इवोल्यूशन ऑफ बुन्देलखण्ड टोपोग्रॉफी', जर्नल ऑफ ज्योग्राफी, यूनीवर्सिटी ऑफ जबलपुर, नं0–2 नवम्बर 1960

26. सक्सेना, कांतिचन्द्र, 'बुन्देलखण्ड का पर्यटन प्रवेश द्वार– झाँसी', बुन्देलखण्ड दर्पण, द्वादश बिम्ब, झाँसी, 2004

27. सुल्लेरे, सुशील कुमार, 'राजनैतिक शक्ति का केन्द्र बिन्दु कालिंजर', बुक– 'कालंजर : ए हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल', संपा0– बी0एन0रॉय, बाँदा, 1992

28. ठकुरैल, पुष्पा, 'बुन्देलखण्ड नोन थ्रो क्वायंस', बुन्देलखण्ड दर्पण, षष्ठ बिम्ब, झाँसी, 1998

29. त्यागी, आर0के0, 'फोर्ट टाउन्स ऑफ वेस्टर्न यू0पी0–ए स्टडी इन अरबन ज्योग्राफी', अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, यूनीवर्सिटी ऑफ राजस्थान, जयपुर, 1970

30. वर्मा, वृन्दावनलाल, 'मेरी साहित्य साधना के प्रेरणा स्रोत', बुन्देलखण्ड दर्पण, सप्तम बिम्ब, झाँसी, 1999

31. वाडिया, डी0एन0, 'जियोलोजी ऑफ इण्डिया', शोधपत्रों का संकलन, मैकमिलन, लंदन, 1961

32. जेब्रा, जॉय सी0, 'भाट्स एण्ड बर्ड्स इन द कोर्ट ऑफ झाँसी एट द टाइम ऑफ महाराजा गंगाधर राव, कोलोरेडो, बुन्देलखण्ड दर्पण, षष्ठ बिम्ब, झाँसी, 1998

(घ) द्वितीयक स्रोत एवं अनूदित ग्रंथ

1. अबुल फज्ल कृत अकबरनामा, अनु0– एच0 बेवरिज, खण्ड–3, कलकत्ता, 1910
2. आइन ए अकबरी, अनु0– एच0एस0जैरेट, खण्ड– 2, कलकत्ता, 1949
3. अलबरूनी कृत किताब उल हिन्द, हिन्दी अनु0– कयामुद्दीन अहमद, एन0बी0टी0, नई दिल्ली, 1998
4. अग्रवाल, वी0एस0, 'इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनि', लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, 1953
5. भार्गव, वी0एस0, 'प्राचीन भारतीय इतिहास', कालेज बुक डिपो, जयपुर, 1984
6. बोस, एन0एस0, 'द हिस्ट्री ऑफ चन्देलाज' कलकत्ता, 1956
7. बाजपेयी, के0डी0, 'युगों–युगों में उत्तर प्रदेश' इलाहाबाद, 1955
8. ब्राउन पर्सी, 'इण्डियन आर्कीटेक्चर : बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू पीरियड्स', बम्बई, 1956
9. 'बुन्देलखण्ड', यू0पी0 टूरिज्म की बुकलेट, लखनऊ, 1996
10. बुन्देलखण्ड दर्पण, षष्ठ बिम्ब, झाँसी महोत्सव, झाँसी, 1998
11. बुन्देलखण्ड दर्पण, सप्तम बिम्ब, झाँसी महोत्सव, झाँसी, 1999
12. बुन्देलखण्ड दर्पण, अष्टम बिम्ब, झाँसी महोत्सव, झाँसी, 2000
13. बुन्देलखण्ड दर्पण, द्वादश बिम्ब, झाँसी महोत्सव, झाँसी, 2004
14. बनर्जी, आर0डी0, 'हिस्ट्री ऑफ मेडीवेल इण्डिया, ब्लेकी एंड संस, 1934

15. चन्द्रा, बिपिन, 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, नई दिल्ली, 1998
16. चकवर्ती, के0के0, 'आर्ट ऑफ इण्डिया– ओरछा', नई दिल्ली, 1984
17. चकवर्ती, के0के0, 'द आर्ट ऑफ खजुराहो', नई दिल्ली, 1986
18. डे, नन्दलाल, 'द ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ एनसिएन्ट मेडीवल इण्डिया', कलकत्ता
19. देसाई, देवांगना, 'इरोटिक स्कलपचर आफ इण्डिया : ए सोशयो कल्चरल स्टडी', मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, 1985
20. देव, कृष्ण एवं नायल, बी0एस0, 'आर्क्योलोजिकल म्यूजियम खजुराहो', ए0एस0आई0, नई दिल्ली, 1973
21. दहेजा, विद्या, 'रॉयल पैट्रन्स एण्ड ग्रेट टेम्पिल आर्ट', मार्ग पब्लिकेशन, बम्बई, 1988
22. धर्मराजन एवं सेठ, 'टूरिज्म इन इण्डिया', नई दिल्ली, 1992
23. गाँगुली, डी0सी0, 'हिस्ट्री ऑफ परमार डायनेस्टी, ढाका, 1933
24. गोपालन, आर0, ' हिस्ट्री ऑफ पल्लवाज ऑफ कान्ची', मद्रास, 1928
25. गोरेलाल पुरोहित (लालकवि) , 'छत्रप्रकाश', काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी
26. गोडसे, विष्णुभट्ट, 'माझा प्रवास', (मराठी), हिन्दी अनुवाद– अमृतलाल नागर, पुस्तक– 'आँखों देखा गदर', राजपाल एण्ड एन्स, दिल्ली, 2003
27. गाँगुली, ओ0सी0, 'द आर्ट ऑफ चन्देलाज', कलकत्ता, 1957
28. गुप्ता, बी0डी0, 'मस्तानी–बाजीराव और उनके वंशज बाँदा के नवाब', विद्यामन्दिर प्रकाशन ग्वालियर, 1983
29. गुप्ता, बी0डी0, 'महाराजा छत्रसाल बुन्देला', दिल्ली, 1958
30. गुप्ता, बी0डी0, 'लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ महाराजा छत्रसाल बुन्देला', रेडिएन्ट पब्लिशर्स, दिल्ली, 1980
31. हबीब, इरफान, 'एन एटलस आफ द मुगल एम्पायर', आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 1986

32. हन्टिंगटन एवं सूसन, एल0, 'द आर्ट आफ एनसिएन्ट इंडिया', न्यूयार्क, 1985
33. ह्वीलर, सर मॉर्टिमर, 'इण्डस सिविलाइजेशन', कैम्ब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, 1953
34. हेग, सर वुल्जले, 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री' ऑफ इण्डिया', खण्ड–3, एस0 चांद एण्ड संस, दिल्ली, 1958
35. हेग, सर वुल्जले, 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', खण्ड–4, एस0 चांद एण्ड संस, दिल्ली, 1958
36. हीरालाल, रायबहादुर, 'मध्य प्रदेश का इतिहास', काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी', संवत 1996
37. हॉवेल, ई0 बी0, 'आर्यन रूल इन इण्डिया', लंदन, 1960
38. इलियट, एच0एम0 एवं डॉसन, जे0, 'हिस्ट्री आफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स', खण्ड–4, लंदन, 1873
39. इलियट, एच0एम0 एवं डॉसन, जे0, 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स', खण्ड–5, लंदन, 1874
40. इगनू, फाउंडेशन कोर्स इन टूरिज्म, बुकलेट–टी0एस0 3 (1), मैदानगढ़ी, दिल्ली, 1998
41. जातक कथा, सम्पा0– कावेल, कैम्ब्रिज, 1905
42. कीथ, प्रो0 ए0 बेरीडेल, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', अनु0– मंगलदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1960
43. कोरोविन, एफ0, 'हिस्ट्री ऑफ एनसिएन्ट वर्ल्ड', प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को, 1981
44. लाल, के0 एस0, 'ट्विलाइट ऑफ सुल्तानेट', बम्बई, 1963
45. लाहा, विमल चरन, 'हिस्टोरिकल ज्योग्राफी ऑफ एनसिएन्ट इण्डिया', अनु0–रामकृष्ण द्विवेदी, उ0प्र0 हिन्दी ग्रंथ अकादमी, लखनऊ, 1972
46. मजूमदार, आर0सी0, 'एनसिएन्ट इंडिया', दिल्ली, 1960
47. मजूमदार, आर0सी0, 'द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल– द मुगल एम्पायर', बम्बई, 1974
48. मजूमदार, आर0सी0, अल्टेकर, ए0एस0, 'द वाकाटका गुप्ता एज', दिल्ली, 1960

49. मजूमदार, आर0सी0, पुष्कलकर, ए0डी0, 'द स्ट्रगल फार एम्पायर' बम्बई, 1959
50. मैक्सवेल, इयान, 'पासपोर्ट' शिकागो, 1992
51. मूसवी शीरीन, 'अकबर के जीवन की कुछ घटनायें', एन0बी0टी0, नई दिल्ली, 2000
52. मोतीचन्द्र, 'सार्थवाह' बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1953
53. मिश्र, केशरी, 'चन्देल एवं उनका राजत्व काल'
54. मेहता, एम0एम0 सम्पा0, 'मध्य प्रदेश दर्श– 1957', आर्थिक एवं साँख्यिकी संचालनालय म0प्र0, भोपाल, 1957
55. मालीवाल, कैप्टेन बी0एन0, 'सैन्य विज्ञान', चन्द्रप्रकाश एण्ड ब्रदर्स, हापुड़, 1970
56. मुरारीलाल, 'करैरा दुर्ग', बुन्देलखण्ड दर्पण, झाँसी, 1999
57. मित्रा, एस0के0, 'द अर्ली रूलर्स ऑफ खजुराहो', कलकत्ता,1958
58. मैकिण्डल, जे0डब्ल्यू0, 'एनसिएन्ट इंडिया डेसक्राइव्ड बाई मेगस्थनीज', लंदन, 1878
59. पॉग्सन, डब्ल्यू0 आर0, 'ए हिस्ट्री ऑफ बुन्देलाज', कलकत्ता, 1828
60. पाण्डेय, ए0पी, 'चन्देलकालीन बुन्देलखण्ड का इतिहास', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1968
61. पाण्डेय, ए0बी, 'अर्ली मेडिवेल इण्डिया', इलाहाबाद, 1960
62. पाण्डेय, जे0एन0, 'सेटेलमेन्ट्स एज कालिंजर', बी0एन0राय कृत 'कालंजर : ए हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल', बाँदा, 1992
63. 'प्रोजेक्ट रिपोर्ट आन टूरिज्म डेवेलपमेन्ट ऑफ झाँसी', पर्यटन विभाग लखनऊ, 2004
64. राय, यू0एन0, 'प्राचीन भारत में नगर तथा नगरीय जीवन', हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद, 1965
65. रॉय, बी0एन0, 'कालंजर : ए हिस्टोरिकल एण्ड कल्चरल प्रोफाइल', इतिहास विभाग, पं0 जे0एन0कालेज बाँदा, 1992

66. रायचौधरी, एच0सी0, 'पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनसिएन्ट इंडिया', कलकत्ता, 1953
67. रिछारिया, रामसेवक, 'बुन्देलखण्ड के किले एवं गढ़ियों', झाँसी, 2001
68. रिजवी, एस0ए0ए0, 'आदि तुर्क कालीन भारत', अलीगढ़, 1956
69. रिजवी, एस0ए0ए0, 'उत्तर तैमूर कालीन भारत', अलीगढ़, 1959
70. रिजवी, एस0ए0ए0, 'मुगलकालीन भारत– हुमाँयू', खण्ड–1, अलीगढ़, 1961
71. रिजवी, एस0ए0ए0, 'फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश', खण्ड– 4, अलीगढ़, 1959
72. स्लीमैन, डब्ल्यू0एच0, 'रैम्बल्स एण्ड रीकलेक्शंस आफ एन इंडियन आफीसियल' खण्ड–1, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1915
73. सिंह, दीवान प्रतिपाल, 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1929
74. सिंह, ओ0पी0, 'नगरीय भूगोल', तारा प्रकाशन, 1979
75. सिंह, आर0एल0, 'इंडिया : ए रीजनल ज्योग्राफी', नेशनल ज्योग्राफिकल सोसायटी ऑफ इण्डिया, बी0एच0यू0 वाराणसी, प्रथम संस्करण 1971, छठा संस्करण, 1997
76. सिंह, प्रताप, 'मध्यकालीन भारत (1526–1658)', रिसर्च पब्लिकेशन, दिल्ली, 1998
77. सिंह, प्रताप, 'आधुनिक भारत (1756–1858)', रिसर्च पब्लिकेशन, दिल्ली, 1998
78. सरदेसाई, जी0एस0, 'न्यू हिस्ट्री ऑफ मराठास' खण्ड–3, बम्बई, 1948
79. सरदेसाई, जी0एस0, मराठों का नवीन इतिहास (1772–1848)' खण्ड– 3, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा, 1961
80. सरकार, सर जदुनाथ, 'हिस्ट्री ऑफ औरंगजेब' खण्ड–5, कलकत्ता, 1924
81. शास्त्री, ईश्वरचन्द्र, 'उक्तिकल्पतरू', कलकत्ता, 1917
82. शास्त्री, नीलकंठ के0ए0, 'ए कम्प्रेहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', खण्ड–2, वाराणसी, 1952
83. शर्मा, लखपतराम, 'रत्नों और खजानों का देश भारत', झाँसी, 1976
84. शर्मा, आर0के0, 'मध्य प्रदेश के पुरातत्व का संदर्भ ग्रन्थ', इलाहाबाद, 1976

85. शर्मा, हरिशंकर, 'मध्यकालीन भारत', चौड़ा रास्ता, जयपुर, 1990
86. शर्मा, रामशरण, 'भारत में सामन्तवाद', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1998
87. शुक्ला, साधना, 'प्राचीन भारत में अपराध एवं दण्ड', प्रज्ञा प्रकाशन, कानपुर, 1987
88. शुक्ला, आर0के0, 'द ज्योग्राफी ऑफ रामायन', कौशल बुक डिपो, दिल्ली, 2003
89. श्रीवास्तव, ए0एल0, 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', आगरा,
90. श्रीवास्तव, ए0एल0, 'शुजाउद्दौला', खण्ड–2, आगरा, 1961
91. राव, गोखले, डिसूजा, 'एनसिएन्ट इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर', बम्बई, 1966
92. ट्वाय, सिडनी, 'द स्ट्राँग होल्ड्स ऑफ इण्डिया', विलियम हेनीमेन लिमिटैड, लंदन, 1957
93. थापर, रोमिला, 'अशोका एण्ड डीक्लाइन ऑफ मौर्याज', आक्सफोर्ड, 1961
94. थापर, रोमिला, 'अशोका और मौर्य साम्राज्य का पतन', ग्रन्थम प्रकाशन, दिल्ली, 1999
95. तिवारी, बद्री प्रसाद (सम्पा0), 'आदित्य ग्रंथमाला' खण्ड–1 चरखारी, संवत 1994
96. तिवारी, गोरेलाल, 'बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास', काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1933
97. त्रिपाठी, काशीप्रसाद, 'बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास–राजतंत्र से जनतंत्र', टीकमगढ़, 1991
98. त्रिपाठी, मोतीलाल, 'बुन्देलखण्ड दर्शन', झाँसी, 1980
99. त्रिपाठी, आर0एस0, 'एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज', दिल्ली, 1942
100. त्रिपाठी, आर0एस0, ' हिस्ट्री ऑफ एनसिएन्ट इंडिया', दिल्ली, 1942
101. त्यागी, आर0के0, 'ग्रासलैण्ड एण्ड फॉडर एटलस ऑफ बुन्देलखण्ड', आई0जी0एफ0आर0आई0, झाँसी, 1997
102. तबकात ए अकबरी (ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद), सम्पा0– रैवर्टी, लंदन, 1881
103. 'द वेरी हार्ट ऑफ इण्डिया', म0प्र0 टूरिज्म, भोपाल, 2004
104. वैद्य, सी0वी0, 'डाउनफाल ऑफ हिन्दू इण्डिया', पूना, 1926

105. याह्या सरहिन्दी कृत तारीखे मुबारकशाही, अनु0– के0के0बसु, बेफोड्स, 1932

106. वी0 ब्लेकर, कर्नल, 'मेमॉयर ऑफ आपरेशन्स इन इण्डिया (1817–1821)

107. विलियम इरविन, 'आर्मी ऑफ द इण्डियन मुगल्स', यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1962

108. हंस, कृष्णलाल, 'बुन्देली और उसके क्षेत्रीय स्परूप, प्रयाग, 1987

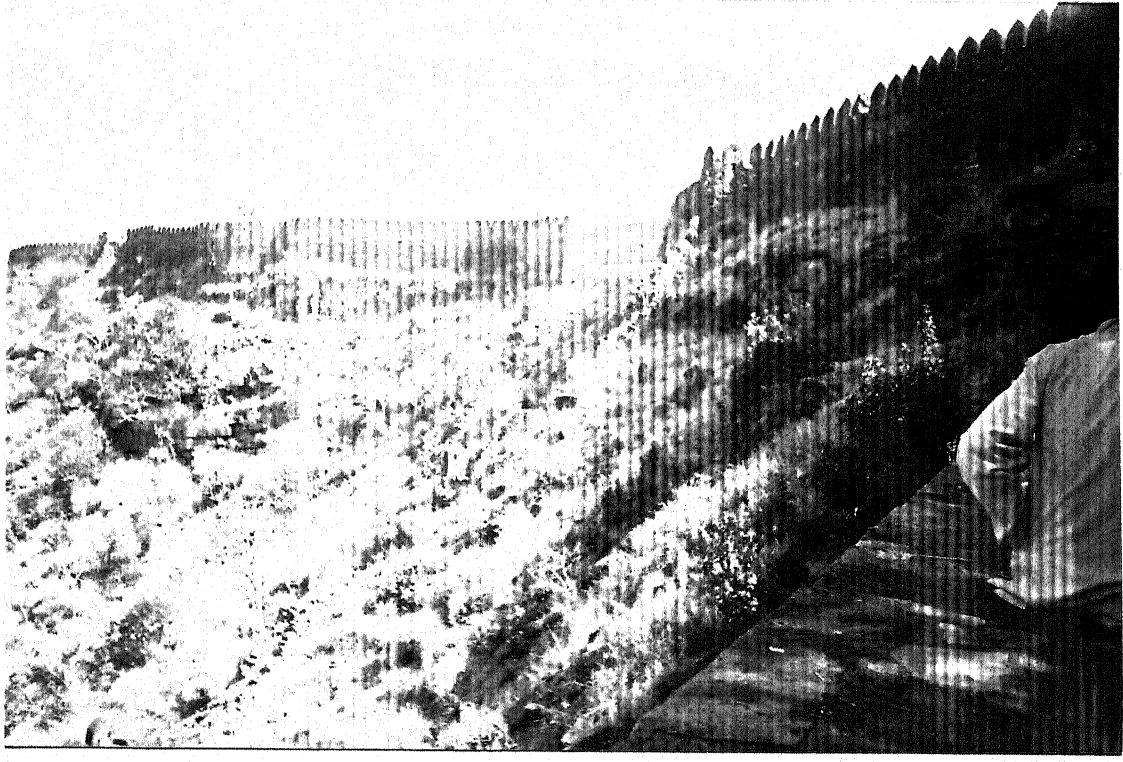
109 वेवसाइट ‚ geocities.Com.

110. वेवसाईट www. asi.nic.in

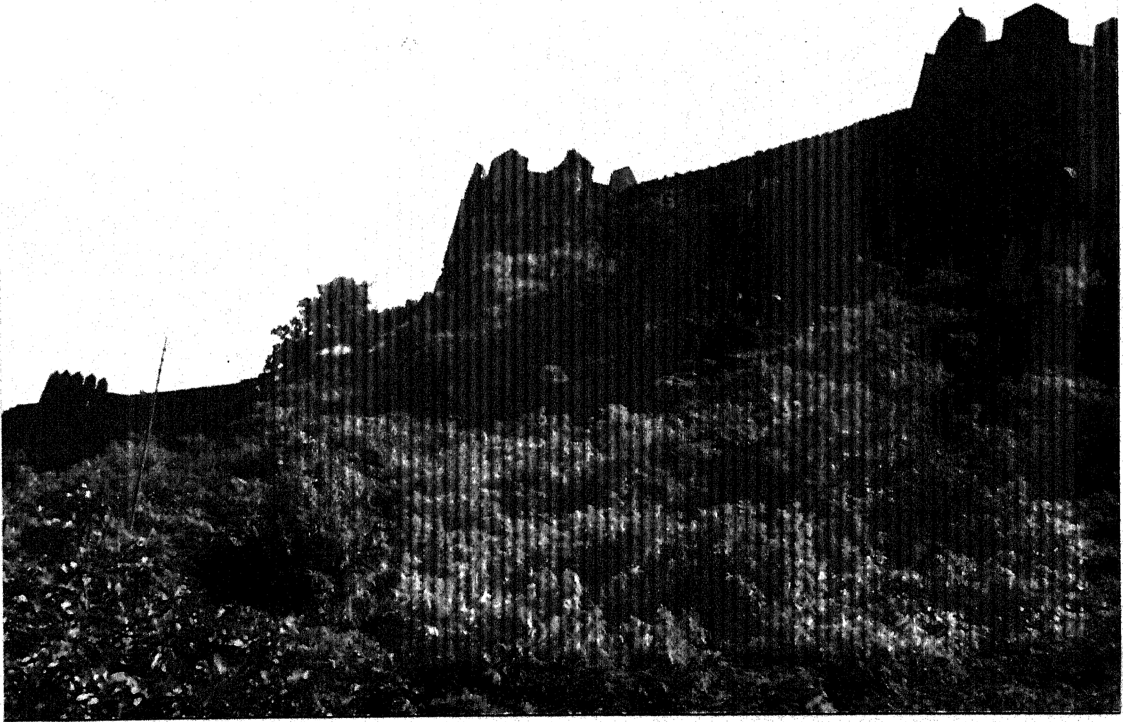
(ड.) गजेटियर

1. बुन्देलखण्ड गजेटियर और स्टेटिसकिल, डिसक्रिप्टिव एण्ड हिस्टोरिकल एकाउन्ट ऑफ नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज ऑफ इण्डिया, खण्ड, 1874
2. लुआर्ड, कैप्टेन सी0ई0, 'प्रोविन्सियल गजेटियर्स ऑफ इण्डिया', खण्ड–5ए, सेन्ट्रल इण्डिया एजेन्सी, लखनऊ, 1907
3. लुआर्ड, कैप्टेन सी0ई0, 'प्रोविन्सियल गजेटियर्स ऑफ इण्डिया' खण्ड–6ए बुन्देलखण्ड, सेन्ट्रल इण्डिया एजेन्सी, लखनऊ, 1907
4. ईस्टर्न स्टेट्स गजेटियर–ओरछा, लखनऊ, 1907
5. ब्रोकमैन, डी0एल0ड्रेक, 'डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ यूनाइटेड प्रोविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध', बाँदा–ए गजेटियर, गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद, 1909
6. ब्रोकमैन, डी0एल0ड्रेक, 'डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ यूनाईटेड प्रोविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध', हमीरपुर–ए गजेटियर, गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद, 1909
7. ब्रोकमैन, डी0एल0ड्रेक, 'डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ यूनाईटेड प्रोविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध', जालौन–ए गजेटियर, गवर्नमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद, 1921
8. जनपद गजेटियर झाँसी, सम्पादक–एशा बसन्ती जोशी, न्यू गवर्नमेन्ट प्रेस, लखनऊ, 1965
9. जनपद गजेटियर बाँदा, सम्पादक–डंगली प्रसाद वरून, लखनऊ, 1988
10. जनपद गजेटियर हमीरपुर, सम्पादक–बलवन्त सिंह, लखनऊ, 1988

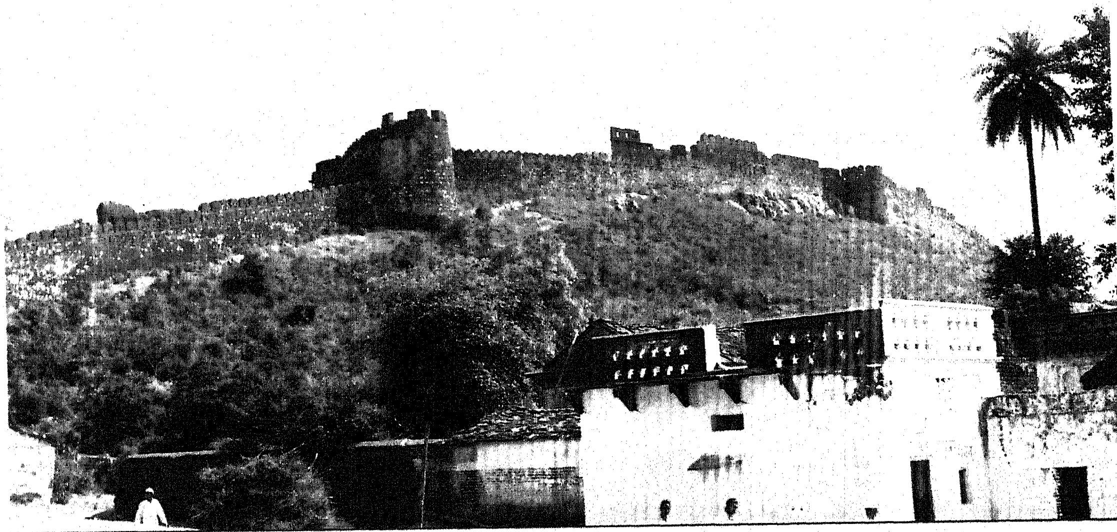
11. जनपद गजेटियर जालौन, सम्पादक—बलवन्त सिंह, लखनऊ, 1989
12. जनपद गजेटियर सागर, सम्पादक—वी0एस0कृष्णन, भोपाल, 1970
13. जनपद गजेटियर पन्ना, सम्पादक—ए0एम0सिन्हा, भोपाल, 1994
14. जनपद गजेटियर दतिया, सम्पादक—पी0एन0श्रीवास्तव, भोपाल, 1977
15. जनपद गजेटियर छतरपुर, सम्पादक—एस0डी0गुरू, भोपाल, 1982
16. जनपद गजेटियर टीकमगढ़, सम्पादक—एन0पी0पाण्डेय, भोपाल, 1995
17. जनपद गजेटियर दमोह, प्रथम संस्करण सम्पादक—आर0वी0रसेल, इलाहाबाद, 1906, पुनर्मुद्रित, भोपाल, 1998



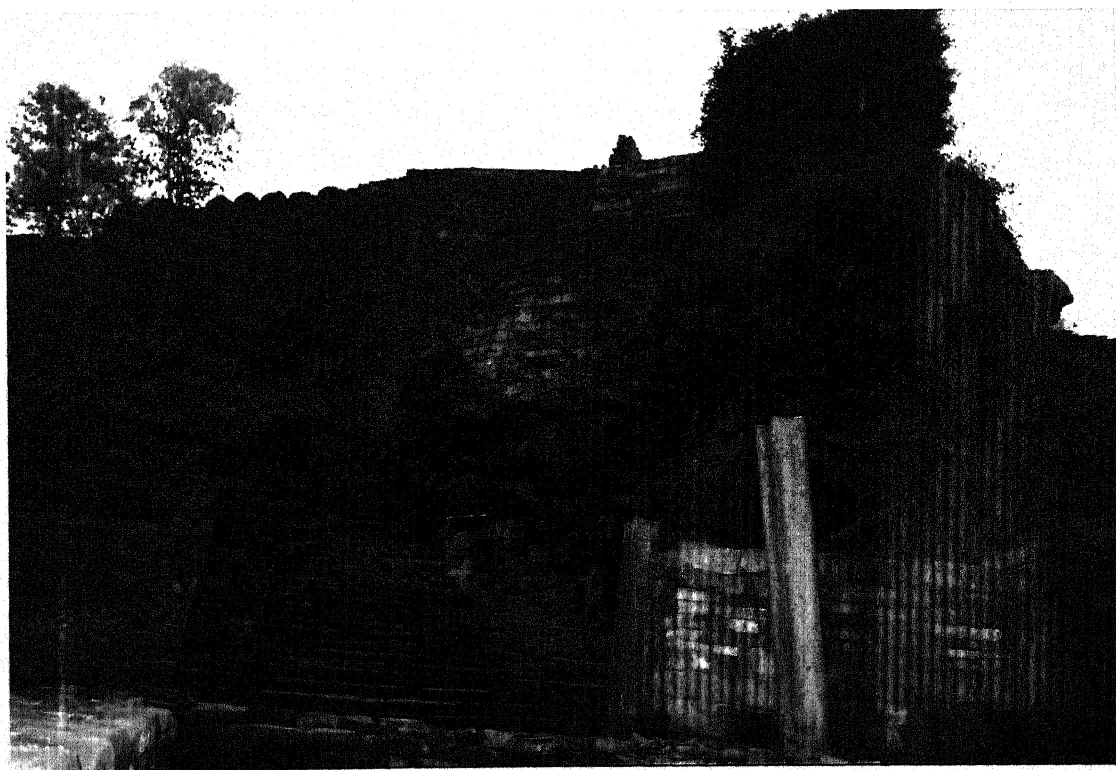
प्लेट-1(i) गिरि दुर्ग-कालिंजर, छठें द्वार से मुख्य परकोटा



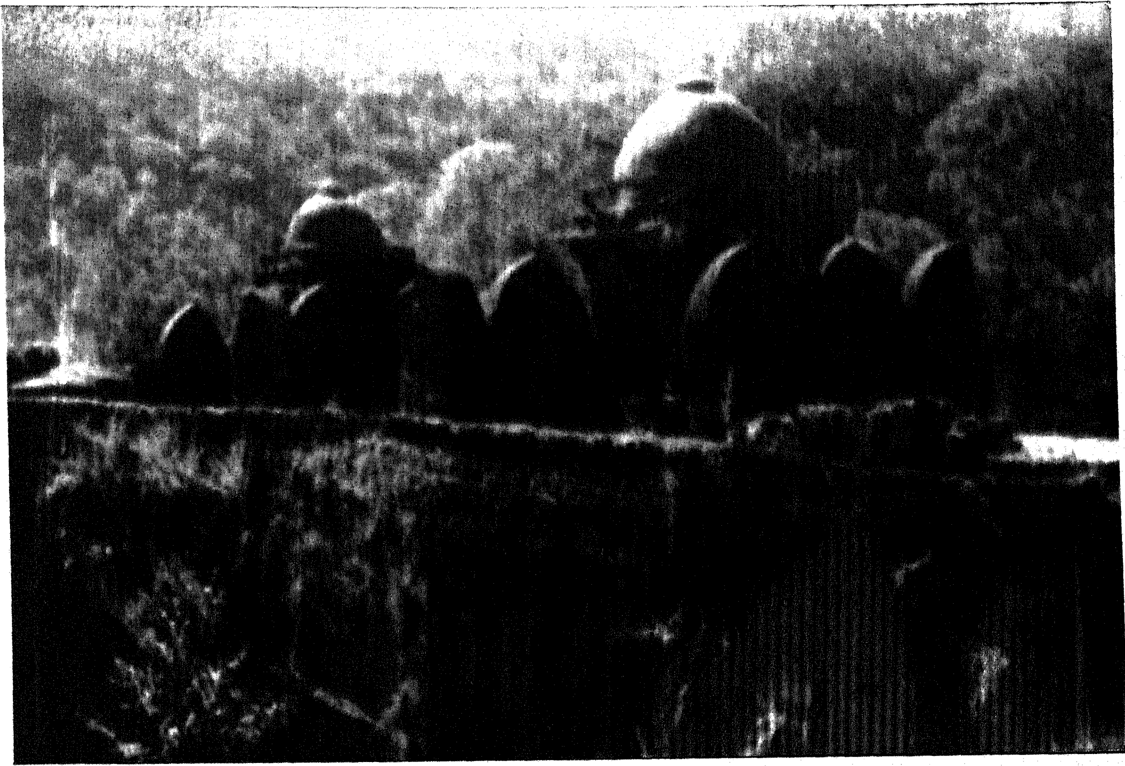
प्लेट-1 (ii) चरखारी - पर्वतीय दुर्ग



प्लेट - 2 (i) पहाड़ी पर परकोटा - तालबेहट दुर्ग



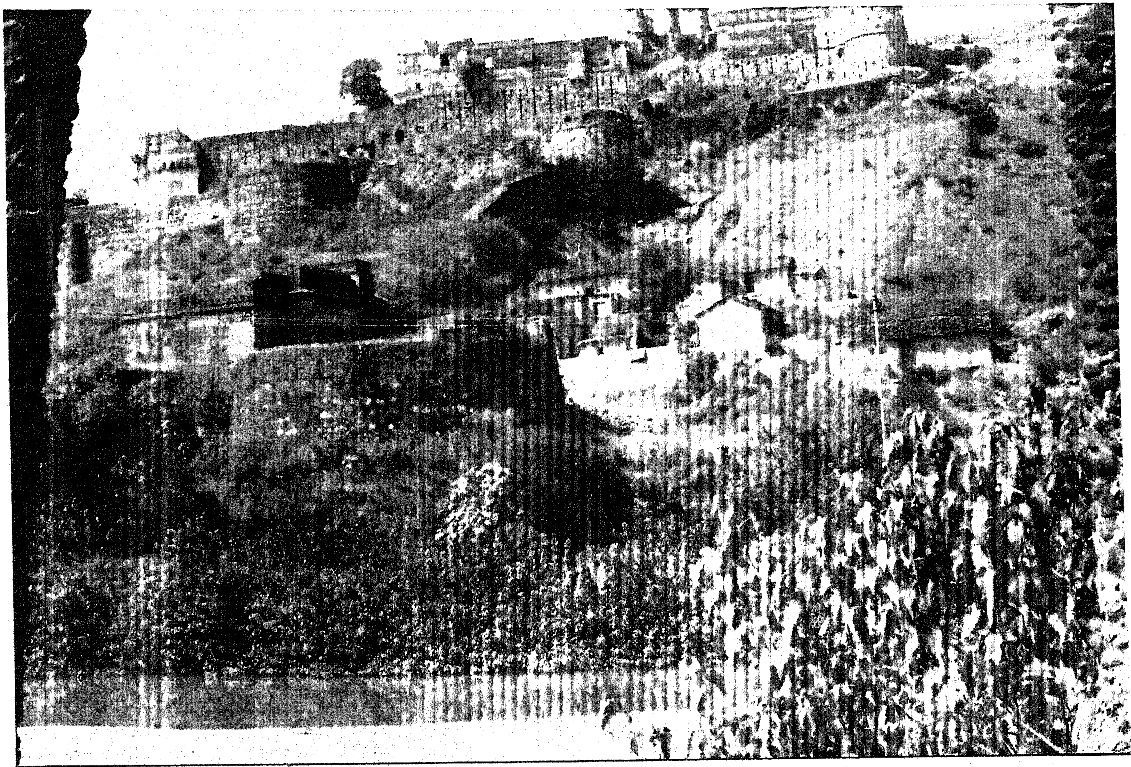
प्लेट - 2 (ii) पर्वतीय दुर्ग - अजयगढ़, उत्तरी प्रवेश द्वार



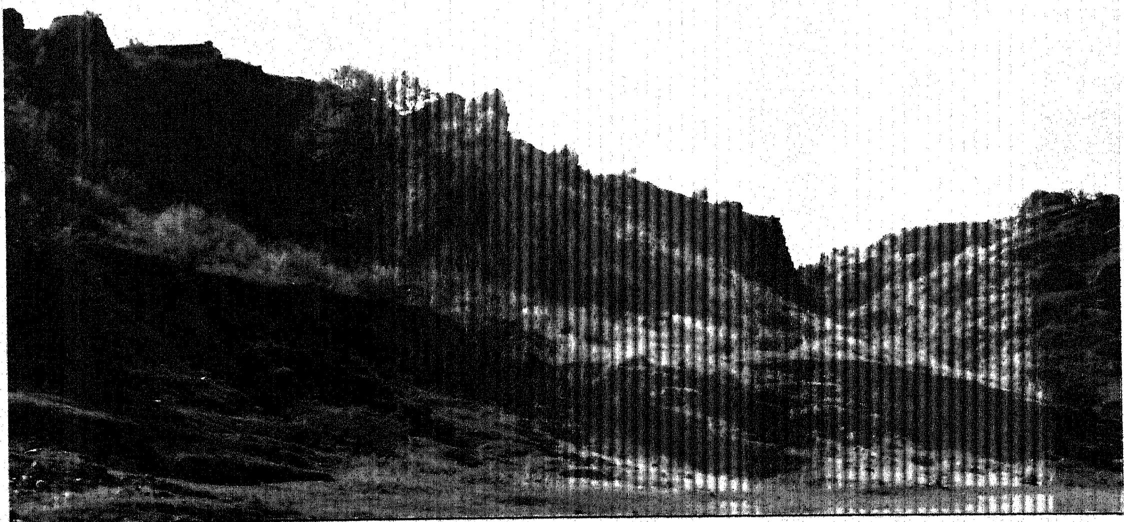
प्लेट-3(i) वनाच्छादित पहाड़ी दुर्ग- सिंगोरगढ़



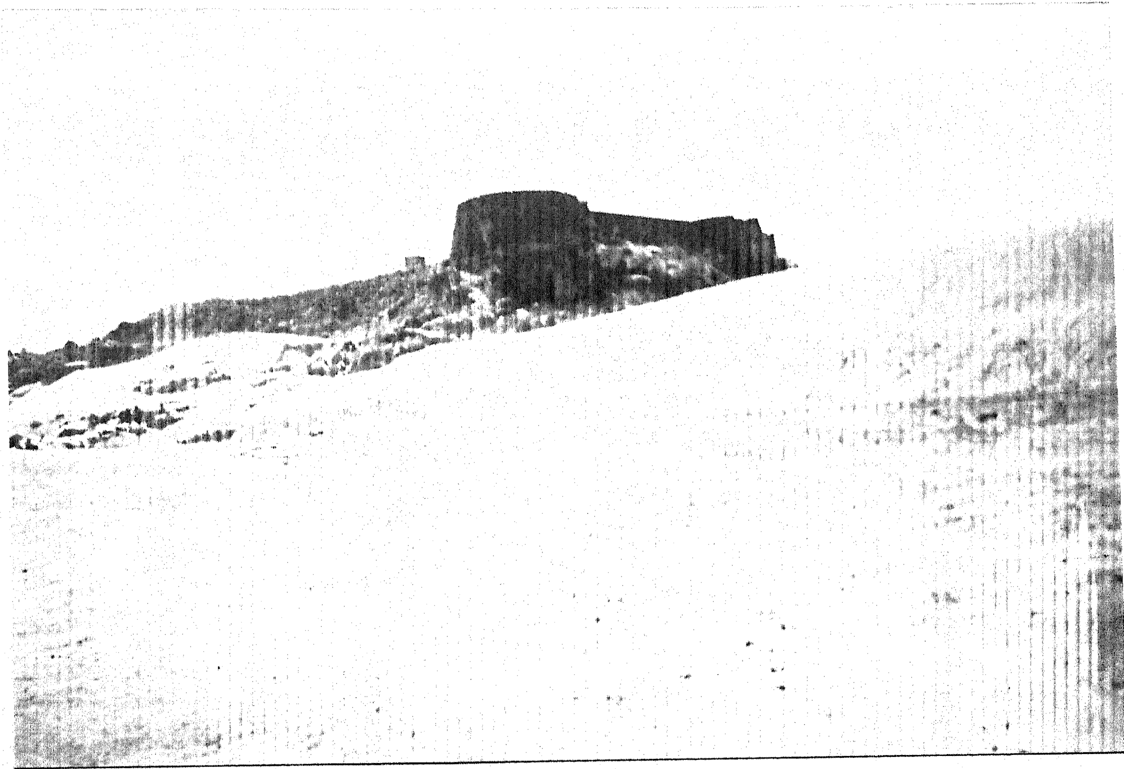
प्लेट-3(ii) यमुना तट पर कालपी दुर्गावशेष



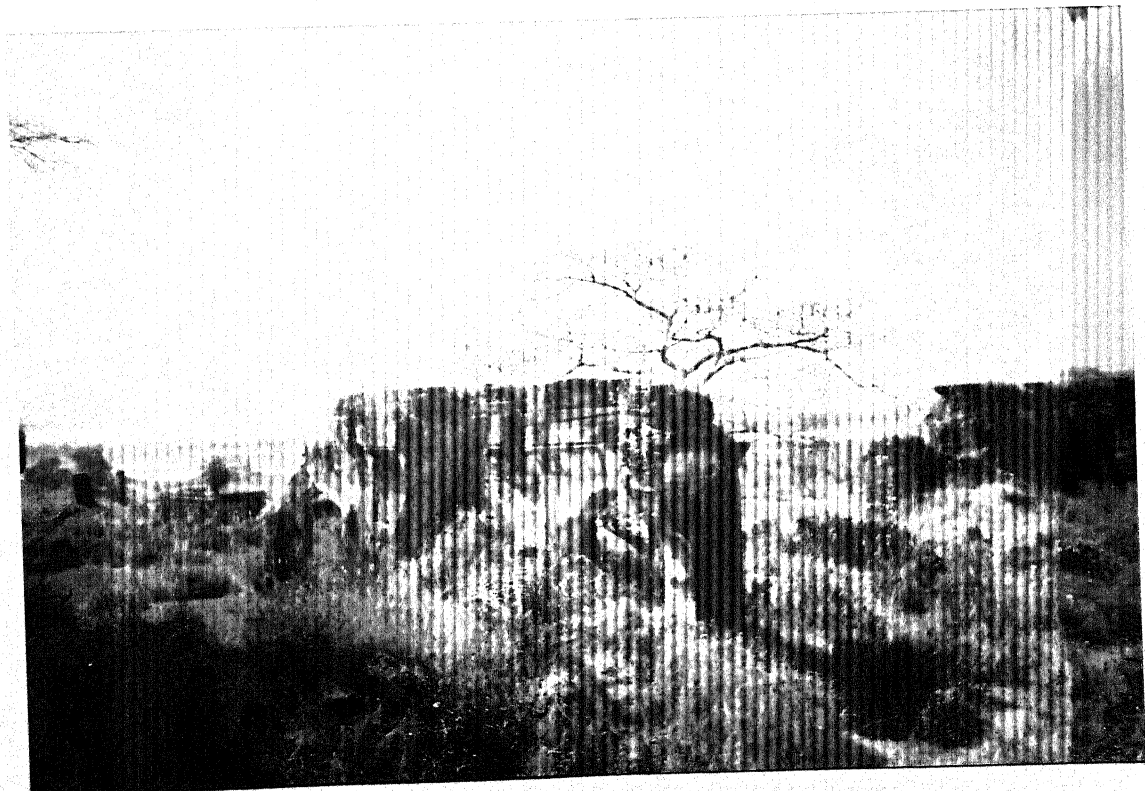
प्लेट - 4(i) सुखनई तट एवं पहाड़ी पर स्थित टोडीफतेहपुर दुर्ग



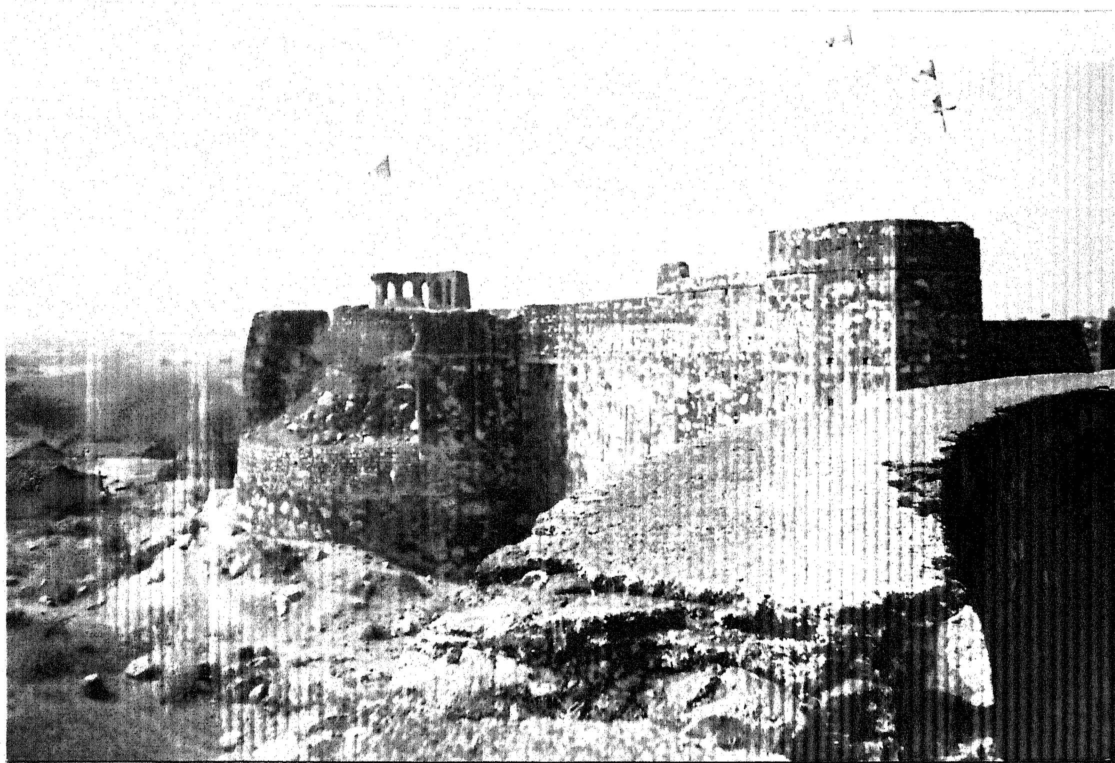
प्लेट 4(ii) बेतवा तट पर दुर्गविशेष - एरच



प्लेट-5(i) केन की दो धाराओं के मध्य रनगढ़ दुर्ग



प्लेट-5(ii) केन तट पर विस्तृत स्योंढ़ा दुर्ग के खण्डहर



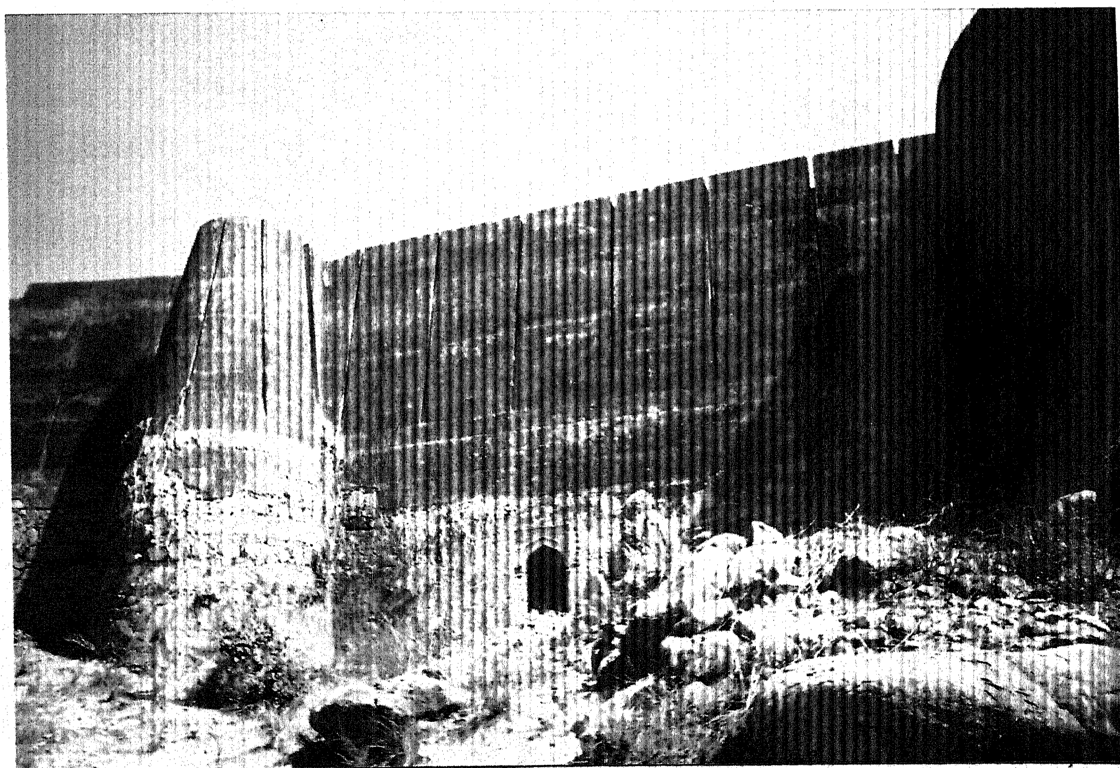
प्लेट – 6(i) केन तट पर स्थित भूरागढ़ दुर्ग



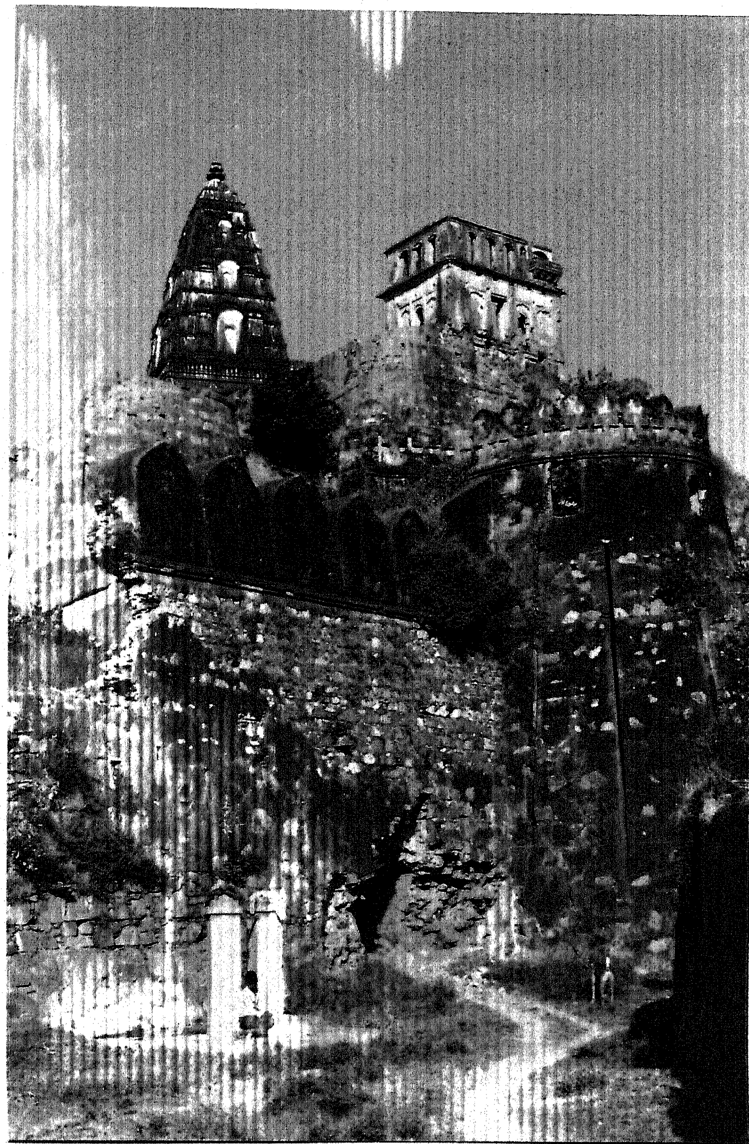
प्लेट - 6(ii) छोटी पहाड़ी एवं जलाशय का आश्रय लिये
जैतपुर दुर्ग



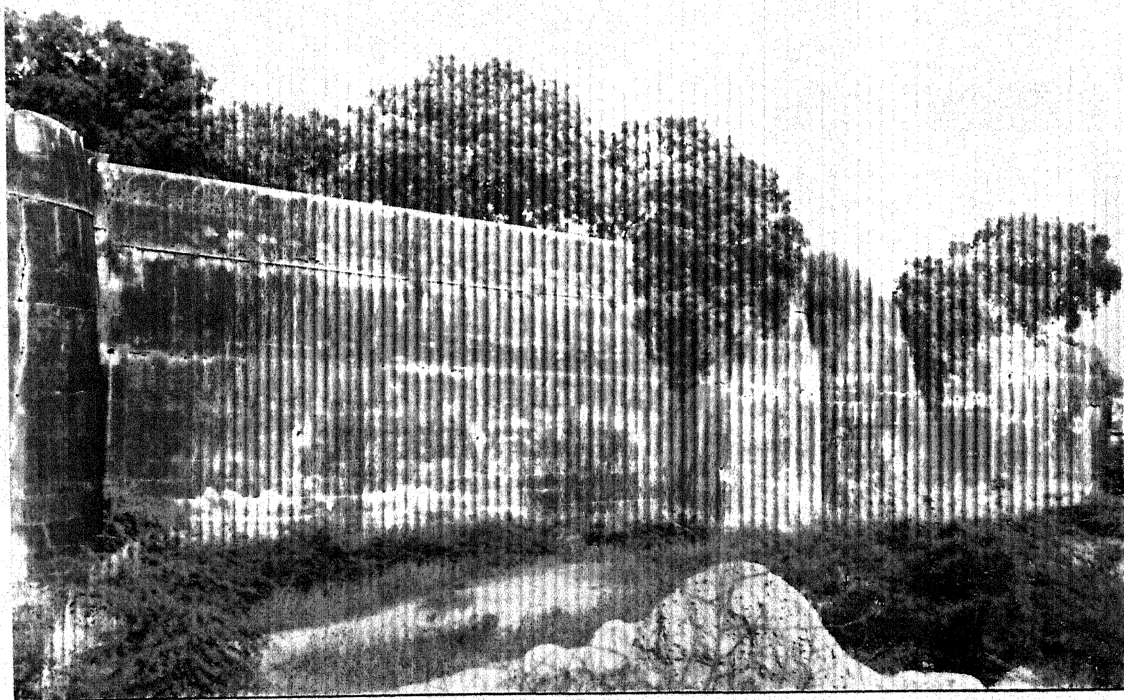
प्लेट-7(i) ऊँचे पथरीले टीले पर निर्मित बिसहरी गढ़ी



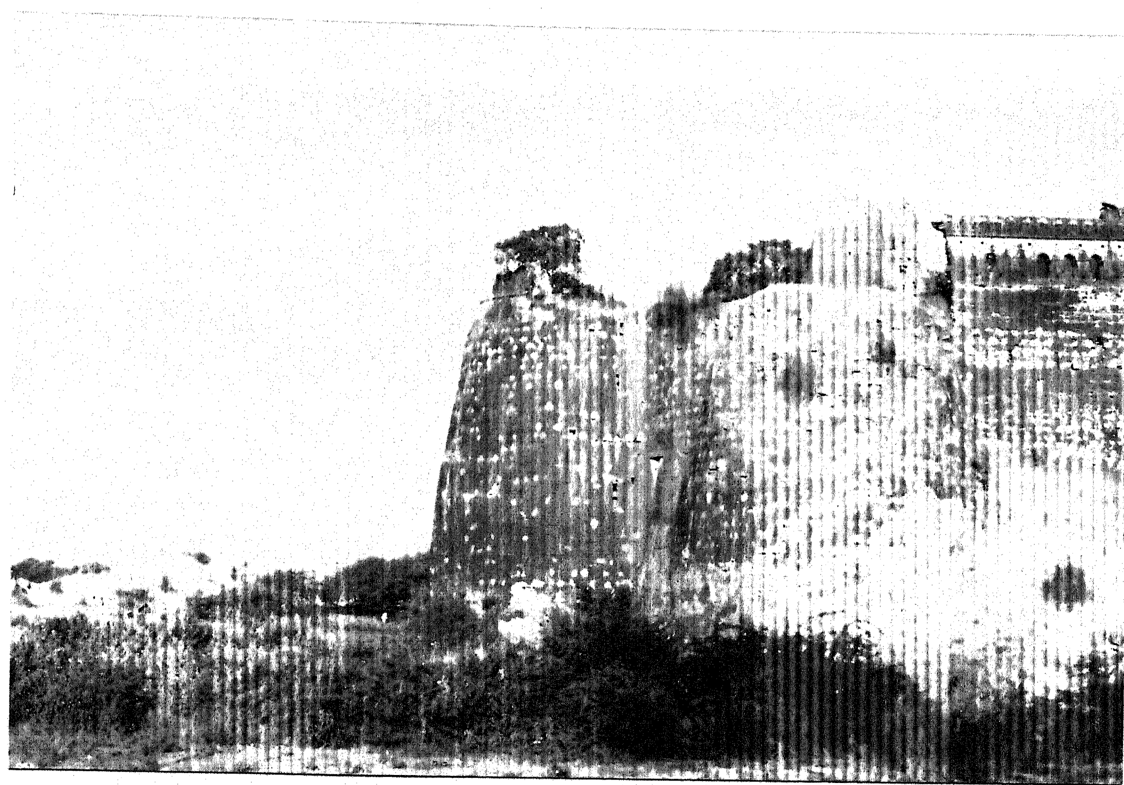
प्लेट-7(ii) रनगढ़ दुर्ग - पश्चिमी सिरे का प्राकार एवं मोर्चे



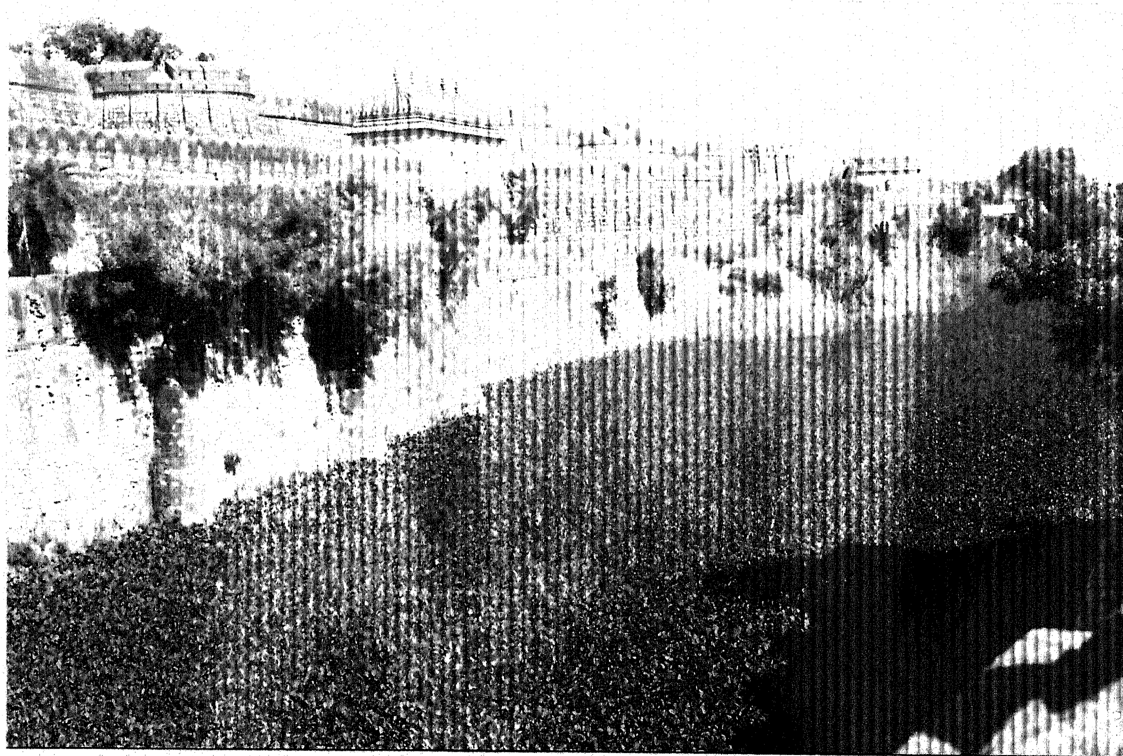
प्लेट-8(i) गुरसरॉय - ऊँचे टीले पर मैदानी दुर्ग



प्लेट-8(ii) नदीगॉव दुर्ग - पहूज के बीहड़ों में स्थिति



प्लेट-9(i) मैदानी दुर्ग मोठ



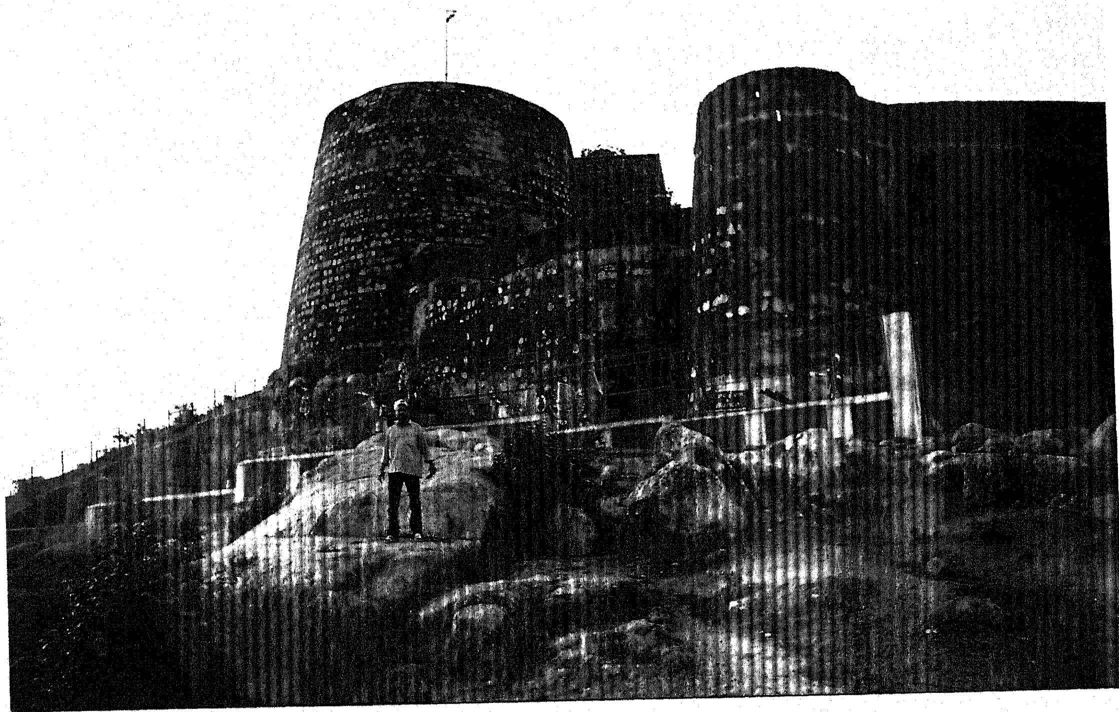
प्लेट-9(ii) समथर दुर्ग-परिखा एवं तिहरा प्राकार



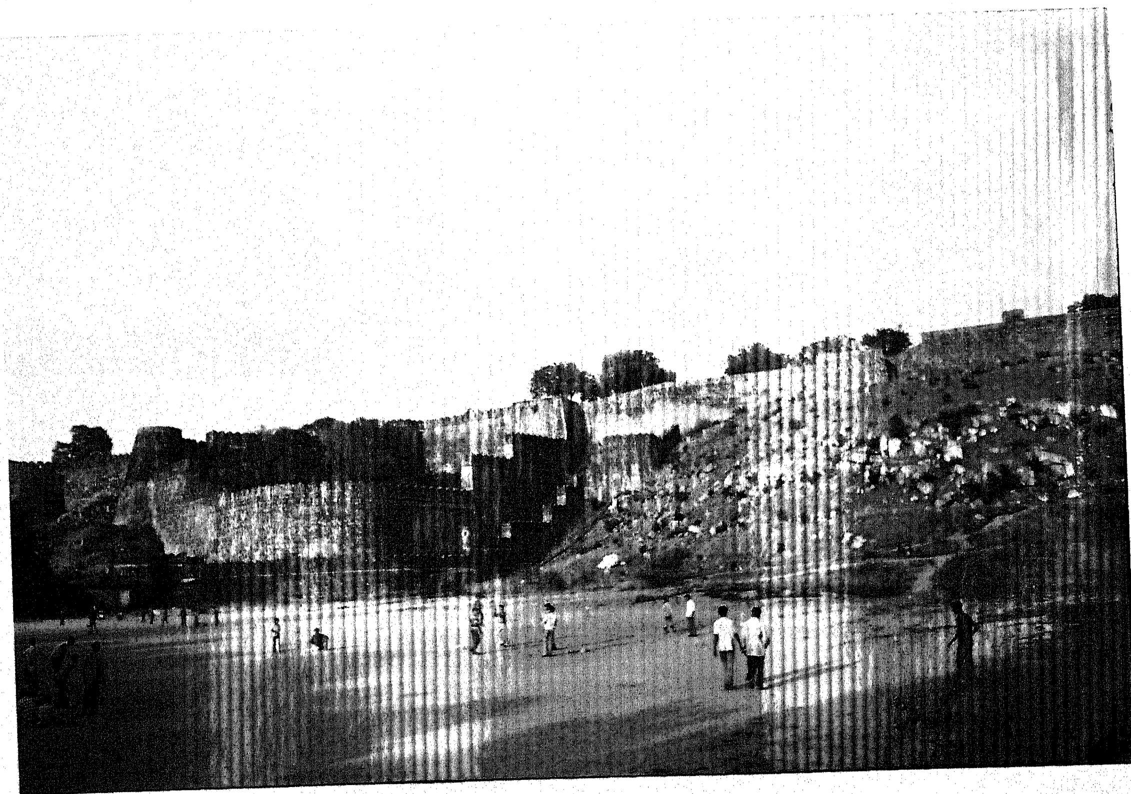
प्लेट-10(i) जलाशय तटीय बरुआसागर दुर्ग



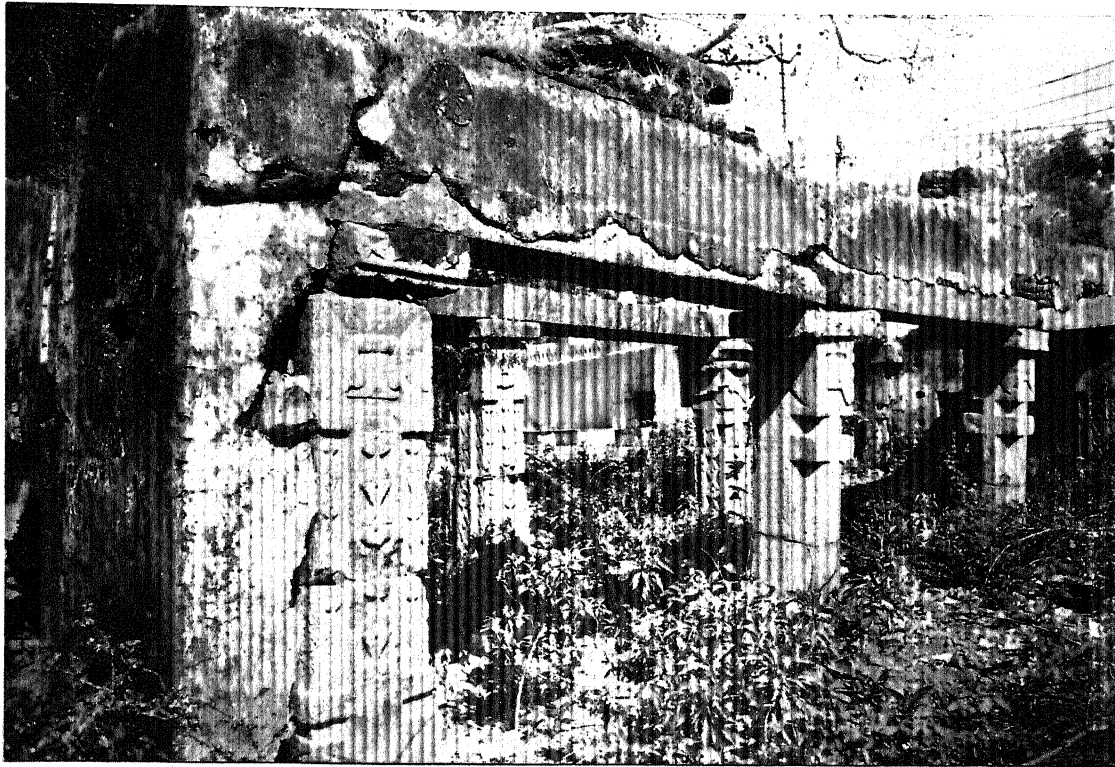
प्लेट-10(ii) झाँसी दुर्ग- नवीन प्रवेश मार्ग



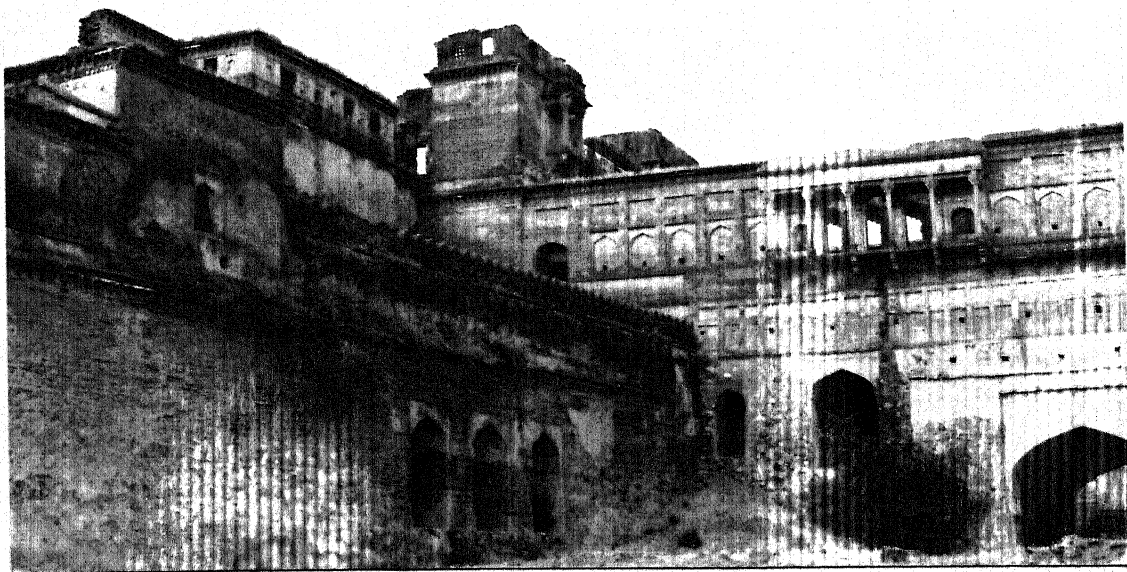
प्लेट - 11 (i) झाँसी दुर्ग - बड़े बुर्ज का एक दृश्य



प्लेट - 11 (ii) झाँसी दुर्ग - शंकरगढ़ एवं पश्चिमी भाग का दृश्य



प्लेट-12(i) महोबा दुर्ग- परमाल की बारादरी के स्तम्भावशे



प्लेट-12(ii) तालबेहट दुर्ग- बुन्देला महल एवं झरोखा



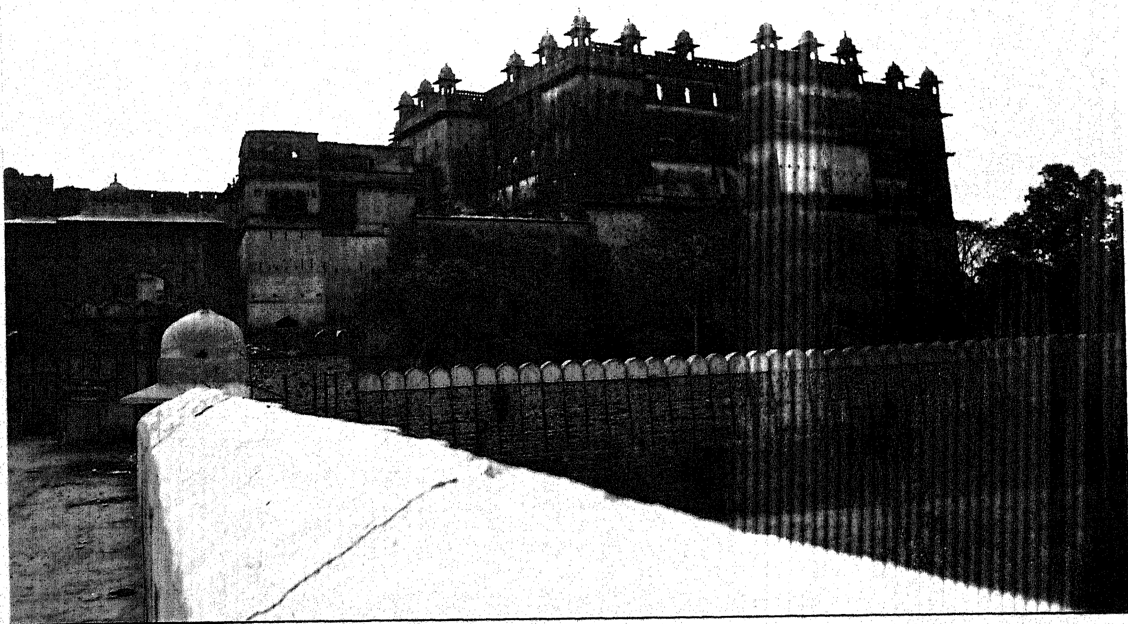
प्लेट-13(i) रानीमहल - झाँसी



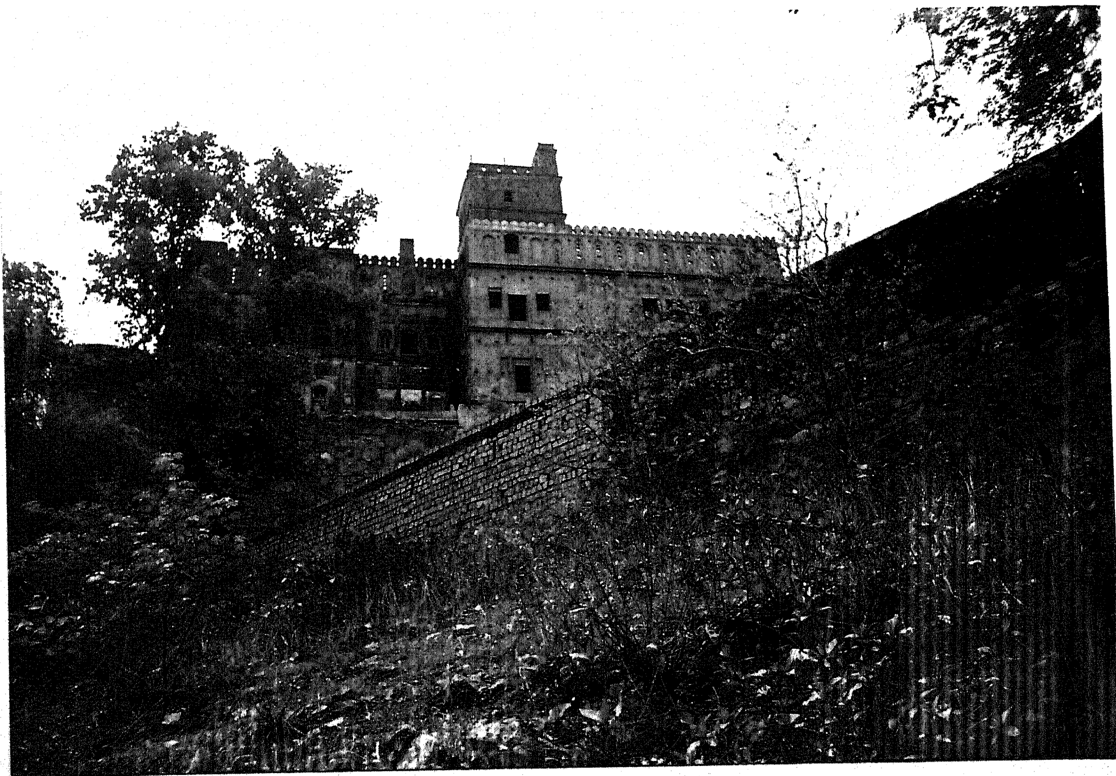
प्लेट-13(ii) ओरछा दुर्ग- प्राचीन महल का दीवाने आम एवं सावन भादों



प्लेट-14 (i) ओरछा दुर्ग- राजमहल से शीशमहल एवं जहाँगीर पैलेस का एक दृश्य



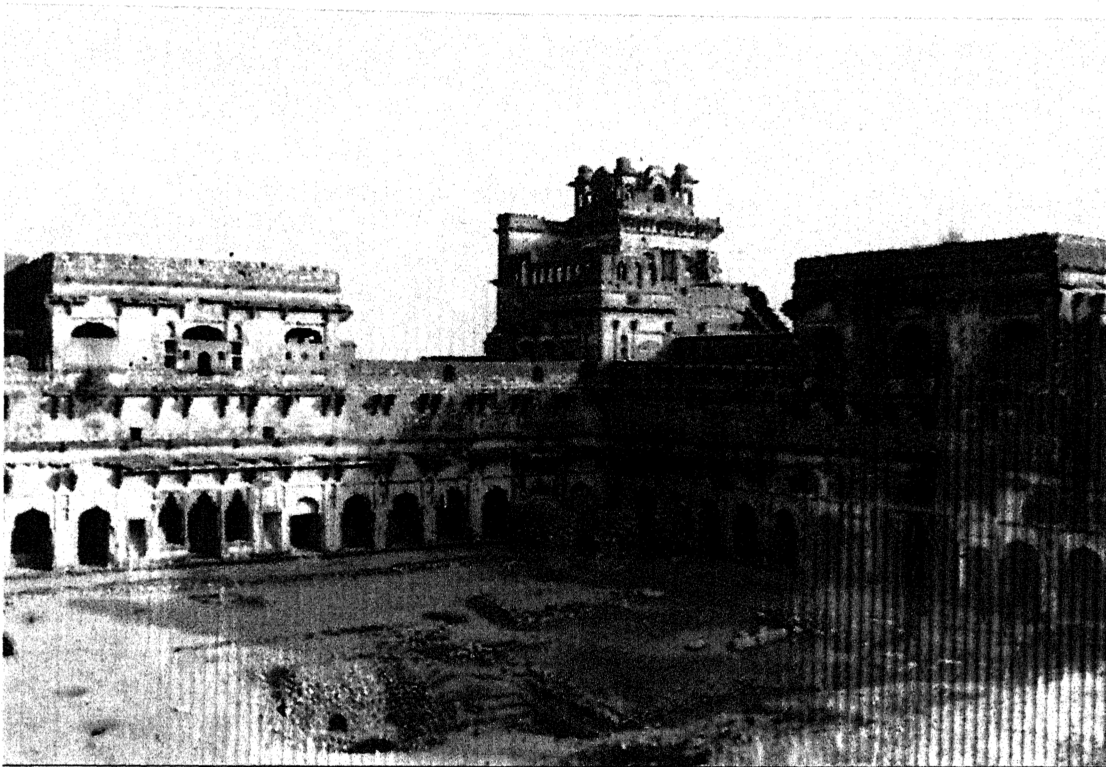
प्लेट-14 (ii) ओरछा दुर्ग- राजमहल के साथ परिखा एवं प्राकार



प्लेट - 15(i) बरूआसागर दुर्ग - बुन्देला राजमहल का परिर



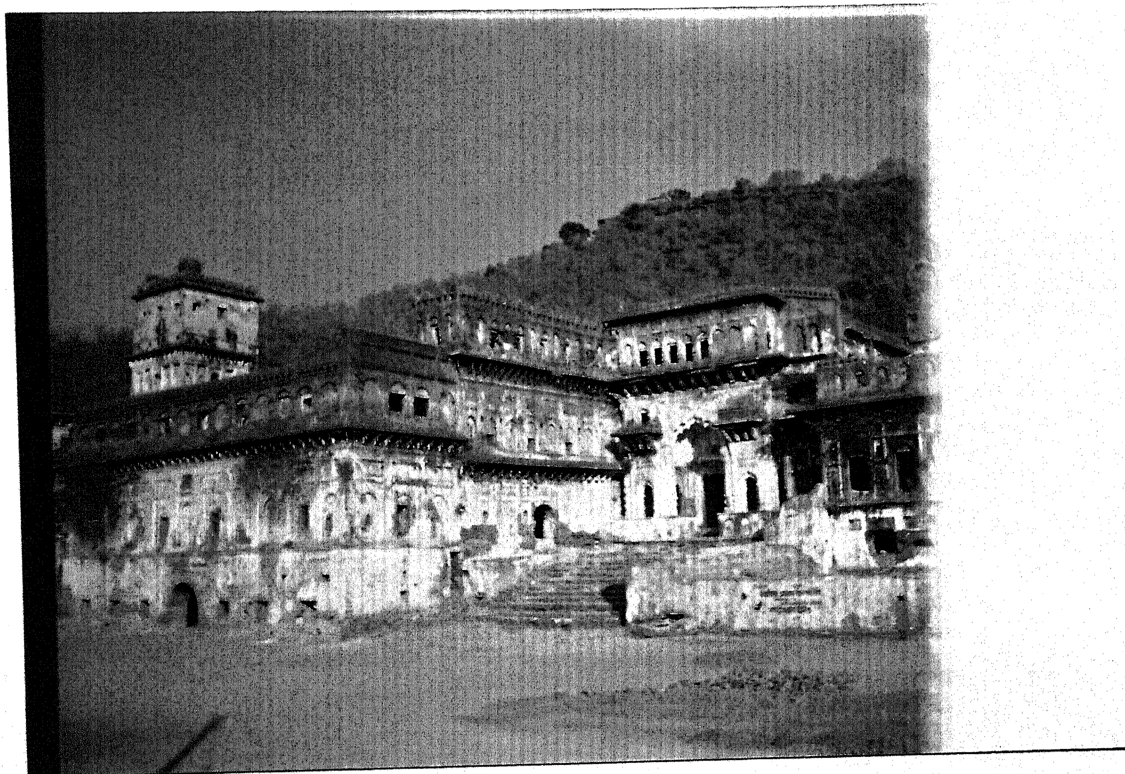
प्लेट - 15(ii) समथर दुर्ग - विशाल राजमहल



प्लेट-16 (i) गढ़कुण्डार दुर्ग - वीर सिंह देव पैलेस



प्लेट-16 (ii) जैतपुर दुर्ग - रनिवास



प्लेट -17(i) अजयगढ़ दुर्ग - पहाड़ी के नीचे राजा का महल



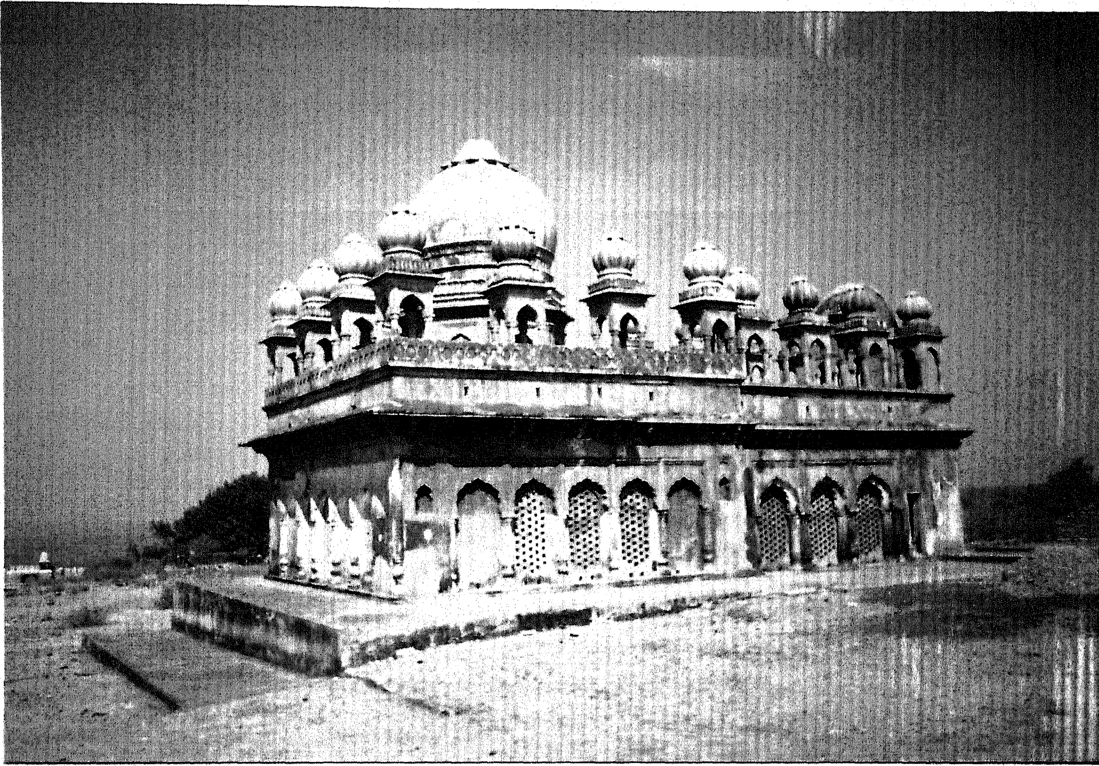
प्लेट-17 (ii) सिहुँड़ा दुर्ग - महल में दीवाने आम



प्लेट-18(i) भूरागढ़ दुर्ग- गुमान सिंह महल के खण्डहर



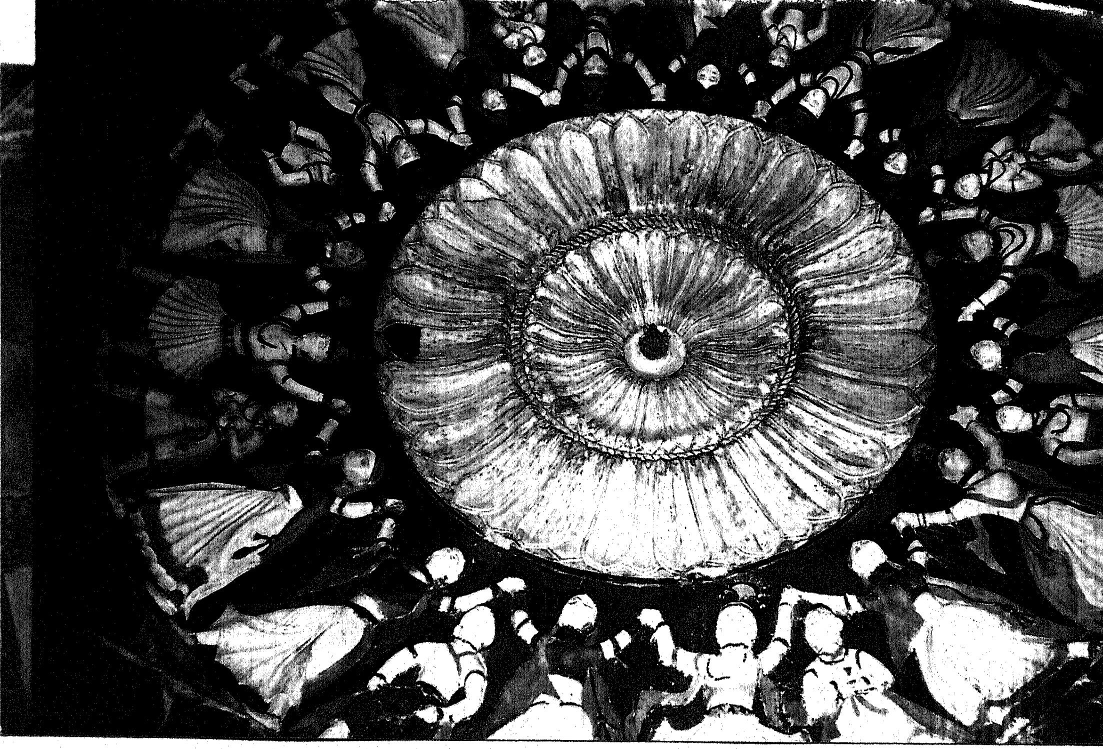
प्लेट-18 (ii) कालिंजर दुर्ग- अमान सिंह महल



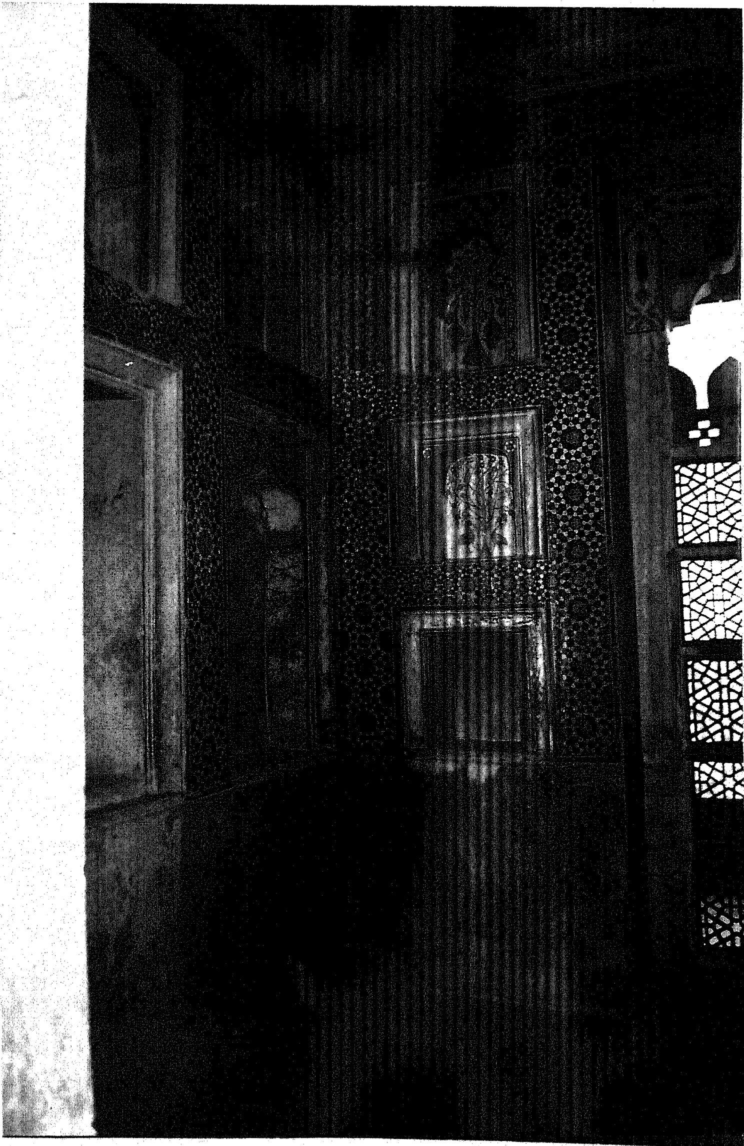
प्लेट-19(i) कालिंजर दुर्ग- परिरक्षण के बाद
व्यंकट बिहारी पैलेस



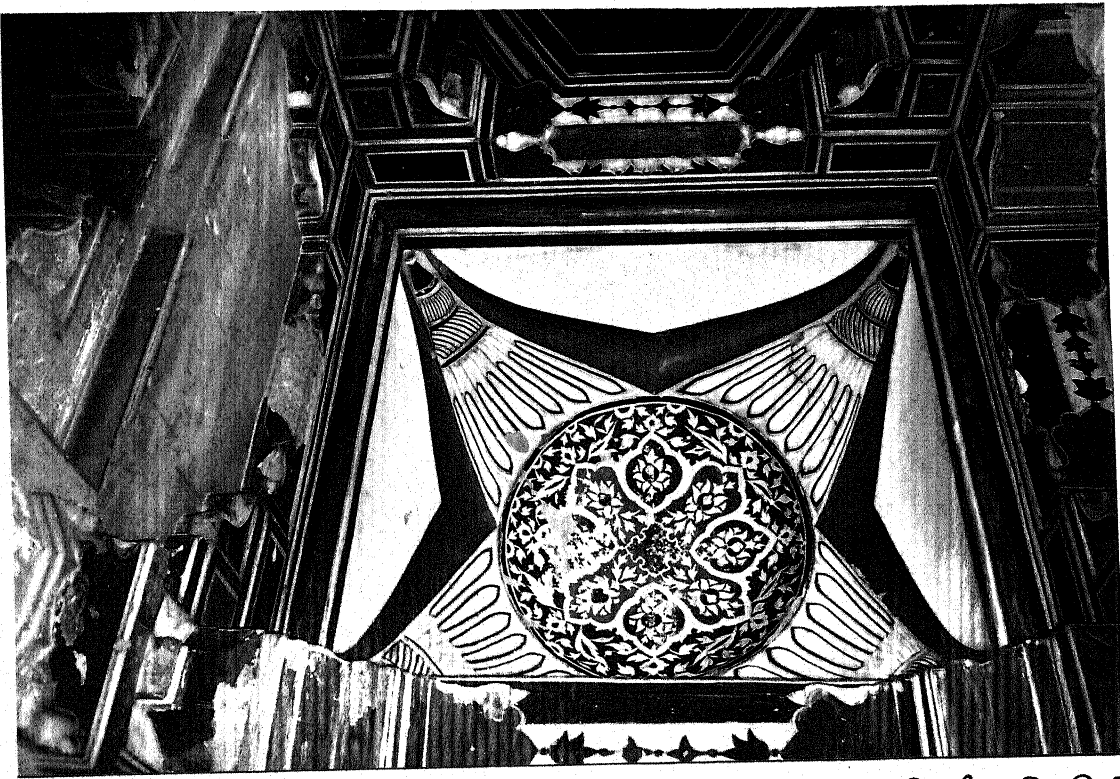
प्लेट-19(ii) धमौनी - रानी महल एवं बुर्ज



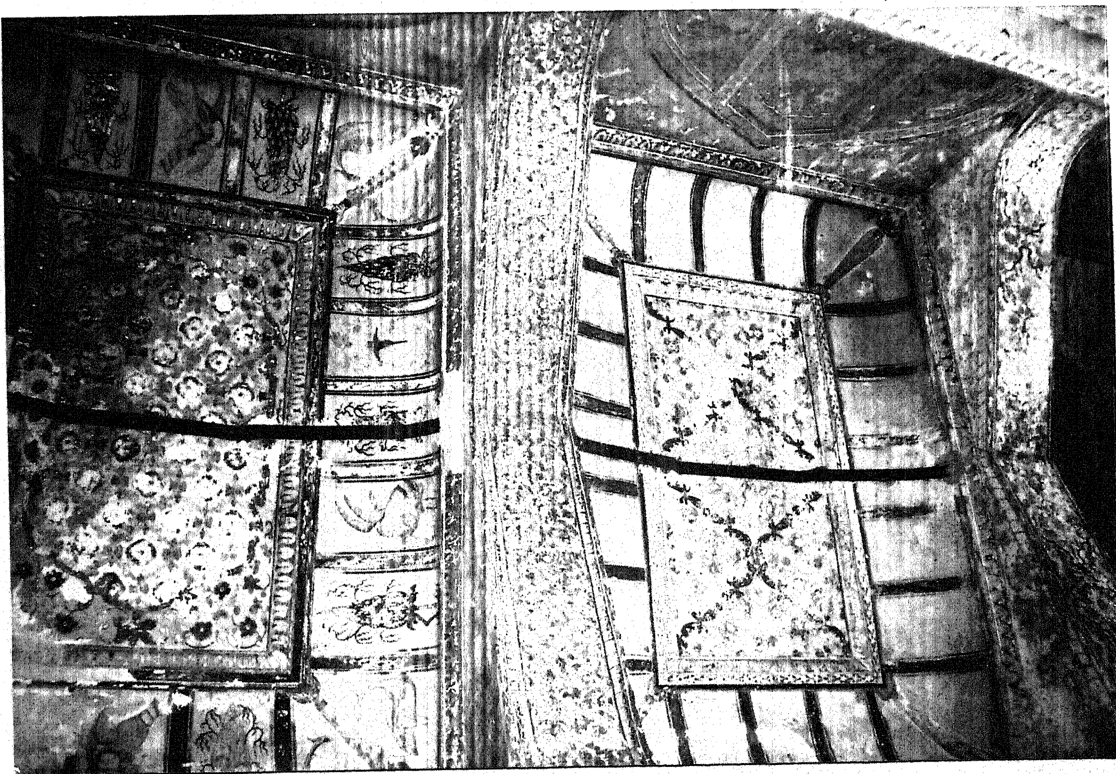
प्लेट- 20(i) नृसिंह देव पैलेस दतिया- चौथी मंजिल पर सीलिंग में चित्रांकन



प्लेट- 20(ii) नृसिंहदेव पैलेस दतिया- रनिवास में भित्ति चित्र



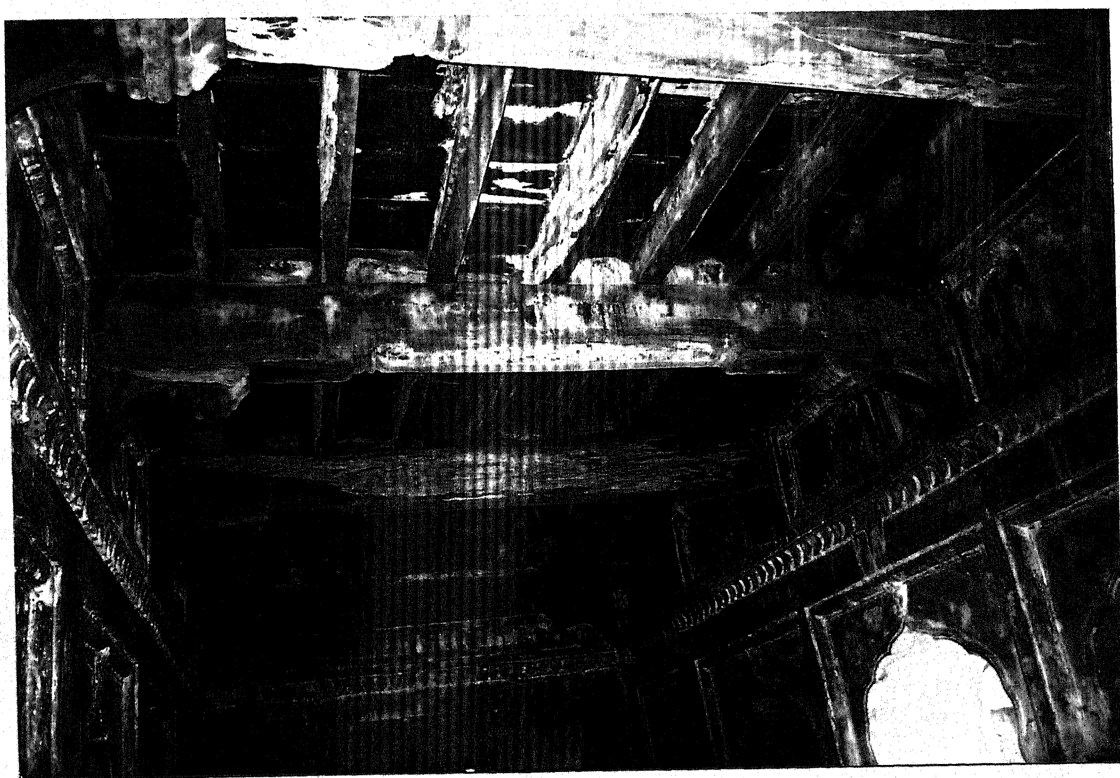
प्लेट - 21(i) नृसिंह देव पैलेस - लॉबी में ज्यामितीय भित्ति चित्र



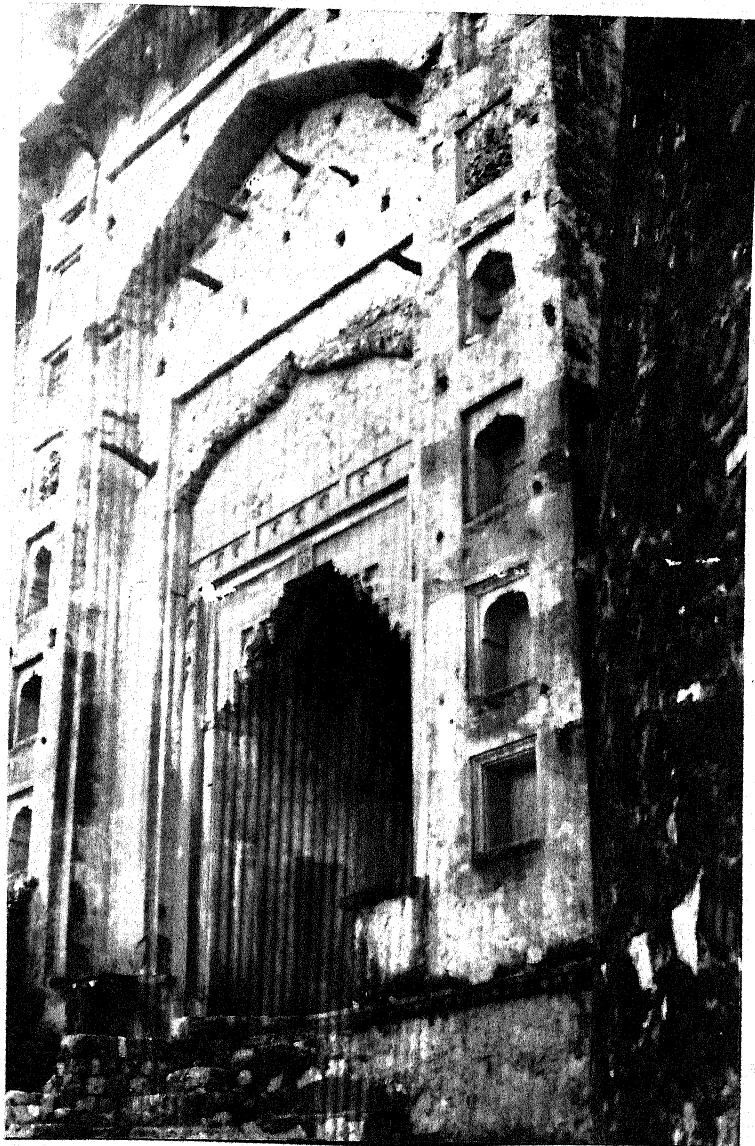
प्लेट - 21 (ii) ओरछा दुर्ग - राजमहल में दीवाने आम की सीलिंग



प्लेट- 22(i) टोडी फतेहपुर दुर्ग- मंदिर के भित्ति चित्र



प्लेट- 22(ii) कालिंजर दुर्ग- चौबे महल में नक्काशीदार लकड़ी का प्रयोग



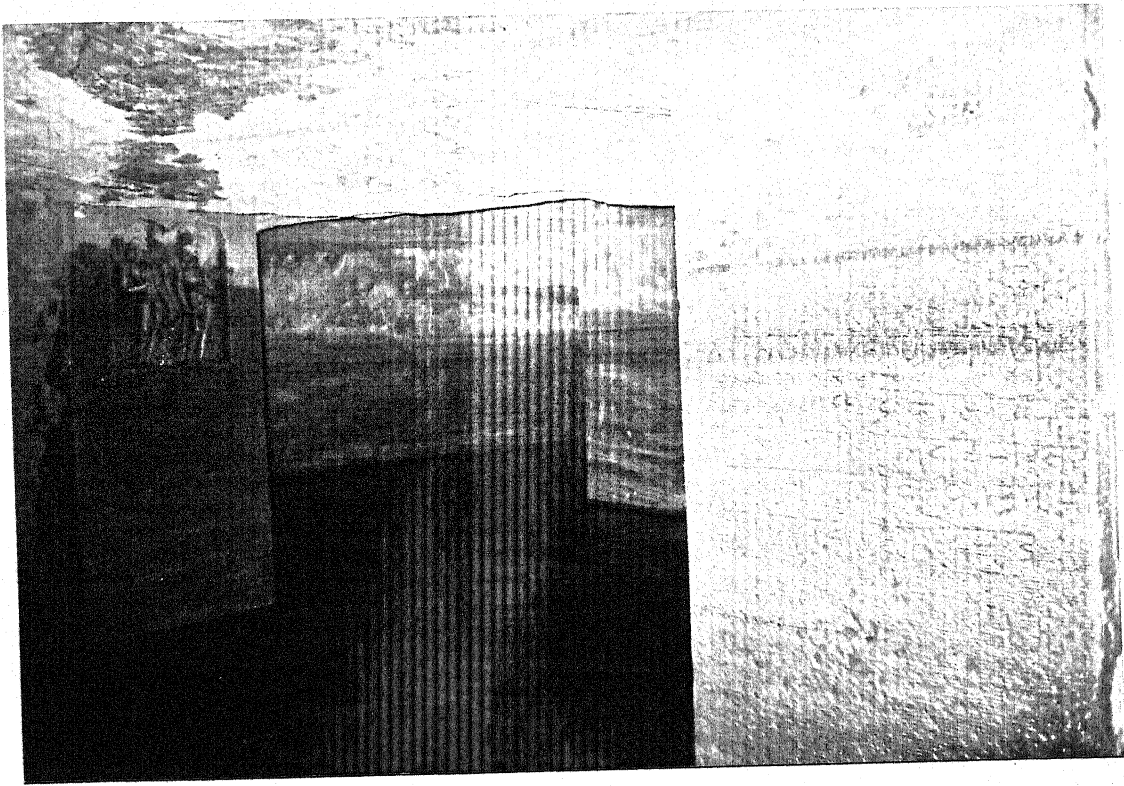
प्लेट - 23(i) तालबेहट दुर्ग - सिंह पौर



प्लेट - 23(ii) टोडी फतेहपुर दुर्ग - अन्नागार



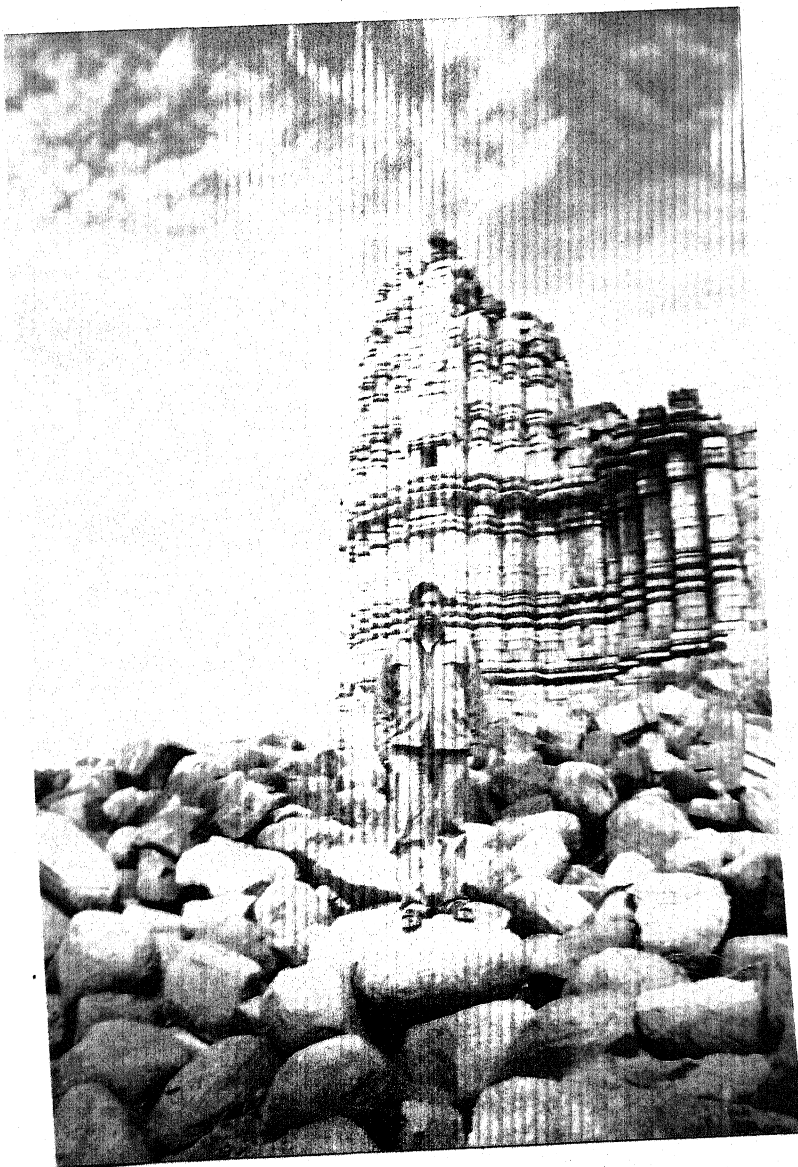
प्लेट- 24(i) अजयगढ़ दुर्ग- गंगा ताल



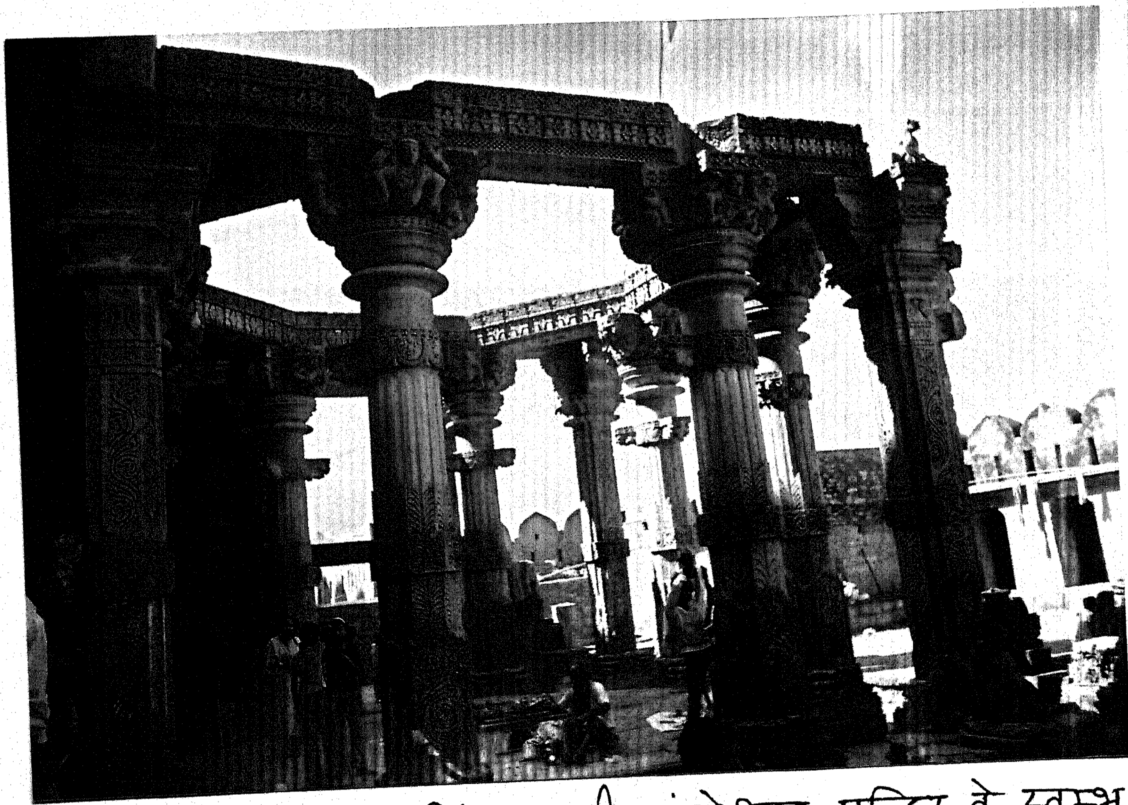
प्लेट- 24 (ii) कालिंजर दुर्ग- सरगाह: प्राकृतिक जल स्रोत
एवं चन्देलकालीन शिलालेख



प्लेट- 25(i) कालपी - चौरासी गुंबज



प्लेट- 25(ii)
महोबा- मदनसागर
के मध्य में करकादे
मन्दिर



प्लेट - 26(i) कालिंजर - नीलकंठेश्वर मन्दिर के स्तम्भ



प्लेट - 26(ii)
नृसिंह देव पैलेस
दतिया - स्तम्भ
संरचना



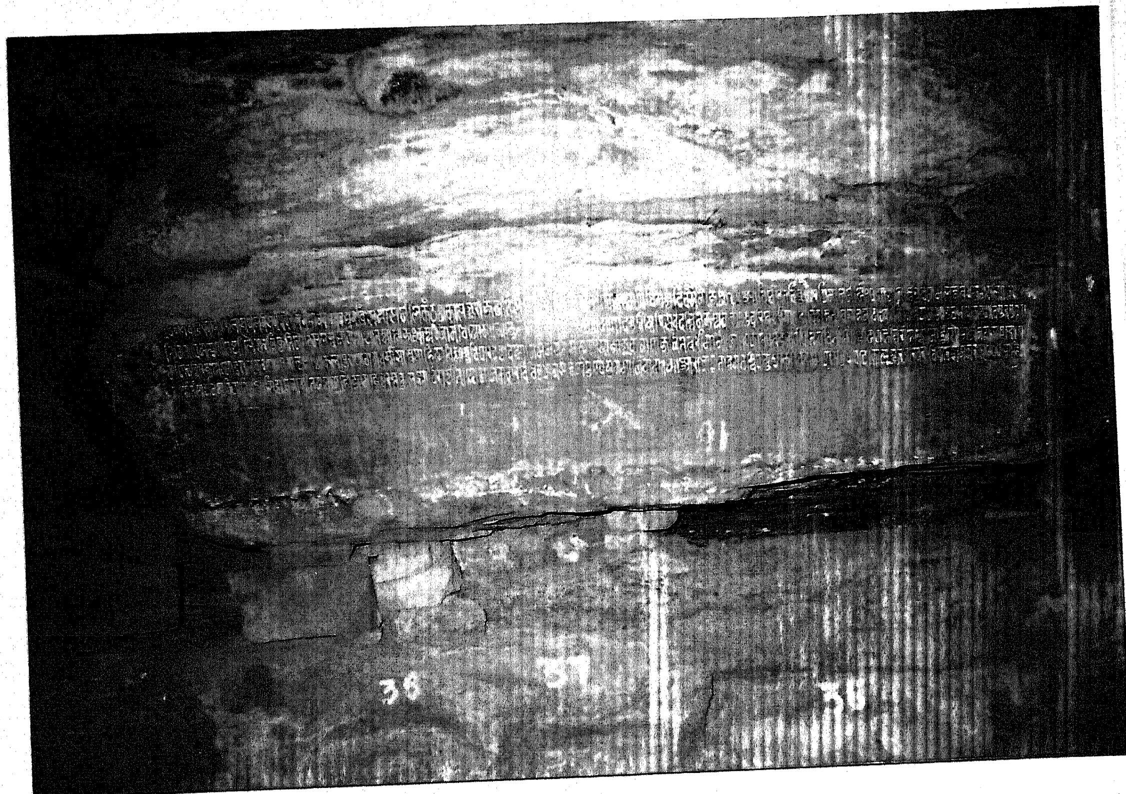
प्लेट - 27(i)

भूरागढ़ दुर्ग—
बावड़ी की भूमिगत सीढ़ियें

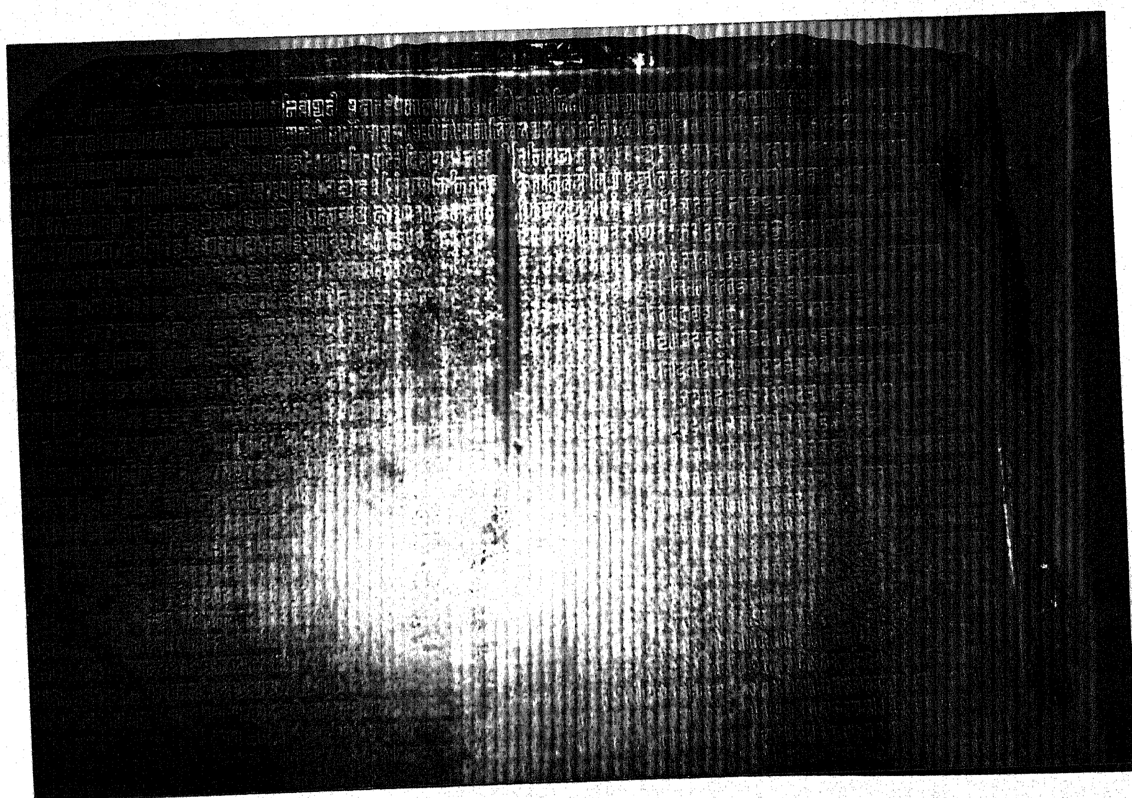


प्लेट-27(ii)

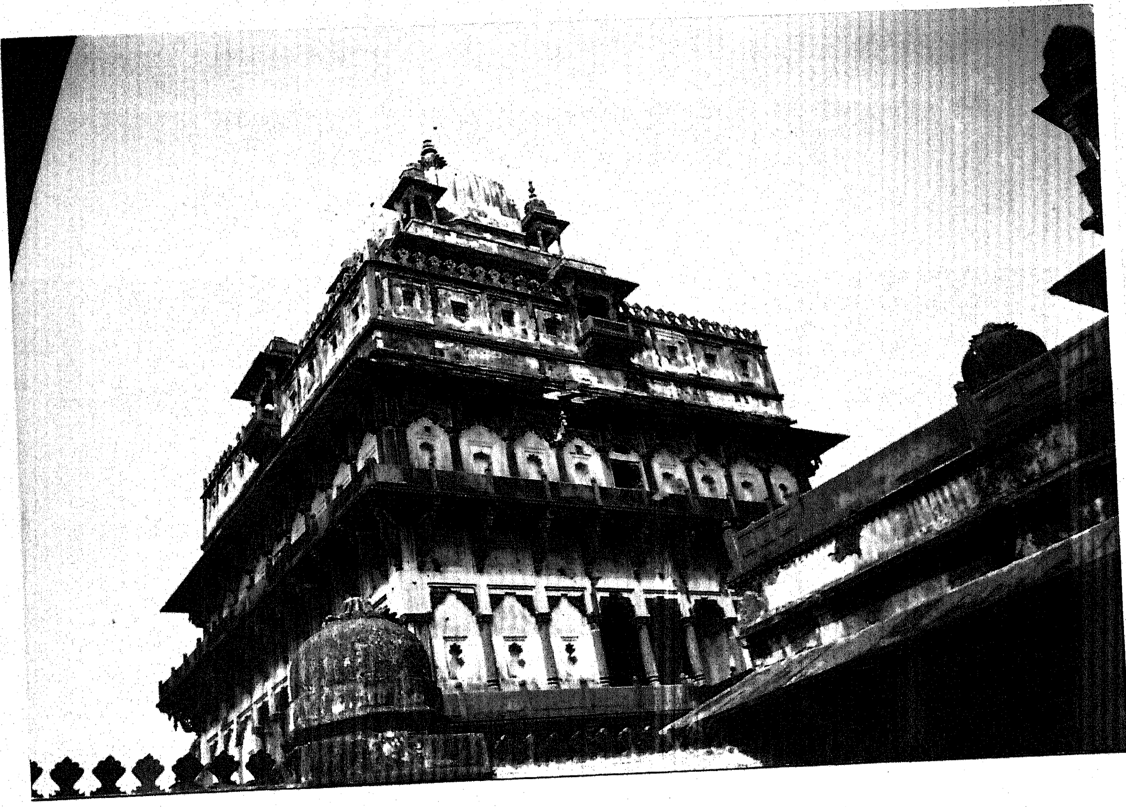
सिहुँड़ा दुर्ग—
भूमिगत निर्माण का मार्ग



प्लेट-28 (i) अजयगढ़ दुर्ग- चन्देलकालीन शिलाले



प्लेट-28 (ii) कालिंजर दुर्ग- नीलकंठ परिसर में धंग का काले पत्थर का अभिलेख



प्लेट - 29 (i) नृसिंहदेव पैलेस दतिया - चतुष्कोणीय मध्य निर्माण



प्लेट - 29 (ii) टीकमगढ़ दुर्ग - राजमहल